हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकरका ५९ वाँ ग्रन्थ।

भारतके प्राचीन राजवंश।

तृतीय भाग।

संस्कृत ग्रन्थों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, फारसी
तवारीखों और ख्यातों आदिके आधारपर
लिखा हुआ प्रारंभकालसे लेकर अबतकके
समस्त

राष्ट्रकूट-(राठोड़ और गहड़वाल)-
वंशका इतिहास।

लेखक—

साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, एम० आर० ए० एस०,
सुपरिंटेंडेंट सरदार म्यूजियम तथा सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी
और
भूतपूर्व प्रोफेसर जसवन्त कालेज, जोधपुर।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
पौष १९८२ वि०,
दिसम्बर १९२५ ई०।

मूल्य तीन रुपया।
राजसंस्करणका चार रुपया।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी, मालिक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई,
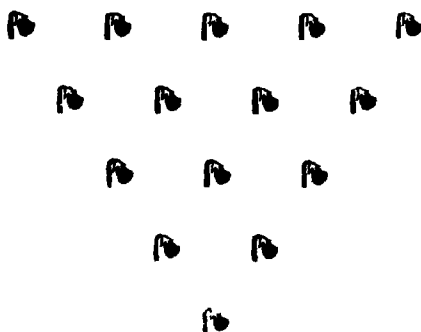
मुद्रक—
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
ठाकुरद्वार रोड, बम्बई।

हिज हाइनेस महाराजा सर उमेदसिंहजी साहब बहादुर के. सी. एस. आइ.

(जोधपुर नरेश)

समर्पण ।

राष्ट्रकूटकुलकमलदिवाकर हिज हाईनेस

श्रीमान् महाराजाधिराज

मरुधराधीश

श्री उम्मेदसिंहजी साहब

के० सी० एस० आई०, के० सी० वी० ओ०,

के

कर-कमलोंमें

विनीत लेखक द्वारा

सादर और सप्रेम

समर्पित ।

निवेदन ।

लगभग चार वर्षके बाद आज इतिहासप्रेमियोंकी सेवामें 'भारतके प्राचीन राजवंश' का तीसरा भाग लेकर एक बार फिर उपस्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यद्यपि अनेक अनिवार्य कारणोंसे यह भाग इच्छानुसार विस्तृत और सर्वाङ्गसुन्दर न हो सका तथापि इसमें वीर राष्ट्रकूट (राठोड़ और गहड़वाल) वंशका इतिहास होनेसे आशा है यह भी पहले दो भागोंके समान ही पाठकोंका थोड़ा बहुत मनोरंजन अवश्य ही करेगा।

इस भागमें प्रथम और द्वितीय भागकी अपेक्षा यह विशेषता है कि इसमें जगत्प्रसिद्ध राष्ट्रकूट वंशका प्राचीन कालसे लेकर अर्वाचीन कालतकका पूरा इतिहास देनेका उद्योग किया गया है और यथास्थान इस वंशके लेखों, ताम्रपत्रों और सिक्को आदिका भी उल्लेख कर दिया है।

इस समय भारतमें जितने राठोड़-नरेश है वे सब मारवाड़-नरेशोंके ही वंशज हैं और उनके पूर्वज मारवाड़-नरेशोंको ही अपना मुखिया मानते चले आए हैं। इसीसे यह भाग राठोड़कुलकमलदिवाकर मरुधराधीश हिज हाईनेस महाराजा श्रीउम्मेदसिंहजी साहब, के० सी० एस० आई०, के० सी० वी० ओ० की विशेष आज्ञासे उन्हींको समर्पित किया गया है।

इनके लिखनेमें जिन जिन विद्वानोकी पुस्तको और लेखादिकोसे सहायता मिली है उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना लेखक अपना कर्तव्य समझता है। यहाँपर यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि इस पुस्तकके संग्रहमें श्रीयुत कुँवर जगदीशसिंहजी गहलोत, एम० आर० ए० एस० का परिश्रम भी सराहनीय रहा है।

यदि इस पुस्तकसे हिन्दी भाषा और उसके प्रेमियोंको कुछ लाभ हुआ तो लेखक अपना परिश्रय सार्थक समझेगा।

यदि इसके दुबारा प्रकाशनका अवसर मिला तो उस समय यथासम्भव इसकी त्रुटियाँ दूर करनेका उद्योग किया जायगा।

जोधपुर,
श्रावण कृष्ण ११, वि० सं० १९८२

विनीत—
विश्वेश्वरनाथ रेउ।

विषय-सूची ।

पृष्ठाङ्क

हिन्दीप्रेमियोंसे अपील ।

भारतके प्राचीन राजवशका यह तीसरा भाग प्रकाशित करके हम हिन्दीप्रेमी पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते है ।

यह कहनेकी जरूरत नहीं कि इतिहासके इन तीनों ग्रन्थोंसे हिन्दी साहित्यका गौरव बढ़ा है और इनसे इतिहासके एक बड़े भारी रिक्त अंशकी पूर्ति हुई है। भारतकी अन्यान्य भाषाओंमें भी इस ढंगके ग्रन्थोका अभाव है। इतिहासके बड़े बड़े धुरन्धर देशी और विदेशी विद्वानोंने इस ग्रन्थकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। यह सब होते हुए भी यह जानकर किसे आश्चर्य और खेद न होगा कि अभी तक इन ग्रन्थोंको हिन्दीप्रेमियोंका उदार आश्रय नहीं मिला है ?

इस ग्रन्थके पहले भागकी केवल एक हजार प्रतियाँ छपाई गई थीं । लगभग छह वर्ष हो चुके, फिर भी इस भागकी कई सौ प्रतियॉ अभी तक हमारे स्टाककीही शोभा बढ़ा रही हैं ! क्या ऐसे ग्रन्थोंकी छह छह वर्षोंमे एक हजार प्रतियॉ भी न खपनी चाहिए ?

हमारी इच्छा है कि लेखक महाशयसे और भी दो तीन भाग लिखाकर यह ग्रन्थ पूरा करा दिया जाय । परन्तु हिन्दीप्रेमियोंकी इस उदासीनताके कारण समझमें नहीं आता कि यह इच्छा कैसे पूर्ण की जाय । हिन्दी जाननेवाले इतने राजा महाराजाओं, ठाकुर-जमीनदारो, सेठ साहूकारों और दूसरे समर्थ पुरुषोके होते हुए भी क्या हमें इस ओरसे निराश हो जाना चाहिए ? यह कहनेकी जरूरत नहीं कि इन ग्रन्थोंका प्रकाशन ऐसे ही लोगोका आश्रय मिलनेसे हो सकता है, सर्व साधारण जनोंके भरोसे नहीं । यदि ये समर्थ सज्जन इन ग्रन्थोकी थोड़ी थोड़ी प्रतियाँ ही सार्वजनिक पुस्तकालयों, वाचनालयो और लायब्रेरियोंमे भेट करनेके लिए खरीद कर लें तो प्रकाशकका बोझा बहुत कुछ हलका हो सकता है ।

आशा है कि हमारी यह अपील व्यर्थ न जायगी ।

इस ग्रन्थके पहले भागमें क्षत्रप, हैहय (कलचुरि), परमार (पँवार), पाल, सेन और चौहान वंशोंका और दूसरे भागमें महाभारतके समयसे लेकर भारत पर राज करनेवाले अनेक वंशोंका—शिशुनाग, नन्द, ग्रीक, मौर्य, शुङ्ग, कण्व, आन्ध्र, शक, पल्हव, कुशाम, गुप्त, हूण, वैस, मौखरी, लिच्छवि आदिका सिलसिलेवार और सप्रमाण इतिहास है । पहले भागकी पृष्ठसख्या ३५०, मू० ३) और दूसरेकी पृष्ठसंख्या ४७०, मूल्य ३॥ रु.)

जिन सज्जनोंके हाथमें यह तीसरा भाग पहुँचे उन्हें उक्त दोनों भाग भी मँगाकर इस ग्रन्थके प्रकाशनमें सहायता देनी चाहिए ।

—प्रकाशक ।

भारतके प्राचीन राजवंश।

[तृतीय भाग।]

राष्ट्रकूट।

उन्दिष्क वाटिकासे एक दानपत्र मिला[1] है। यह राष्ट्रकूट राजा अभिमन्युके समयका है। यद्यपि इसमे संवत् नहीं है तथापि डाक्टर भगवानलाल इन्द्रजी इसे पाँचवीं शताब्दीका अनुमान करते हैं। परन्तु इसके अक्षरोंके वलभीके दानपत्रोंसे मिलते हुए होनेसे डाक्टर फ्लीट इसे ईसाकी सातवीं शताब्दीका मानते हैं। इसमें लिखा है:—

"ॐ स्वस्तिअनेकगुणगणालंकृतयशसा राष्ट्रकु(कू)टाना (नां) तिलकभूतो मानांक इति राजा वभूव।"

अर्थात्—अनेक गुणोंसे अलङ्कृत है कीर्ति जिसकी ऐसा राष्ट्रकूट[2] वंशका तिलकरूप मानांक नामका राजा हुआ।

इलोराकी गुफाके दशावतारके मन्दिरमें लगे राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्गके लेख[3]में लिखा है:—

"न वेत्ति खलु कः क्षितौ प्रकटराष्ट्रकूटान्वयं"

---

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि डैकन, (१८८४) पृ० ४७।

(२) कुछ लोग 'राष्ट्रकूटानां' के स्थानमें 'त्रैकूटकानां' पढ़ते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं है।

(३) केवटैम्पलइन्सक्रिपशन्स, पृ० ९२।

अर्थात्—पृथ्वीपर प्रसिद्ध राष्ट्रकूट वंशको कौन नहीं जानता है? इसी दन्तिदुर्गका दूसरा दानपत्र[2] कोल्हापुर राज्यके सामनगढ़से मिला है। यह शक संवत् ६७५ (वि० सं० ८१०=ई० स० ७५३) का है। इसमें लिखा है:—

"सद्राष्ट्रकूटकनकाद्रिरिवेन्द्रराजः"

अर्थात्—उत्तम राष्ट्रकूटवंशमें सुमेरुके समान इन्द्रराज[*] नामका राजा हुआ।

मध्यप्रान्तके मुलताई नामक गाँवसे श० सं० ६३१ (वि० सं० ७६६=ई० स० ७०९) का एक ताम्रपत्र[4]मिला है। यह नन्दराजके समयका है। इसमें भी इस वंशको राष्ट्रकूटवंश ही लिखा[3]।

इसी प्रकार और भी दूसरे अनेक राजाओंके लेखों और ताम्रपत्रोंमें इस वंशका यही नाम लिखा मिलता है। परन्तु पिछले कुछ लेख ऐसे हैं जिनमें इस वंशका नाम 'रट्ट' लिखा है। जैसे—सिरूरसे मिले अमोघवर्ष (प्रथम) के लेखमें उसे 'रट्टवंशोद्भव' लिखा है।

नवसारीसे मिले इन्द्र (तृतीय) के शक संवत् ८३६ (वि० सं० ९७१=ई० स० ९१४) के ताम्रपत्र[5]में अमोघवर्षको रट्टकुललक्ष्मीका उदय करनेवाला लिखा है। देवलीके ताम्रपत्र[6]में रट्टनामके मूल पुरुषसे इस वंशका उदय होना लिखा है।

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ११, पृ० १०८।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० २३४।
(३) ...श्रीराष्ट्रकूटान्वये रम्ये...।
(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २२०।
(५) जर्नल बॉम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग १८, पृ० २६६।
(६) जर्नल बॉम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग १८, पृ० २४९, २५१।

मेवाड़के घोसूंडी गाँवके लेखमें, जिसमें रावरिड़मलजी और राव जोधाजीका उल्लेख है, इस वंशका नाम 'राष्ट्रवर्य' लिखा है।

नाडोलके ताम्रपत्रमें इसको 'राष्ट्रोर' वंशके नामसे लिखा है। इसी राष्ट्रकूट शब्दके अनेक प्राकृत रूपान्तर 'राठवर' 'राठवड़' 'राठउर' 'राठउड़' 'राठोड़' आदि भी पाये जाते हैं।

डाक्टर बर्नेले इस राष्ट्रकूट शब्दमेंके राष्ट्रको 'रट्ट' शब्दका संस्कृतरूप समझकर इसे तेलुगुके रेड्डी शब्दका रूपान्तर खयाल करते हैं। तेलुगु भाषामें यह शब्द वहाँके आदिम निवासी किसानोंके लिये प्रयोग किया जाता है। परन्तु यह उनका भ्रम ही है; क्योंकि एक तो इन राजाओंके पहलेके लेखोंमें इनके लिये राष्ट्रकूट शब्दका प्रयोग किया गया है, केवल पिछले कुछ लेखोंमें ही 'रट्ट' लिखा है। दूसरे राष्ट्रकूटोंके सबसे पहलेके लेखोंसे इनका मध्य भारत और बंबई अहातेके सुदूरके उत्तरी प्रदेशोंमें रहना पाया जाता है। इन स्थानोंमें रेड्डी जातिका चिह्न तक नहीं मिलता। अतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूटोंका रेड्डी जातिसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं था।

इन राष्ट्रकूटोंकी खानदानी उपाधि 'लटलूराधीश्वर' थी। विद्वान् लोग इस लटलूरको मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलेका रत्नपुर अनुमान करते हैं। यदि यह अनुमान ठीक हो तो इनका उत्तरसे दक्षिणमें जाना सिद्ध होता है। इससे भी इनके और रेड्डी जातिके कल्पित सम्बन्धका खण्डन होता है।

जूनागढ़, मानसेरा, शाहबाजगढ़ी आदि स्थानोंसे मिले अशोकके लेखोंमें राष्टिक, रिष्टिक, रट्टिक, आदि शब्दोंका प्रयोग किया गया है। यह राष्ट्रकूट जातिका ही बोधक है। विद्वानोंका अनुमान है कि इन्हीं शब्दोंके आगे संघशक्ति और श्रेष्ठताके द्योतक पद लगाकर राष्ट्रकूट

और राष्ट्रवर्य शब्दोंकी रचना की गई होगी और इसी प्रकार राष्ट्र शब्द-के पहले 'महा' उपपद लगाकर इस जातिसे शासित प्रदेशका नाम महाराष्ट्र रक्खा गया होगा[1]।

उपर्युक्त स्थानोंके लेखोंमें राष्ट्रकूटोंका नाम होनेसे भी प्रकट होता है कि ये लोग उत्तरसे ही दक्षिणमें गए थे; क्यों कि ये स्थान हिन्दु-स्तानके उत्तर-पश्चिमी प्रदेशसे मिलते हुए हैं।

मयूरगिरिके राजा नारायण शाहकी सभामें रुद्रनामका एक कवि था। उक्त राजाकी आज्ञासे उस कविने शक संवत् १५१८ (वि० सं० १६५३=ई० सं० १५९६) में 'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य' नामका एक काव्य बनाया था। इसके प्रथम सर्गमें लिखा है:—

'अलक्ष्यदेहा तमवोचदेषा राजन्नसावस्तु तवैक सूनुः।
अनेन राष्ट्रं च कुलं तवोढं राष्ट्रो(ष्ट्रौ)ढनामा तदिह प्रतीतः॥२९॥

अर्थात्—(लातनादेवीने) आकाशवाणीके जरियेसे उससे कहा कि हे राजन्, यह तेरा पुत्र होगा और इसने तेरे राष्ट्र (राज्य) और कुलका भार उठाया है इसलिये इसका नाम राष्ट्रोढ होगा।

राष्ट्रकूटों और गहड़वालोंका वंश।

यद्यपि विक्रम संवत् ९७० तकके ताम्रपत्रों आदिमें इनके सूर्य या चन्द्रवंशी होनेका कुछ भी उल्लेख नहीं है तथापि पहले पहल

(१) जिस प्रकार मालब जातिसे शासित प्रदेशका नाम मालवा और गुर्जर जातिसे शासित प्रदेशका नाम गुजरात हुआ, उसी प्रकार राष्ट्रकूट जाति-से शासित प्रदेश, दक्षिण काठियावाड़का नाम सुराष्ट्र (सोरठ) और नर्मदा और महानदीके बीचके देशका नाम राट हुआ होगा। तथा राटको ही बादमें लोग लाटके नामसे पुकारने लगे हैं। (गुजरातके ऊपरका वह भाग जिसमें अली-राजपुर झाबुआ आदि राज्य हैं शायद राठ नामसे प्रसिद्ध है।) गिरनार पर्वत परके स्कन्दगुप्तके लेखमें भी 'सुरठ' प्रदेशका उल्लेख है। इस प्रकार राष्ट्र (राठ), सुराष्ट्र (सोरठ) और महाराष्ट्र प्रदेश राष्ट्रकूटोंकी ही कीर्तिका बोध कराते हैं।

नौसारीसे मिले इन्द्र (तृतीय) के शक संवत् ८३६ (वि० सं० ९७१=ई० स० ९१४) के ताम्रपत्रमें इनका चन्द्रवंशी यादव सात्यकीके वशमें होना लिखा है।

इसके बादके करीब पाँच ताम्रपत्रोंमें भी यही बात लिखी मिलती है। परन्तु श० सं० ९२२ के भिलम (द्वितीय) के ताम्रपत्रसे प्रकट होता है कि उस समय राष्ट्रकूटोंके और यादवोंके आपसमें विवाह सम्बन्ध होता था। अतः यदि राष्ट्रकूट वास्तवमें ही यदुवंशी होते तो ऐसा होना असम्भव था। इससे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट वास्तवमें सूर्यवंशी ही थे। परन्तु द्वारिकाके निकट रहनेके कारण उन पर वैष्णव मतका प्रभाव पड़ गया होगा। इसीसे कालान्तरमें लोग इन्हें यदुवंशी मानने लग गए थे।

---

(१) हलायुधने भी अपनी बनाई 'कविरहस्य' नामक पुस्तकमें राष्ट्रकूटोंका सात्यकीके वशमें होना लिखा है।

(२) ये ताम्रपत्र विक्रम संवत् ९७० और १०६८ के बीचके हैं।

(३) दक्षिणके यादव राजा भिलम तृतीयके श० सं० ९४८ के ताम्रपत्रमें लिखा है:—

यस्यासीज्जगदर्च्चनीयचरिता लक्ष्मीर्म्मनःप्रेयसी
या श्रीयादवराष्ट्रकूटकुलयोः जाता समुद्योतिनी।

अर्थात्—भिलम द्वितीयकी स्त्रीका नाम लक्ष्मी था। वह राष्ट्रकूट वंशकी कन्या थी। (इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १७, पृ० १२०)

इसी प्रकार श० सं० ९९१ के यादववंशी राजा सेउणचन्द्र द्वितीयके ताम्रपत्रमें लिखा है:—

भार्या यस्य च झंझराजतनया श्रीलच्छियाम्बाभिधा
धर्मत्यागविवेकबुद्धिसुगुणा श्रीराष्ट्रकूटान्वया।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० ११९) इससे भी उपर्युक्त बातकी ही पुष्टि होती है।

राष्ट्रकूट राजाओंकी आज तककी मिली प्रशस्तियोंमें सबसे पहला ताम्रपत्र राजा अभिमन्युका मिला है। यद्यपि इस पर संवत् आदिक नहीं है तथापि इसके अक्षरोंसे इसका विक्रमकी सातवीं शताब्दीके प्रारम्भके करीबका होना सिद्ध होता है। इस पर जो मुहर लगी है उसमें सिंह पर बैठी हुई अम्बिकाकी मूर्ति बनी है। परन्तु इस वंशके पिछले राजाओंके ताम्रपत्रों पर सिंहका स्थान गरुडने ले लिया है। इससे भी प्रकट होता है कि पिछले दिनोंमें ही इन पर वैष्णव मतका प्रभाव पड़ा था[1]।

'राष्ट्रौढवंशमहाकाव्य'का उल्लेख पहले किया जा चुका है। उसके पहले सर्गमे इस वंशकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है:—

"पुरा कदाचिन्नतये समेतान्देवाननुज्ञाप्य गृहाय सद्यः ।
कात्यायनीमर्द्धमृगाङ्कमौलिः कैलासशैले रमयाम्बभूव ॥ १२ ॥

....

अन्योन्यभूषापणबन्धरम्यं तत्रान्तरे द्यूतमदीव्यतां तौ ॥ १४ ॥

....

कात्यायनीपाणिसरोजकोशविलोलिताक्षक्षपितादथेन्दोः ।
गर्भान्वितैकादशवार्षिकोऽभूदभूतपूर्वः प्रतिमः कुमारः ॥ २० ॥

....

तस्मै वरं साम्बशिवो दयालुः श्रीकान्यकुब्जेश्वरतामदासीत् ॥२३॥
अत्रान्तरे काचन लातनाख्या समेत्य देवी गिरिजाहराभ्याम् ।
विलीनभूमीपतिकान्यकुब्जराज्याधिपत्याय शिशुं ययाचे ॥ २४ ॥

....

नारायणो नाम नृपः सुतार्थी यत्रेश्वरं ध्यायति सूर्यवंश्यः ।
सा रुद्रदत्तेन सहामुनास्मिन्नवातरत्काञ्चनमेखलेन ॥ २८ ॥
अलक्ष्यदेहा तमवोचदेषा राजन्नसावस्तु तवैकसूनुः ।
अनेन राष्ट्रं च कुलं तवोढं राष्ट्रौ (ष्ट्रो) ढनामा तदिह प्रतीतः ॥२९॥"

(१) इनके ताम्रपत्रोंकी मुहरोंको देख कर भगवानलाल इन्द्रजीने भी यही मत माना है। (देखो जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी, भाग १६, पृ० ९०)

अर्थात्—एक समय कैलास पर्वत पर महादेव और पार्वती चौसर खेल रहे थे। पार्वतीके हाथसे उछलकर पासा शिवजीके मस्तकके चन्द्रमापर जा लगा। उसी समय चन्द्रमामेंसे एक एकादशवर्षीय बालक उत्पन्न हुआ और शिवपार्वतीकी स्तुति करने लगा। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे कान्यकुब्ज (कन्नौज) का राजा होनेका वर दिया। उसी समय वहाँ पर लातना नामकी देवी आई और उसने उस कुमारको कन्नौजकी राजगद्दीपर बिठानेके लिए महादेवसे माँग लिया। इसके बाद उसे ले जाकर पुत्रके लिए तपस्या करते हुए सूर्यवंशी नारायण नामक राजाको दे दिया। तथा सूर्यवंशी राजा नारायणके राज्य और वंशके भारको सँभालनेके कारण ही उसका नाम राष्ट्रोढ रक्खा।

इस कथासे भी राष्ट्रकूटोंका सूर्यवंशी होना और साथ ही राष्ट्रकूटोंका और गहड़वालोंका एक होना सिद्ध होता है।

राष्ट्रकूट राजा लखनपालके राज्य समयका एक लेख[1] बदायूंसे मिला है। उसमें दी हुई वंशावली इस प्रकार है:—
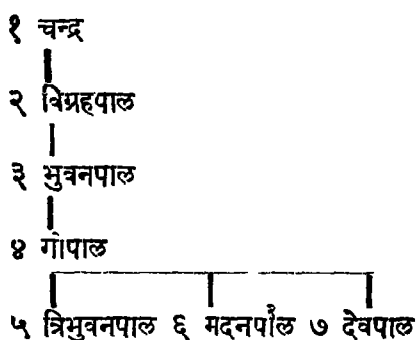
(१) एपिग्राफिया इण्डिका, भाग १, पृ० ६४।

(२) इसके प्रतापसे मुसलमान लोग गङ्गा तट पर नहीं पहुँच सके थे।
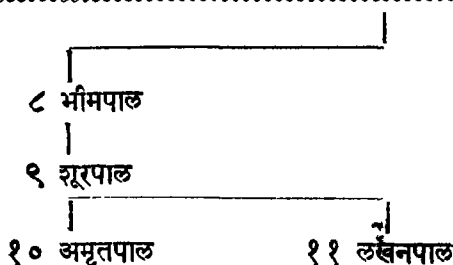
यद्यपि इस लेखमें संवत् नहीं है तथापि इसके अक्षरोंको देखनेसे इसका विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीके अन्तिम भागका होना प्रकट होता है। इसमें लिखा है कि पहले पहल राजा चन्द्रने ही पांचाल देशपर अधिकार जमाया था।

विक्रम संवत् १२५३ का हरिश्चन्द्रका एक ताम्रपत्र मिला है। इसमेकी वंशावली इस प्रकार है:—
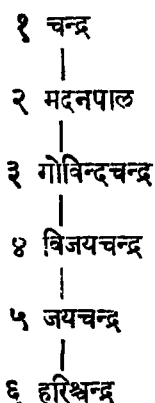
इस लेखमें भी चन्द्रको ही पहले पहल पांचाल देशको जीतनेवाला लिखा है।

(सम्भव है यह गोविन्दचन्द्र या विजयचन्द्रके सामन्तकी हैसियतसे मुसलमानोंसे लड़ा हो।) (१) रुहेलखण्ड। कन्नौज भी इसीके अन्दर था।

उपर्युक्त दोनों लेखोंके समय और पांचाल देशकी विजयपर विचार करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बदायूंके लेखवाला चन्द्र और हरिश्चन्द्रके लेखवाला कन्नौजका राजा चन्द्र एक ही था और उसीसे दो शाखाएँ चलीं। बड़ा पुत्र मदनपाल कन्नौजका अधिकारी हुआ और छोटे पुत्र विग्रहपालको बदायूँकी जागीर मिली[1]।

यदि ऊपर लिखा अनुमान ठीक हो, जो कि बहुत सम्भव है, तो दक्षिणके राष्ट्रकूटोंका और गहड़वालोंका एक होना ही सिद्ध होगा। अतः विन्सेण्ट स्मिथका यह कहना कि राठोड़ और गहड़वाल एक ही वंशके न थे निस्सार प्रतीत होता है।

वास्तवमे राष्ट्रकूटोंकी ही एक शाखा गहड़वाल नामसे प्रसिद्ध थी[2]।

'पृथ्वीराज रासा' नामक भाषाकाव्यमें भी कन्नौजके गहड़वाल राजा जयचन्द्रको राठोड़ और कमधज नामसे सम्बोधन किया है।

कन्नौजके गहड़वाल राजाओंके लेखोंमें उन्हें सूर्यवंशी लिखा है। जैसे:—

" आसीदशीतद्युतिवंशजातक्ष्मापालमालासु दिवं गतासु।
साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः॥"

---

(१) कुतुबुद्दीन ऐबकके समय बदायूं पर मुसलमानोंने अधिकार कर लिया था और वहाँका पहला हाकिम शम्सुद्दीन अल्तमश हुआ। यही अल्तमश बादमें दिल्लीका बादशाह हुआ। बदायूंकी जुमामस्जिदके दरवाजे पर हिजरी सन् ६२० (वि० सं० १२८०=ई० स० १२२३) का शम्सुदीनके समयका एक लेख लगा है। इससे अनुमान होता है कि लखनपालका लेख इसके पहलेका होगा।

(२) जिस प्रकार गुहिल और सीसोदिया, हाडा और देवडा, सोनगरा, खीची और चौहान, यादव और भाटी एक ही हैं उसी प्रकार राठोड़ और गहड़वाल भी एक ही हैं।

अर्थात्—बहुतसे सूर्यवंशी राजाओंके स्वर्ग जाने पर साक्षात् सूर्यके समान प्रतापी यशोविग्रह नामका राजा हुआ।

इससे गहड़वालो और राष्ट्रकूटोंके एक होनेसे गहड़वालोंके साथ राष्ट्रकूटोंका भी सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है।

आज भी कन्नौजके गहड़वाल राजाओंके वंशज अपनेको राष्ट्रकूट और सूर्यवंशी मानते हैं।

मारवाड़की ख्यातोंमें लिखा है कि धूहड़जी अपनी कुलदेवी लेनेके लिए दक्षिणमें गए थे और वहाँसे लाकर नागाना नामक गाँव (पचपदरा परगना) में उसकी स्थापना की थी। इससे भी राष्ट्रकूटोंका और गहड़वालोंका एक होना और दोनोंका सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है।

वि० सं० १४४२ के प्रभासपाटनसे मिले यादव राजा भीमके लेखमें लिखा है:—

> वंशो(शौ) प्रसिद्धो (द्धौ) हि यथा रवीन्द्रो (:)
> राष्ट्रोडवंशस्तु तथा तृतीयः ॥
> यत्राभवद्धर्मनृपोऽतिधर्मे-
> स्तस्माच्छिवं मा (सा) यमुना जगाम ॥१०॥

अर्थात्—जिस प्रकार सूर्यवंश और चन्द्रवंश दोनों प्रसिद्ध है उसी प्रकार तीसरा राष्ट्रोडवंश भी प्रसिद्ध है।

इससे ज्ञात होता है कि उस समय भी ये चन्द्रवंशी यादव नहीं

---

(१) टाड साहबने अपने राजस्थानके इतिहासमें राठोड़ोंका गौतम गोत्र, माध्यन्दिनी शाखा, शुक्राचार्य गुरु, गार्हस्पत्य अग्नि और पंखनी देवी लिखा है। परन्तु दक्षिणमें शायद राष्ट्रकूटोंको अत्रिगोत्री मानते हैं।

(२) बंबई गॅजेटियर, भाग १, हिस्सा २, पृ० २०८-९।

समझे जाते थे, क्योंकि यदि ऐसा होता तो यादव राजा भीम इन्हें अपने वंशका लिखनेमें बड़ा गौरव समझता।

अतः इनका सूर्यवंशी होना ही अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है।

राष्ट्रकूटोंका धर्म।

पहले बतलाया जा चुका है कि राष्ट्रकूट राजाओंके सबसे पहलेके (अभिमन्युके) ताम्रपत्रमें सिंहवाहिनी अम्बिकाकी आकृति बनी है। परन्तु बादके ताम्रपत्रोंमें गरुडकी मूर्ति पाई गई है। करदासे मिले कक्क (द्वितीय) के ताम्रपत्रम गरुडका स्थान वृषको दिया गया है।

इनकी ध्वजाका नाम 'पालिध्वज' था और ये 'ओककेतु' भी कहलाते थे। शायद इसका तात्पर्य गरुडध्वजसे ही होगा। इनके निशानमें गङ्गा और यमुनाके चिह्न बने रहते थे। सम्भवतः ये इन्होंने बादामीके पश्चिमी चालुक्योंसे नकल किये होंगे।

इनकी कुलदेवी लातना (लाटना), राष्ट्रश्येना, मनसा, या विन्ध्य-वासिनीके नामसे प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इनकी कुलदेवीने श्येन (शिकरे) का रूप धरकर इनके राज्यकी रक्षा की थी, इसीसे इसका नाम 'राष्ट्रश्येना' हुआ। इसीके चिह्नस्वरूप आज भी मारवाड़के राठोड़ राजाओंके निशानमें शिकरेकी आकृति बनी रहती है।

---

(१) एकलिङ्गमहात्म्यके ग्यारहवें अध्यायमें लिखा है:—

स्वदेहाद्राष्ट्रश्येनां तां सृष्ट्वा स्थाप्याथ तत्र सा ॥ १५ ॥
श्येनारूपं सम्यगास्थाय देवी राष्ट्रं त्राहि त्राह्यतो वज्रहस्ता ॥ १६ ॥
दुष्टग्रहेभ्योन्यतमेभ्य एवं श्येने त्राणं मेदपाटस्य कार्यं ॥ १७ ॥

राष्ट्रश्येनेति नाम्नीयं मेदपाटस्य रक्षण
करोति न च भङ्गोस्य यवनेभ्यो मनागपि ॥ २२ ॥

इससे प्रकट होता है कि मेवाड़की रक्षा करनेवाली भी यही राष्ट्रश्येना देवी है। मेवाड़में एकलिङ्ग महादेवके मन्दिरसे १½ कोसके करीब एक पहाड़ीकी चोटी पर इसका मन्दिर है।

उपर्युक्त विवरणसे प्रकट होता है कि इस वंशके राजा यथासमय शैव, वैष्णव और शाक्त मतोंके अनुयायी रहे थे।

जैनोंके उत्तरपुराणमें लिखा है:—

यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम्॥

अर्थात्—राजा अमोघवर्ष जिनसेन नामक जैन साधुको प्रणाम करके अपनेको धन्य मानता था।

इससे प्रकट होता है कि अमोघवर्ष जिनसेनका शिष्य था।

स्वयं अमोघवर्षकी बनाई 'रत्नमालिका' (प्रश्नोत्तररत्नमालिका) नामक पुस्तकमें लिखा है:—

'प्रणिपत्य वर्धमानं प्रश्नोत्तररत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरं॥

....

विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलङ्कृतिः॥'

अर्थात्—वर्द्धमान (महावीर) स्वामीको प्रणाम करके प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका नामकी पुस्तक बनाता हूँ।

विवेकसे छोड़ दिया है राज्य जिसने ऐसे राजा अमोघवर्षने यह रत्नमालिका नामकी पुस्तक बनाई।

महावीराचार्यरचित गणितसारसंग्रहमें लिखा है:—

'प्रीणितः प्राणिशस्यौघो निरीतिर्निरवग्रहः।
श्रीमतामोघवर्षेण येन स्वेष्टहितैषिणा॥ १॥

....

विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः।
देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्द्धतां तस्य शासनं॥६॥

अर्थात्—अमोघवर्षके राज्यमें प्रजा सुखी रहती है और पृथ्वीसे खूब धान्य उत्पन्न होता है। जैनमतानुयायी राजा नृपतुङ्ग (अमोघवर्ष) का राज्य उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहे।

इनसे भी अमोघवर्षका जैनमतानुयायी होना सिद्ध होता है। सम्भवतः इसने अपनी वृद्धावस्थामें उक्त मत ग्रहण कर लिया होगा।

यह तो निर्विवाद है कि इन राजाओंके समय पौराणिक मतकी खूब ही उन्नति हुई थी और बहुतसे शिव और विष्णुके मन्दिर बनवाए गए थे। इनके समयसे पूर्व पहाड़ काटकर जितनी गुफाएँ आदि बनाई गई थीं वे बौद्धों, जैनों और निर्ग्रन्थोंके लिये ही थीं। परन्तु इन्हींके समय पहले पहल इलोराकी गुफाके 'कैलास भवन' आदि तैयार करवाए गए।

इनके दानके विषयमें इतना लिखना ही काफी होगा कि राष्ट्रकूटोंकी कन्नौजवाली गहड़वाल शाखाके राजाओंके जितने दानपत्र मिले हैं उतने शायद अन्य किसी वंशके राजाओंके न मिले होंगे।

राष्ट्रकूटोंके समयकी विद्या और कला कौशलकी अवस्था।

इनके समय विद्या और कला कौशलकी अच्छी उन्नति हुई थी। ये लोग स्वयं भी विद्वान् होते थे और गुणियोंका आदर करनेमें भी कुछ उठा न रखते थे

गणितसारसंग्रहका कर्त्ता महावीराचार्य, आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदयका लेखक जिनसेन, आत्मानुशासनका रचयिता गुणभद्राचार्य, कविरहस्यका कवि हलायुध, व्यवहारकल्पतरुका संपादक लक्ष्मीधर, नैषधचरितका बनानेवाला श्रीहर्ष आदि विद्वान् इन्हींके समय हुए थे।

इस वंशके राजाओंकी विद्वत्ताकी प्रमाणभूत अमोघवर्ष (शर्व) रचित प्रश्नोत्तररत्नमालिका अब तक विद्यमान है। इसकी रचना

बहुत ही उत्तम कोटिकी है। यद्यपि कुछ लोग इसको शङ्कराचार्यकी और कुछ श्वेताम्बर जैनाचार्यकी बनाई हुई मानते हैं, तथापि दिगम्बर जैनोंकी लिखी प्रतियोंमें इसे अमोघवर्षकी रचना ही लिखा है। यही बात उसमेंके उद्धृत किए हुए श्लोकोंसे भी सिद्ध होती है।

इस पुस्तकका अनुवाद तिब्बती भाषामें भी किया गया था। और उसमें भी इसके कर्त्ताका नाम अमोघवर्ष ही लिखा है।

इसी अमोघवर्षने कनाड़ी भाषामें 'कविराजमार्ग' नामकी एक अलङ्कारकी पुस्तक भी बनाई थी।

ऊपर लिखा जा चुका है कि इनके समय कलाकौशलकी भी अच्छी उन्नति हुई थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इलोराकी गुफाके 'कैलास भवन' नामक मन्दिरसे ही मिल जाता है। यह कैलास भवन राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज (प्रथम) के समय पर्वत काट कर बनाया गया था। इसकी प्रशंसा करना सूर्यको दीपक दिखानेके समान है।

अजण्टाकी गुफा भी इन्हींके राज्यके प्रारम्भके आसपास बनाई गई थी। यह भी अपनी चित्रणकलाके लिए विख्यात है।

राष्ट्रकूटोंका प्रताप।

अरबी भाषामें 'सिलसिलातुत्तवारीख' नामकी एक पुस्तक है। इसे अरबके व्यापारी सुलेमानने हिजरी सन् २३७ (वि० सं० ९०९=ई० स० ८५२) में लिखा था। इसमें लिखा है:—

'हिन्दुस्तान और चीनके लोगोंका अनुमान है कि संसारमें चार बड़े बड़े बादशाह हैं। पहला अरबदेश (बगदाद) का खलीफा, दूसरा चीनका, तीसरा यूनानका और चौथा बलहरा (वल्लभराज=राष्ट्रकूट)। यह बलहरा भारतके दूसरे तमाम राजाओंसे अधिक प्रसिद्ध है। अन्य राजा लोग इसके राजदूतोंका बड़ा आदर करते हैं। अरबोंकी तरह

यह भी अपनी सेनाका वेतन समयपर दे देता है। इसके पास बहुतसे हाथी, घोड़े हैं और धनकी भी इसे कुछ कमी नहीं है। इसका राज्य कोंकणसे चीनकी सीमातक फैला हुआ है। इसके सिके तातारी द्रम्म हैं। उनका वजन अरबी द्रम्मोंसे डेवढ़ा है। इनपर इनका राज्याभिषेक संवत् लिखा रहता है। बलहरा इनका वैसा ही खानदानी खिताब है जैसा कि ईरानके बादशाहोंका खुसरो। यह अक्सर अपने पड़ोसी राजाओंसे लड़ता रहता है। इनमें विशेष उल्लेख योग्य गुजरातका राजा है।'

इब्न खुर्दादने हिजरी सन् ३०० (वि० सं० ९६९=ई० स० ९१२) के करीब 'किताबुल मसालिक वउल ममासिक' नामकी पुस्तक लिखी थी। उसमें लिखा है:—

---

(१) जिस समय यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथमका राज्य था। अतः यह वृत्तान्त भी उसीके समयका होना सम्भव है। इसने गुजरातके राष्ट्रकूट राजा ध्रुवराज पर चढ़ाई भी की थी। दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा ध्रुवराजके इतिहासमें लिखा गया है कि इसका राज्य दक्षिणमें रामेश्वरसे उत्तरमें अयोध्यातक फैला हुआ था। नेपालकी वंशावलीमें लिखा है कि श० स० ८११ (वि० सं० ९४६) में करनाटक वंशको स्थापन करनेवाले क्यानदेवने दक्षिणसे आकर सारे नेपाल देश पर अधिकार कर लिया था। इसके वंशज छः पीढ़ी तक यहाँके शासक रहे। श० सं० ८११ में करनाटकका राजा कृष्णराज द्वितीय था और इसकी सातवीं पीढ़ीमें कर्कराज द्वितीय हुआ। इससे चालुक्यवंशी तैलप द्वितीयने राज्य छीन लिया। अतः सम्भव है कि ध्रुवराजके बाद उसके वंशजोंने अयोध्यासे आगे बढ़कर नेपालके कुछ भाग पर अधिकार कर लिया हो और बादमें कृष्णराज द्वितीयने आक्रमण कर सारा देश ही ले लिया हो। तथा नेपाल और चीनकी सीमा मिलती हुई होनेके कारण ही सुलेमानने इनके राज्यका चीनकी सीमातक फैला हुआ होना लिखा हो।

(२) यह लेख कृष्णराज द्वितीयके समयका है।

" हिन्दुस्तानमें सबसे बड़ा राजा बलहरा है। इसकी अँगूठीमें यह वाक्य खुदा है कि दृढतासे किया हुआ प्रत्येक कार्य अवश्य सिद्ध होता है।"

अलमसऊदीकी लिखी मुरूजुल ज़हब नामकी एक पुस्तक है। इसका रचनाकाल हिजरी सन् ३३२ (वि० सं० १००१=ई० स० ९४४) के करीब माना जाता है। इसमें लिखा है:—[1]

" वर्तमान कालके हिन्दुस्तानके राजाओंमें सबसे बड़ा और प्रतापी मानकीर (मान्यखेट) का राजा बलहरा है। अन्य बहुतसे राजा लोग इसे अपना सरदार समझते हैं। इसके पास बड़ी भारी फौज है। यद्यपि इसमें बहुतसे हाथी भी हैं तथापि इसकी राजधानी पहाड़ी प्रदेशमें होनेके कारण अधिक संख्या पैदल सिपाहियोंहीकी है। इनके यहाँकी भाषाका नाम 'कीरीया'[2] है। मानकीर बड़ा नगर है और यह समुद्रसे ८० फर्लांगके फासले पर है।"

इब्न हौक़ल[3] और अलइस्तखरीने[4] लिखा है:—

" उन (बलहरा) राजाओंके यहाँ मुसलमान भी राज्यके बड़े बड़े पदोंपर रहते हैं और उनपर इन राजाओंकी पूरी कृपा है।"

" इनका राज्य कम्बायसे सिमूर[5] तक फैला हुआ है।"

अबूजईदके[6] लेखसे भी उपर्युक्त बातोंकी पुष्टि होती है। ऊपर

(१) यह हाल कृष्णराज तृतीयके समयका है।

(२) सम्भवतः इसीको आजकल 'कनारी' (भाषा) कहते हैं।

(३) इब्न हौकलका समय ई० स० ९४३ और ९७६ के बीच था।

(४) अल इस्तखरी ई० स० ९५१ के करीब विद्यमान था।

(५) सम्भवतः ये नगर सिन्धकी सरहद पर होंगे। इनसे राष्ट्रकूटोंके राज्यकी उत्तरी सीमाका पता चलता है।

(६) अबूजईद ई० स० ९१६ के करीब विद्यमान था।

उद्धृत किए अरब यात्रियोंके अवतरणोंसे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट राजाओंका प्रताप उस समय बहुत ही बढ़ा चढ़ा था।

राष्ट्रकूट दन्तिदुर्गने (सोलंकी—चालुक्य) वल्लभ कीर्तिवर्माको जीतकर 'वल्लभराज' की उपाधि धारण की थी। यही उपाधि इसके उत्तराधिकारियोंके नामके साथ भी लगी रहती थी[2]। इसीसे पूर्वोक्त अरब लेखकोंने इन राजाओंको बल्हरा (वल्लभराज) के नामसे लिखा है।

येवूर (दक्षिणमें) के पासके सोमेश्वरके मन्दिरके लेखसे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट राजा इन्द्रकी सेनामें ८०० हाथी थे।

थानाके शिलाहारवंशी राजाका शक संवत् ९१५ (वि० सं० १०५०=ई० स० ९९३) का एक दानपत्र मिला है। इसमें लिखा है:—

(१) कुछ लोग शङ्का करते हैं कि सम्भव है बल्हरा शब्द अरब लेखकोंने वलभीके राजाओंके लिए या स्वयं चालुक्योंके ही लिए प्रयोग किया हो। परन्तु उनकी ये शंकाएँ निर्मूल हैं। क्यों कि वलभीका राज्य तो वि० सं० ८२३ के करीब ही नष्ट हो चुका था और चालुक्य राजा मंगलीशके वि० सं० ६६७ में मारे जानेपर उसके राज्यके दो भाग हो गए। एकका स्वामी पुलकेशी हुआ। इसके वंशज कीर्तिवर्मासे वि० सं० ८०५ और ८१० के बीच राष्ट्रकूट दन्तिदुर्गने राज्य छीन लिया। यह राज्य वि० सं० १०३० के करीब तक इन्हींके वंशमें रहा और इसके आसपास राष्ट्रकूट राजा कर्कराज द्वितीयसे चालुक्यवंशी तैलप द्वितीयने वापिस छीन लिया। अतः वि० सं० ८०५ के करीबसे वि० सं० १०३० तक पश्चिमी चालुक्योंकी इस शाखाका राज्य राठोड़ोंके हाथमें रहा। पहले इनकी राजधानी बादामी थी। परन्तु पीछे तैलप द्वितीयने कल्याणीको अपनी राजधानी बनाया। दूसरी शाखाका स्वामी विष्णुवर्धन हुआ। इसके वंशज पूर्वी चालुक्य कहाए। इनका राज्य वेंगिमें था और ये राष्ट्रकूटोंके सामन्त थे।

(२) जिस प्रकार पारसी तवारीखोंमें मेवाड़के राजाओंका नाम न लिखकर उनका केवल राणा शब्दसे ही उल्लेख किया है उसी प्रकार अरब लेखकोंने राष्ट्रकूट राजाओंका नाम न लिखकर केवल 'बल्हरा' शब्दसे ही उनका उल्लेख किया है।

चोलो लोलो भियाभूद्गजपतिरपतज्जाह्नवीगह्वरान्तः ।
वाजी शाखा स शेषः समभवदभवच्छैलरन्ध्रे तथान्ध्रः ॥
पाण्ड्येशः खण्डितोऽभूदनुजलधिजलं द्वीपपालाः प्रलीना ।
यस्मिन्दत्तप्रयाणे सकलमपि तदा राजकं न व्यराजत् ॥

अर्थात्—(कर्कराजके पितामह) कृष्णराजके सामने आनेपर चोल, बंगाल, कन्नौज, आन्ध्र और पाण्ड्य आदि देशोंके राजा घबरा जाते थे।

इसी लेखमें कृष्णराजके राज्यकी सीमाका उत्तरमें हिमालयसे दक्षिणमें लङ्का तक और पूर्वमें पूर्वी समुद्रसे लेकर पश्चिममें पश्चिमी समुद्र तक होना लिखा है।

वि० स० १०३० (ई० स० ९७३) के करीब चालुक्यवंशी तैलप (द्वितीय) ने राष्ट्रकूट राजा कर्कराजको परास्तकर मान्यखेटके राष्ट्रकूट राज्यकी समाप्ति कर दी थी। अतः उपर्युक्त ताम्रपत्र इनके राज्यके नष्ट हो जानेके बादका है।

इससे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूटोंका प्रताप एक समय बहुत ही चढ़ा बढ़ा था और उसके नष्ट होजाने पर भी उनके माण्डलिक राजा उसे याद किया करते थे।

राष्ट्रकूटोंका राज्य 'रट्टपाटी' या 'रट्टराज्य' के नामसे प्रसिद्ध था। इसमें नगर और गाँव मिलाकर करीब सात या साड़े सात लाख थे। स्कन्दपुराणमें लिखा है:—[1]

"ग्रामाणां सप्तलक्षं च रट्टराजे प्रकीर्तितम्"

अर्थात्—रट्टों (राष्ट्रकूटों) के राज्यमें सातलाख गाँव थे।

(इनकी सवारीमें 'तिवली' नामका बाजा खास तौरपर बजा करता था।)

---

(१) स्कन्दपुराण, कौमारिका खण्ड, अध्याय ३९, श्लोक १३५।

राष्ट्रकूटोंकी प्राचीनता और उनके फुटकर लेख।

पहले लिखा जा चुका है कि अशोकके दक्षिण (मानसेरा, धवली, शाहबाजगढ और गिरनार) के लेखोंमें रट्रिक, राष्टिक (राष्ट्रिक) आदि शब्दोंका प्रयोग मिलता है। इससे पता चलता है कि विक्रम सवत्से २१५ (ई० स० से २७२) वर्ष पूर्व भी उक्त प्रदेशोंके आसपास इस जातिका राज्य था[1]। इसके बाद विक्रमकी छठी शताब्दी तक (अर्थात् करीब ८०० वर्ष तक) इनका कुछ भी पता नहीं चलता। किन्तु विक्रमकी सातवीं शताब्दीका एक ताम्रपत्र[2] राष्ट्रकूट राजा अभिमन्युका मिला है। इसमें मानपुरमें किये गए दानका उल्लेख है। यह दान शिवपूजनार्थ दिया गया था। इसमें राजाओंकी वंशावली इस प्रकार दी है:—

१ मानाङ्क
|
२ देवराज
|
३ भविष्य
|
४ अभिमन्यु

अभिमन्युकी राजधानी मानपुर थी। बहुतसे लोग इस मानपुरको और मालवेके (मऊसे १२ मील दक्षिण-पश्चिमके) मानपुरको एक ही अनुमान करते है। (इस ताम्रपत्रकी मुहरमें सिंहवाहिनी दुर्गाकी मूर्ति बनी है।)

---

(१) भाजा, बेडसा और कारलीकी गुफाओंके लेखोंमें महारट्ठजातिका उल्लेख है। ये लेख ईसवी सन्‌की दूसरी शताब्दीके हैं। सम्भवतः इस महा-रट्ठ शब्दका प्रयोग भी राष्ट्रकूटोंके लिए ही किया गया होगा।

(२) जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी, भाग १६, पृ० ९०।

बेतूल जिलेके मुलताई गाँवसे राष्ट्रकूटोंकी दो प्रशस्तियाँ मिली हैं। यह स्थान मध्यप्रदेशमें है। इनमेंकी पहली[1] शक संवत् ५५३ (वि० सं० ६८८=ई० स० ६३१) की है। इसमें राष्ट्रकूट राजाओंकी वंशावली इस प्रकार लिखी है:—

और दूसरी[2] प्रशस्ति शक संवत् ६३१ (वि० सं० ७६६=ई० स० ७०९) की है। यह राष्ट्रकूट राजा नन्दराजके समयकी है। इसमें राजाओंके नाम इस तरह दिये हैं:—

१ दुर्गराज[3]
|
२ गोविन्दराज
|
३ स्वामिकराज
|
४ नन्दराज

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग २, पृ० २७६।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० २३४।

(३) सम्भव है यह दुर्गराज दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा दन्तिवर्मा प्रथमका ही दूसरा नाम हो; क्योंकि एक तो इस लेखके दुर्गराजका और दन्तिवर्मा प्रथमका समय मिलता है और दूसरा दन्तिवर्माका ही दूसरा नाम दन्तिदुर्ग भी

इसमें नन्दराजकी उपाधि 'युद्धशूर' लिखी है और इसमें उल्लिखित किया हुआ दान कार्तिक शुक्ल पूर्णिमाको दिया गया था। इसमें शक संवत्को यदि गत संवत् माना जाय तो उस दिन २४ अक्टूबर सन् ७०९ का होना सिद्ध होता है।

उपर्युक्त दोनों प्रशस्तियोंमें पहलेके तीनों नाम तो एक ही हैं केवल चौथे नाममें फर्क है। इनमेंके संवतों पर विचार करनेसे अनुमान होता है कि दूसरी प्रशस्तिका नन्दराज शायद पहली प्रशस्तिके नन्नराजका छोटा भाई होगा और उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ होगा।

इनके ताम्रपत्रकी मुहरमें गरुड़की आकृति बनी है।

वि० सं० ९१७ (ई० स० ८६०) का एक लेख[1] भोपाल राज्यके पथारी स्थानसे मिला है। इसमें (मध्यभारतके) राष्ट्रकूट राजाओंकी वंशावली इस प्रकार लिखी है:—

इस परबलकी कन्या रन्नादेवीका विवाह बंगाल (गौड़) के पालवंशी राजा धर्मपालके साथ हुआ था[2]। इस परबलने नागावलोक (नागभट) को हराया था। यह नागभट प्रतिहारवंशी राजा वत्सराजका पुत्र था। इसी नागभटका एक लेख मारवाड़ राज्यके (बीलाड़ा

था जो दुर्गराजसे मिलता हुआ ही है। यदि यह ठीक हो तो इस लेखका गोविन्दराज दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा इन्द्रराज प्रथमका छोटा भाई होगा।

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ९, पृ० २४८।

(२) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० १८५।

परगनेके) बुचकला गाँवसे मिला है। यह वि० सं० ८७२ (ई० स० ८१५) का है[1]।

राष्ट्रकूट राजाओंका एक लेख[2] बुद्ध गयासे भी मिला है। इसमें इनकी वंशावली इस प्रकार दी है:—

नन्न (गुणावलोक)

|

कीर्तिराज

|

तुङ्ग (धर्मावलोक)

इस तुङ्गकी कन्याका नाम भाग्यदेवी था। इसका विवाह पालवंशी राजा राज्यपालसे हुआ था[3]। यह राज्यपाल पूर्वोक्त धर्मपालकी पाँचवीं पीढ़ीमें था। इस लेखमें संवत् १५ लिखा है। यह शायद इसका राज्यसंवत् हो। इसका समय वि० सं० १०२५ (ई० स० ९६८) के करीब होगा।

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ९, पृ० १९८।

(२) राजेन्द्रलाल मित्रकी 'बुद्धगया,' पृ० १९५।

(३) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० १८९,

इतिहास।

मान्यखेट (दक्षिण) के राष्ट्रकूट।

[वि० सं० ६५० (ई० स० ५९३) के पूर्वसे वि० सं० १०३९ (ई० स० ९८५) के करीब तक]

सोलंकियों (चालुक्यों) के येवूरसे मिले एक लेखमें और मिरजसे मिले ताम्रपत्रमें लिखा है:—

यो राष्ट्रकूटकुलमिन्द्र इति प्रसिद्धं
कृष्णाह्वयस्य सुतमष्टशतेभसैन्यं।
निर्जित्य दग्धनृपपंचशतो बभार
भूयश्चलुक्यकुलवल्लभराजलक्ष्मीं ॥

....

तद्भवो विक्रमादित्यः कीर्तिवर्मा तदात्मजः।
येन चालुक्यराज्यश्रीरंतरायिण्यभूद्भुवि ॥

अर्थात्—उस (सोलंकी जयसिंह) ने आठसौ हाथियोंकी सेनावाले राष्ट्रकूट कृष्णके पुत्र इन्द्रको जीत कर फिर सोलङ्कीवंशकी राज्यलक्ष्मीको धारण किया। (इसमेंके ' वल्लभराज ' पदसे प्रकट होता है कि पहले यह उपाधि सोलङ्कियोंकी थी और बादमें इन्हींको जीत कर राष्ट्रकूटोंने भी इसे धारण कर लिया था।

....

विक्रमादित्यके पुत्र कीर्तिवर्मासे इस (सोलङ्की) वंशकी राज्यलक्ष्मी फिर चली गई।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ८, पृ० १२–१४।

उपर्युक्त श्लोकों पर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि सोलङ्की जयसिंहके दक्षिणविजय करनेके पहले वहाँपर राष्ट्रकूटोंका राज्य था। ईसवी सन्‌की पाँचवीं शताब्दीके अन्तिम भागके करीब उसपर सोलङ्की जयसिंहने अधिकार कर लिया। परन्तु वि० स० ८०५ और ८१० (ई० सं० ७४७ और ७५३) के बीच सोलङ्की राजा कीर्तिवर्मासे राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्गने उक्त दक्षिणी राज्यका बहुतसा भाग वापिस छीन लिया।

लेखों और ताम्रपत्रों आदिमें इस दन्तिदुर्गके वंशका इतिहास इस प्रकार मिलता है:—

१ दन्तिवर्मा (दन्तिदुर्ग प्रथम)।

यह राजा पूर्वोल्लिखित कृष्णके पुत्र इन्द्रका वंशज था। राष्ट्रकूटोंकी इस शाखाकी प्रशस्तियोंमें सबसे पहला नाम यही मिलता है।

इसका समय विक्रम संवत् ६५० (ई० स० ५९३) के पूर्व होगा।

२ इन्द्रराज (प्रथम)।

यह दन्तिवर्माका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

इसका और इसके पिताका नाम इलोराकी गुफाके दशावतारके मन्दिरके लेखसे[1] लिया गया है। इसमें अमोघवर्ष (प्रथम) तककी वंशावली दी है। परन्तु दन्तिदुर्ग (द्वितीय) के बादके कुछ नाम छोड़ दिये गये हैं। इन राष्ट्रकूटोंके अन्य लेखोंमें दन्तिवर्मा (प्रथम) और इन्द्रराज (प्रथम) के नाम नहीं हैं।

उनमें गोविन्द प्रथमसे ही वंशावली प्रारम्भ होती है।

---

(१) केव टैम्पल इन्सक्रिपशन्स, पृ० ९१।

३ गोविन्दराज (प्रथम)।

यह इन्द्रराजका पुत्र था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ। पुलकेशी (द्वितीय) के शक संवत् ५५६ (वि० स० ६९१=ई० स० ६३४) के एहोलेसे मिले लेखसे प्रकट होता है कि मंगलीशके मारे जाने और उसके भतीजे पुलकेशी (द्वितीय) के राज्यारोहणके समय इनके राज्यमें गड़बड़ देख कर अन्य राजाओंके साथ गोविन्दराजने भी अपने पूर्वजोंके राज्यको एकवार फिर प्राप्त कर लेनेकी कोशिश की थी। परन्तु उसमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्तमें इन दोनोंके आपसमें मित्रता हो गई।

इससे प्रकट होता है कि यह पुलकेशी (द्वितीय) का समकालीन था। अतः इसका समय वि० सं० ६९१ (ई० स० ६३४) के करीब होना चाहिये।

४ कर्कराज (कक्क प्रथम)।

यह गोविन्दराज (प्रथम) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके समय ब्राह्मणोंने अनेक यज्ञ किये थे। यह खुद भी वैदिक मतका माननेवाला और दानी था। इसके दो पुत्र थे—इन्द्रराज और कृष्णराज।

५ इन्द्रराज (द्वितीय)।

यह कर्कराजका बड़ा पुत्र था और उसके पीछे गद्दीपर बैठा। इसकी स्त्री चालुक्य(सोलङ्की)वंशियोंकी कन्या और चन्द्रवंशियोंकी

---

(१) एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० ५–६।

(२) लब्ध्वा कालं भुवमुपगते जतुमप्याधिकल्पे,
गोविन्दे च द्विरदनिकैरुत्तराम्भोधिरथ्या।
यस्यानीकैर्युधिभयरसज्ञत्वमेकः प्रयातः,
तत्रावाप्तं फलमुपकृतस्यापरेणापि सद्यः॥

नवासी थी। इससे प्रकट होता है कि इसके समय राष्ट्रकूटों और पश्चिमी चालुक्योंमें किसी प्रकारका झगड़ा न था।

६ दन्तिवर्मा (दन्तिदुर्ग द्वितीय)।

यह इन्द्रराज (द्वितीय) का पुत्र था और उसके बाद राज्यका स्वामी हुआ। इसने विक्रम संवत् ८०४ और ८१० (ई० स० ७४८ और ७५३) के बीच सोलङ्की (चालुक्य) कीर्तिवर्मा (द्वितीय)के राज्यके उत्तरी भाग वातापी पर अधिकार कर दक्षिणमें फिर राष्ट्रकूट राज्यकी स्थापना की। यह राज्य इस वंशमें करीब २२५ वर्ष तक रहा था।

शक संवत् ६७५ (वि० सं० ८१०=ई० स० ७५३)[1] का एक दानपत्र सामनगढ़ (कोल्हापुर राज्य) से मिला है। इसमें लिखा है:—

माहीमहानदीरेवारोधोभित्तिविदारणं
....
यो वल्लभं सपदि दंडलकेन जित्वा
राजाधिराजपरमेश्वरतामुपैति ॥
कांचीशकेरलनराधिपचोलपाण्ड्य-
श्रीहर्षवज्रटविभेदविधानदक्षम् ॥
कर्ण्णाटकं बलमनन्तमजेयरत्यै (थ्यै)-
र्भृत्यैः कियद्भिरपि यः सहसा जिगाय ॥

अर्थात्—इस (दन्तिवर्मा द्वितीय) के हाथी माही, महानदी और नर्मदा तक पहुँचे थे।

....

इसने वल्लभ (पश्चिमी चालुक्य राजा कीर्तिवर्मा द्वितीय) को जीतकर राजाधिराज और परमेश्वरकी उपाधि ग्रहण की थी और थोड़ीसी

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ११, पृ० ११११।

रथोंकी फौज लेकर ही कांची, केरल, चोल और पाण्ड्य देशके राजाओंको तथा (कन्नौजके) राजा हर्षको और वज्रटको जीतनेवाली कर्णाटककी बड़ी सेनाको हराया था। (कर्नाटककी सेनासे चालुक्योंकी सेनाका ही तात्पर्य है[1]।)

इसी प्रकार इसने कलिङ्ग, कोसल, श्रीशैल (मद्रासके कर्नूल जिलेमें) मालव, लाट और टंकके राजाओंको तथा शेषों (नागवंशियों) को जीता था। उज्जयिनीमें इसने बहुत से सुवर्ण और रत्नोंका दान दिया था।

इससे प्रकट होता है कि यह दक्षिणका प्रतापी राजा था। इसकी माताने भी इसके राज्यके करीब करीब सब ही गाँवोंमेंसे थोड़ी बहुत पृथ्वी दान की थी।

श० सं० ६७९ (वि० सं० ८१४=ई० स० ७५७) का एक ताम्रपत्र वक्कलेरीसे मिला है। इससे प्रकट होता है कि यद्यपि श० सं० ६७५ (वि० सं० ८१०=ई० स० ७५३) के पूर्व ही दन्तिदुर्गने चालुक्य (सोलङ्की) कीर्तिवर्मा (द्वितीय) के राज्यपर अधिकार कर लिया था, तथापि श० सं० ६७९ (वि० सं० ८१४ =ई० सं० ७५७) तक भी सोलङ्की राज्यके दक्षिणी भागपर इसी कीर्तिवर्मा (द्वितीय) का अधिकार था।

शक संवत् ६७९ (वि० सं० ८१४=ई० स० ७५७) का गुजरातके महाराजाधिराज कर्कराज (द्वितीय) का एक ताम्रपत्र सूर-

---

(१) एहोलेके लेखमें लिखा है:—
अपरिमितविभूतिस्फीतसामंतसेनामणिमुकुटमयूखाक्रान्तपादारविंदः ।
युधि पतितगजेन्द्रानीकबीभत्सभूतो भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः ॥
अर्थात्—चालुक्यराज पुलकेशी द्वितीयने वैसवंशी राजा हर्षको हराया।

(२) एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ५, पृ० २०२।

(३) जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी, भाग १६, पृ० १०६।

तके पाससे मिला है। इससे प्रकट होता है कि इस दन्तिवर्मा (दन्तिदुर्ग द्वितीय) ने अपनी सोलङ्कियों पर की विजयके समय लाट देश (गुजरात) का अधिकार अपने रिश्तेदार कर्कराज (द्वितीय) को दे दिया था[1]।

इसके दन्तिवर्मा और दन्तिदुर्ग दोनों नाम मिलते हैं। इसके नामके आगे निम्नलिखित उपाधियाँ लगी पाई जाती हैं:—

महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, पृथ्वीवल्लभ, वल्लभ, खड्गावलोक, साहसतुङ्ग, वैरमेघ, आदि।

वास्तवमें पश्चिमके सोलङ्कियोंकी मुख्य उपाधि वल्लभराज थी और उन्हींको जीतकर राष्ट्रकूटोंने भी इसे धारण कर लिया था। इसीसे अरब लेखकोंने अपने लेखोंमें बलहरा शब्दका प्रयोग किया है। यह वल्लभराजका ही बिगड़ा हुआ रूप है।

खड्गावलोक उपाधिसे शायद यह तात्पर्य होगा कि इसकी दृष्टि शत्रुओंके लिये खड्गके समान भयंकर होती थी।

इन बातोंसे प्रकट होता है कि यह राजा बड़ा प्रतापी था और इसका राज्य गुजरात और मालवेकी उत्तरी सीमासे लेकर दक्षिणमें रामेश्वर तक फैला हुआ था।

७ कृष्णराज (प्रथम)।

यह इन्द्रराज (द्वितीय) का छोटा भाई और दन्तिदुर्गका चचा था, तथा दन्तिदुर्गके मरने पर राज्यका अधिकारी हुआ था।

---

(१) उस समय गुजरातका शासक गुर्जर जयभट्ट तृतीय था। इसका चेदि सं० ४८६ (वि० सं० ७९३) का ताम्रपत्र मिला है। इसके बाद ही दन्तिवर्मा द्वितीयने इससे वहाँका राज्य छीन कर्कराजको दिया होगा।

शक संवत् ६९४ (वि० स० ८२९=ई० स० ७७२) की इसकी एक प्रशस्ति[1] मिली है।

शक संवत् ७३० (वि० सं० ८६४=ई० स० ८०७) का एक ताम्रपत्र[2] वाणी गाँव (नासिक) से मिला है। यह राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज (तृतीय) का है। इसमें इस कृष्णराजके विषयमें इस प्रकार लिखा है:—

> यश्चालुक्यकुलादनूनविबुधव्राताश्रयो वारिधे-
> र्लक्ष्मीम्मन्दरवत्सलीलमचिरादाकृष्टवान् वल्लभः।

अर्थात्—जिस तरह समुद्रमंथनके समय मन्दराचल पर्वतने समुद्रसे लक्ष्मीको बाहर निकाल लिया था उसी तरह वल्लभ (कृष्णराज प्रथम) ने चालुक्य (सोलङ्की) वंशसे लक्ष्मीको खींच लिया।

शक संवत् ७३४ (वि० सं० ८६९–ई० स० ८१२) का एक ताम्रपत्र[3] बड़ौदासे मिला है। यह गुजरातके राष्ट्रकूट राजा कर्कराजका है। इसमें भी इस कृष्णराजके विषयमें लिखा है:—

> यो युद्धकण्डूतिगृहीतमुच्चैः शौर्योष्मसंदीपितमापतन्तम्।
> महावराहं हरिणीचकार प्राज्ञप्रभावः खलु राजसिंहः॥

अर्थात—राजाओंमें सिंहरूप कृष्णराज (प्रथम) ने अपनी शक्तिके घमण्ड और युद्धकी इच्छासे आते हुए महावराह (कीर्तिवर्मा द्वितीय) को हरिण बना दिया (भगा दिया)।

यह घटना सम्भवतः वि० सं० ८१४ (ई० स० ७५७) के निकटकी होगी।

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग १४, पृ० १२५।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग ११, पृ० १५७।
(३) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १२, पृ० १५९।

सोलङ्कियोंके ताम्रपत्रों पर वराहका चिह्न बना होनेसे ही प्रशस्तिके लेखकने कीर्तिवर्माका वराहके नामसे उल्लेख किया है।

इससे यह भी प्रतीत होता है कि इस कृष्णराजके समय कीर्तिवर्मा (द्वितीय) ने अपने गए हुए राज्यको फिर प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। परन्तु इस कार्यमें उसका सफल होना तो दूर रहा, उलटा रहा सहा राज्य भी उसके हाथसे निकल गया।

दक्षिण हैदराबाद (निजामराज्य) के एलापुर (इलोरा) की प्रसिद्ध गुफाओंका कैलासभवन नामक शिवका मन्दिर इसीने बनवाया था। यह मन्दिर पर्वतको काट कर बनाया गया है और अपनी कारीगरीके लिए भारतभरमें प्रसिद्ध है। इसने और भी अनेक शिवमन्दिर बनवाए थे। अतः सिद्ध होता है कि यह शिवजीका बड़ा भक्त था।

कृष्णराजकी निम्नलिखित उपाधियाँ मिलती हैं:—

अकालवर्ष, शुभतुङ्ग, वल्लभ और श्रीवल्लभ।

इसने बलदर्पित राहप्पको हराया था।[1]

इसके समयकी एक प्रशस्ति हत्तिमत्तूरसे और भी मिली है।[2] इसमें संवत् नहीं है।

मि० विन्सेण्ट स्मिथ आदि विद्वानोंका अनुमान है कि इस (कृष्ण प्रथम) ने अपने भतीजे दन्तिदुर्ग (द्वितीय) को गद्दीसे उतारकर राज्यपर अधिकार कर लिया था।[3] परंतु यह बात ठीक प्रतीत नहीं

---

(१) कुछ विद्वान् गुजरातके स्वामी कर्कराज द्वितीयका ही दूसरा नाम राहप्प अनुमान करते हैं। अतः सम्भव है कि इसी युद्धके कारण गुजरातके राष्ट्रकूटोंकी इस शाखाकी समाप्ति हो गई हो।

(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका भाग ६, पृ० १६१।

(३) ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० [illegible]।
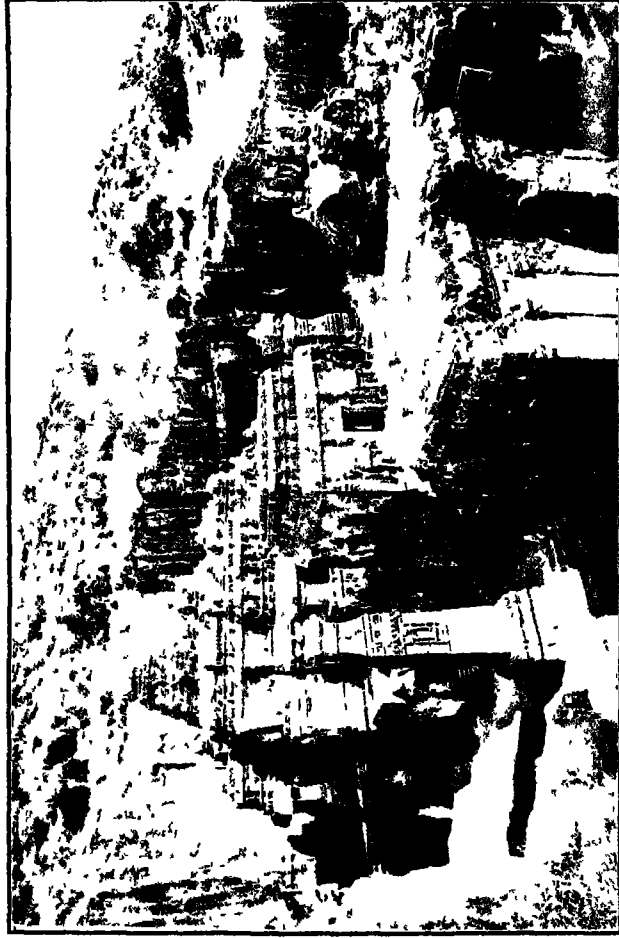
इलोराकी गुफाका -'कैलास भवन'।

होती। उलटा कावी और नवसारीसे मिले दानपत्रोंमें 'तस्मिन्दिवं गते' (अर्थात् दन्तिदुर्गके स्वर्ग जानेपर) लिखा होनेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि यह अपने भतीजे (दन्तिदुर्ग) के मरनेपर ही गद्दी पर बैठा था।

बड़ोदासे मिले ताम्रपत्रसे प्रकट होता है कि इसी राष्ट्रकूट वंशके किसी राजपुत्रने राज्यपर अधिकार करनेकी कोशिश की थी। परंतु कृष्णराजने उसे दबा दिया। सम्भव है यह राजपुत्र दन्तिदुर्ग द्वितीयका पुत्र ही हो और उसके निर्बल या छोटे होनेके कारण ही राज्यपर कृष्णराजका अधिकार हो गया हो।

यद्यपि करडासे मिले दानपत्रमें स्पष्ट तौरसे लिखा है कि दन्तिदुर्गके अपुत्र मरने पर ही उसका चचा कृष्ण उसका उत्तराधिकारी हुआ था, तथापि इस दानपत्रके उक्त घटनासे २०० वर्ष बादके होनेसे इसपर पूरी तौरसे विश्वास नहीं किया जा सकता।

इसका राज्यारोहण वि० सं० ८१७ (ई० स० ७६०) के करीब हुआ होगा।

इसके दो पुत्र थे—गोविन्दराज और ध्रुवराज।

कुछ लोग हलायुधरचित कविरहस्यके नायक राष्ट्रकूट कृष्णसे कृष्ण प्रथमका ही तात्पर्य लेते हैं। परंतु दूसरे लोग उससे कृष्ण तृतीयका अनुमान करते हैं। उसमें लिखा है:—

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ५, पृ० १४९, और जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसायटी भाग १८, पृ० २५७।

(२) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसायटी, भाग ८, पृ० २९२—२९३।

(३) यो वंश्यमुन्मूल्य विमार्गभाजं राज्यं स्वयं गोत्रहिताय चक्रे।
कुछ लोग इस घटनासे गुजरातके राजा कर्कराज द्वितीयसे राज्य छीननेका तात्पर्य निकालते हैं। सम्भव है दन्तिवर्मा द्वितीयके बाद इसने कुछ गड़बड़ मचाई हो।

(४) जनरल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग ३।

(५) इस मतके अनुयायी कविरहस्यका रचनाकाल वि० सं० ८६७ (ई० स० ८१०) मानते हैं।

अस्त्यगस्त्यमुनिज्योत्स्नापवित्रे दक्षिणापथे।
कृष्णराज इति ख्यातो राजा साम्राज्यदीक्षितः॥

....

कस्तं तुलयति स्थाम्ना राष्ट्रकूटकुलोद्भवं।

....

सोमं सुनोति यज्ञेषु सोमवंशविभूषणः।
पुरः सुवति संग्रामे स्यन्दनं स्वयमेव सः॥

अर्थात्—दक्षिण भारतमें कृष्णराज नामका बड़ा प्रतापी राजा है।

....

उस राठोड़ राजाकी कौन बराबरी कर सकता है।

....

यह चन्द्रवंशीराजा अनेक यज्ञ करता रहता है और युद्धमें अपना रथ अगाड़ी रखता है।

८ गोविन्दराज (द्वितीय)।

यह कृष्णराज प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

शक संवत् ६९२ (वि० सं० ८२७=ई० स० ७७०) का इसका एक ताम्रपत्र[1] मिला है। इससे प्रकट होता है कि इसने वेंगि (गोदावरी और कृष्णा नदियोंके बीचका पूर्वी समुद्रतटके देश) को जीता था। इसमें इसको युवराज लिखा है। अतः उस समय तक इसका पिता कृष्णराज प्रथम जीवित था।

वाणी-डिंडोरी, बड़ोदा और राधनपुरके दानपत्रोंमें इसका नाम न होनेसे अनुमान होता है कि इसके छोटे भाई ध्रुवराजने इसके राज्यपर अधिकार कर लिया था। वर्धाके ताम्रपत्रसे प्रकट होता है कि यह राजा (गोविन्दराज द्वितीय) भोग विलासमें अधिक लगा रहता

(१) एपिग्राफिया इण्डिका भाग ६, पृ० २०९।

था और राज्यका भार इसने अपने छोटे भाई निरुपम पर डाल रक्खा था। सम्भव है इसीसे इसके हाथसे राज्याधिकार निकल गया हो। पैठनसे मिले ताम्रपत्रसे प्रकट होता है कि इस (गोविन्दराज द्वितीय) ने अपने पड़ोसी मालव, कांची और वेंगी आदि देशोंके राजाओंकी सहायतासे अपने गये हुए राज्यपर एक वार फिर अधिकार करनेकी चेष्टा की थी। परन्तु निरुपम (ध्रुवराज) ने इसे हरा कर राज्यपर पूर्ण रूपसे अधिकार कर लिया।

दिगम्बरजैनसंप्रदायके आचार्य जिनसेनने अपनी बनाई 'हरिवंश-पुराण' नामक पुस्तकके अन्तमें लिखा है:—

शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादि(धि)राजेऽपरां
सोर्या(रा)णामधिमण्डले(लं)जययुते वीरे वराहेऽवति॥

अर्थात्—शक संवत् ७०५ (वि० स० ८४०=ई० स० ७८३) में, जिस समय उक्त पुराण बनाया गया था उस समय, उत्तरदिशामें इन्द्रायुधका, दक्षिणमें कृष्णके पुत्र श्रीवल्लभका, पूर्वमें अवन्तिके राजा वत्सराजका और पश्चिममें वराहका राज्य था।

इससे प्रतीत होता है कि श० सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) तक भी गोविन्दराज द्वितीय ही राज्यका स्वामी था; क्योंकि कावी और

(१) गोविन्दराज इति तस्य बभूव नाम्ना सूनुः स भोगभरभंगुरराज्यचिन्तः।
आत्मानुजे निरुपमे विनिवेश्य सम्यक् साम्राज्यमीश्वरपदं शिथिलीचकार॥
अर्थात्–कृष्णराज प्रथमके पुत्र गोविन्दराज द्वितीयने भोगविलासमें फँसकर राज्यका कार्य अपने छोटे भाई निरुपमको सौंप दिया। इससे उसका प्रभुत्व शिथिल हो गया।

(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०७।

(३) बहुतसे लोग इस स्थानपर गोविन्द तृतीयका होना मानते हैं।

पैठनके ताम्रपत्रोंसे पता चलता है कि गोविन्द द्वितीयकी उपाधि 'वल्लभ' और इसके छोटे भाई ध्रुवराजकी उपाधि 'कलिवल्लभ' थी।

इस (गोविन्द द्वितीय) की निम्नलिखित उपाधियाँ भी मिलती हैं—महाराजाधिराज, प्रभूतवर्ष और विक्रमावलोक।

गोविन्दके राज्यारोहणका समय वि० सं० ८३० (ई० स० ७७३) के करीब होगा, क्यों कि श० स० ६९४ (वि० स० ८२९ = ई० स० ७७२) की इसके पिता कृष्णराज प्रथमकी एक प्रशस्ति मिली है।

९ ध्रुवराज।

यह कृष्णराज प्रथमका पुत्र और गोविन्दराज द्वितीयका छोटाभाई था। यह अपने बड़े भाई गोविन्दराज (द्वितीय) को राज्यसे हटाकर स्वय ही गद्दीपर बैठ गया था।

यह बड़ा वीर और योग्य शासक था। इसीसे इसको 'निरुपम' भी कहते थे। इसने कांचीके पल्लवराजाको हराकर उससे दंडस्वरूप हाथी लिये थे, चेर देशके राजाको जो कि गङ्गवंशका था कैद कर लिया था और गौड़ देशके राजाको जीतनेवाले उत्तरके पड़िहार राजा वत्सराज पर चढ़ाईकर उसे मारवाड़ (भीनमाल) की तरफ भगा दिया और उसके दो छत्र भी छीन लिये। ये छत्र वत्सराजने गौड़ देशके राजासे लिये थे।

गोविन्द (द्वितीय) के इतिहासमें उद्धृत किये हरिवंशपुराणके श्लोकमें इसी वत्सराजका उल्लेख किया गया है।

नवसारीके दानपत्रसे ज्ञात होता है कि इस ध्रुवराजने कोशल-देशके राजासे भी एक छत्र छीना था। इसके प्रमाणमें वर्धाका ताम्रपत्र

उपस्थित किया जा सकता है। उसमें ध्रुवराजके पास तीन श्वेत छत्रोंका होना लिखा है। अतः इनमेंसे दो तो वत्सराजसे छीने हुए थे और तीसरा कोशलके राजासे लिया हुआ होगा।

सम्भवतः ध्रुवराजका अधिकार उत्तरमें अयोध्यासे लगाकर दक्षिणमें रामेश्वर तक था।

पट्टदकल, नेरगल और लक्ष्मेश्वरसे कनाड़ी भाषाकी तीन प्रशस्तियाँ मिली है। ये शायद इसीके समयकी होंगी।

इसकी आगे लिखी उपाधियाँ मिलती हैं—कलिवल्लभ, निरुपम, धारावर्ष, श्रीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर, आदि।

श्रवणबेलगोलासे एक कनाड़ी भाषाका टूटा हुआ लेख और भी मिला है। यह महासामन्ताधिपति कम्बय्य (स्तम्भ) रणावलोकके समयका है। इसमें इस रणावलोकको श्रीवल्लभका पुत्र लिखा है। सम्भव है इस श्रीवल्लभसे ध्रुवराजका ही तात्पर्य हो।

ध्रुवराजका राज्यारोहणकाल वि० स० ८४२ (ई० स० ७८५) के करीब होना चाहिये।

जिस समय इसने अपने बड़े भाई गोविन्दराज द्वितीयके राज्य पर आधिकार किया था उस समय गङ्ग, वेङ्गि[3], काञ्ची और मालवाके राजाओंने उस (गोविन्द) की सहायता की थी। परन्तु इस (ध्रुवराज) ने उन्हें परास्त करके राज्य पर अधिकार कर लिया।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग ११, पृ० १२५; ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० १६३, और ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० १६६।

(२) कीलहार्नेकी लिस्ट और इन्सक्रिपशन्स ऑफ सदर्न इण्डिया नं० ६०।

(३) उस समय वेङ्गिका राजा शायद पूर्वी चालुक्यवंशी विष्णुवर्धन चतुर्थ होगा।

इसने अपने जीतेजी अपने पुत्र गोविन्द तृतीयको कंठिका—कोंकण-से लगाकर खंभात तकके प्रदेशका शासक बना दिया था।

१० गोविन्दराज (तृतीय)।

यह ध्रुवराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

सब पुत्रोंमें योग्यतम देखकर अपने जीते जी ही ध्रुवराजने इसे राज्य देना चाहा था। परन्तु इसने इसके लिए इनकार कर दिया और केवल युवराजकी हैसियतसे ही सब राजकाज करता रहा।

इसके समयके ६ ताम्रपत्र मिले हैं। इनमेंका पहला शक संवत् ७१६ (वि० सं० ८५१ = ई० ७९४) का है। यह पैठनसे[1] मिला था। दूसरा शक संवत् ७२६ (वि० सं० ८६१=ई०स० ८०४) का है। यह सोमेश्वरसे मिला था। इसमें इसकी स्त्रीका नाम गामुण्डब्बि लिखा है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि इसने काञ्ची (कांजीवरं)के राजा दन्तिगको हराया था।

यह दन्तिग शायद पल्लववंशी दन्तिवर्मा होगा; जिसके पुत्र नंदि-वर्माका विवाह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्षकी कन्या शंखासे हुआ था।

तीसरा और चौथा ताम्रपत्र श०सं० ७३० (वि० सं०८६५= ई० स० ८०८) का है[3]। इनमेंके पिछले ताम्रपत्रसे ज्ञात होता है कि इसने (अपने भाई) स्तम्भकी अध्यक्षतामें एकत्रित हुए बारह राजा-ओंको हराया था। (इससे अनुमान होता है कि ध्रुवराजके मरने पर अन्य पड़ोसी राजाओंकी सहायतासे स्तम्भने राज्य पर अधिकार करनेकी

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३, पृ० १०५।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ११, पृ० १२६।

(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भाग ११, पृ० १५७ और एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० २४२।

चेष्टा की होगी।) तथा अपने पिता (ध्रुवराज) द्वारा कैद किए गये चेर (कोइम्बटूर) के राजा गंगको छोड़ दिया था। परन्तु जब इसने फिर बगावत पर कमर बाँधी तब उसे दुबारा पकड़ कर कैद कर दिया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस (गोविन्दराज तृतीय) ने गुज-रातके राजा पर चढ़ाई कर उसे भगा दिया, मालवाको जीता और विन्ध्याचलकी तरफकी चढ़ाईमें माराशर्वको वशमें कर वर्षाऋतुकी समाप्ति तक श्रीभवन (मलखेड़) में निवास रक्खा और शरद ऋतुके आने पर तुंगभद्रा नदीकी तरफ आगे बढ़ काञ्चीके पल्लव राजाको हराया। इसके बाद इसकी आज्ञासे वेङ्गि[1] (कृष्णा और गोदावरीके बीचका प्रदेश) के राजाने आकर इसकी अधीनता स्वीकार की। यह राजा शायद पूर्वी चालुक्यवंशका विजयादित्य द्वितीय होगा।

शक संवत् ७२६ के ताम्रपत्रमें भी तुङ्गभद्रातककी यात्राका उल्लेख होनेसे प्रकट होता है कि ये घटनाएँ श० सं० ७२६ (वि० सं० ८६१ = ई० स० ८०४) के पूर्व ही हो चुकी थीं।

उपर्युक्त तीसरा और चौथा ताम्रपत्र राधनपुर और वाणी डिण्डो-रीसे मिला है। ये मयूरखंडीसे लिखवाए गये थे। यह स्थान आज-कल नासिक जिलेमें मोरखण्डके नामसे प्रसिद्ध है।

पाँचवाँ ताम्रपत्र[2] शक संवत् ७३४ (वि० सं० ८६९ = ई० स० ८१२) का है। इसमें गुजरातके राजा कर्कराज द्वारा दिये गये दानका वर्णन है।

---

(१) यह वेङ्गिका पूर्वी चालुक्यवंशी विजयादित्य द्वितीय (नरेंद्रमृगराज) होगा।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० १५६।

छठा ताम्रपत्र[1] श० सं० ७३५ (वि० सं० ८७० = ई० स० ८१२) का है। इससे प्रतीत होता है कि इस (गोविन्दराज तृतीय) ने लाट[2] देश (गुजरातका मध्य और दक्षिणी भाग) को जीतकर अपने छोटे भाई इन्द्रराजको वहाँका राज्य दे दिया था। इसी इन्द्रराजने गुजरातमें राष्ट्रकूटोंकी दूसरी शाखा स्थापित की।

ऊपर लिखी बातों पर विचार करनेसे पता चलता है कि यह बड़ा प्रतापी राजा था। उत्तरमें मालवासे दक्षिणमें कांचीपुर तकके राजा इसकी आज्ञाका पालन करते थे और नर्मदा तथा तुङ्गभद्राके बीचका प्रदेश इसीके शासनमें था।

शक सं० ७३५ (वि० सं० ८७० = ई० स० ८१३) का एक ताम्रपत्र[3] कदंब (माइसोर) से और भी मिला है। इसमें विजयकीर्तिके शिष्य जैनमुनि अर्ककीर्तिको दिये गये दानका उल्लेख है।

विजयकीर्ति कुलाचार्यके शिष्य थे और यह दान गंगवंशी राजा चाकिराजकी प्रार्थना पर दिया गया था।

इस दानपत्रमें उस दिन मंगलवार होना लिखा है। परन्तु गणितानुसार उस दिन शुक्रवार आता है। अतः यह दानपत्र सन्दिग्ध प्रतीत होता है।

पहले गोविन्द द्वितीयके इतिहासमें हरिवंशपुराणका एक श्लोक उद्धृत किया गया है। उसका दूसरा पाद इस प्रकार है:—

'पातींद्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणां।'

कुछ विद्वान् इस ' कृष्णनृपजे ' का सम्बन्ध ' श्रीवल्लभे ' से लगाते हैं और कुछ ' इन्द्रायुधनाम्नि ' से करते हैं। पहले मतके अनु-

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३, पृ० ५४।
(२) तापी और माही नदियोंके बीचका देश।
(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० १३।

सार इस श्लोकका सम्बन्ध गोविन्द द्वितीयसे होता है परन्तु पिछले मतानुसार इन्द्रायुधको कृष्णका पुत्र मान लेनेसे श्रीवल्लभ खाली ही रह जाता है। अतः इस मतको माननेवाले श० सं० ७०५ में गोविन्द द्वितीयके बदले गोविन्द तृतीयका होना अनुमान करते हैं।

वि० सं० ९२३ (ई० स० ८६६) की एक प्रशस्तिमें लिखा है कि इस गोविन्द (तृतीय) ने केरल, मालव, गुर्जर और चित्रकूटको विजय किया था। इसका राज्यारोहणकाल वि० सं० ८५० (ई० स० ७९३) के निकट होना चाहिये। इसने वेंगीके पूर्वी चालुक्य राजा द्वारा मान्यखेटके रक्षार्थ उसके चारों तरफ शहरपनाह बनवाई थी।

मुंगेरसे मिली एक प्रशस्तिमें लिखा है कि राष्ट्रकूट राजा परबलकी कन्या रण्णा देवीका विवाह बंगालके पालवंशी राजा धर्मपालसे हुआ था। डाक्टर कीलहार्न इससे गोविन्द तृतीयका तात्पर्य लेते हैं परन्तु सर भाण्डारकर इसे कृष्णराज द्वितीय अनुमान करते हैं[२]।

११ अमोघवर्ष (प्रथम)।

यह गोविन्द तृतीयका पुत्र था और उसके पीछे गद्दीपर बैठा। इस राजाके असली नामका पता अबतक नहीं लगा है। शायद इसका नाम शर्व हो। परन्तु ताम्रपत्रों आदिमें यह अमोघवर्षके नामसे ही प्रसिद्ध है। जैसे:—

'स्वेच्छागृहीतविषयान् दृढसंगभाजः।
प्रोद्वृत्तदृप्ततरशौल्किकराष्ट्रकूटान्॥
उत्खातखड्गनिजबाहुबलेन जित्वा।
योऽमोघवर्षमचिरात्स्वपदे व्यधत्त॥

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग २१, पृ० २५४।
(२) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० १८५।

अर्थात्—बागी होकर दबा लिया है देश जिन्होंने ऐसे राष्ट्रकूटोंको परास्त करके उस (कर्कराज) ने अमोघवर्षको राजगद्दीपर बिठाया।

लेकिन असलमें यह इसकी उपाधि ही होगी। इसकी आगे लिखी भी उपाधियाँ मिलती हैं:—नृपतुङ्ग (महाराजशर्व), महाराजशण्ड, अतिशयधवल, वीरनारायण, पृथिवीवल्लभ, श्रीपृथिवीवल्लभ, लक्ष्मीवल्लभ, महाराजाधिराज, भटार, परमभट्टारक।

इसके पास ये सात वस्तुएँ राज्यचिह्नस्वरूप थीं:—

तीन श्वेतछत्र, एक शंख, एक पालिध्वज और एक ओककेतु। इनमेंसे तीन श्वेतछत्रोंसे गोविन्द द्वितीय द्वारा प्राप्त किये छत्रोंका तात्पर्य होगा।

इसके समयकी प्रशस्तियोंका वर्णन नीचे दिया जाता है:—

शक सं० ७३८ (वि० सं० ८७३ = ई० स० ८१७) का गुजरातके राष्ट्रकूट राजा कर्कराजका एक ताम्रपत्र[1] बड़ोदासे मिला है। यह कर्कराज अमोघवर्षका चचेरा भाई था।

शक सं० ७४९ (वि० सं० ८८४ = ई० स० ८२७) का एक दानपत्र[2] कावी (भड़ोच जिला) से मिला है। इसमें गुजरातके गोविन्दराज द्वारा दिये गये दानका उल्लेख है। शक संवत् ७५७ (वि० सं० ८९२ = ई० स० ८३५) का एक ताम्रपत्र[3] बड़ोदासे मिला है। यह गुजरातके राजा महासामन्ताधिपति राष्ट्रकूट ध्रुवराज[4]

(१) जर्नल, बॉम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग २०, पृ० १३५।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ५, पृ० १४४।
(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १४, पृ० १९९।
(४) कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि लाटके राजा ध्रुवराज प्रथमने अमोघवर्षके खिलाफ शायद कुछ गड़बड़ मचाई थी। इसीसे अमोघवर्षको उसपर चढ़ाई करनी पड़ी। सम्भवतः इसी युद्धमें वह मारा गया होगा।

(प्रथम) का है । इससे प्रकट होता है कि अमोघवर्षके चाचाका नाम इन्द्रराज था और उसके पुत्र (अमोघवर्षके चचेरे भाई) कर्कराजने बगावत करनेवाले राष्ट्रकूटोंसे युद्ध कर अमोघवर्षको राज्य दिलवाया था ।

श० सं० ७६५ (वि० सं० ९०० = ई० स० ८४३) का एक लेख[1] कन्हेरी (थाना जिला) की एक गुफामें लगा है । इससे ज्ञात होता है कि उस समय अमोघवर्षका राज्य था और इसका महासामन्त पुल्लशक्ति सारे कोंकण प्रदेशका शासक था । यह पुल्लशक्ति उत्तरी कोंकणके शिलाहारवंशका था ।

श० सं० ७७५ (वि० सं० ९१० = ई० स० ८५३) का एक लेख[2] महासामन्त पुल्लशक्तिके उत्तराधिकारी कपर्दि (द्वितीय) का मिला है । यह लेख पूर्वोक्त कन्हेरीकी एक दूसरी गुफामें लगा है । विद्वान् लोग इसका वास्तविक संवत् श० सं० ७७३ (वि० सं० ९०८ = ई० स० ८५१) अनुमान करते हैं ।

श० सं० ७८२ (वि० सं० ९१७ = ई० स० ८६०) का एक ताम्रपत्र[3] स्वयं इसीका मिला है । इसमें जैन देवेन्द्रको दिये गए दानका उल्लेख है । यह दान अमोघवर्षने अपनी राजधानी मान्यखेटमें दिया था । इस दानपत्रमें राष्ट्रकूटोंको यदुके वंशज लिखा है और अमोघवर्षकी नई उपाधि ' वीरनारायण ' लिखी है ।

श० सं० ७८८ (वि०सं० ९२३ = ई०स० ८६६) की इसके समयकी एक प्रशस्ति[4] और मिली है । यह इसके राज्यके ५२ वें वर्षकी है ।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १३, पृ० १३६ ।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १३, पृ० १३४ ।
(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० २९ ।
(४) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० १०२ ।

इसमें लिखा है कि अङ्ग, बङ्ग, मगध, मालवा, चित्रकूट और वेङ्गिके राजा इस (अमोघवर्ष) की सेवामें रहते थे। (सम्भव है इसमें कुछ अत्युक्ति हो।)

शक सं० ७८८ (वि० सं० ९२३ = ई० स० ८६६) की एक और भी प्रशस्ति[1] इसीके समयकी मिली है।

शक सं० ७८९ (वि० सं० ९२४ = ई० स० ८६७) का एक ताम्रपत्र[2] गुजरातके स्वामी महासामन्ताधिपति ध्रुवराज द्वितीयका[3] मिला है। इसमें ध्रुवराज द्वितीय द्वारा दिये गए दानका वर्णन है।

श० सं० ७९९ (वि० सं० ९३४ = ई० स० ८७७) का लेख[4] कन्हेरीकी एक गुफामें लगा है। इसमें भी अमोघवर्ष और इसके सामन्त कोंकणके स्वामी शिलारी वंशके कपर्दी (द्वितीय) का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय तक भी बौद्धमत जीवित था।

इलोराकी गुफाके दशावतारके मन्दिरमें एक लेख[5] लगा है। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इसमें संवत् आदि नहीं है। यह लेख अधूरा है और इसमें महाराज शर्व (अमोघवर्ष) तक की ही वंशावली दी है।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १२, पृ० २१८।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १२, पृ० १८१।
(३) शायद इस ध्रुवराज द्वितीयके और अमोघवर्ष प्रथमके भी आपसमें युद्ध हुआ था।
(४) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १३, पृ० १३५।
(५) केव टैम्पल इन्सक्रिपशन्स, पृ० ९२।

पहले श० सं० ७५७ (वि० सं० ८९२) के ध्रुवराज प्रथमके ताम्रपत्रका उल्लेख कर चुके हैं। उससे ज्ञात होता है कि अमोघवर्षके गद्दी पर बैठनेके समय कुछ लोगोंने गड़बड़ मचाई थी। परन्तु उस समय इस (अमोघवर्ष) के चचेरे भाई कर्कराजने इसकी सहायता की थी।

इसके बादकी प्रशस्तियोंको देखनेसे अनुमान होता है कि राज्य-प्राप्तिके बाद इसने अपना प्रभाव अच्छी तरहसे जमा लिया था। इसीने नासिकको छोड़ मान्यखेट (मलखेड़[1]) को अपनी राजधानी बनाया। इसके समय वेङ्गिके पूर्वी चालुक्योंसे बराबर युद्ध जारी रहा[2]।

---

(१) निजाम राज्यमें शोलापुरसे ९० मील दक्षिण-पूर्वमें मलखेड़ विद्यमान है।

(२) विजयादित्यके ताम्रपत्रमें लिखा है:—

> गं ारट्टबलैः सार्धं द्वादशाब्दानहर्निशं।
> भुजााजतबलः खड्गसहायो नवविक्रमैः
> अष्टोत्तरं युद्धशतं युद्ध्वा शंभोर्महालयं।
> तत्संख्यमकरोद्वीरा विजयादित्यभूपतिः॥

अर्थात्–विजयादित्य द्वितीयने १२ वर्षके अन्दर राष्ट्रकूटों और गंगवंशियोंसे १०८ लड़ाइयाँ लड़ी और बादमें उतने ही शिवजीके मंदिर बनवाए। इससे ज्ञात होता है कि घरकी फूटके कारण ही वत्सराजको आक्रमणका मौका मिला होगा। सम्भव है इसने कुछ समयके लिए इनके राज्यका कुछ प्रदेश भी दबा लिया हो, जिसे अन्तमें अमोघवर्ष प्रथमने वापिस छीन लिया। यह बात नवसारीसे मिले ताम्रपत्रके निम्नलिखित श्लोकसे प्रकट होती है।

> निमग्नां यश्चुलुक्याब्धौ रट्टराज्यश्रियं पुनः।
> पृथ्वीमिवोद्धरन् धीरो वीरनारायणो भवत्॥

अर्थात्—जिस प्रकार वाराहने समुद्रमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया था-उसी प्रकार अमोघवर्षने एक वार फिर चालुक्यवंशरूपी समुद्रमें डूबी हुई राष्ट्रकूट कुलकी राज्यलक्ष्मीका उद्धार किया।

सूडीसे एक दानपत्र[1] मिला है। यह पश्चिमके गंगवंशी राजाका है। इससे प्रकट होता है कि इस (अमोघवर्ष) के एक कन्या थी। इसका नाम अब्बलब्बे था। इसका विवाह गुणदत्तरंग भूतुगसे हुआ था। यह भूतुग पेरमानडी भूतुगका परदादा था। यह पेरमानडी भूतुग राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयका सामन्त था। परन्तु विद्वान् लोग इस दानपत्रको बनावटी मानते हैं।

श० सं० ७८८ की प्रशस्तिके अनुसार इसका राज्यारोहणसमय श० सं० ७३६ (वि० सं० ८७१ = ई० स ८१५) के करीब आता है।

गुणभद्रसूरिकृत उत्तरपुराण (महापुराणके उत्तरार्ध) में लिखा है:—

> यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव—
> त्पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
> संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोहमद्येत्यलं
> स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम्।

अर्थात्—जिसको प्रणाम करनेसे राजा अमोघवर्ष अपनेको पवित्र समझता था ऐसे जिनसेनाचार्य जगत्के मङ्गलरूप हैं।

इससे ज्ञात होता है कि यह राजा दिगम्बर जैनमतका अनुयायी और जिनसेन[2]का शिष्य था। जिनसेनरचित पार्श्वाभ्युदयसे भी इस बातकी पुष्टि होती है[3]। इन्ही जिनसेनने आदिपुराण (महापुराणके

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३,

(२) पार्श्वाभ्युदय नामक काव्य भी इन्हीं जिनसेनने बनाया। हरिवंशपुराण (श० सं० ७०५) के कर्ता जिनसेन पुन्नाट संघके आचार्य थे और आदि-पुराण पार्श्वाभ्युदयके कर्ता सेनसंघीय जिनसेनसे जुदा थे।

(३) इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचिते मेघदूतवेष्टिते पार्श्वाभ्युदये भगवत्कैवल्यवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः।

पूर्वार्ध) की रचना की थी । महावीराचार्यरचित गणितसारसंग्रह नामक गणितके ग्रन्थकी भूमिकामें भी अमोघवर्षको जैनमतानुयायी लिखा है ।

दिगम्बरजैनसम्प्रदायकी ' जयधवला ' नामक सिद्धान्तटीका भी श० सं० ७५९ (वि० सं० ८९४ = ई० स० ८३७) में इसीके राज्यसमय बनाई गई थी ।

दिगम्बरजैनाचार्योंका मत है कि प्रश्नोत्तररत्नमालिका नामक पुस्तक इसी अमोघवर्षने अपनी वृद्धावस्थामें वैराग्यके कारण राज्य छोड़ देने पर बनाई थी । परन्तु ब्राह्मण लोग इसे शङ्कराचार्यकी और श्वेताम्बर जैन विमलाचार्यकी बनाई हुई मानते हैं ।

दिगम्बरजैनोंके यहाँकी उक्त पुस्तककी प्रतियोंमें निम्नलिखित श्लोक लिखा मिलता है:—

विवेकात्त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका ।
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥

अर्थात्—ज्ञानके उदयके कारण छोड़ दिया है राज्य जिसने ऐसे राजा अमोघवर्षने यह रत्नमालिका नामकी पुस्तक बनाई ।

इससे प्रतीत होता है कि अपनी वृद्धावस्थामें इस राजाने राज्यका भार अपने पुत्रको सौंपकर शेष जीवन धर्मचिंतनमें विताया था ।

इस रत्नमालिकाका अनुवाद तिब्बती भाषामें भी किया गया था । उससे भी प्रकट होता है कि इसका कर्ता अमोघवर्ष ही था ।

इसी समयके आसपास जैनमतके अनेक ग्रन्थ लिखे गये थे और इस मतका प्रचार भी खूब बढ़ने लगा था ।

विना संवत्का एक लेख[1] बंकेयरसका मिला है । यह अमोघवर्षका सामन्त और बनवासी, बेलगलि, कुण्डरगे, कुण्डूर और पुरिगेडे (लक्ष्मेश्वर) आदि प्रदेशोंका शासक था ।

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भा० ७, पृ० २१२।

क्यानूरसे मिले बिना संवत्के लेखसे ज्ञात होता है कि इस (अमोघवर्ष)का सामन्त संकरगण्ड बनवासीका अधिकारी था।

गंगवंशी राजा शिवकुमारका पुत्र पृथ्वीपति (प्रथम) भी इसका समकालीन था।

कनाड़ी भाषामें 'कविराजमार्ग' नामकी एक अलङ्कारकी पुस्तक है। यह भी अमोघवर्षकी बनाई हुई मानी जाती है।

१२ कृष्णराज (द्वितीय)।

यह अमोघवर्षका पुत्र था और उसके जीते जी ही राज्यका स्वामी हो गया। इसके समयके तीन लेख और दो ताम्रपत्र मिले हैं।

इनमेंका एक ताम्रपत्र[1] बगमूरा (बड़ोदा राज्य) से मिला है। यह श० सं० ८१० (वि० सं० ९४५=ई० स० ८८८) का है। इसमें गुजरातके महासामन्ताधिपति अकालवर्ष कृष्णराज द्वारा दिये गये दानका वर्णन है। परन्तु ऐतिहासिक विद्वान् इसको अप्रामाणिक मानते हैं।

श० सं० ८२२ (वि० सं० ९५७=ई० स० ९००) का एक लेख[2] नंद्वाडिग (बीजापूर) से मिला है। परन्तु वास्तवमें यह श० सं० ८२४ (वि० सं० ९५९=ई० स० ९०३) का है।

श० सं० ८२४ (वि० सं० ९५९=ई० स० ९०३) का एक लेख[3] मुलगुण्ड (धारवाड़ जिले) से मिला है।

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १३, पृ० ६५।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० ९०।
(३) जर्नल बाम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग १०, पृ० १६७, १९०।

श० सं० ८३२ (वि० सं० ९६७ = ई० स० ९१०) का एक ताम्रपत्र[1] कपड़बंज (खेड़ा जिले) से मिला है । इसमें कृष्ण (प्रथम) से कृष्ण (द्वितीय) तककी वंशावली दी है । तथा कृष्ण द्वितीय द्वारा दिये गये गाँवके दानका उल्लेख है । इसमें इसके महासामन्त ब्रह्मवक-वंशी प्रचण्डका नाम भी दिया[2] है ।

श० सं० ८३१ (वि० सं० ९६६ = ई० स० ९०९) का एक लेख[3] एहोले (बीजापूर) से मिला है। वास्तवमें इसका सवंत् श० सं० ८३३ (वि० सं० ९६८ = ई० स० ९१२) होना चाहिए।

कृष्णराज द्वितीयकी आगे लिखी हुई उपाधियाँ मिलती हैं—अकाल-वर्ष, शुभतुङ्ग, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, श्रीपृथ्वीवल्लभ, वल्लभराज ।

कहीं कहीं इसके नामके आगे वल्लभ जुड़ा मिलता है। जैसे कृष्ण-वल्लभ। इसके नामका कनाड़ी रूपान्तर कन्नर पाया जाता है ।

इसने चेदिके हैहयवंशी राजा कोक्कलकी कन्या महादेवीसे विवाह किया था। यह शङ्ककी छोटी बहन थी । उक्त कोक्कल (प्रथम) त्रिपुरी (तेवर) का राजा था[4] ।

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग १, पृ० ५२।
(२) कृष्णराजने प्रचण्डके पिताको उसकी सेवाके उपलक्षमें गुजरातमें जागीर दी थी ।
(३)) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २२२ ।
(४) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० ४० ।

इस (कृष्ण द्वितीय) के समय भी पूर्वी चौलुक्योंके साथका युद्ध जारी थो।

श० सं० ७९७ (वि० सं० ९३२ = ई० स० ८७५) का एक लेख[2] कृष्णराज (द्वितीय)के महासामन्त पृथ्वीरामका मिला है।

इस पृथ्वीरामने सौन्दत्तिके एक जैनमन्दिरके लिए कुछ भूमि दान दी थी। इस लेखसे कृष्णराज (द्वितीय) का श० सं० ७९७ (वि० सं० ९३२ = ई० स० ८७५) में ही राजा हो जाना प्रकट होता है। परन्तु श० सं० ७९९ (वि० सं० ९३४ = ई० स० ८७७) का इसके पिता अमोघवर्ष प्रथमके समयका लेख मिला है। इसका उल्लेख उक्त राजाके इतिहासमें किया जा चुका है। इनपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि श० सं० ७९७ (वि० सं० ९३२) में या इसके पूर्व ही अमोघवर्षने अपने पुत्र कृष्णको राज्य सौंप दिया था। इसीसे कुछ सामन्तोंने अपने लेखोंमें अमोघवर्षके जीते जी ही कृष्णका नाम लिखना प्रारम्भ कर दिया होगा। पहले अमोघवर्षके इतिहासमें भी लिखा जाचुका है कि इसने बुढ़ापेमें राज्य छोड़नेके बाद प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका नामक पुस्तक बनाई थी। इससे भी उक्त अनुमानकी ही पुष्टि होती है।

---

(१) वेंगि देशके चालुक्य राजा भीम (द्वितीय) के ताम्रपत्रमें लिखा है:—
'तस्सूनुर्म्मंगिहननकृष्णपुरदहनविख्यातकीर्तिर्गुणगविजयादित्यश्चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि.........'

अर्थात्—विष्णुवर्धन पञ्चमके पुत्र गंगवंशी मंगिको मारने और कृष्णराज द्वितीयके नगरको जलानेवाले विजयादित्य तृतीयने ४४ वर्षतक राज्य किया। इसके बाद सम्भवतः उक्त प्रदेशपर राष्ट्रकूटोंका अधिकार हो गया होगा। परन्तु बादमें फिर विजयादित्यके भतीजे भीम प्रथमने उक्त प्रदेशपर कब्जा कर लिया।

(२) जर्नल बाम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १०, पृ० १९४।

इस (कृष्णराज द्वितीय) ने आंध्र, गङ्ग, कलिङ्ग और मगधके राज्योंपर अपनी प्रभुता जमाई, गुर्जर और गौड़के राजाओंसे युद्ध किया और लाट देशके राष्ट्रकूटराज्यको छीनकर अपने राज्यमें मिला लिया। इसका राज्य कन्याकुमारीसे गंगाके किनारे तक पहुँच गया था।

आचार्य जिनसेनके शिष्य गुणभद्रने महापुराणका अन्तिम भाग बनाया था। उसमें लिखा है:—

अकालवर्षभूपाले पालयत्यखिलामिलाम्।

....

शकनृपकालाभ्यन्तरविंशत्यधिकाष्टशतमिताब्दान्ते।

अर्थात्—उत्तरपुराण अकालवर्षके राज्य समय श० सं० ८२० (वि० सं० ९५५ = ई० स० ८९८) में समाप्त किया गया।

अतः उक्त पुराण कृष्णराज द्वितीयके समय ही समाप्त हुआ होगा। इसका राज्यारोहण श० सं० ७९७ (वि० सं० ९३२ = ई० स० ८७५) करीब हुआ होगा। मि० स्मिथ इस घटनाका समय ई० स० ८८०(वि० सं० ९३७)मानते हैं तथा इसका देहान्त श०सं० ८३३ (वि० स० ९६८ = ई० स० ९११) के करीब हुआ होगा।

कृष्णराज (द्वितीय) के पुत्रका नाम जगत्तुङ्ग (द्वितीय) था। इसका विवाह चेदिके कलचुरी (हैहयवंशी) राजा कोक्कलके पुत्र रण-विग्रह (शङ्करगण) की कन्या लक्ष्मीसे हुआ था।

जिस प्रकार अर्जुनका विवाह अपने मामा वसुदेवकी कन्यासे, प्रद्युम्नका रुक्मकी पुत्रीसे और अनिरुद्धका रुक्मकी पौत्रीसे हुआ था उसी प्रकार दक्षिणके राष्ट्रकूटोंके यहाँ भी कृष्णराज आदिका विवाह मामाकी लड़कियोंके साथ हुआ था। यह प्रथा अबतक भी दक्षिणमें प्रचलित है। परन्तु उत्तरके देशोंमें यह त्याज्य समझी जाती है।

वर्धासे मिले दानपत्रसे प्रकट होता है कि यह (जगत्तुङ्ग) अपने पिता (कृष्ण द्वितीय) के जीते जी ही मर गया था[1]। इसीसे गद्दीपर नहीं बैठ सका। अतः कृष्णराजके पीछे राज्यका स्वामी जगत्तुङ्गका पुत्र इन्द्र हुआ।

करडाके दानपत्रसे जगत्तुङ्ग (द्वितीय) का शङ्करगण[2]की कन्या लक्ष्मीसे विवाह करना सिद्ध होता है। परन्तु इसीमें इसके शङ्करगणकी दूसरी पुत्री गोविन्दाम्बासे विवाह करनेका भी उल्लेख है जिससे अमोघवर्ष तृतीय (बद्दिग) का जन्म हुआ था। शायद यह इन्द्रका छोटा भाई होगा। (इस ताम्रपत्रसे यह भी प्रकट होता है कि जगत्तुंगने कई प्रदेशोंको जीत पिताके राज्यकी वृद्धि की थी। परन्तु इसी ताम्रपत्रमें इसके बादके इतिहासमें बड़ी गडबड़ कर दी गई है।)

१३ इन्द्रराज (तृतीय)।

यह जगत्तुङ्ग (द्वितीय) का पुत्र था और पिताके कुमारपदमें ही मर जानेके कारण अपने दादा कृष्णराज (द्वितीय) का उत्तराधिकारी हुआ। इसकी माताका नाम लक्ष्मी था और इस (इन्द्रराज तृतीय) का विवाह कलचुरी (हैहयवंशी कोक्कलके पौत्र) अर्जुनके पुत्र अम्मणदेव (अनङ्गदेव) की कन्या वीजाम्बासे हुआ था[3]। इसकी आगे लिखी हुई

(१) अभूज्जगत्तुंग इति प्रसिद्धस्तदंगजः स्त्रीनयनामृतांशः।
अलब्धराज्यः स दिवं विनिन्ये दिव्यांगनाप्रार्थनयेव धात्रा।
अर्थात्—सुन्दर और युवा जगत्तुङ्ग कुमारावस्थामें ही मर गया। यह बात सांगली और नवसारीके ताम्रपत्रोंसे प्रकट होती है।

(२) रणविग्रह शायद शङ्करगणकी उपाधि हो।

(३) करडासे मिले ताम्रपत्रमें लिखा है:—
'तेषां मातुलशंकरगणात्मजायामभूज्जगत्तुंगात्।
श्रीमानमोघवर्षो गोविन्दाम्बाभिधानायाम्॥'

उपाधियाँ मिलती हैं—नित्यवर्ष, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक और श्रीपृथिवीवल्लभ।

इसके समयके दो ताम्रपत्र[1] नवसारी (बड़ोदा) से मिले हैं। ये दोनों श० सं० ८३६ (वि० सं० ९७२ = ई० स० ९१५) के हैं। इनमेंके एक-से प्रकट होता है कि यह (इन्द्रराज) अपने राज्याभिषेकोत्सवके लिए मान्यखेटसे कुरुण्डक नामक स्थानमें गया था और श० सं० ८३६ की फाल्गुन शुक्ला सप्तमी (२४ फरवरी सन् ९१५) को उक्त कार्य-के सम्पूर्ण होने पर इसने सुवर्णका तुलादान किया था तथा कई गाँव भी दान किये थे। (यह कुरुण्डक कृष्णा और पंचगंगा नदियोंके संगम पर था।)

उपर्युक्त दानपत्रोंमें राष्ट्रकूटोंका सात्यकीके वंशमें होना लिखा है तथा यह भी लिखा है कि इसने मेरुको उजाड़ दिया था। यहाँ पर मेरुसे महोदयका तात्पर्य होगा।

श० सं० ८३८ (वि० स० ९७३ = ई० स० ९१६) का एक लेख[2] हत्तिमत्तूर (धारवाड़ जिले) से मिला है। इसमें इसके महा-सामन्त लेण्डेयरसका उल्लेख है।

पहले लिखा जा चुका है कि इसने मेरु (महोदय = कन्नौज) को उजाड़ दिया था। उस समय कन्नौज पर पड़िहार राजा महीपालका

अर्थात्—अपने मामाकी लड़की गोविन्दाम्बामें जगत्तुङ्गसे अमोघवर्ष उत्पन्न हुआ। इसके आधार पर कुछ लोग वीजाम्बाका दूसरा नाम गोविन्दाम्बा खयाल करते हैं और कुछ इसका अर्थ 'गोविन्दकी माता' ऐसा करते हैं।

(१) जर्नल बाम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १८, पृ० २५३, २५७ और २५३—२६१।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २२४।

राज्य था। यद्यपि इन्द्रराजने एक वार उसका राज्य छीन लिया था तथापि वह (महीपाल) फिर कन्नौजका स्वामी बन गया था। परन्तु इस गड़बड़में पांचाल देशके राजा महीपालके हाथसे सुराष्ट्रआदि पश्चिमी प्रदेश निकल गये। यह इन्द्रराज (तृतीय) बड़ा दानी था। अनेक नवीन गाँवोंके दानके अलावा इसने पुराने जब्त किये हुए ४०० गाँव फिर दान कर दिये थे।

दमयन्तीकथा और मदालसाचम्पूका लेखक त्रिविक्रम भट्ट इसी राजाके समय हुआ था। श० सं० ८३६ (वि० सं० ९७२) के कुरुण्डकके दानपत्रका लेखक भी यही त्रिविक्रम भट्ट था। इस त्रिविक्रमके पिताका नाम नेमादित्य और पुत्रका नाम भास्करभट्ट था। यह भास्करभट्ट मालवाके परमार राजा भोजका समकालीन था और इसीकी पाँचवीं पीढ़ीमें प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कर उत्पन्न हुआ था।

इन्द्रराज तृतीयके दो पुत्र थे—अमोघवर्ष और गोविन्द।

१४ अमोघवर्ष (द्वितीय)।

यह इन्द्रराज (तृतीय) का बड़ा पुत्र था और सम्भवतः उसके पीछे यही राज्यका अधिकारी हुआ।

श० सं० ९१९ (वि० सं० १०५४=ई० स० ९९७) का शीलारवंशी महामण्डलेश्वर अपराजित देवराजका ताम्रपत्र मिला है। इससे ज्ञात होता है कि यह (अमोघवर्ष) राज्यपर बैठनेके थोड़े समय बाद ही मर गया था। अतः यदि इसने राज्य किया होगा तो मुशकिलसे एक वर्षके करीब किया होगा। इसका राज्यारोहणकाल वि० सं० ९७३ (ई० स० ९१६) के करीब होना चाहिये। सांगलीके लेख-

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३, पृ० २७१।

से भी अमोघवर्ष (द्वितीय) का इन्द्रराज (तृतीय) के पीछे गद्दी पर बैठना प्रकट होता है[१]।

१५ गोविन्दराज (चतुर्थ)।

यह इन्द्रराज (तृतीय) का पुत्र और अमोघवर्ष (द्वितीय) का छोटा भाई था। इसके नामका प्राकृतरूप गोज्जिग मिलता है और इसकी उपाधियाँ प्रभूतवर्ष, सुवर्णवर्ष, नृपतुङ्ग, वीरनारायण, रट्टकन्दर्प, शशाङ्क, नृपतित्रिनेत्र, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, पृथिवीवल्लभ, वल्लभनरेन्द्रदेव, गोज्जिगवल्लभ, आदि पाई जाती हैं।

इसके समय वेङ्गिके पूर्वी चालुक्योंके साथका झगड़ा फिर प्रारम्भ हो गया था। अम्म प्रथम और भीम द्वितीयके लेखोंसे इस बातकी पुष्टि होती है। इस (गोविन्द चतुर्थ) के समयके दो लेख और दो ताम्रपत्र मिले हैं। इनमेंका पहला श० सं० ८४० (वि० सं० ९७५ = ई० स० ९१८) का लेख[१] दण्डपुर (धारवाड़ जिले) से मिला है और दूसरा[२] श० स० ८५१ (वि० स० ९८७ = ई० स० ९३०) का है।

इसके ताम्रपत्रोंमेंसे पहला श० सं० ८५२ (वि० स० ९८७ = ई० स० ९३०) का[३] है। इसमें इसको महाराजाधिराज इन्द्रराज तृतीयका उत्तराधिकारी और यदुवंशी लिखा है। दूसरा श० सं० ८५५ (वि०सं० ९९० = ई० स० ९३३) का है[४]। यह सांगलीसे मिला है। इसमें भी पहले ताम्रपत्रके समान ही वंश आदिका उल्लेख है।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २२२।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २११।
(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ७, पृ० ३६।
(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २४९।
चालुक्योंके ताम्रपत्रोंमें विजयादित्य तृतीयके भतीजे भीम प्रथमके विषयमें

खारेपाटन और वरधाके ताम्रपत्रोंसे प्रकट होता है कि यह राजा (गोविन्द चतुर्थ) अधिक विषयासक्त होनेके कारण शीघ्र ही मर गया था। इसका राज्यारोहण समय वि० सं० ९७४ (ई० स०९१७) के निकट होना चाहिये।

१६ बद्दिग (अमोघवर्ष तृतीय)।

यह कृष्णराजके पुत्र जगत्तुङ्ग (द्वितीय) की स्त्री गोविन्दाम्बासे उत्पन्न हुआ था और गोविन्द (चतुर्थ) के विषयासक्तिके कारण असमयमें ही मर जानेसे उसका उत्तराधिकारी हुआ था।

लिखा है;—

'दृप्तं गोविन्दराजप्रणिहितमधिकं चोलपं लोवविक्किं
विक्रान्तं युद्धमल्लं घटितगजघटं सानिहत्यैक एव।'

अर्थात्—भीमने गोविन्दराजकी सेनाको, चोलराज लोविकको और युद्धमल्लको विना किसी दूसरेकी सहायताके ही हटा दिया।

इससे ज्ञात होता है कि गोविन्द चतुर्थने इसपर चढ़ाई की होगी, पर उसे असफल होना पड़ा होगा।

(१) सांगलीसे मिले ताम्रपत्रमें लिखा है:—

सामर्थ्ये सति निन्दिता प्रविहिता नैवाग्रजे क्रूरता।
बंधुस्त्रीगमनादिभिः कुचरितैरावर्जितं नायशः॥
शौचाशौचपराङ्मुखं न च भिया पैशाच्यमङ्गीकृतं।
त्यागेनासमसाहसैश्च भुवने यः साहसाङ्को भवत्॥

अर्थात्–गोविन्दराजने अपने बड़े भाईके साथ बुराई नहीं की, कुटुम्बकी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार नहीं किया। और भी इसी प्रकारका कोई भी निन्दित काम नहीं किया। किन्तु यह अपने त्याग और साहससे ही साहसाङ्क कहलाया।

इससे अनुमान होता है कि इसके जीते जी इस पर इस प्रकारके दोष लगाए गए होंगे और उन्हींके खण्डनके लिए इसको अपने ताम्रपत्रमें ये बातें लिखनी पड़ी होंगी।

वरधासे मिले श० सं० ८६२ (वि० सं० ९९७=ई० स० ९४०) के राष्ट्रकूट राजा कृष्णके ताम्रपत्रमें लिखा है—

राज्यं दधे मदनसौख्यविलासकन्दो
गोविन्दराज इति विश्रुत नामधेयः ॥ १७ ॥

सोप्यङ्गनानयनपाशनिरुद्धबुद्धिरुन्मार्गसंगविमुखीकृतसर्व्वसत्वः।
दोषप्रकोपविषमप्रकृतिश्लथांगः प्रापत्क्षयं सहज तेजसि जात जाड्ये

सामन्तैरथ रट्टराजमहिलालम्बार्थमभ्यर्थितो
देवेनापि पिनाकिना हरिकुलोल्लासैषिणा प्रेरितः।
अध्यास्त प्रथमो विवेकिषु जगत्तुंगात्मजो मोघवा-
क्पीयूषाब्धिरमोघवर्षनृपतिः श्रीवीरसिंहासनं ॥ १९ ॥

अर्थात्—अमोघवर्ष (द्वितीय) के पीछे गोविन्दराज (चतुर्थ) राज्यका स्वामी हुआ । यह राजा कामविलासमें अत्यधिक आसक्त होनेके कारण शीघ्र ही मर गया । इसपर इसके सामन्तोंने रट्ट राज्यकी रक्षाके लिए जगत्तुंगके पुत्र अमोघवर्षसे राज्यभार ग्रहण करनेकी प्रार्थना की और उसे गद्दीपर बिठाया ।

इस अमोघवर्ष चतुर्थकी श्रीपृथिवीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक आदि उपाधियाँ मिलती हैं ।

यह राजा बड़ा समझदार और वीर था । इसका विवाह कलचुरी (हैहयवंशी) राजा युवराज प्रथमकी कन्या कुन्दकदेवीसे हुआ था । यह युवराज त्रिपुरी (तेवर) का राजा था ।

हेब्बालके लेखसे पता चलता है कि बद्दिग (अमोघवर्ष तृतीय) की कन्याका विवाह पश्चिमी गङ्गवंशी राजा सत्यवाक्य-कोंगुणिवर्म-

(१) जर्नल, बॉम्बे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी, भाग १८, पृ० २५१ ।
(२) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० ४२ ।
(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० १७० ।

पेरमनडि–भूतुगसे हुआ था और इसके दहेजमें उसे बहुतसा प्रदेश दिया गया था।

बद्दिगका राज्याभिषेक वि० सं० ९९२ (ई० स० ९३५) के निकट हुआ होगा।

इसके ४ पुत्र थे–कृष्णराज, जगत्तुङ्ग, खोट्टिग और निरुपम। पहले लिखा जा चुका है कि इसकी कन्याका विवाह पश्चिमी गङ्गवंशी राजा भूतुगसे हुआ था। इस कन्याका नाम रेवकनिम्मडि था और यह कृष्णराजकी बड़ी बहन थी।

१७ कृष्णराज (तृतीय)।

यह बद्दिग (अमोघवर्ष तृतीय) का बड़ा पुत्र था और उसके पीछे गद्दीपर बैठा। इसके नामका प्राकृतरूप कन्नर मिलता है और इसकी उपाधियाँ अकालवर्ष, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परममाहेश्वर, परमभट्टारक, पृथिवीवल्लभ, श्रीपृथिवीवल्लभ, समस्तभुवनाश्रय, कन्धारपुरवराधीश्वर आदि मिलती हैं।

आतकूरके लेखसे पता चलता है कि वि०सं० १००६–७ (ई०स० ९४९–५०) के करीब तक्कोल नामक स्थानपर इसने चोलवंशी राजा राजादित्य (मूवडिचोल) को युद्धमें मारा था। असलमें इस चोल-राजको पश्चिमी गङ्गवंशी राजा सत्यवाक्य–कोंगुणिवर्मा–पेरमनडि–भूतुगने धोखा देकर मारा था और इसकी ऐवजमें कृष्णराज तृतीयने उसे बनवासी आदि प्रदेश दिये थे।

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ३५१।

(२) राजादित्यकी मृत्युका समय वि० सं० १००६ (ई० स० ९४९) अनुमान किया जाता है।

तिरुक्कलुकुन्नमके लेखमें कृष्ण (तृतीय) का काञ्ची और तंजोरपर अधिकार करना लिखा है ।

देवलीसे मिली प्रशस्तिसे प्रकट होता है कि कृष्ण (तृतीय) ने काञ्चीके राजा दन्तिगको और वप्पुकको मारा, पल्लववंशी राजा आन्तिगको हराया, गुर्जरोंके आक्रमणसे मध्यभारतके कलचुरियोंकी रक्षा की और अनेक दूसरे शत्रुओंको जीता ।

हिमालयसे लङ्का तकके और पूर्वी समुद्रसे पश्चिमी समुद्र तकके सामन्त राजा इसकी आज्ञामें रहते थे ।

लक्ष्मेश्वरसे मिली प्रशस्तिमें लिखा है कि इस (कृष्ण तृतीय) की आज्ञासे मारसिंहने गुर्जर राजाको जीता था और यह कृष्ण चोलवंशी राजाओंके लिए कालरूप था ।

क्यासनूर और धारवाड़से मिले लेखोंसे पता चलता है कि वि०सं० १००२–३ (ई० स० ९४५–४६) में इसका महासामन्त चेल्लुकेतनवंशी कलिविट्ट बनवासी प्रदेशका शासक था ।

सौन्दत्तिके रट्टोंके पिछले लेखोंमें लिखा है कि इस कृष्ण (तृतीय) ने वीर्यरामको महासामन्तके पदपर प्रतिष्ठित करके सौन्दत्तिके रट्टवंशको उन्नत किया था । सोउण प्रदेशका यादववंशी वन्दिग (वद्दिग) भी इस (कृष्ण तृतीय) का सामन्त था ।

इसके समय के १४ लेख और २ ताम्रपत्र मिले है । उनका विवरण इस प्रकार है:—

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका भाग ३, पृ० १८३ ।

(२) ये गुर्जर शायद अनहिलवाड़ेके चालुक्यवंशी राजा मूलराजके अनुयायी होंगे जिन्होंने कालिंजर और चित्रकूट पर अधिकार करनेका इरादा किया था ।

श० सं० ८६२ (वि० सं० ९९७=ई० स० ९४०) का एक ताम्रपत्र[1] देवलीसे मिला है। इसमें जिस दानका उल्लेख है वह दान इस (कृष्ण तृतीय) ने अपने मृत भ्राता जगत्तुङ्ग की यादगारमें दिया था।

श० सं० ८६७ (वि० सं० १००२=ई० स० ९४५) का एक लेख[2] सालोटगी (बीजापुर) से मिला है।

दूसरा लेख श० सं० ८७२ (वि० सं० १००७=ई० स० ९५०) का है[3]। यह आतकूर (माइसोर) से मिला है। इसमें लिखा है कि कृष्ण (तृतीय) ने चोलराज राजादित्यके मारनेके उपलक्ष्यमें पश्चिमी गङ्गवंशी राजा भूतुगको बनवासी आदि प्रदेश उपहारमें दिये थे।

तीसरा श० सं० ८७३ (वि० सं० १००८=ई० स० ९५१) का लेख[4] सोरटूर (धारवाड़) से मिला है।

चौथा लेख श० सं० ८७६ (वि० सं० १०१०=ई० स० ९५३) का है[5]।

इसका दूसरा ताम्रपत्र[6] श० सं० ८८० (वि० सं० १०१४=ई० स० ९५७) का है। इसमें इसको रट्टवंशमें उत्पन्न हुआ लिखा है।

पाँचवाँ लेख[7] श० सं० ८८४ (वि० सं० १०१८=ई० स० ९६१) का है।

---

(१) जर्नल, बॉम्बे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग १८, पृ० २३९।
(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ६०।
(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग २, पृ० १६७।
(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २५६।
(५) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० १८०।
(६) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० २८१।
(७) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० १८०।

चार लेख[1] तामिल भाषाके हैं। ये क्रमशः इस (कृष्ण तृतीय) के १६ वें, १७ वें, १९ वें और २६ वें राज्यवर्षके है। इनमेंके पहले तीन लेखोंमें इसको काञ्ची और तंजइ (तंजोर) का जीतनेवाला लिखा[2] है। तथा चौथे लेखका वीरचोल शायद गङ्गवाण पृथ्वीपति द्वितीय होगा।

इसी प्रकार भक्तजनेश्वर और वीरत्थानेश्वरके मन्दिरोंसे तामील भाषाके चार लेख[3] और भी मिले है। ये इसके १७ वें, २१ वें, २२, वें और २४ वें राज्यवर्षके है।

श० सं० ८७१ (वि० सं० १००६ = ई० स० ९४९) का तामील भाषाका एक लेख[4] और मिला है। इसमें इसकी उपाधि 'चक्रवर्ती' लिखी है।

यह (कृष्ण तृतीय) राज्यकार्यमें अपने पिताको भी सहायता दिया करता था। इसने पश्चिमी गङ्गवंशी राजा राचमल्ल (प्रथम) को गद्दीसे हटाकर उसकी जगह भूतार्य (भूतुग द्वितीय) को गद्दीपर बिठाया[5] (यह भूतुग इस का बहनोई था) और चेदीके कलचुरी (हैहयवंशी) सहस्रार्जुनको जीता। यह सहस्रार्जुन इसकी माता और स्त्रीका रिश्तेदार था। इस (कृष्ण) की वीरतासे गुजरातवाले भी डरते थे।

---

(१) साउथ इण्डियन इन्सक्रिपशन्स, भाग ३, नं ७, पृ० १२, ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३, पृ० २८४ और २८५, ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ८२।

(२) उस समय काञ्चीमें पल्लवोंका और तंजोरमें चोलोंका राज्य था।

(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६ पृ० १३५, १४२, १४३ और १४४।

(४) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० १९५।

(५) तामिल भाषाके एक पीछेसे खुदे हुए लेखसे राचमल्लका भी भूतुगके हाथसे मारा जाना प्रकट होता है।

इसके २६ वें राज्यवर्षका लेख मिलनेसे सिद्ध होता है कि इसने कमसे कम २६ वर्ष तक तो अवश्य ही राज्य किया होगा।

सोमदेवरचित यशस्तिलक चम्पू इसीके समय श० सं० ८८१ (वि० सं० १०१६ = ई० स० ९५९) में समाप्त हुआ था[1]। उक्त ग्रन्थमें इस (कृष्ण तृतीय) को चेर, चोल, पाण्ड्य और सिंहलका जीतनेवाला लिखा है।

इसकी एक उपाधि परममाहेश्वर मिली है। इससे इसका शिवभक्त होना प्रकट होता है।

इसका राज्याभिषेक वि० सं० ९९७ (ई० स० ९४०) के करीब हुआ होगा।

यह राजा बड़ा प्रतापी था और इसका राज्य गङ्गाकी सीमाको भी पार कर गया था।

१८ खोट्टिग[2]।

यह अमोघवर्ष तृतीयका पुत्र और कृष्णराज तृतीयका छोटा भाई था तथा कृष्णराजके मरने पर उसका उत्तराधिकारी हुआ था।

करडासे मिले ताम्रपत्रमें लिखा है:—

> स्वर्गमधिरूढे च ज्येष्ठे भ्रातरि श्रीकृष्णराजदेवे
> युवराजदेवदुहितरि कन्दकदेव्याममोघवर्षनृपा-
> ज्जातः खोट्टिगदेवो नृपतिरभूद्भुवनविख्यातः ॥ १६

अर्थात् बड़े भाई कृष्णराज देवके मरने पर युवराजदेवकी कन्या कन्दकदेवीमें अमोघवर्षसे उत्पन्न हुआ खोट्टिगदेव गद्दीपर बैठा।

---

(१) सोमदेवने उक्त पुस्तक जिस समय बनाई थी उस समय वह कृष्णराज द्वितीयके सामन्त चालुक्य अरिकेसरीके बड़े पुत्र बद्दिगकी राजधानीमें था।

(२) यह इसके नामका प्राकृतरूप होता है। परन्तु इसके असली नामका उल्लेख अब तक कहीं नहीं मिला है।

यद्यपि खोट्टिगका बड़ा भाई जगत्तुङ्ग था, तथापि उसके कृष्ण-राजके समयमें ही मर जाने से यह राज्यका अधिकारी हुआ।

इस खोट्टिगकी उपाधियाँ ये मिलती है—नित्यवर्ष, रट्टकन्दर्प, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, श्रीपृथिवीवल्लभ आदि।

श० सं० ८९३ (वि०सं० १०२८=ई० स० ९७१) का इसके समयका एक लेख[1] मिला है। यह कनाड़ी भाषामें है। इसमें इसकी उपाधि नित्यवर्ष लिखी है और इसके सामन्त पश्चिमी गङ्गवंशी पेरमानडि मारसिंह द्वितीयका भी उल्लेख है।

उदयपुर (ग्वालियर) से परमार राजा उदयादित्यके समयकी एक प्रशस्ति मिली है। उसमें लिखा है:—

'श्रीहर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मीं
जग्राह यो युधि नगादसमः प्रतापः [१२]'

अर्थात्—श्रीहर्ष (मालवाके परमार राजा सीयक द्वितीय)ने खोट्टिगदेवकी राज्यलक्ष्मी छीन ली।

धनपाल कविने अपने पाइयलच्छी नाममाला नामक प्राकृत कोषके अन्तमें लिखा है:—

विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि।
मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि॥ २७६

अर्थात्—विक्रम संवत् १०२९ में मालवाके राजाने मान्यखेटको लूटा। इससे प्रगट होता है कि सीयक द्वितीयने खोट्टिगको हरा कर उसकी राजधानी मान्यखेटमें लूट मचाई।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भाग १२, पृ० २२५।
(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग १ (भाग ५), पृ० २२५।

इसी घटनाके समय धनपालने अपनी बहन सुन्दराके लिये उक्त (पायइलच्छी नाममाला) पुस्तक बनाई थी। इसी युद्धमें मालवाके राजा सीयकका चचेरा भाई (वागडका राजा कङ्कदेव) मारा गया और इसीमें खोट्टिगका भी देहान्त हुआ।

इसका राज्यारोहण वि० सं० १०२३ (ई० स० ९६६) के करीब हुआ होगा।

इस खोट्टिगके समयसे ही दक्षिणके राष्ट्रकूट राजाओंका उदय होता हुआ प्रतापसूर्य अस्ताचलकी तरफ मुड़ गया था। इसके कोई पुत्र न था।

१९ कर्कराज (द्वितीय)।

यह अमोघवर्ष तृतीयके सबसे छोटे पुत्र निरुपमका लड़का और खोट्टिगदेवका भतीजा था तथा अपने चाचा खोट्टिगके बाद राज्यका अधिकारी हुआ। इसके नामके रूपान्तर कक, कक्कल, कर्कर, कक्कर आदि मिलते हैं और इसकी उपाधियाँ अमोघवर्ष, नृपतुङ्ग, वीरनारायण, राजत्रिनेत्र, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक, पृथिवीवल्लभ, वल्लभनरेन्द्र, परममाहेश्वर आदि लिखी हैं।

परममाहेश्वरकी उपाधिसे इसका भी शैव होना सिद्ध होता है।

श० सं० ८९४ (वि० सं० १०२९ = ई० सं० ९७२) का इसके समयका एक ताम्रपत्र करडासे मिला है। इसमें भी राष्ट्रकूटोंका यादव होना लिखा है। कर्कराजकी राजधानी मलखेड़ थी और इसने गुर्जर, चोल, हूण और पाण्डय लोगोंको जीता था।

श० सं० ८९६ (वि० सं० १०३० = ई० स० ९७३) का एक लेख गुणदूर (धारवाड़) से मिला है। यह भी इसीके समयका है।

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २६३।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २७०।

इसमें इसके सामन्त पश्चिमी गङ्गवंशी राजा पेरमानडी मारसिंह (द्वितीय) का उल्लेख है।

कर्कराज (द्वितीय) का राज्यभिषेक वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) के करीब हुआ होगा।

पहले खोट्टिगके और माळवाके परमार राजा सीयक द्वितीयके आपसके युद्धका उल्लेख किया जा चुका है। इसी युद्धके कारण इन राष्ट्रकूटोंका राज्य शिथिल पड़ गया था। अतः वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) के करीब मौका पा चालुक्यवंशी (सोलंकी) राजा तैलप द्वितीयने इस कर्कराजपर चढ़ाई कर अपने पूर्वजोंके गए हुए राज्यको पीछा हथिया लिया[1] और कल्याणीके चौलुक्य (सोलङ्की) राज्यकी स्थापना की। इस प्रकार दक्षिणके राष्ट्रकूट राज्यकी समाप्ति हो गई[2]।

कलचुरिवंशी विज्जलके लेखमें[3] तैलपका राष्ट्रकूट राजा कर्कर (कर्क-राज द्वितीय) और रणकंभ (रणस्तम्भ) को मारना लिखा है। यह रणस्तम्भ शायद कर्कराजका रिश्तेदार होगा।

उपर्युक्त सोलंकी राजा तैलप द्वितीय का विवाह राष्ट्रकूट भम्महकी कन्या जाकव्वासे हुआ था[4]।

---

(१) खारेपाटणके ताम्रपत्रमें लिखा है:–

कक्कलस्तस्य भ्रातृव्यो भुवो भर्ता जनप्रियः,
आसीत् प्रचण्डधामेव प्रतापार्जितशात्रवः।
समरे तं विनिर्जित्य तैलपोभून्महीपतिः।

अर्थात्—खोट्टिगका भतीजा प्रतापी कर्कराज द्वितीय हुआ। उसको हराकर तैल्पने उसके राज्यपर अधिकार कर लिया।

(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ८, पृ० १५।

(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ५, पृ० १५।

(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भाग १६ पृ० २१।

शिलारवंशी अपराजितके ताम्रपत्रसे भी तैलप (द्वितीय) द्वारा कर्कराजके समय राष्ट्रकूट राज्यका नष्ट होना सिद्ध होता है। यह अपराजित राष्ट्रकूटोंका सामन्त था। परन्तु उनके राज्यके नष्ट होने पर स्वतंत्र बन गया। विक्रमाङ्कदेवचरित (सर्ग १, श्लो० ६९।)में लिखा है:—

विश्वम्भराकंटकराष्ट्रकूटसमूलनिर्मूलनकोविदस्य।
सुखेन यस्यान्तिकमाजगाम चालुक्यचन्द्रस्य नरेन्द्रलक्ष्मी॥

अर्थात्—राष्ट्रकूट राज्यको नष्ट करनेवाले सोलङ्की तैलप द्वितीयके पास राज्यलक्ष्मी चली आई।

श्रवणबेलगोलासे श०सं० ९०४ (वि० सं० १०३९ = ई० स० ९८२) का एक लेख[2] मिला है। इसमें इन्द्रराज (चतुर्थ) का उल्लेख है। यह कृष्णराज (तृतीय) का पौत्र था। कर्कराज द्वितीयके बाद राष्ट्रकूट राज्यको कायम रखनेके लिए पश्चिमी गंगवंशी राजा पेरमनडी—मारसिंगने उपर्युक्त इन्द्रराज चतुर्थको राज्य दिलानेकी कोशिश की थी। पहले लिखा जा चुका है कि पेरमनडी—भूतुग अर्थात् मारसिंहका पिता राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयका बहनोई था। अतः सम्भवतः इसने यह चेष्टा वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) के करीब की होगी। परन्तु इसके नतीजेका अबतक कुछ भी पता नहीं चला है।

इस इन्द्रराज चतुर्थकी मृत्यु वि० सं० १०३९ में (ई० स० ९८२) के मार्च महीनेकी २० तारीख को) हुई थी। इसने जैनमतानुसार अनशनव्रत धारण कर प्राण त्यागे थे[3]।

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका भाग ३, पृ० २७२।
(२) इन्सक्रिपशन्स ऐट श्रवणबेलगोला, न० ५७ (३८) पृ० ५३।
(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० १८२।

मान्यखेट (दक्षिण) के राष्ट्रकूटोंका वंशवृक्ष।

१ दन्तिवर्मा प्रथम
|
२ इन्द्रराज प्रथम
|
३ गोविन्दराज प्रथम
|
४ कर्कराज प्रथम
|
- ५ इन्द्रराज द्वितीय
  - ६ दन्तिदुर्ग (दन्तिवर्मा द्वितीय)
- ७ कृष्णराज प्रथम
  - ८ गोविन्दराज द्वितीय
  - ९ ध्रुवराज
    - १० गोविन्दराज तृतीय (जगतुङ्ग प्रथम)
    - इन्द्रराज
      - (गुजरातकी दूसरी शाखा इसीसे चली थी)
    - कम्बय्य (स्तम्भ)

११ अमोघवर्ष प्रथम
१२ कृष्णराज द्वितीय
जगतुङ्ग द्वितीय
दन्तिवर्मदेव
१३ इन्द्रराज तृतीय
१६ अमोघवर्ष तृतीय (बद्दिग)
१७ कृष्णराजतृ०, जगतुङ्ग तृ०, १८ खोट्टिग, निरुपम, रेवकनि-
म्मडि (कन्या)
१९ कर्कराज द्वितीय
अमोघवर्ष द्वितीय
१५ गोविन्दराज चतुर्थ
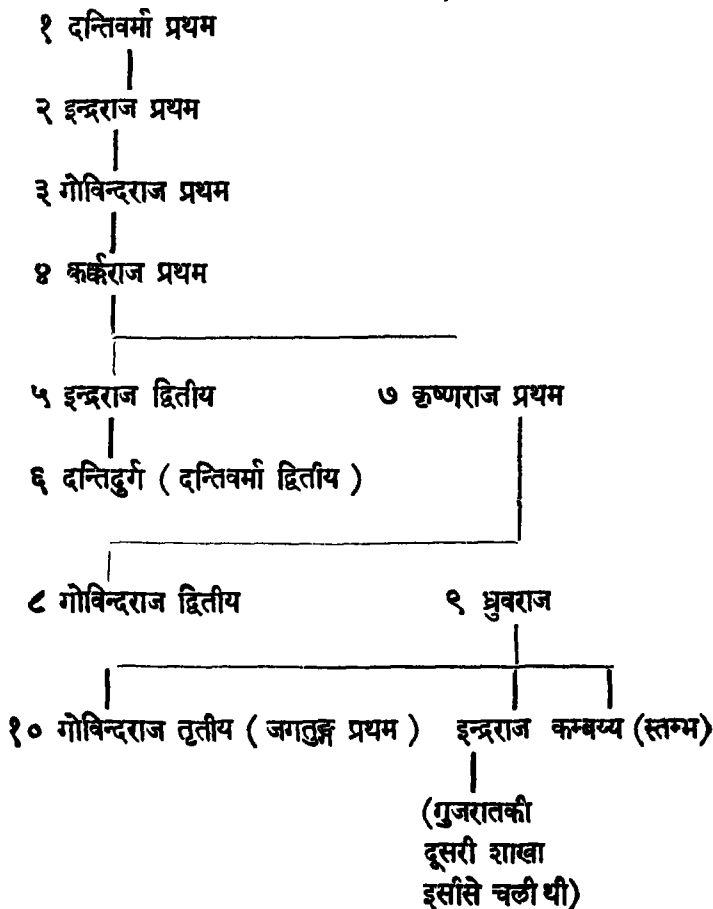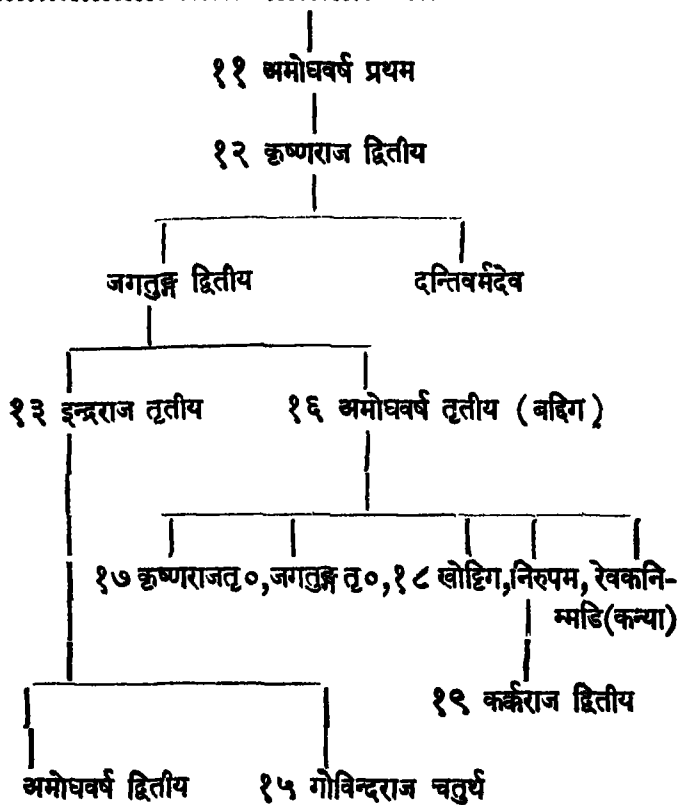
मान्यखेट (दक्षिण) के राष्ट्रकूटोंका नकशा ।

नं०	नाम	परस्परका संबन्ध	उपाधि	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१	दन्तिवर्मा (प्रथम)				
२	इन्द्रराज प्रथम	नं० १ का पुत्र			
३	गोविन्दराज प्रथम	नं० २ का पुत्र			
४	कर्कराज प्रथम	नं० ३ का पुत्र			
५	इन्द्रराज द्वितीय	नं० ४ का पुत्र			
६	दन्तिदुर्ग (दन्तिवर्मा द्वितीय)	नं० ५ का पुत्र	महाराजाधिराज	श० स० ६७५	पश्चिमी चौलुक्य कीर्तिवर्मा
७	कृष्णराज प्रथम	नं० ५ का भाई		श० स० ६९४	राहप्प, शिलार, सणफुल्ल
८	गोविन्दराज द्वितीय	नं० ७ का पुत्र	महाराजाधिराज	श० स० ६९२, ७०५	
९	ध्रुवराज	नं० ८ का भाई	महाराजाधिराज		प्रतिहार वत्सराज
१०	गोविन्दराज तृतीय	नं० ९ का पुत्र	महाराजाधिराज	श० स० ७१६; ७२६; ७३०, ७३४ ७३५,	माराशर्व, काञ्चीका दन्तिग, इन्द्रायुध, वत्सराज वराह विजयादित्य ।
११	अमोघवर्ष प्रथम	नं० १० का पुत्र	महाराजाधिराज	श० स० ७३८, ७४९, ७५७, ७६५ ७७५	शिलारवंशी कपर्दी द्वितीय, पृथ्वीपति, कर्कराज, संकरगण्ड, पुलशक्ति ।

नं०	नाम	परस्परका सम्बन्ध	उपाधि	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१२	कृष्णराज द्वितीय	नं० ११ का पुत्र	महाराजाधिराज	(७७३),७८२,७८८,७८९,७९९	कलचुरी कोकल, शङ्कुक
१३				श०सं० ८१०,८२०,८२२,	
१४				(८२४)८२४,८३१(८३३)८३२	
१५	इन्द्रराज तृतीय	नं० १२ का पौत्र	महाराजाधिराज	श०सं० ८३६, ८३८,	कलचुरी अम्मणदेव, पड़िहार महीपत
१६	अमोघवर्ष द्वितीय	नं० १३ का पुत्र			
	गोविन्दराज चतुर्थ	नं० १४ का भाई	महाराजाधिराज	श०सं० ८४०,८५१,८५२;८५५	
	बद्दिग (अमोघवर्ष तृतीय)	नं० १३ का भाई	महाराजाधिराज		कलचुरी युवराज प्रथम, पेरमानडि-भूतुग,
१७	कृष्णराज तृतीय	नं० १६ का पुत्र	महाराजाधिराज चक्रवर्ती	श०सं० ८६२,८६७;८७१;८७२ ८७३;८७६;८८०;८८१; ८८४	दन्तिग, बप्पुग, राचमल्ल प्रथम, भूतुग पल्लव, अण्णिग, चोलराजादित्य, कलचुरी, सहस्रार्जुन, अन्तिग, वीर्यराम
१८	खोट्टिग	नं० १७ का भाई	महाराजाधिराज	श० ८९३	मारसिंह, परमार सीयक द्वितीय
१९	कर्कराज द्वितीय	नं० १८ का भती	महाराजाधिराज	श०सं० ८९४ ८९६,	तैलप द्वितीय, मारसिंह
	इन्द्ररज चतुर्थ	न १७ का पौत्र		श०सं० ९०४(?)	

शक त् में १३५ जोड़नेसे विक्रम संवत् और ७८ जोड़नेसे ईसवी सन् बन जाता है।

लाट (गुजरात) के राष्ट्रकूट ।

[वि० सं० ८१४ (ई० स० ७५७) के पूर्वसे वि० सं० ९४५ (ई० स० ८८८) के बादतक ।]

प्रथम शाखा ।

पहले लिखा जा चुका है कि दन्तिदुर्ग (दन्तिवर्मा द्वितीय) ने चालुक्य (सोलंकी) कीर्तिवर्मा द्वितीयका राज्य छीन लिया था । उसी समय लाट (दक्षिणी और मध्य गुजरात) पर भी राष्ट्रकूटोंका अधिकार होगया था ।

श० सं० ६७९ (वि० सं० ८१४ = ई० स० ७५७) का गुजरातके महाराजाधिराज कर्कराज द्वितीयका एक ताम्रपत्र[1] सूरतसे मिला है । इससे ज्ञात होता है कि अपनी सोलङ्कियों परकी विजयके समय दन्तिदुर्ग (दन्तिवर्मा द्वितीय) ने अपने रिश्तेदार इस कर्कराज-को लाट प्रदेशका स्वामी बना दिया था ।

इनके और दक्षिणी राष्ट्रकूटोंके नामोंमें साम्य होनेसे और दोनों शाखाओंके ताम्रपत्रोंकी मुहरोंमें समानतया गरुडकी आकृति बनी होनेसे प्रकट होता है कि लाटके राष्ट्रकूट भी दक्षिणके राष्ट्रकूटोंकी ही शाखामें थे ।

उपर्युक्त ताम्रपत्रमें इनकी वंशावली इस प्रकार लिखी है—

१ कर्कराज (प्रथम) ।

इस शाखाका सबसे पहला नाम यही मिलता है ।

(१) जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसायटी, भाग १६ पृ० १०५ ।

२ ध्रुवराज।

यह कर्कराज प्रथमका पुत्र था।

३ गोविन्दराज।

यह ध्रुवराजका पुत्र था[1]। इसका विवाह नागवर्माकी कन्यासे हुआ था।

४ कर्कराज (द्वितीय)।

यह गोविन्दराजका पुत्र था। उपर्युक्त श० स० ६७९ (वि०सं० ८१४=ई० स० ७५७) का ताम्रपत्र इसीके समयका है। यह कर्कराज द्वितीय राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग (दन्तिवर्मा द्वितीय) का सम-कालीन था और उसीने इसे लाट देशका अधिकार दिया था।

इस (कर्कराज द्वितीय) की निम्नलिखित उपाधियाँ मिलती है— परममाहेश्वर, परमभट्टारक, परमेश्वर और महाराजाधिराज।

यह राजा बड़ा प्रतापी और शिवभक्त था। कुछ विद्वान् इसीका दूसरा नाम राहप्प था ऐसा अनुमान करते है। इस राहप्पको दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज प्रथमने हराया था। अतः सम्भव है कि इसी युद्धके कारण यह शाखा समाप्त हो गई हो।

इसके बादका इसके वंशजोंका कोई लेख आदिक नहीं मिलनेसे इस शाखाके अगले इतिहासका कुछ भी पता नहीं चलता।

द्वितीय शाखा।

दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज तृतीयके वर्णनमें लिखा जा चुका है कि उसने अपने छोटे भाई इन्द्रराजको लाट देशका राज्य दे दिया

(१) सम्भव है यह दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा इन्द्रराज द्वितीयका छोटा भाई हो।

थी। इसके वंशजोंके लेखोंसे इस शाखाका इतिहास इस प्रकार मिलता है:—

१ इन्द्रराज ।

यह दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा ध्रुवराजका पुत्र और गोविन्दराज तृतीय-का छोटा भाई था। गोविन्दराज तृतीयने ही इसे लाट प्रदेश (दक्षिणी और मध्य गुजरात) का स्वामी बनाया था।

श० सं० ७३० (वि० सं० ८६५ = ई० स० ८०८) के गोविन्द तृतीयके ताम्रपत्रमें गुजरातविजयका उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि इसीके आसपास लाट देशका अधिकार इसे मिला होगा। इसके दो पुत्र थे—कर्कराज और गोविन्दराज।

२ कर्कराज (कक्कराज)।

यह इन्द्रराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके समयके दो ताम्रपत्र मिले हैं। इनमेंका पहला[1] श० सं० ७३४ (वि० सं० ८६९ = ई० स० ८१२) का है। इसमें दक्षिणके राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज तृतीय द्वारा अपने छोटे भाई इन्द्रराज (कर्कराजके पिता) को लाटदेशके स्वामी बनानेका उल्लेख है। इसीमें कर्कराजकी उपाधियाँ महासामन्ताधिपति और सुवर्णवर्ष लिखी है। इसने गौड और बङ्गदेशके विजेता गुर्जरके राजासे मालवराजकी रक्षा की थी। इस ताम्रपत्रमें उल्लिखित दानका दूतक राजपुत्र दन्तिवर्मा था।

दूसरा ताम्रपत्र[2] श० सं० ७३८ (वि० सं० ८७३ = ई० स० ८१७) का है। इसकी उपाधियाँ महासामन्ताधिपति, लाटेश्वर और सुवर्णवर्ष लिखी हैं

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३, पृ० ५४।
(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० २४२।
(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भाग १२, पृ० १५६।
(४) जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी, भाग २०, पृ० १३५।

श० सं० ७५७ (वि० सं० ८९२ = ई० स० ८३५) का एक ताम्रपत्र[1] गुजरातके महासामन्ताधिपति ध्रुवराज प्रथमका मिला है। इसमें लिखा है कि कर्कराजने बागी हुए राष्ट्रकूटोंको हराकर मान्यखेटके राजा अमोघवर्ष प्रथमको वि० सं० ८७२ (ई० स० ८१५) के करीब उसके पिताके राज्यसिंहासन पर बिठाया था[2]।

इससे अनुमान होता है कि गोविन्द तृतीयके मरनेके समय अमोघवर्ष प्रथम बालक था। इसलिए मौका पाकर सामन्त राष्ट्रकूटोंने और सोलङ्कियोंने उसके राज्यको छीन लेनेकी कोशिश की होगी। परन्तु कर्कराजके कारण उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। इसके पुत्रका नाम ध्रुवराज था।

३ गोविन्दराज।

यह इन्द्रराजका पुत्र और कर्कराजका छोटा भाई था। इसके समयके दो ताम्रपत्र मिले हैं। इनमेंका पहला[3] श० सं० ७३५ (वि० सं० ८७० = ई० स० ८१३) का है और दूसरा[4] श० सं० ७४९ (वि० सं० ८८४ = ई० स० ८२७) का है। इनमेंसे पहले ताम्रपत्रमें इसके

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १५, पृ० १९९।

(२) स्वेच्छागृहीतविनयान्दृढसंघभाजः ।
रष्टु तीक्ष्ककराष्ट्रकूटा-
नुत्खातखड्गनिजबाहुबलेन जित्वा ।
यो मोघवर्षमचिरात्स्वपदे व्यधत्त ॥

अर्थात्—बागी हुए राष्ट्रकूटोंके गिरोहको तलवारके बलसे जीतकर (कर्कराजने) अमोघवर्षको अपने राज्यपर स्थापित किया।

(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३, पृ० ५४।

(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ५, पृ० १४५।

महासामन्त शल्लुकिकवंशी बुद्धवर्षका उल्लेख है। गोविन्दराजकी उपाधियाँ महासामन्ताधिपति और प्रभूतवर्ष मिलती हैं।

श० सं० ७३४ और ७३८ के कर्कराजके ताम्रपत्र और श० सं० ७३५ और ७४९ के उसके छोटे भाई गोविन्दराजके ताम्रपत्रोंको देखनेसे अनुमान होता है कि शायद ये दोनों भाई एक ही समयमें अधिकारका उपभोग करते होंगे।

४ ध्रुवराज (प्रथम)।

यह कर्कराजका पुत्र था और अपने चाचा गोविन्दराजके पीछे राज्यका स्वामी हुआ था। श० सं० ७५७ (वि० सं० ८९२ = ई० स० ८३५) का इसका एक ताम्रपत्र[1] मिला है। इसकी उपाधियाँ महासामन्ताधिपति, धारावर्ष और निरुपम थीं।

इसने अमोघवर्ष प्रथमके खिलाफ कुछ गड़बड़ मचाई थी। इसीसे उसको इस पर चढ़ाई करनी पड़ी। शायद इसी युद्धमे यह (ध्रुवराज प्रथम) मारा गया होगा। यह बात श० सं० ७८९ (वि० सं० ९२४) के बेगमरासे मिले ताम्रपत्रसे प्रकट होती है।

५ अकालवर्ष।

यह ध्रुवराजका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसकी उपाधियाँ शुभतुङ्ग और सुभटतुङ्ग मिलती हैं। इसके समय भी दक्षिणके राष्ट्रकूटोंसे मनोमालिन्य ही रहा था[2]। इसके तीन पुत्र थे—ध्रुवराज, दन्तिवर्मा और गोविन्दराज।

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १४, पृ० १९९।

(२) बेगमरासे मिले श० सं० ७८९ के लेखमें लिखा है कि यद्यपि इसके दुष्ट सेवक इससे बदल गए तथापि इसने वल्लभ (अमोघवर्ष प्रथम) की सेनासे अपना पैतृक राज्य छीन लिया।

६ ध्रुवराज (द्वितीय)।

यह अकालवर्षका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

श० सं० ७८९ (वि० सं० ९२४ = ई० स० ८६७) का इसका[1] एक ताम्रपत्र मिला है। इसमें इस दानके दूतकका नाम गोविन्दराज लिखा है। यह गोविन्द शुभतुङ्ग (अकालवर्ष) का पुत्र और ध्रुवराज द्वितीयका छोटा भाई था। इसने गुर्जरराजको,[2] वल्लभको और मिहिरको हराया था। यह मिहिर शायद कन्नौजका पड़िहार राजा भोजदेव होगा; जिसकी उपाधि मिहिर थी। वल्लभके साथके युद्धसे अनुमान होता है कि शायद इसने मान्यखेटके राष्ट्रकूट राजाओंकी अधीनतासे निकलनेकी कोशिश की होगी। (इसका छोटा भाई गोविन्द भी इसकी तरफसे शत्रुओंसे लड़ा था।)

७ दन्तिवर्मा।

यह अकालवर्षका पुत्र और ध्रुवराज द्वितीयका छोटा भाई था तथा अपने बड़े भाई ध्रुवराजका उत्तराधिकारी हुआ था।

श० सं० ७८९ (वि० सं० ९२४ = ई० स० ८६७) का इसके समयका एक ताम्रपत्र[3] मिला है। इसमें इसकी महासामन्ताधिपति, अपरिमितवर्ष, आदि उपाधियाँ लिखी हैं। इसमें जिस दानका उल्लेख किया गया है वह दान एक बौद्ध विहारके लिए दिया गया था।

(शायद इसके और इसके भ्राता ध्रुवराजके आपसमें मनोमालिन्य हो गया था।)

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० १८१।

(२) उस समय गुजरातका राजा चावड़ा क्षेमराज होगा।

(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ६, पृ० २८७।

८ कृष्णराज।

यह दन्तिवर्माका पुत्र था और उसके पीछे राज्यका स्वामी हुआ। शं० सं० ८१० (वि० सं० ९४५ = ई० स० ८८८) का इसके समयका एक ताम्रपत्र[1] मिला है। यह बहुत ही अशुद्ध है। इसकी महासामन्ताधिपति, और अकालवर्ष उपाधियाँ मिलती हैं।

इस कृष्णराजने वल्लभराजके सामने ही उज्जैनमें अपने शत्रुओंको जीता था।

इसके बादका इस शाखाका कुछ भी इतिहास नहीं मिलता है।

मान्यखेटके राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीयके श० सं० ८३२ (वि० सं० ९६७ = ई० स० ९१०) के ताम्रपत्र पर विचार करनेसे अनुमान होता है कि श० सं० ८१० (वि० सं० ९४५=ई० स० ८८८) और श० सं० ८३२ (वि० सं० ९६७ = ई० सं० ९१०) के बीच उसने लाट देशके राज्यको अपने राज्यमें मिलाकर गुजरातके राष्ट्रकूट राज्यकी समाप्ति कर दी।

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १३, पृ० ६६।

लाट (गुजरात के राष्ट्रकूटोंका वंशवृक्ष।

लाट (गुजरात) के राष्ट्रकूटोंका नकशा ।

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञातसमय	समकालीन राजा
	(प्रथम शाखा)				
१	कर्कराज (प्रथम)				
२	ध्रुवराज		नं० १ का पुत्र		
३	गोविन्दराज		नं० २ का पुत्र		नागवर्मा
४	कर्कराज (द्वितीय)	महाराजाधिराज	नं० ३ का पुत्र	श० सं० ६७९	राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग (दन्तिवर्मा द्वि०) राष्ट्रकूट कृष्णराज प्रथम
	(द्वितीय शाखा)				
१	इन्द्रराज		मान्यखेटके राजा गोविन्दराज तृतीय-का छोटा भाई		राष्ट्रकूट गोविन्दराज तृतीय
२	कर्कराज	महासामन्ताधिपति	नं० १ का पुत्र	श०सं० ७३४,७३८	राष्ट्रकूट अमोघवर्ष प्रथम
३	गोविन्दराज	महासामन्ताधिपति	नं० २ का भाई	श०सं० ७३५,७४९	
४	ध्रुवराज (प्रथम)	महासामन्ताधिपति	नं० २ का पुत्र	श०सं० ७५७	राष्ट्रकूट अमोघवर्ष प्रथम
५	अकालवर्ष		नं० ४ का पुत्र		
६	ध्रुवराज (द्वितीय)	महासामन्ताधिपति	नं० ५ का पुत्र	श०सं० ७८९	मिहिर (पड़िहार भोज ?)
७	दन्तिवर्मा	महासामन्ताधिपति	नं० ६ का भाई	श०सं० ७८९	
८	कृष्णराज	महासामन्ताधिपति	नं० ७ का पुत्र	श०सं० ८१०	

सौन्दत्तिके रट्ट (राष्ट्रकूट)।

[वि० सं० ९३२ (ई० स० ८७५) के निकटसे वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) के निकट तक।]

पहले लिखा जा चुका है कि चालुक्य (सोलङ्की) तैलप द्वितीयने मान्यखेट (दक्षिण) के राष्ट्रकूटराजा कर्कराज द्वितीयसे राज्य छीन लिया था। इन दोनोंके लेखोंको देखनेसे इस घटनाका समय (वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) के करीब प्रतीत होता है। परन्तु वहींके अन्य लेखोंसे ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूटोंके राज्यके नष्ट हो जाने पर भी इनकी छोटी शाखावालोंकी जागीरें बहुत समय बाद तक भी विद्यमान थीं और ये चालुक्यों (सोलङ्कियों) के सामन्त थे।

बंबई प्रदेशके धारवाड़ प्रान्तमें ऐसी ही इनकी दो शाखाओंका पता चलता है। इन दोनोंमेंसे एकके बाद दूसरीने अधिकारका उपभोग किया। इनकी जागीरका मुख्य नगर सौन्दत्ति (कुन्तल—बेलगाम जिलेमें) था। इनके लेखोंमें अक्सर इनको रट्ट ही लिखा है।

(पहली शाखा)।

१ मेरड़।

इस शाखा का सबसे पहला नाम यही मिलता है।

२ पृथ्वीराम।

यह मेरड़का पुत्र और उत्तराधिकारी था। श० स० ७९७ (वि० सं० ९३२ = ई० स० ८७५) का इसका एक लेख[1] मिला है। इसमें इसको रट्ट जातिका लिखा है।

---

(१) जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी भाग १०, पृ० १९४।

यह राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजका सामन्त और सौन्दत्तिका शासक था। इस लेखके समयके हिसाबसे उस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज द्वितीयका होना सिद्ध होता है। परन्तु पृथ्वीरामके पौत्र शान्तिवर्माका लेख श० सं० ९०२ (वि० सं० १०३७=ई० स० ९८०) का मिला है। इसके और पृथ्वीरामके लेखके बीच १०५ वर्षका अन्तर आता है। अतः सम्भव है कि पृथ्वीरामका लेख पीछेसे लिखवाया गया हो, और इसीसे समयमें कुछ गड़बड़ हुई हो। तथा इसके समय राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज द्वितीय न होकर कृष्णराज तृतीय ही हो। यह जैन मतानुयायी था और वि० सं० ९९७ (ई० स० ९४०) के करीब इसको महासामन्तकी उपाधि मिली थी।

३ पिट्टुग।

यह पृथ्वीरामका पुत्र था और उसके बाद उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने अर्जुनवर्माको युद्धमें हराया था। इसकी स्त्रीका नाम नीजिकब्बे था।

४ शान्तिवर्मा।

यह पिट्टुगका पुत्र था और उसका उत्तराधिकारी हुआ। श० सं० ९०२ (वि० सं० १०३७=ई० स० ९८०) का इसका एक लेख[1] मिला है। इसमें इसे पश्चिमी चालुक्य (सोलङ्की) तैलप द्वितीयका सामन्त लिखा है। इसकी स्त्रीका नाम चण्डिकब्बे था।

इसके बादका इस शाखाका इतिहास नहीं मिलता है।

(दूसरी शाखा)।

१ नन्न।

सौन्दत्तिके राठोड़ोंकी दूसरी शाखाके लेखोंमें सबसे पहला नाम यही मिलता है।

---

(१) जर्नल, बॉम्बे शियाटिक सोसाइटी, भाग १०, पृ० २०४।

कार्तवीर्य (प्रथम)।

यह नन्नका पुत्र और उत्तराधिकारी था। श० सं० ९०२ (वि० सं० १०३७ = ई० स० ९८०) का इसका एक लेख[1] मिला है। यह सोलङ्की तैलप द्वितीयका सामन्त और कूण्डिका शासक था। इसने कूण्डी प्रदेश (धारवाड़) की सीमा निर्धारित की थी। सम्भव है इसीने शान्तिवर्मासे अधिकार छीनकर उस शाखाकी समाप्ति कर दी होगी। इसके दो पुत्र थे—दायिम और कन्न।

३ दायिम (दावरि)।

यह कार्तवीर्य प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

४ कन्न (कन्नकैर प्रथम)।

यह कार्तवीर्यका पुत्र और दायिमका छोटा भाई था तथा अपने बड़े भाई दायिमका उत्तराधिकारी हुआ। इसके दो पुत्र थे—एरेग और अङ्क।

५ एरेग (एरेयम्मरस)।

यह कन्न प्रथमका पुत्र था और उसके पीछे गद्दीपर बैठा। श० सं० ९६२ (वि० स० १०९७ = ई० सं० १०४०) का इसके समयका एक लेख[2] मिला है। इसमें इसको चौलुक्य (सोलङ्की) जयसिंह द्वितीय (जगदेकमल्ल) का महासामन्त और लट्टलूरका शासक लिखा है। यह संगीतविद्यामें निपुण था।

इसके पुत्रका नाम सेन (कालसेन) था।

६ अङ्क।

यह कन्न प्रथमका पुत्र था और अपने बड़े भाई एरेगका उत्तराधिकारी हुआ था।

---

(१) कीलहार्नकी सदर्न इण्डियाके इन्सक्रिपशन्सकी लिस्ट, पृ० २६, नं० १४१। (२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १९, पृ० १६८।

श० सं० ९७० (वि० सं० ११०५=ई० स० १०४८) का इसके समयका एक लेख[1] मिला है। इसमें इसको पश्चिमी चालुक्य (सोलङ्की) त्रैलोक्यमल्ल (सोमेश्वर प्रथम) का महासामन्त लिखा है। इसके समयका एक टूटा हुआ लेख इसी संवत्का और भी मिला है।

७ सेन (कालसेन प्रथम)।

यह एरेगका पुत्र और अपने चाचा अङ्कका उत्तराधिकारी था। इसका विवाह मैललदेवीसे हुआ था। इसके दो पुत्र थे-कन्न और कार्तवीर्य।

८ कन्न (कन्नकैर द्वितीय)।

यह सेन (कालसेन प्रथम) का पुत्र था और उसके पीछे गद्दी पर बैठा। इसके समयका एक ताम्रपत्र और एक लेख मिला है। ताम्रपत्र[2]का संवत् श० सं० १००४ (वि० सं० ११३९=ई० स० १०८२) है। इसमें इस रट्टवंशी कन्न द्वितीयको पश्चिमी चालुक्य (सोलङ्की) राजा विक्रमादित्य षष्ठका महासामन्त लिखा है। इससे यह भी प्रकट होता है कि इस (कन्न) ने भोगवतीके स्वामी (भीमके पौत्र और सिन्दराजके पुत्र) महामण्डलेश्वर मुञ्जसे कई गाँव खरीदे थे। यह मुञ्ज सिन्दवंशी था। इस वंशको नागकुलका भूषण लिखा है।

इसके समयका लेख[3] श० सं० १००९ (वि० सं० ११४४= ई० स० १०८७) का है। इसमें इसको महामण्डलेश्वर लिखा है।

---

(१) जर्नल, बाम्बे एशियाटिक सोसायटी, भाग १०, पृ० १७२।
(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३, पृ० ३०८।
(३) जर्नल, बाम्बे एशियाटिक सोसाइटी, भाग १०, पृ० २८७।

९ कार्तवीर्य (द्वितीय)।

यह सन प्रथमका पुत्र और कन्न द्वितीयका छोटा भाई था। इसको कट्ट भी कहते थे। इसकी स्त्रीका नाम भागलदेवी (भागलाम्बिका) था।

इसके समयके तीन लेख मिले है। इनमेंका पहला सौन्दत्तिसे मिला है। इसमें इसको पश्चिमी चालुक्य (सोलङ्की) सोमेश्वर द्वितीयका महामण्डलेश्वर और लट्टलूरका शासक लिखा है।

दूसरा लेख[2] श० सं० १००९ (वि० सं० ११४४ = ई० स० १०८७) का है। इसमें इसको सोमेश्वरके उत्तराधिकारी विक्रमादित्य छठेका महामण्डलेश्वर लिखा है।

तीसरा लेख[3] श० सं० १०४५ (वि० सं० ११८० = ई० स० ११२३) का है। परन्तु इस संवत्के पूर्व ही इसका पुत्र सेन द्वितीय राज्यका अधिकारी हो चुका था।

कन्न द्वितीयके और कार्तवीर्य द्वितीयके लेखोंको देखनेसे अनुमान होता है कि ये दोनों भाई एक ही साथ शासन करते थे।

१० सेन (कालसेन द्वितीय)।

यह कार्तवीर्य द्वितीयका पुत्र और उत्तराधिकारी था। श० सं० १०१८ (वि० सं० ११५३=ई० स० १०९६) का इसके समयका एक लेख[4] मिला है। यह चालुक्य (सोलङ्की) विक्रमादित्य छठेके और उसके पुत्र जयकर्णके समय विद्यमान् था। जयकर्णका समय वि० सं०

(१) जर्नल, बॉम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १०, पृ० २१३।
(२) जर्नल, बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी, भाग १०, पृ० १७३।
(३) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १४, पृ० १५।
(४) जर्नल, बॉम्बे एशियाटिक सोसायटी, भाग १०, पृ० १९४।

११५९ (ई० स० ११०२) से वि० सं० ११७८ (ई० स० ११२१) तक होना सिद्ध होता है। अतः इसीके बीच किसी समय तक सेन द्वितीय भी विद्यमान रहा होगा। इसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मी-देवी था।

इसके पिताका श० सं० १०४५ (वि० सं० ११८०=ई० स० ११२३) का लेख मिलनेसे अनुमान होता है कि ये दोनों पिता पुत्र एक ही साथ अधिकारका उपभोग करते थे।

११ कार्तवीर्य (कट्टम तृतीय)।

यह सेन (कालसेन) द्वितीयका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसकी स्त्रीका नाम पद्मलदेवी था।

इसके समयका एक टूटा हुआ लेख[1] कोण्णूरसे मिला है। इसमें इसकी उपाधियाँ महामण्डलेश्वर और चक्रवर्ती लिखी हैं। इससे अनुमान होता है कि पहले तो यह पश्चिमी चालुक्य (सोलङ्की) जगदेकमल्ल द्वितीय और तैलप तृतीयका सामन्त रहा था। परन्तु वि० सं० १२२२ (ई० स० ११६५) के बाद किसी समय सोलङ्कियों और कलचुरियों (हैहयवंशियों) की शक्तिके नष्ट होनेके समय स्वतन्त्र बन बैठा होगा तथा उसी समय इसने यह चक्रवर्तीकी उपाधि धारण की होगी।

श० स० ११०९ गत (वि० सं० १२४४=ई० स० ११८७) के एक लेखसे ज्ञात होता है कि उस समय कूंडीमें भायि-देवका शासन था। यह सोलङ्की सोमेश्वर चतुर्थका दण्डनायक था। इससे अनुमान होता है कि इन रट्टोंको स्वाधीन होनेमें पूरी सफलता नहीं हुई।

---

(१) आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ वैस्टर्न इण्डिया, भाग ३, पृ० १०३।

खानापुर (कोल्हापुर राज्य) से मिले श० सं० १०६६ (वर्तमान) (वि० सं० १२०० = ई० स० ११४३) और श० सं० १०८४ (गत) (वि० सं० १२१९ = ई० स० ११६२) के लेखोंमें तथा बेलगाँव जिलेसे मिले श० सं० १०८६ (वि० सं० १२२१ = ई० स० ११६४) के लेखमें[3] भी इस कार्तवीर्यका उल्लेख है।

१२ लक्ष्मीदेव (प्रथम)।

यह कार्तवीर्य तृतीयका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसके लक्ष्मण और लक्ष्मीधर नाम भी मिलते हैं। इसकी स्त्रीका नाम चन्द्रिकादेवी (चन्दलदेवी) था।

श० स० ११३० (वि० सं० १२६५ = ई० स० १२०९) का एक लेख[3] हण्णिकेरिसे मिला है। यह इसीके समयका प्रतीत होता है। इसके बड़े पुत्र कार्तवीर्य चतुर्थके श० सं० ११२१ से ११४१ तकके और छोटे पुत्र मल्लिकार्जुनके ११२७ से ११३१ तकके लेखादिकोंके मिलनेसे श० सं० ११३० में लक्ष्मीदेव प्रथमका होना साधरणतया असम्भव सा प्रतीत होता है परन्तु कन्न द्वितीय और कार्तवीर्य द्वितीयकी तरह इनका भी शासनकाल एक ही साथ मान लेनेसे यह भ्रम दूर हो जाता है। परन्तु जब तक इस विषयके पूरे पूरे प्रमाण न मिल जाँय तब तक निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसके दो पुत्र थे—कार्तवीर्य और मल्लिकार्जुन।

१३ कार्तवीर्य (चतुर्थ)।

यह लक्ष्मीदेव प्रथमका बड़ा पुत्र और उत्तराधिकारी था।

(१) कर्न. देश. इन्सक्रिपशन्स, भाग २, पृ० ५४७, ५४८।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ४, पृ० ११६।
(३) बॉम्बे गैजेटियर; पृ० ५५६।

इसके समयके ६ लेख और एक ताम्रपत्र मिला है।

पहला लेख[1] श० सं० ११२१ (गत) वि० सं० १२५७ = ई० स० १२००) का संकेश्वर (बेलगाँव जिले) से मिला है। दूसरा[2] श० सं० ११२४ (वि० सं० १२५८ = ई० स० १२०१) का है। तीसरा[3] और चौथा[4] श० स० ११२६ (गत) (वि० सं० १२६१ = ई० स० १२०४) का है। पाँचवां[5] श० सं० ११२७ (वि० सं० १२६१ = ई० स० १२०४) का है। इसमें इसको लटनूरका शासक लिखा है और इसकी राजधानीका नाम वेणुग्राम दिया है। इसमें इसके छोटे भाई युवराज मल्लिकार्जुनका भी नाम है।

इसके समयका ताम्रपत्र[6] श० सं० ११३१ (वि० सं० १२६५ = ई० स० १२०८) का है। इसमें भी इसके छोटे भाई युवराज मल्लिकार्जुनका नाम दिया है।

छठा लेख[7] श० सं० ११४१ (वि० सं० १२७५ = ई० स० १२१८) का है। इसकी उपाधि महामण्डलेश्वर थी। इसकी दो रानियाँ थीं। एकका नाम राचलदेवी और दूसरीका नाम मादेवी था।

१४ लक्ष्मीदेव (द्वितीय)।

यह कार्त्तवीर्य चतुर्थका पुत्र था और उसके बाद गद्दी पर बैठा। इसके समय श० सं० ११५१ (वि० सं० १२८५ = ई० स० १२२८)

---

(१) कर्न. देश. इन्सक्रिपशन्स, भाग २, पृ० ५६१।
(२) ग्रेहम्स, कोल्हापुर, पृ० ४१५, नं० ९।
(३-४) कर्न. देश. इन्सक्रिपशन्स, भाग २, पृ० ५७१ और ५७६।
(५) जर्नल, बॉम्बे एशियाटिक सोसायटी, भाग १०, पृ० २२०।
(६) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १९, पृ० २४५।
(७) जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी भाग १०, पृ०, २४०।

का एक लेख[1] मिला है। इसमें इसकी उपाधि महामण्डलेश्वर लिखी है। इसकी माताका नाम मादेवी था।

इसके बादका कोई लेख या ताम्रपत्र न मिलनेसे अनुमान होता है कि यहीं पर इस शाखाकी समाप्ति हो गई होगी और इनके प्रदेश पर देवगिरिके यादव राजा सिंघणने अधिकार कर लिया होगा।

इस घटनाका समय वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) के करीब होना चाहिये। परन्तु इस समयके पहले ही कूंडीके उत्तर दक्षिण और पूर्वके प्रदेश इस (लक्ष्मीदेव द्वितीय) के हाथसे निकल गए थे।

श० सं० ११६० (वि० सं० १२९५ = ई० स० १२३८) के हरिहलके ताम्रपत्रमें वीचणका रट्टोंको जीतना लिखा है। यह वीचण देवगिरिके यादव राजा सिंघणका सामन्त था।

श० सं० १००८ (१००९) (वि० स० ११४४ = ई० स० १०८७) का एक ताम्रपत्र[2] सीतावलदीसे मिला है। यह महासामन्त राणक धाडिभण्डक (धाडिदेव) का है। यह पश्चिमी चालुक्य (सोलङ्की) विक्रमादित्य षष्ठ (त्रिभुवनमल्ल) का सामन्त था। इस ताम्रपत्रमें इस धाडिभण्डकको महाराष्ट्रकूटवंशमें उत्पन्न हुआ और लटलूरसे आया हुआ लिखा है।

श० सं० १०५२ (वि० सं० ११८६ = ई० स० ११२९) का एक लेख[3] खानापुर (कोल्हापुर राज्य) से मिला है। इसमें

(१) जर्नल बॉम्बे एशियाटिक सोसाइटी भाग १०, पृ०, २६०।
(२) जर्नल बॉम्बे रॉयल एशियाटिक सोसाइटी भाग १०, पृ०, २६०।
(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका भाग ३, पृ०, ३०५।

रट्टवंशी महासामन्त अङ्किदेव का उल्लेख है। यह सोलङ्की सोमेश्वर तृतीयका सामन्त था। परन्तु इनका उपर्युक्त रट्टशाखासे क्या सम्बन्ध था, इसका पता नहीं चलता है ।

बहुरिबन्द (जबलपुर) से मिले लेखमें राष्ट्रकूट महासामन्ताधिपति गोल्हणदेवका उल्लेख है। यह कलचुरी (हैहयवंशी) राजा गयकर्णका सामन्त था। यह लेख बारहवीं शताब्दीका है।

इसका किस शाखासे सम्बन्ध था यह भी प्रकट नहीं होता।
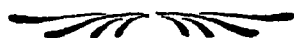
सौन्दत्तिके राष्ट्रकूटोंका वंशवृक्ष ।

(पहली शाखा)

१ मेरड
|
२ पृथ्वीराम
|
३ पिट्टुग
|
४ शान्तिवर्मा

(१) आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग ९, पृ०, ४० ।

(दूसरी शाखा)
१ नन्न
२ कार्तवीर्य प्रथम
३ दायमि
४ कन्न प्रथम
५ एरेग
६ अङ्क
७ सेन प्रथम
८ कन्न द्वितीय
९ कार्तवीर्य द्वितीय
१० सेन द्वितीय
११ कार्तवीर्य तृतीय
१२ लक्ष्मीदेव प्रथम
१३ कार्तवीर्य चतुर्थ
मल्लिकार्जुन
१४ लक्ष्मीदेव द्वितीय

सौन्दत्ति (सुगन्धवर्ती) के राष्ट्रकूटोंका नकशा।

नं०	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
	(पहली शाखा)				
१	मेरड				
२	पृथ्वीराम		नं० १ का पुत्र	श० सं० ७९७	राष्ट्रकूट राजा कृष्ण
३	पिट्टुग		नं० २ का पुत्र		अर्जुनवर्मा
४	शान्तिवर्मा		नं० ३ का पुत्र	श० सं० ९०२	सोलङ्की तैलप द्वितीय, रट्ट कार्तवीर्यप्रथम
	(दूसरी शाखा)				
१	नन्न				
२	कार्तवीर्य प्रथम		नं० १ का पुत्र	श० सं० ९०२	सोलङ्की तैलप द्वितीय, रट्ट शान्तिवर्मा
३	दायिम		नं० २ का पुत्र		
४	कन्न प्रथम		नं० ३ का भाई		
५	एरेग	महासामन्त	नं० ४ का पुत्र	श० सं० ९६२	सोलङ्की जयसिंह द्वितीय (जगदेकमल्ल)
६	अङ्क	महासामन्त	नं० ५ का भाई	श० सं० ९७०	सोलङ्की सोमेश्वर प्रथम (त्रैलोक्यमल्ल)
७	सेन प्रथम		नं० ५ का पुत्र		
८	कन्न द्वितीय	महासामन्त	नं० ७ का पुत्र	श० सं० १००४, १००९	सोलङ्की विक्रमादित्य षष्ठ, सिंदवंशी मुञ्ज
९	कार्तवीर्य द्वितीय	महामण्डलेश्वर	नं० ८ का भाई	श० सं० १००९, १०४५	सोलङ्की सोमेश्वर द्वितीय, सोलङ्की विक्रमादित्य षष्ठ

नं०	नाम	उपाधि	परस्पराका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१०	सेन द्वितीय	महामण्डलेश्वर	नं० ९ का पुत्र	श० सं० १०१८	सोलङ्की विक्रमादित्य षष्ठ, सोलङ्की जयकर्ण,
११	कार्तवीर्य तृतीय	महामण्डलेश्वर चक्रवर्ती	नं० १० का पुत्र	श० सं० १०६६, १०८४ गत १०८६	सोलङ्की जगदेकमल्ल द्वितीय, सोलङ्की तैलप तृतीय
१२	लक्ष्मीदेव प्रथम		नं० ११ का पुत्र	श० सं० ११३०	
१३	कार्तवीर्य चतुर्थ	महामण्डलेश्वर	नं० १२का पुत्र	श० सं० ११२१ गत, ११२४ ११२६गत, ११२७, ११३१, ११४१	
	मल्लिकार्जुन	युवराज	नं० १३का भाई	श० सं० ११२७, ११३१	
१४	लक्ष्मीदेव द्वितीय	महामण्डलेश्वर	नं० १३का पुत्र	श० सं० ११५१	

राजस्थान (राजपूताना) के पहले राष्ट्रकूट।

हस्तिकुंडी (हथूंडी) के पहले राठोड़।

[वि० सं० ९५० (ई० स० ८९३ के निकटसे वि० सं०१०५३ (ई० स० ९९६) के निकट तक।]

कन्नौजके अन्तिम गहड़वाल राजा जयचंदके वंशजोंके राजपूताना-में आनेके पहले भी हस्तिकुंडी (हथूंडी जोधपुर राज्य) में और धनोप (शाहपुरा राज्य) में राष्ट्रकूटोंका राज्य होनेके प्रमाण मिलते हैं।

वि० सं० १०५३ (ई० स० ९९७) का एक लेख[1] बीजापुर-से मिला है। यह स्थान जोधपुर राज्यके गोडवाड़ परगनेमें है। इसमें हथूंडीके राठोड़ोंकी वंशावली इस प्रकार लिखी है—

१ हरिवर्मा।

उक्त लेखमें सबसे पहला नाम यही है।

२ विदग्धराज।

यह हरिवर्माका पुत्र था। वि० सं० ९७३ (ई० स० ९१६) में यह विद्यमान था[2]।

३ मम्मट।

यह विदग्धराजका पुत्र था। वि० सं० ९९६ (ई० स०९३९) में इसका विद्यमान होना पाया जाता है[3]।

---

(१) जर्नल, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ६२, हिस्सा १, पृ०३११।

(२) जर्नल, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी भाग ६२, हिस्सा १, पृ०३१४।

(३) जर्नल, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ६२, हिस्सा १, पृ० ३१४।

४ धवल ।

यह मम्मटका पुत्र था ।

मालवाके परमार राजा मुञ्जने जिस समय मेवाड़पर चढ़ाई की उस समय यह उससे लड़ा था और सांभरके चौहान राजा दुर्लभराजसे नाडोलके चौहान राजा महेन्द्रकी रक्षा की थी तथा अनहिलवाड़ा (गुजरात) के सोलङ्की राजा मूलराज द्वारा नष्ट होते हुए धरणीवराहको आश्रय दिया था। यह धरणीवराह शायद मारवाड़का पड़िहार राजा होगा। वि० सं० १०५३ (ई० स० ९९७) का उपर्युक्त लेख इसीके समयका है।

इसने अपनी वृद्धावस्थाके कारण उक्त संवत्के आसपास राज्यका भार अपने पुत्र बालप्रसादको सौंप दिया था। इसकी राजधानी हस्तिकुंडी (हथूंडी) थी।

इसके बादका कोई लेख आदिक न मिलनेसे इस शाखाका अगला कुछ भी हाल अब तक नहीं मिला है।

---

(१) सम्भवतः इस धवलकी बहन महालक्ष्मीका विवाह उदयपुरके अधीश्वर भर्तृभट द्वितीयके साथ हुआ था जिसका पुत्र अल्लट हुआ।

(२) इस धवलने अपने दादा विदग्धराजके बनवाये हुए जैनमन्दिरका जीर्णोद्धार कर ऋषभनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा की थी।

हस्तिकुंडीके पहलेके राठोड़ोंका वंशवृक्ष।
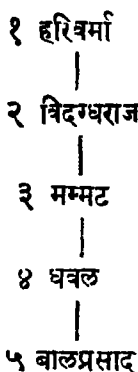
हस्तिकुंडीके राठोड़ोंका नकशा।

नबर	नाम	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१	हरिवर्मा			
२	विदग्धराज	नं० १ का पुत्र	वि०सं०९७३	
३	मम्मट	नं० २ का पुत्र	वि०सं०९९६	
४	धवल	नं० ३ का पुत्र	वि०सं०१०५३	परमारमुञ्ज, चौहान दुर्लभराज, चौहान महेन्द्र, सोलङ्कीमूलराज, पडिहार धरणीवराह।
	बालप्रसाद	नं० ४ का पुत्र		

धनोप (राजपूताना) के पहले राष्ट्रकूट ।

कुछ समय पूर्व धनोप (शाहपुरा राज्य) से राठोड़ोंके दो शिलालेख मिले थे। परन्तु अब उनका कुछ भी पता नहीं चलता है।

इनमेंका एक वि० सं० १०६३ की पौष शुक्ला पञ्चमीका था। उसमें लिखा था कि राठोड़ वंशमें राजा भल्लील हुआ। उसके पुत्रका नाम दन्तिवर्मा था। इस दन्तिवर्माके दो पुत्र थे—बुद्धराज और गोविन्दराज।

बंबई प्रदेशके नीलगुंडा गाँवसे मिले श० सं० ७८८ (वि० सं० ९२३ = ई०स० ८६६) के अमोघवर्ष प्रथमके लेखमें लिखा है कि उसके पिता गोविन्दराज तृतीयने केरल, मालव, गौड, गुर्जर, चित्रकूट (चित्तौड़) और काञ्चीके राजाओंको जीता था। इससे अनुमान होता है कि हस्तिकुंडी (हथुंडी) और धनोपके राठोड़ भी दाक्षिणके राष्ट्रकूटोंकी शाखाके ही होंगे।

धनोपके पहलेके राठोड़ोंका वंशवृक्ष।

भल्लील
|
दन्तिवर्मा
|
बुद्धराज — गोविन्दराज
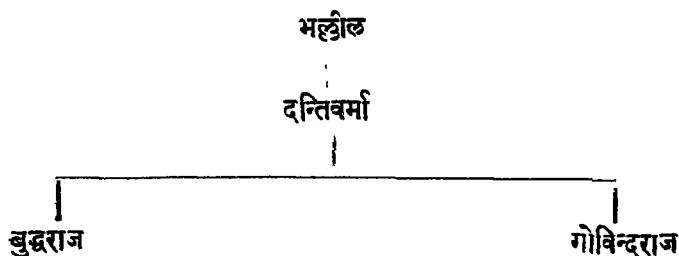
कन्नौजके गहड़वाल।

[वि० सं० ११२५ (ई० स० १०६८) के निकट से वि० सं० १२८० (ई० स० १२२३) के निकट तक]

जेम्स टाडसाहबने अपने राजस्थानके इतिहासमें लिखा है कि वि० सं०५२६ (ई० स० ४७०) में अजयपालको मारकर राठोड़ नय-पालने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। परन्तु यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती, क्यों कि उस समय कन्नौज पर स्कन्दगुप्तका या उसक पुत्र कुमारगुप्तका अधिकार था[1]। इसके बाद वहाँपर मौखरियोंका अधिकार हुआ[2]। बीचमें कुछ समय तक उसपर वैसवंशियोंने अपना कब्जा कर लिया[3]। परन्तु हर्षकी मृत्युके बाद मौखरियोंने उसे फिर अपनी राजधानी बनाया। वि० सं० ७९८ (ई० स० ७४१) के करीब काश्मीरके राजा ललितादित्य (मुक्तापीड) ने इस (कन्नौज) पर आक्रमण किया उस समय भी यह मौखरीवंशी यशोवर्माकी राज-धानी थी[4]। इसके बादके वि० सं० १०८४ (ई० स० १०२७) के पड़िहार राजा त्रिलोचनपालके ताम्रपत्रे[5] और वि० सं० १०९३ (ई० स० १०३६) के यशःपालके शिलालेखसे[6] ज्ञात होता है कि उस समय कन्नौज पर पड़िहारोंका अधिकार था। इसके बाद राष्ट्रकूटोंकी गहड़वाल शाखाके चन्द्रदेवने उसपर अपना अधिकार किया होगा।

(१) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग २, पृ० २८५–२९७।
(२) भारतके प्राचीन राजवंश भाग २, पृ० ३७३।
(३) भारतके प्राचीन राजवंश भाग २, पृ० ३३८।
(४) भारतके प्राचीन राजवंश भाग २, पृ० ३७६।
(५) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भाग १८, पृ० ३४।
(६) एशियाटिक रिसर्चेज भाग ९, पृ० ४३२।

इन गहड़वालोंके करीब ६० ताम्रपत्र मिले हैं। इनमें इनको सूर्यवंशी और गहड़वाल लिखा है। राष्ट्रकूट या रट्ट शब्दका प्रयोग इनमें नहीं है। परन्तु ये लोग भी राष्ट्रकूटोंकी ही एक शाखाके थे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

इस विषयके प्रमाण पहले उद्धृत किये जाचुके हैं।

काशी, अयोध्या और शायद इन्द्रप्रस्थ (दहली) पर भी इन्हींका अधिकार था।[1]

१ यशोविग्रह।

यह सूर्यके वंशमें उत्पन्न हुआ था। इस शाखाका सबसे पहला नाम यही मिलता है।

२ महीचन्द्र।

यह यशोविग्रहका पुत्र था। इसको महीयल या महीतळ भी कहते थे।

३ चन्द्रदेव।

यह महीचन्द्रका पुत्र था।

वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) का एक ताम्रपत्र[3] बसाहीसे

(१) दक्षिणके राष्ट्रकूटोंके इतिहासमें लिखा जा चुका है कि वि० सं० ८४२ और ८५० के बीच ध्रुवराजका राज्य उत्तरमें अयोध्यातक पहुँच गया था। इसके बाद वि० सं० ९३२ और ९७१ के बीच कृष्णराज द्वितीयके समय इसकी सीमा बढ़कर गङ्गाके किनारेतक फैल गई थी और वि० सं० ९९७ और १०२३ के बीच कृष्णराज तृतीयके समय इनके राज्यकी सीमा गङ्गाको भी पार कर गई थी। सम्भव है इसी समयके बीच इनके किसी वंशजको गङ्गातटके निकट जागीर मिली हो और उसीके वंशमें कन्नौजविजेता चन्द्रदेव उत्पन्न हुआ हो।

(२) स्मिथकी अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३८४।

(३) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १४, पृ० १०३।

मिला है। उससे प्रकट होता है कि इस चन्द्रदेवने अपनी ही भुजाओंके प्रतापसे कन्नौजपर अधिकार कर मालवाके परमार राजा भोज[1] और चेदिके कलचुरी (हैहयवंशी) राजा कर्णके मरनेसे उत्पन्न हुई अराजकताको दबा दिया था। इसने सुवर्णके अनेक तुलादान भी दिये थे। इससे ज्ञात होता है कि इसने वि० ११३७ (ई० स० १०८०) से राज्य स्थापन कर कुछ काल बाद ही प्रतिहारोंसे कन्नौज लिया होगा।

इसके समयके तीन ताम्रपत्र मिले हैं। ये क्रमशः वि० सं० ११४८ (ई० स० १०९१[3]), ११५० (ई० स० १०९३[4]), आर ११५६ (ई० स० १०९९) के हैं।

काशी, इन्द्रप्रस्थ, अयोध्या और पाञ्चालदेश इसके अधिकारमें था। इसने काशीमें आदिकेशव नामक विष्णुका मन्दिर बनवाया था।

इसके बड़े पुत्र मदनपालदेवका एक ताम्रपत्र वि० स० ११५४ ई० स० १०९७) का मिला है। इससे प्रकट होता है कि चन्द्रदेवने अपने जीतेजी ही इसको राज्यका कार्य सौंप दिया था।

---

(१) याते श्रीभोजभूपे वि(बु)धवरवधूनेत्रसीमातिथित्वं।
श्रीकर्णे कीर्तिशेष गतवति च नृपे क्ष्मात्यये जायमाने॥
भर्तारं यं व(ध)रित्री त्रिदिवविभुनिभं प्रीतियोगादुपेता।
त्राता विश्वासपूर्वं समभवदिह स क्ष्मापतिश्चन्द्रदेवः॥ ३॥

अर्थात्—भोज और कर्णके मरनेपर उत्पन्न हुई गड़बड़से दुःखित हुई पृथ्वी चन्द्रदेवकी शरणमें गई।

(२) भारतके प्राचीन राजवंश भाग १, पृ० ५०।

(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ९, पृ० ३०२।

(४-५) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० ११।

इस चन्द्रदेवकी उपाधि महाराजाधिराज थी। इसका दूसरा नाम चन्द्रादित्य भी लिखा मिलता है। इसने कन्नौजको तुरुष्कों (गज़नी-वालों) के दंडसे मुक्त किया था।

इसके दो पुत्र थे–मदनपाल और विग्रहपाल। इसी विग्रहपालसे बदायूंकी शाखा चली होगी।

४ मदनपाल।

यह चन्द्रदेवका बड़ा पुत्र था और उसके बाद गद्दीपर बैठा। इसके समयके पाँच ताम्रपत्र मिले हैं। इनमेंका पहला वि० सं० ११५४ (ई० स० १०९७) का है। इसका उल्लेख इसके पिता चन्द्रदेवके इतिहासमें किया जा चुका है। इससे प्रकट होता है कि पिताने अपने जीते जी ही मदनपालकी योग्यताके कारण राज्यका कार्य उसे सौंप दिया था। परन्तु वास्तवमें इसका राज्यकाल वि० सं० ११५७ से समझना चाहिये।

दूसरा वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) का है। यह महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्रका है।

तीसरा वि० सं० ११६२ (ई० स० ११०५) का है। यह भी महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्रका है। इसमें मदनपालकी रानीका नाम राल्हदेवी लिखा है।

चौथा वि० स० ११६३ (वास्तवमें ११६४) (ई० स० ११०७) का है। यह स्वयं मदनपालदेवका है। इसमें इसकी रानीका नाम पृथ्वीश्री लिखा है।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १४, पृ० १०३।

(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग २, पृ० ३५९।

(३) जर्नल, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, (१८९६), पृ० ७८७।

पाँचवाँ वि० सं० ११६६ (ई० स० ११०९) का है। यह भी महाराजपुत्र गोविन्दचन्द्रदेवका है। इसमें इनको गाहडवालवंशी लिखा है। इस राजाका दूसरा नाम मदनदेव था। इसकी उपाधि महाराजाधिराज थी। इसने अनेक युद्धोंमें शत्रुओंको जीता था।

उपर्युक्त ताम्रपत्रोंसे ज्ञात होता है कि चन्द्रदेवके समान ही इसने भी अपनी वृद्धावस्थामें अपने पुत्र गोविन्दचन्द्रदेवको राज्यका कार्य सौंप दिया था।

यह मदनपाल बड़ा विद्वान् था। मदनविनोदनिघण्टु नामक वैद्यकका ग्रन्थ इसीका बनाया हुआ है। उसमें लिखा है—

रोगाम्बुधौ भवजनस्य निमज्जतो यः।
पीतः प्रयच्छतु शुभानि च काशिराजः ॥ ४ ॥

....

तेन श्रीमदनेन्द्रेण निघण्टुरयमद्भुतः।
कृतः सुकृतिना लोकहिताय हि महात्मना ॥

अर्थात्—काशीके राजा मदनपालने रोगियोंको आरोग्य प्रदान करनेवाला यह निघण्टु बनाया।

इसके चाँदी और ताँबेके सिक्के मिले हैं।

चाँदीके सिक्के।

इनपर सीधी तरफ सवारकी तसवीर बनी होती है और कुछ अक्षर भी होते हैं। परन्तु ये ऐसे भद्दे होते हैं कि पढ़े नहीं जाते। उलटी तरफ बैलकी आकृति बनी होती है और किनारेपर 'माधवश्रीसामन्त' पढ़ा जाता है।

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १५।

(२) कैटलाग ऑफ दि कौइन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, पृ० २६०।

इन सिक्कोंका व्यास (Diameter) आधे इंचसे कुछ छोटा होता है परन्तु इनकी चाँदी शुद्ध नहीं होती।

तांबेके सिक्के।

इन पर भी सीधी तरफ सवारकी भद्दी तसवीर बनी होती है और किनारेपर 'मदनपालदेव' लिखा रहता है। उलटी तरफ़ चाँदीके सिक्कोंकी तरहका ही बैल और 'माधवश्रीसामन्त' लेख होता है।

इनका व्यास आधे इंचसे कुछ बड़ा होता है।

५ गोविन्दचन्द्र।

यह मदनपालका बड़ा पुत्र था और उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके समयके करीब ४० ताम्रपत्र मिले है। इनमेंसे कुछका उल्लेख आगे किया जाता है।

पहला ताम्रपत्र वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) का है। दूसरा वि० सं० ११६२ (ई० स० ११०५) का है। तीसरा वि० सं० ११६६ (ई० स० ११०९) का है।

इन तीनोंका उल्लेख इसके पिता मदनपालदेवके इतिहासमें किया जा चुका है। उस समयतक यह युवराज ही था। अतः इसका राज्यकाल वि० सं० ११६७ मे प्रारम्भ हुआ होगा।

चौथा और पाँचवाँ वि० सं० ११७१ (ई० स० १११४) का है।

(१) कैटलाग ऑफ दि कौइन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, पृ० २६०, प्लेट २६, न० १७।

(२) इसमें लिखा है कि गोविन्दचन्द्रने गौड़ोंको हराया। उसकी वीरतासे हम्मीर (अमीर—मुसलमान) भी घबड़ाते थे।

(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०२। यह वाराणसी (बनारस) से दिया गया था।

(४) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ५, पृ० ११४, नोट ४।

इनमेंके पाँचवेंका एक ही पत्र मिला है। छठा[1] वि० स० ११७२ (ई० स० १११६ का है। सातवाँ[2] वि० सं० ११७४ (ई० स० १११७) का है । यह देवस्थानसे दिया गया था । आठवाँ[3] वि० सं० ११७४ (वास्तवमें ११७५) (ई० स० १११९) का है। नवाँ[4] वि० सं० ११७५ (ई० स० १११९) का है । दसवाँ[5] वि० सं० ११७६ (ई० स० १११९) का है । यह गङ्गा-परके खयरा गाँवसे दिया गया था। इसमें इसकी पटरानीका नाम नयनकेलिदेवी लिखा है। ग्यारहवाँ[6] वि० सं० ११७६ (ई० स० १११९) का है । बारहवाँ[7] वि० सं० ११७७ (ई० स० ११२०) का है। तेरहवाँ[8] वि० सं० ११७८ (ई० स० ११२२) का है। चौदहवाँ[9] वि० स० ११८१ (ई० स० ११२४) का है । इसमें इसकी माका नाम राल्हणदेवी लिखा है । पन्द्रहवाँ[10] वि० सं० ११८२ (ई० स० ११२५) का है। यह गङ्गाकिनारेके मदप्रतीहार स्थानसे दिया गया था। सोलहवाँ[11] भी ११८२ (वास्तवमें ११८३) (ई०

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०४ ।
(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०५।
(३) इण्डियन ऐण्टिक्केरी, भाग १८, पृ० १९ ।
(४) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०६ ।
(५) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०८ ।
(६) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०९ ।
(७) जर्नल, बंगाल एशियाटिक सोसायटी, भाग ३१, पृ० १२३ ।
(८) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ११० ।
(९) जर्नल, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ५६, हिस्सा १, पृ० ११४ ।
(१०) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १०० ।
(११) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसायटी, भाग ३७, पृ० २४२ ।

स० ११२७) का है। यह गङ्गापरके ईशप्रतिष्ठानसे दिया गया था। सत्रहवाँ[1] वि० सं० ११८४ (ई० स० ११२७) का है। अठारहवाँ[2] वि० सं० ११८५ (ई० स० ११२९) का है। उन्नीसवाँ[3] वि० सं० ११८७ (ई० स० ११३०) का है। वीसवाँ वि० स०११८८ (ई० स० ११३१) का है।

इक्कीसवाँ[4] वि० सं० ११८९ (ई० स० ११३३) का है। बाईसवाँ[5] वि० सं० ११९० (ई० स० ११३३) का है। तेईसवाँ[6] वि० सं० ११९१ (ई० स० ११३४) का है। यह महाराजपुत्र वत्सराजदेवका है। इसको लोहडदेव भी कहते थे। चौबीसवाँ[7] वि० सं० ११९६ (ई० स० ११३९) का है। पैंचीसवाँ[8] वि० सं० ११९७ (ई० स० ११४१) का है। छब्बीसवाँ[9] वि० सं० ११९८ (ई० स० ११४१) का है। सत्ताईसवाँ[10][11] वि० सं० ११९९ (ई० स० ११४३) का है। इसमें महाराजपुत्र राज्यपालदेव[12]का उल्लेख है।

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ३।

(२) जर्नल, बगाल एशियाटिक सोसायटी, भाग ५६, हिस्सा १, पृ०११९।

(३) जर्नल, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ५६, हिस्सा १, पृ० १०८।

(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १९, पृ० २४९।

(५) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ५, पृ० ११४।

(६) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ११२।

(७) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १३१।

(८) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग २, पृ० ३६१।

(९) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ११४।

(१०) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ११३।

(११) इण्डियन, ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० २१।

(१२) यह नयनकेलिदेवीका पुत्र था और सम्भवतः पिताके जीतेजी ही मर गया होगा।

अट्ठाईसवाँ वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३) का है। उन्तीसवाँ वि० सं० १२०१ (ई० स० ११४३) का है। तीसवाँ वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४६) का है। एक लेख स्तम्भपर खुदा है। यह वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५१) का है। इसमें इसकी रानीका नाम गोसल्लदेवी लिखा है। इकतीसवाँ ताम्रपत्र वि० सं० १२०८ (ई० स० ११५१)का है। इसमें इसकी पटरानीका नाम गोसल्लदेवी लिखा है। बत्तीसवाँ वि० सं १२११ (ई० स० ११५४) का है।

इस प्रकार वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) से वि० सं० १२११ (ई० स० ११५४) तकके इसके दानपत्र मिले हैं।

सारनाथसे एक लेख इसकी रानी कुमारदेवीका भी मिला है। यह कुमारदेवी पीठिकाके छिक्कोरवंशी राजा देवरक्षितकी कन्या थी। इसने एक मन्दिर बनवाकर उसे धर्मचक्र जिनसेनको दिया था।

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ११५।

(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका भाग ५, पृ० ११५।

(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ७, पृ० ९९।

(४) आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया भाग १, पृ० ९६।

(५) कीलहार्न्स लिस्ट ऑफ इन्सक्रिपशन्स ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० १९, नं० १३१।

(६) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० ११६।

(७) ऐपिग्राफिया इण्डिका भाग ९, पृ० ३१९–३२८।

(८) यह कुमारदेवी बौद्धमतानुयायिनी थी। नेपाल राज्यके पुस्तकालयमें 'अष्टसारिका' नामकी एक हस्तालिखित पुस्तक है। उसमें लिखा है:–

"श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवस्य प्रतापवशतः राज्ञी श्रीप्रवरमहायानयायिन्योःपरमोपासिका राज्ञी वसन्तदेवीदेयधर्मोयम्।"

गोविन्दचन्द्रके ताम्रपत्रोंकी संख्याको देखकर अनुमान होता है कि यह बड़ा प्रतापी और दानी राजा था । सम्भवतः कुछ समयके लिए यह उत्तरी हिन्दुस्तानका सबसे बड़ा राजा हो गया था और बनारस पर भी इसीका अधिकार था[1] ।

काश्मीरके राजा जयसिंहके मन्त्री अलङ्कारने जो बड़ी भारी सभा-की थी उसमें इसने सुहलको अपना राजदूत बनाकर भेजा था । मङ्खकविकृत श्रीकण्ठचरित काव्यमें भी इसका उल्लेख है ।

> अन्यः स सुहलस्तेन ततोऽवन्द्यत पण्डितः ।
> दूतो गोविन्दचन्द्रस्य कान्यकुब्जस्य भूभुजः ॥ १०२ ॥
>
> श्रीकण्ठचरित, सर्ग २५ ।

अर्थात्—कान्यकुब्जके राजा गोविन्दचन्द्रके दूत पण्डितश्रेष्ठ सुहल-को उसने नमस्कार किया ।

यह गोविन्दचन्द्र भारतपर आक्रमण करनेवाले म्लेच्छों (तुर्कों) से लड़ा था और इसने चेदी और गौड़देश पर भी विजय प्राप्त की थी ।

इसके ताम्रपत्रोंमें इसकी उपाधि ' महाराजाधिराज ' और ' विविधविद्याविचारवाचस्पति' लिखी है । इससे ज्ञात होता है कि यह विद्वानों-का आश्रयदाता होनेके साथ ही स्वयं भी विद्वान् था ।

इसके सन्धिविग्रहिक (Minister of peace and war) लक्ष्मीधरने इसीकी आज्ञासे ' व्यवहारकल्पतरु ' नामक ग्रन्थ बनाया था ।

इससे ज्ञात होता है कि गोविन्दचन्द्रकी एक रानी बसन्तदेवी नामकी भी थी और वह भी बौद्धमतकी महायान शाखाकी अनुयायिनी थी । कुछ लोग कुमार-देवीका ही दूसरा नाम बसन्तदेवी अनुमान करते हैं । सन्ध्याकरनन्दीरचित रामचरितमें कुमारदेवीके नाना महण (मथन) को राष्ट्रकूटवंशी लिखा है ।

(१) बनारसके पाससे मिले २१ ताम्रपत्रोंमेंसे १४ ताम्रपत्र इसीके थे ।

भारतके प्राचीन राजवंश
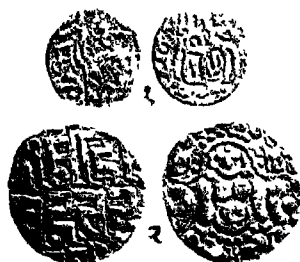
१। मदनपाल देव।

२। गोविन्दचन्द्र देव।

इसकी रानियोंके तीन नाम और भी मिले हैं—दाल्हणदेवी, कुमारदेवी और वसन्तदेवी ।

इसके पुत्रोंके नाम इस प्रकार मिलते हैं—विजयचन्द्र, राज्यपाल और आस्फोटचन्द्र ।

मि० स्मिथ इसका समय ई० स० ११०४ (वि० सं० ११६१) से ११५५ (वि० सं० १२१२) तक अनुमान करते हैं। परन्तु इसके पिताका वि० सं० ११६६ (ई० स० ११०९) तक जीवित होना सिद्ध होता है। अतः उस समय तक यह युवराज रहा था।

इसके सोने और तांबेके सिक्के मिले हैं। सोनेके सिक्कोंका सुवर्ण बहुत खराब है। परन्तु ये बहुतायतसे मिलते हैं।

बंगाल और उत्तर-पश्चिमी रेलवे बनाते समय वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में नानपारा गाँव (बहराइचि–अवध) से ८०० ऐसे सोनेके सिक्के मिले थे।

सोनेके सिक्के[2]।

इनपर सीधी तरफ लेखकी तीन पंक्तियाँ होती हैं। पहलीमें 'श्रीमद्गो' दूसरीमें 'विन्दचन्द्र' और तीसरीमें 'देव' लिखा रहता है और इसी तीसरी पंक्तिमें एक त्रिशूल भी बना होता है। सम्भवतः यह टकसालका चिह्न होगा। उलटी तरफ बैठी हुई लक्ष्मीकी (भद्दी) मूर्ति बनी होती है। इनका आकार चवन्नीसे कुछ बड़ा होता है।

(१) अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३८४।

(२) कैटलाग ऑफ दि कौइन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, पृ० २६०–६१। प्लेट २६, नं. १८,

तांबेके सिक्के[1]।

इनपर सीधी तरफ लेखकी दो पँक्तियाँ होती है। पहलीमें 'श्रीमद्गो' और दूसरीमें 'विन्दचन्द्र' लिखा रहता है। उलटी तरफ बैठी हुई लक्ष्मीकी मूर्ति बनी होती है। परन्तु यह बहुत ही भद्दी होती है। ये सिक्के बहुत कम मिलते है। इनका आकार करीब करीब चवन्नीके बराबर होता है।

६ विजयचन्द्र।

यह गोविन्दचन्द्रका पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसको मल्लदेव-भी कहते थे।

इसके समयके दो ताम्रपत्र और दो लेख मिले हैं।

पहला ताम्रपत्र[2] वि० सं० १२२४ (ई० स० ११६८) का है। इसमें इसकी उपाधि महाराजाधिराज और इसके पुत्र जयचन्द्रकी युवराज लिखी है। तथा विजयचन्द्रकी मुसलमानोंपरकी विजयका भी उल्लेख[3] है। दूसरा ताम्रपत्र[4] वि० सं० १२२५ (ई० स० ११६९) का है। इसमें भी पहलेके समान ही इसका और इसके पुत्रका उल्लेख है।

---

(१) कैटलॉग ऑफ दि कौइन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, पृ० २६१।

(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४ पृ० ११८।

(३) 'भुवनदलनहेलाहर्म्यहम्मीरनारीनयनजलदधाराधौतभूलोपतापः' उस समय शायद गजनीके खुसरोसे इसका युद्ध हुआ होगा; क्योंकि खुसरो उस समय लाहौरमें बस गया था।

(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १५, पृ० ७।

लेखोंमेंका पहला लेख[1] वि० सं० १२२५ (ई० स० ११६९) का है। इसमें इसके पुत्रका नाम नहीं है। दूसरा[2] भी वि० सं० १२२५ (ई० स० ११६९) का ही है । यह महानायक प्रतापधवल-देवका है । इसमें विजयचन्द्रके एक नकली दानपत्रका उल्लेख है ।

यह राजा वैष्णवमतानुयायी था और इसने विष्णुके अनेक मन्दिर बनवाए[3] थे । इसकी रानीका नाम चन्द्रलेखा था । इसने अपने जीतेजी ही अपने पुत्र जयचन्द्रको राजका कार्य सौंप उसे युवराज बना लिया था। जयचन्द्रके लेखमें विजयचन्द्रको दिग्विजय करनेवाला लिखा है । परन्तु वि० सं० १२२० के चौहान विग्रहराज चतुर्थके लेखमें उसकी विजयका वर्णन[4] है । अतः विजयचन्द्रने जो कोई प्रदेश जीता होगा तो इसके पूर्व ही जीता होगा । पृथ्वीराजरासामें इसका दूसरा नाम विजयपाल मिलता है ।

७ जयचन्द्र ।

यह विजयचन्द्रका पुत्र था और उसके बाद राज्यका स्वामी हुआ ।

जिस दिन यह पैदा हुआ था उसी दिन इसके दादा गोविन्दचन्द्रने दशार्ण देशपर विजय पाई थी । इसीसे इसका दूसरा नाम जैत्रचन्द्र (और जयन्तचन्द्र) रख दिया था ।

---

(१) आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग ११, पृ० १२५।

(२) जर्नल, अमेरिकन ओरिएण्टयल सोसाइटी, भाग ६, पृ० ५४८ ।

(३) इसने मुसलमानोंको भी युद्धमें हराया था ।

(४) भारतके प्राचीन राजवंश, भाग १, पृ० २४४ ।

रम्भामञ्जरी नाटिकाकी प्रस्तावनामें लिखा है:—

' श्रीमन्मदनवर्ममेदिनीदयितसाम्राज्यलक्ष्मीकरेणुकालानस्तम्भायमानबाहुदण्डस्य '

अर्थात्—जिसके बाहुदण्ड मदनवर्मदेवकी राज्यलक्ष्मीरूपी हथिनीके बाँधनेके लिये स्तम्भरूप थे।

इससे प्रकट होता है कि इसने कालिंजरके चन्देलराजा मदनवर्मदेव[1]को हराकर उसके राज्यपर अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार इसने भोरोंको जीत खोड़पर भी कब्जा कर लिया था। इसके समयके करीब १४ ताम्रपत्र और एक लेख मिला है। इनमेंका पेहला ताम्रपत्र वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७०) का है। यह वडविह गाँवसे दिया गया था। इसमें इस राजाके राज्याभिषेकका वर्णन है। यह वि० सं० १२२६ की आषाढ शुक्ला ६ रविवार (ई० स० ११७०की २१ जून)को हुआ था। दूसरा[2] वि० स० १२२८ (ई० स० ११७२) का है। यह त्रिवेणीसङ्गम (प्रयाग) पर दिया गया था। तीसरा[3] वि० सं० १२३० (ई० स० ११७३) का है। यह वाराणसी (बनारस)से दिया गया था। चौथा[4] वि० सं० १२३१ (ई० स० ११७४)का है। यह काशीसे दिया गया था। इसमेंकी पिछली खुदी हुई पंक्ति ३२ से इस ताम्रपत्रका वि० सं०

(१) वि० सं० १२१९ का इसका एक लेख मिला है।
(२) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १२१।
(३) ऐपिग्राफियाइण्डिका, भाग ४, पृ० १२२।
(४) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १२४।
(५) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १२५।

१२३५ (ई० स० ११७९) में खोदा जाना प्रकट होता है। पाँचवाँ वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) का है। इसमें महाराजाधिराज जयचंद्रदेवके पुत्रका नाम हरिश्चन्द्र लिखा है! इसीके जातकर्मसंस्कारपर बनारसमें इसमेंका लिखा दान दिया गया था। इसमेंकी भी पिछली खुदी हुई पंक्ति ३१-३२ से इस दानपत्रका वि० सं० १२३५ (ई० स० ११७९) में खोदा जाना सिद्ध होता है।

छठा भी वि० स० १२३२ (ई० स० ११७५) का है। इसमें लिखा दान हरिश्चंद्रके नामकरण संस्कारपर दिया गया था। सातवाँ वि० सं० १२३३ (ई० स० ११७७) का है। आठवाँ और नवाँ भी वि० सं० १२३३ (ई० स० ११७७) का है। दसवाँ वि० सं० १२३४ (ई० स० ११७७) का है। ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेरहवाँ वि० सं० १२३६ (ई० स० ११८०) का है। ये तीनों गङ्गा परके रणडवै गाँवसे दिये गये थे।

चौदहवाँ वि० सं० १२४३ (ई० स० ११८७) का है।

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १२७।
(२) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १३०।
(३) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ४, पृ० १२९।
(४) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १३५।
(५) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १३७।
(६) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १३८।
(७) इण्डियनऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १४०।
(८) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १४१।
(९) इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग १८, पृ० १४२।
(१०) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १५, पृ० १०।

इसके समयका लेख बुद्ध गयासे मिला है। यह बौद्ध लेख है और इसमें इस राजाका उल्लेख है। इसमेंके संवत्का चौथा अक्षर खराब हो जानेसे पढ़ा नहीं जाता। केवल अगले तीन अक्षर वि० सं० १२४ ही पढ़े जाते हैं।

यह राजा बड़ा प्रतापी था। इसके पास इतनी बड़ी सेना थी कि लोगोंने इसका नाम ही 'दलपंगुले' रख दिया था।

प्रसिद्ध काव्य नैषधीयचरितका कर्ता कवि श्रीहर्ष इसीकी सभामें था। इस श्रीहर्षकी माताका नाम मामल्लदेवी और पिताका नाम हीर था। यह बात उक्त काव्यके प्रत्येक सर्गके अन्तिम श्लोकसे प्रकट होती है। यथा:—

" श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्॥

अर्थात्—हीरसे मामल्लदेवीमे श्रीहर्षका जन्म हुआ था। इसी नैषधीयचरितके अन्तमें एक श्लोक है:—

' ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।

अर्थात्—कान्यकुब्जके राजाके यहाँ जानेपर श्रीहर्षको बैठनेको आसन और (आते जाते) खानेको दो पान मिलते थे। अर्थात् वह इसका बड़ा आदर करता था।

यद्यपि नैषधीय चरितमें इस राजाका नाम नहीं है, तथापि श्रीहर्ष

(१) प्रोसीडिंग्स ऑफ दि बंगाल एशियाटिक सोसाइटी (१८८०), पृ० ७७

(२) "...... प्रचालयितुमक्षमत्वात्पङ्गुरिति प्राप्तगुरुविरुदस्य"

(रम्भामञ्जरी नाटिका, प्रस्तावना, पृ० २)

अर्थात्—सेनाको शीघ्र चलानेमे असमर्थ होनेसे पाई है 'पंगु' उपाधि जिसने।

इसीकी सभामें था इस बातकी पुष्टि राजशेखरसूरिरचित प्रबन्धकोशसे होती है। यह कोश वि० सं० १४०५ में लिखा गया था।

यह कन्नौजका अन्तिम प्रतापी हिन्दू राजा था और इसने राजसूय-यज्ञ भी किया था। कहते हैं कि इसी यज्ञके समय वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) में इसने अपनी कन्या (संयोगिता) का स्वयंवर रचा था। यही स्वयंवर हिन्दू साम्राज्यका नाशक बन गया। इसी उत्सवमेंसे इसकी कन्याको जबरदस्ती हरण करके ब्याह लेनेके कारण इसके और चौहान पृथ्वीराजके बीच मनोमालिन्य हो गया और ये दोनों एक दूसरेके शत्रु बन गए। उस समय हिंदुस्तानमें उक्त दोनों राजा ही प्रतापी और समृद्धिशाली थे। परन्तु इनकी आपसकी फूटके कारण मुसलमानोंको भारत पर आक्रमण करनेका मौका मिल गया। यद्यपि एक वार तो जयचन्द्रने मुसलमान आक्रमणकारियोंके दाँत खट्टे कर दिये तथापि दूसरी वार हिजरी सन् ५९० (वि० सं० १२५० = ई० स० ११९४) में शहाबुद्दीन गोरीने चंदावर (इटा-वा जिले) के युद्धमें जयचन्दको हरा दिया। इसके बाद बनारसकी लूटमें उसे इतना द्रव्य हाथ लगा कि वह उस सामानको १४०० ऊँटोंपर लाद कर ले गया।

उसी समयसे उत्तरी हिंदुस्तानपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया।

इस हारसे खिन्न हो कर जयचन्द्रने भी गंगामें प्रवेशकर इस परिवर्तन-शील संसारसे विदा ले ली।

---

(१) कामिलुत्तवारीख–ईलियटका अनुवाद, भाग २, पृ० २५१।

मुसल्मान लेखकोंने जयचन्द्रको बनारसका राजा लिखा[1] है। सम्भव है उस समय उक्त नगरमें ही इसकी राजधानी हो।

जयचन्द्रने अनेक किले बनवाए थे। इनमेंसे एक कन्नौजमें, दूसरा इटावा जिलेके असाइ स्थानमें और तीसरा गङ्गाके किनारे कुर्रामें बनवाया था। खास इटावेमें भी जमनाके किनारेके एक टीलेपर कुछ खंडहर हैं। वहाँवाले उन्हें जयचन्द्रके किलेका भग्नावशेष बतलाते हैं।

प्रबन्धकोषमें लिखा है–राजा जयचन्द्रने ७०० योजन पृथ्वी विजय की। इसके पुत्रका नाम मेघचद था। जयचदका प्रधान पद्माकर जिस समय अणहिल्पुरसे लौटकर वापिस आया उस समय सुहवादेवी नामकी एक सुन्दर विधवा स्त्रीको अपने साथ लाया था। जयचंदने उसके रूपपर मोहित हो उसे अपना पासवान बना लिया। उससे भी जयचन्द्रक एक

(१) हसननिजामीकी बनाई ताजुल्म आसिरमें इस घटनाका हाल इस प्रकार लिखा है–देहलीपर अधिकार करनेके दूसरे वर्ष ही कुतुबुद्दीन ऐबकने राजा जयचन्दपर चढ़ाई की। मार्गमें सुलतान शहाबुद्दीन भी इसके शामिल हो गया। हमला करनेवाली सेनामें ५०००० सवार थे। सुलतानने कुतुबुद्दीनको फौजके अगले हिस्सेमें नियत किया था। इटावाके पास चन्दावरमें जयचन्दने इस सेनाका सामना किया। युद्धके समय राजा जयचंद हाथीपर बैठकर अपनी सेनाका संचालन करने लगा। परन्तु, अन्तमे वह मारा गया। इसके बाद सुलतानकी सेनाने आसनीके किलेका खजाना लूट लिया, और वहाँसे, आगे बढ़ बनारसकी भी वही दशा की। इस लूटमें ३०० हाथी भी थे।

मौलाना मिनहाजुद्दीनने तबकाते नासिरीमें लिखा है–हिजरी सन् ५९० (वि०सं० १२५०) में दोनों सेनापति कुतुबुद्दीन और इजुद्दीनहुसेन सुलतान (शहाबुद्दीन) के साथ गए और चंदावलके पास बनारसके राजा जयचंदको हराया।

पुत्र हुआ। जब यह युवा हुआ तब इसकी माताने राजासे इसको युवराज बनानेकी प्रार्थना की। परन्तु राजाके मंत्री विद्याधरने मेघचन्द्र-को ही इस पदका वास्तविक हकदार बताया। इसपर सहवादेवी रुष्ट हो गई और उसने तक्षशिला (पंजाब) की तरफ अपने दूत भेजकर सुलतानको चढ़ा लानेकी चेष्टा प्रारम्भ की। यद्यपि मंत्री विद्याधरने गुप्तचरो द्वारा यह वृत्तान्त जानकर यथासमय राजाको इसकी सूचना दी तथापि राजाने इसपर विश्वास न किया। तब मंत्री दुःखित होकर गङ्गामें डूब मरा। कुछ ही समय बाद सुलतान आ पहुँचा। यह देख राजा भी संग्रामके लिए आगे बढ़ा। दोनोंके बीच भीषण युद्ध हुआ। परन्तु इस बातका पूरा पता न लगा कि राजा युद्धमें मारा गया या स्वयं ही मर मिटा।

८ हरिश्चन्द्र।

यह जयचन्द्रका पुत्र था। इसका जन्म वि० सं० १२३२ की भाद्रपद कृष्णा ८ (१० अगस्त सन् ११७५) को हुआ था और जयचंद्रकी मृत्युके बाद वि० सं० १२५० में १८ वर्षकी अवस्थामें यह कन्नौजकी गद्दीपर बैठा।

बहुतसे लोगोंका खयाल है कि जयचन्द्रके मरनेपर कन्नौजपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया था। परन्तु उस समयकी ताजुलमआसिर आदि तवारीखोंमें शहाबुद्दीन आदिके विजित प्रदेशोंमें कन्नौजका नाम नहीं है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यद्यपि कन्नौज मुसलमानोंद्वारा लूट लिया गया था और उसका प्रभाव घट गया था तथापि वहाँका अधिकार ३३ वर्षतक जयचन्द्रके वंशमें ही बना रहा था। पहले पहल वि० सं० १२८३ के करीब शम्सुद्दीन अल्तमशने उक्त वंशके राज्यको समाप्तिकर कन्नौजपर अपना अधिकार कर लिया।

वि० सं० १२३२ के जयचंद्रके समयके दो लेखोंसे ज्ञात होता है कि अपने पुत्र हरिश्चन्द्रके जातकर्मसंस्कारपर जयचन्द्रने बडेसर नामक गाँव अपने कुलगुरुको दिया था और इसके जन्मके २१ वें दिन (वि० सं० १२३२ की भाद्रपद शुक्ला १३ = ३१ अगस्त सन् ११७५ को) जब इसका नामकरण संस्कार हुआ तब हृषीकेश नामक ब्राह्मणको दो गाँव दिये थे।

हरिश्चन्द्रके समयका एक दानपत्र और लेख मिला है। इनमेंका दानपत्र वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) की पौषसुदी १५ को दिया गया था। इसमें इसकी उपाधियाँ इसके पूर्वजोंके समान ही लिखी हैं--परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परममाहेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, विविधविद्याविचारवाचस्पति। इससे ज्ञात होता है कि राज्यका बड़ा भाग हाथसे निकल जाने पर भी यह बहुत कुछ स्वाधीन था। (इस दानपत्रमें अङ्कोंमें जो संवत् लिखा है वह १२५३ के बदले १२५७ पढ़ा जाता है।)

इसके समयका लेख भी वि० सं० १२५३ का है। यह बेलखेरासे मिला है। यद्यपि इसमें राजाका नाम नहीं है तथापि इसमें 'कान्यकुब्जविजयराज्ये' लिखा होनेसे बैनरजी आदि विद्वान् इसे हरिश्चन्द्रके समयका ही अनुमान करते हैं।

पहले लिखा जा चुका है कि वि० सं० १२८३ के करीब शम्सुद्दीनने कन्नौजपर अधिकार कर इनके राज्यकी समाप्ति कर दी। इसपर

---

(१) ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग १०, पृ० ९५।

(२) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता (१९११) भाग ७, नं० ११, पृ० ७६३।

हरिश्चन्द्र और उसके वंशज महुई (फर्रुखाबाद जिले) में पहुँचे और वहाँपर काली नदीके किनारेपर कुछ दिन रहे * ।

हरिश्चन्द्रके ही दूसरे उपनाम हर्षु, प्रहस्त और वरदाईसेन मिलते है। इसके पुत्रका नाम सेतराम था। इसको कहींपर सीताराम और कहींपर श्वेतराम भी लिखा है। इसीका पुत्र सीहाजी वि० सं० १२८३ के करीब पहले पहल मारवाड़की तरफ आया।

---

*कुछ लोगोका अनुमान है कि जयचन्द्रके मरनेपर उसके पुत्र हरिश्चन्द्रने खोदमें अपना राज्य कायम किया। वि० सं० १२७१ (ई० स० १२१४) के करीब शम्सुद्दीन अल्तमशने सेना भेज कर उक्त स्थानपर अधिकार कर लिया और उसका नाम बदलकर अपने नामपर शम्साबाद रक्खा। यहाँसे निकाले जानेपर हरिश्चन्द्रके वंशज महुई (फर्रुखाबाद जिले) पहुँचे और वहाँपर काली नदीके किनारे किला बनाकर रहने लगे। यहींसे चलकर सीहाजी मारवाड़में आए। कन्नौजके उत्तर-पश्चिमी प्रदेशमें जयचन्द्रका पुत्र कन्नौजिया राय लाखनके नामसे प्रसिद्ध है। जयचन्द्रका दूसरा पुत्र जजपाल भागकर उसेट (बदायूं जिले) की तरफ चला गया। यहाँपर राष्ट्रकूट विग्रहपालके वंशजोंका अधिकार था। परन्तु वि० सं० १२८०(ई० स० १२२३) के पूर्व कुतुबुद्दीनके समय वहाँपर भी मुसलमानोंका हमला हुआ। इससे इन लोगोको बिलंसरकी तरफ जाना पड़ा। इसके बाद राष्ट्रकूट रामरायने रामपुरमें अपना राज्य जमाया। इस वंशकी एक शाखाका राज्य रामपुर (एटा जिले) में और दूसरीका खेमसेदपुर (फर्रुखाबाद जिले) में है। (बदायूंका पहला हाकिम शम्सुद्दीन अल्तमश हुआ। यही बादमें देहलीका बादशाह हुआ।) बदायूंकी जुमामसजिदके द्वारपर हिजरी सन् ६२० (वि० सं० १२८०) का एक लेख लगा है। यह कुतुबुद्दीनके १२ वें राज्यवर्षका है। माड़ा और बीजापुर (मिरज़ापुर जिलेमें) का राजघराना भी अपनेको जयचन्द्रके भाई मानिकचन्द्र (माणिक्यचन्द्र) के पुत्र गाडणका वंशज बतलाता है।

कन्नौजके गहड़वालोंका वंशवृक्ष।
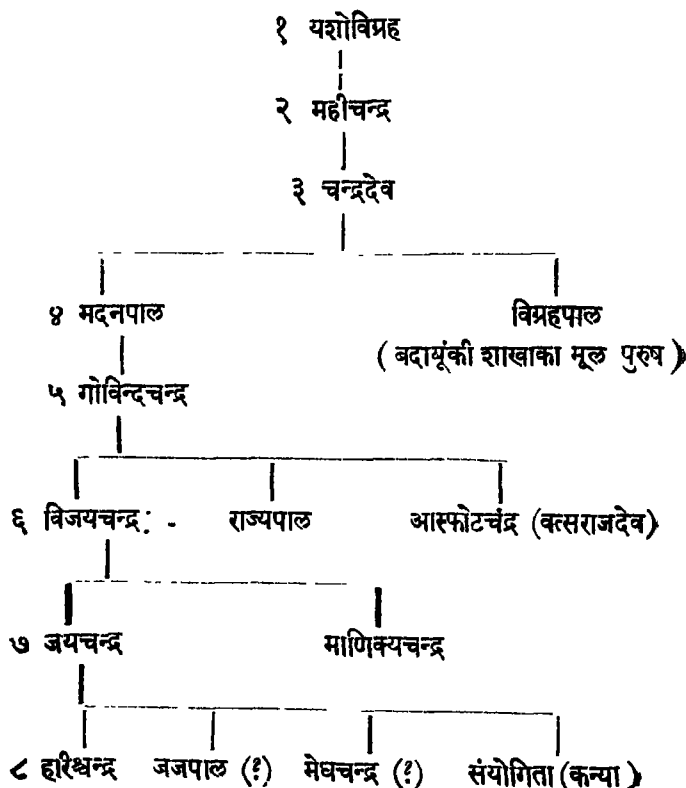
कन्नौजके गहड़वालों (राष्ट्रकूटों) का नकशा ।

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञातसमय	समकालीन राजा
१	यशोविग्रह		सूर्यवंशमें		
२	महीचन्द्र		नं० १ का पुत्र		
३	चन्द्रदेव	महाराजाधिराज	नं० २ का पुत्र	वि०सं० ११४८, ११५०, ११५६	परमार भोज, सोलङ्की कर्ण
४	मदनपाल	महाराजाधिराज	नं० ३ का पुत्र	वि०सं० ११५४, ११६३, ११६६,	
५	गोविन्दचन्द्र	महाराजाधिराज विविधविद्याविचारवाच-स्पति ।	नं० ४ का पुत्र	वि०सं० ११६१, ११६२, ११६६, ११७१, ११७२, ११७४, ११७५, ११७६, ११७७, ११७८, ११८१, ११८२, (११८३), ११८४, ११८५ ११८७, ११८८, ११८९, ११९०, ११९१, ११९६, ११९७, ११९८, ११९९, १२००, १२०१, १२०२, १२०७, १२०८, १२११,	
६	विजयचन्द्र	महाराजाधिराज	नं० ५ का पुत्र	वि०सं० १२२४, १२२५	
७	जयचन्द्र	महाराजाधिराज	नं० ६ का पुत्र	वि०सं० १२२६, १२२८, १२३०, १२३१, १२३२, १२३३, १२३४, (१२३५), १२३६, १२४३,	चन्देल मदनवर्मदेव, चौहान पृथ्वीराज, शहाबुद्दीन गोरी

मारवाड़के राठोड।

१ राव सीहाजी।

पहले लिखा जा चुका है कि राजा जयचन्द्रके मरनेके बाद कन्नौजपर उसके पुत्र हरिश्चन्द्र (वरदायीसेन) का अधिकार हो गया। परन्तु वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) के करीब जब वहाँपर शम्सुद्दीन अल्तमशका अधिकार हो गया तब वह अपने कुटुम्ब-वालोंको साथ लेकर महुई (फर्रुखाबाद जिलेमें) आ रहा। इस (हरिश्चन्द्र) के एक पुत्रका नाम सेतराम था। सम्भवतः यह इसका छोटा पुत्र होगा। सेतरामका पुत्र सीहा हुआ। इसने वहींपर काली नदीके किनारे एक किला बनवाया था। वहाँके रहनेवाले लोग अबतक भी उसके भग्नावशेषको सीहाजीका स्मृतिचिह्न समझते है।

वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) का बीकानेरके महाराजा जयसिंहजीका एक लेख मिला है। उसमें लिखा है:—

> तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचन्द्रस्ततोऽभवत्।
> वरदायीसेननामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रमः॥
> तदात्मजः सीतरामो रामभक्तिपरायणः।
> सीतरामस्य तनयो नृपचक्रशिरोमणिः॥
> राजासीह इतिख्यातः शौर्यवीर्यसमन्वितः।

अर्थात्—गोविन्दचन्द्रका पुत्र विजयचन्द्र हुआ। उसका जयचंद्र। जयचन्द्रका पुत्र वरदायीसेन और उसका सीतराम हुआ। इसी सीतरामका पुत्र सीहा था।

---

(१) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसायटी (१९२०) नं० ६, पृ० २७६।

(२) आईन ए अकबरीमें सीहाजीको जयचन्द्रका भतीजा लिखा है और कर्नल टाडने कहींपर जयचन्द्रजीका भतीजा, कहीं पर पुत्र और कहीं पर पौत्र लिख दिया है।

कुछ समयके बाद जब फर्रुखाबाद जिलेपर भी मुसलमानोंका आक्रमण हुआ तब सीहाजी उस स्थानको छोड़कर अपने दलबलसहित[1] पश्चिमकी तरफ चल पड़े । कहते हैं कि वास्तवमें उस समय इनका विचार द्वारिकाकी तरफ जानेका था । परन्तु मार्गमें जिस समय ये पुष्करमें ठहरे हुए थे उस समय वहींपर तीर्थयात्रार्थ आए हुए भीनमाल (मारवाड़)के ब्राह्मणोंसे इनकी भेट हो गई । उन दिनों अकसर मुलतानके मुसलमान भीनमालपर आक्रमण कर लूट मार किया करते थे । अतः सीहाजीको दलबलसहित देख उन ब्राह्मणोंने इनसे सहायताकी प्रार्थना की। सीहाजीने इसे अङ्गीकार कर लिया और भीनमालमें जाकर मुसलमानोंको परास्त किया । इसी आशयका यह दोहा मारवाड़में प्रसिद्ध है—

भीनमाल लीधी भडै, सीहै सेल बजाय ।
दत दीधौ सत संग्रह्यौ, औ जस कदे न जाय ॥

अर्थात्– सीहाजीने तलवारके बलसे भीनमालपर अधिकार कर और उसे ब्राह्मणोंको दानमें दे पुण्यका संचय किया । इनका यह यश अमर रहेगा ।

इस प्रकार मुसलमानोंपर विजय प्राप्त कर सीहाजी द्वारिका (गुजरात) की तरफ चले और तीर्थयात्राको समाप्त कर लौटते हुए कुछ दिन पाटन (अनहिलवाड़ामें) ठहरे[2] । ख्यातोंमें लिखा है कि पाटनमें

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि इनके साथ २०० राजपूत थे ।

(२) टाड साहबने लिखा है कि वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) में जयचन्द्रके पौत्र सेतराम और सीहाजी कन्नौजकी तरफसे रवाना होकर कोलूमढमें पहुँचे । यह स्थान बीकानेरसे २० मील पश्चिमकी तरफ है । यहाँ पर सोलंकियोंका राज्य था । उन्होंने इनकी बड़ी खातिर की । इसकी एवजमें सीहाजीने सोलंकियोंके शत्रु लाख

ही सीहाजीने कच्छके राजा लाखा फूलानीको मारा था। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जैनाचार्य हेमचन्द्ररचित द्वयाश्रय काव्यके पाँचवें सर्गमें लिखा है:—

> तौ गूर्जरत्राकच्छस्य द्वारकाकुण्डिनस्य तु ।
> नाथौ शरोर्मिमालाभिर्गङ्गाशोणं प्रचक्रतुः ॥ १२१ ॥
>
> ....
>
> कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट् ॥ १२७ ॥

अर्थात्—गुजरातके सोलंकी राजा मूलराज और कच्छके राजा लाखाके बीच भीषण युद्ध हुआ ॥ १२१ ॥..............................

अन्तमें सोलङ्की मूलराज (प्रथम) ने लाखाको मार डाला ॥१२७॥

सोलङ्की मूलराज प्रथमने वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१)के

फूलानीसे युद्ध कर उसे हराया। इसी युद्धमें सेतरामजी मारे गए। इनकी इस सहायतासे प्रसन्न हो सोलंकियोंके राजाने अपनी बहनसे सीहाजीका विवाह कर दिया। यहाँसे चलकर सीहाजी अनहिलवाड पाटन पहुँचे। वहाँके राजाने भी इनकी बड़ी आव भगत की। जिस समय सीहाजी पाटनमें थे उसी समय लाखा फूलानीने उक्त नगर पर आक्रमण किया। सीहाजीने अपने भाई सेतरामका बदला लेनेके लिए युद्धमें लाखाको मार डाला। यहाँसे लौटकर सीहाजी लूनीके किनारे पहुँचे और उन्होंने डाबियोंसे मेव और गुहिलोंसे खेड छीन लिया। इसके बाद ये पल्लीवाल ब्राह्मणोंकी सहायताके लिए पालीमें आए और मेर व मेणोको मारकर उनकी रक्षा की। धीरे धीरे पालीपर भी इन्होंने अधिकार कर लिया और यहीं पर इनकी मृत्यु हुई।

फार्ब्सरचित 'रासमाला' नामक गुजरातके इतिहासमें भी सीहाजीके मारवाड़में जानेका समय ई० स० १२१२ (वि० सं० १२३८) ही लिखा है।

(१) यह काव्य वि० सं० १२१७ (ई० स० ११६०) के करीब बनाया गया था।
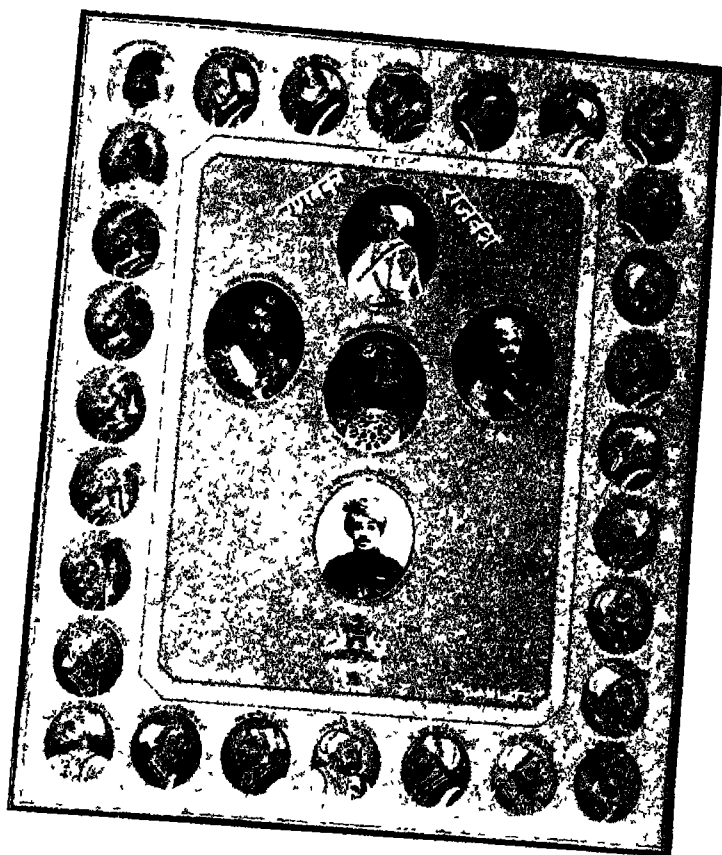
जोधपुरका राजवंश।

पृ० ११८ से १९५ तक।

करीब गुजरात विजयकर वहाँपर अपना राज्य कायम किया था। अतः लाखोंका सीहाजीके समय विद्यमान होना असम्भव ही है।

जिस समय सीहाजी पाटनसे लौटकर पाली (मारवाड़) में पहुँचे उस समय वहाँके पल्लीवाल ब्राह्मणोंने इनसे सहायताकी प्रार्थना की। उस समय पाली नगर व्यापारका केन्द्र था और फारस अरब आदि पश्चिमी देशोंका माल यहीं होकर अगाड़ी जाया करता था। अतः इसकी समृद्धिको देख आसपासके जंगलोंमें रहनेवाले मेर, मेणा, आदि लुटेरी जातियोंके लोग मौका पाकर यहाँपर लूट मार मचाया करते थे। सीहाजीने पल्लीवालोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वहाँ रहकर वे समय समय पर आक्रमणकारियोंसे युद्धकर ब्राह्मणोंकी रक्षा करने लगे। धीरे धीरे आसपासके गाँवोंपर सीहाजीका अधिकार हो गया। इस समय खेड़ पर गुहिलराजपूतोंका राज्य था। सीहाजीने इनको दबानेके लिए उक्त प्रदेशपर आक्रमण किया। परन्तु जिस समय सीहाजी इधर आक्रमण करनेमें लगे थे उसी समय उधर पाली नगरपर मुसलमानोंने हमला कर दिया। यह समाचार पाते ही सीहाजी खेड़की तरफसे लौटकर पाली पहुँचे और मुसलमानोंकी सेनापर ऐसा आक्रमण किया कि उसके होश हवास बिगड़ गए। कुछ ही देरमें वह भाग खड़ी हुई। उसकी यह दशा देख

(१) यह लाखा सौराष्ट्रके ग्राहारि (ग्रहरिपु) की मददमें आया था। सी० एम० डफकी क्रोनोलाजी ऑफ इण्डियामें ग्रहरिपुका समय ई० स० ९१६ और ९५९ (वि० सं० ९७३ और १०१६) के बीच लिखा है। बहुतसे विद्वान् सीहाजीका जैसेलमेरके भाटी लाखासे लड़ना अनुमान करते हैं।

(२) यह गाँव जोधपुर नगरसे ६० मील दक्षिण पश्चिममें जसोलके पास उजड़ी दशामें अबतक विद्यमान है।

राठोड़ोंने उसका पीछा किया। बीठू नामक गाँवके पास पहुँचते पहुँचते यवनवाहिनीको नवीन कुमुक पहुँच गई। इससे उसकी हिम्मत बढ़ गई और उसने लौटकर पीछा करती हुई राठोड़ोंकी थकी हुई सेनापर प्रत्याक्रमण कर दिया। दोनों तरफसे जी खोलकर युद्ध हुआ। परन्तु मुसलमानोंकी ताजादम फौजके सामने राठोड़ोंकी थकी हुई अल्प-संख्याक सेना कब तक ठहर सकती थी। आखिर मैदान मुसलमानों-के हाथ रहा। इसी युद्धमें वीरवर सीहाजी वीरगतिको प्राप्त हुए।

इनके साथ इनकी रानी पार्वती सती हुई। यह सोलङ्की वंशकी थी।

वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) का एक लेख बीठू (मारवाड़) से मिला है। इससे प्रकट होता है कि उक्त संवत्में सीहाजीकी मृत्यु हुई थी और इनके पिताका नाम कँवर सेतराम था।

सीहाजीके तीन पुत्र थे—आसथान, सोनग और अज।

---

(१) आईन ए अकबरीमें लिखा है कि सीहाजी शम्साबादके युद्धमें मारे गये थे। पालीके पास रोदाबाय नामक कुँएपर इनकी यादगारमें एक चबूतरा बनाया गया था। इनकी यादगारमें इनके वशजोंने यह चबूतरा शायद पीछेसे इनके निवासस्थानपर बनवाया होगा।

(२) इण्डियन ऐण्टिकेरी, भाग ४०, पृ० १४१।

(३) पहले लिखा जाचुका है कि सेतरामजी सम्भवतः वरदायीसेनके छोटे पुत्र थे। इसीसे उनके नामके आगे कँवर पद लगा है। आज भी पूर्वके राजाओं और जमीदारोंके छोटे पुत्र पिताके मरने पर भी अपने नामके आगे कुँवरकी उपाधि लगाते हैं।

(४) ख्यातोंमें लिखा है कि सीहाजीका दूसरा विवाह उखामण्डलके चावड़ों-के यहाँ हुआ था और उसीसे अजका जन्म हुआ।

२ राव आसथानजी ।

ये सीहाजीके बड़े पुत्र थे और उनके मरनेपर उनके उत्तराधिकारी हुए । ये भी अपने पिताके समान ही बड़े वीर और साहसी थे । इन्होंने पालीसे ५ कोस पश्चिमके गोंदोज नामक स्थानको अपने रहनेके लिये चुना । इसके कुछ दिन बाद इन्होंने डाभी[1] राजपूतोंसे साजिश करके खेड़ पर आक्रमण किया और वहाँके गोहिल राजाको मय उसके कुटुम्बवालोंके मारकर उस स्थानको अपनी राजधानी बनाया ।

इसके बाद आसथानजीने ईडर (गुजरात) पर आक्रमण किया और वहाँके भील[2]राजा सामलिया सोढको उसके मंत्री[3]की साजिशसे मारकर वहाँका राज्य अपने छोटे भाई सोनगको दे दिया । इसके वंशज

---

(१) डाभी राजपूत गोहिलोंके प्रधान (मन्त्री) थे । परन्तु इनके और गोहिलोंके आपसमें मनोमालिन्य हो जानेके कारण ये आसथानजीसे मिल गए उसी दिनसे मारवाड़में यह कहावत चली है:—"डाभी डावा ने गोहिल जीवणा"

अर्थात्—युद्धके समय सब डाभी पूर्वसङ्केतानुसार बांई तरफ हो गए और गोहिलोंको दाहिनी तरफ रख दिया । इसीसे राठोड़ोंने आक्रमण कर इन्हें आसानीसे मार डाला । बचे हुए गोहिल प्राणोंके भयसे काठियावाड़की तरफ भाग गए ।

(२) टाड साहबने उस समय ईडर पर डाभियोंका राज्य होना लिखा है । परन्तु फार्ब्स साहबने वहाँके उस समयके राजाका नाम सामलिया सोढ ही लिखा है ।

(३) यह नागर ब्राह्मण था । भीलराजाने इसकी रूपवती कन्यासे विवाह करना चाहा । इसीसे यह उससे नाराज हो राठोड़ोंसे मिल गया ।

ईडरिया राठोड़ नामसे प्रसिद्ध हुए।

आसथानजीके दूसरे भाईका नाम अज था। उसने उखामण्डल (द्वारिकाके पासके प्रदेश) के चावड़ाराजा भोजेराजको मारकर उक्त प्रदेशपर अधिकार कर लिया। इसके वंशज बाजी और वाढेल कहाए।

वि० स० १३४७ (ई० स० १२९०) में शम्सुद्दीनको मारकर जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह द्वितीयके नामसे दिल्लीके तख्तपर बैठा। वि० सं० १३४८ (ई० स० १२९१) में उसकी फौजने पाली पर आक्रमण किया। जब यह समाचार आसथानजीको मिला तब वे शीघ्र ही खेडसे रवाना होकर पाली पहुँचे और यहीं पर मुसलमानोंके साथके युद्धमें १४० राजपूतों सहित मारे गए।

इनके आठ पुत्र थे—१ धूहड, २ धांधल, ३ चाचक, ४ आसल, ५ हरडक, ६ खीपसा, ७ पोहॅड और ८ जोपसा।

(१) कर्नल टाडने सोनागके वंशजोका हथूंडिया राठोड़ोके नामसे प्रसिद्ध होना लिखा है। परन्तु यह ठीक नही है, क्योकि हथूंडिया राठोड़ इन राठोड़ोंसे भिन्न थे। यह बात पहले दिये हुए उनके इतिहाससे सिद्ध है।

(२) टाडसाहबने उखामंडलके राजाका नाम बीकमसी लिखा है।

(३) धाँधलके तीन पुत्र हुए। इनमेंसे पाबू चारणोंकी गायोको बचाते हुए खीची राजपूतोंके हाथसे मारा गया था। इसीसे लोग इसे अबतक पूजते हैं। इसके भतीजे भुरडाने खीचियोंको मार अपने चाचाका बदला लिया। फलोधीके पास कोल्हमें पाबू मारा गया था।

(४) इनमें सबसे बड़े पुत्र धूहडजी थे। ये अपने पिताके उत्तराधिकारी हुए और इनके ६ छोटे भाइयोंके नामसे राठोडोंकी ६ शाखाएँ चलीं। कर्नलटाडने चाचक, आसल, हरडक और पोहडके स्थानमें भोपसा, जैतमाल, बान्दर और ऊहड नाम लिखे हैं।

(५) इसके आठ पुत्र हुए और उनसे सींधल, ऊहड, जोल्ल, मूलु, राजग और जोरावत नामकी शाखाएँ प्रसिद्ध हुईं।

३ राव धूहडजी।

ये आसथानजीके ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी थे। इन्होंने आसपासके अनेक गाँवोंको जीतकर उनपर अधिकार कर लिया था। नागाणा नामके गाँवमें जो नागनेचियां नामक राठोड़ोंकी कुलदेवीका मन्दिर है वह इन्होंने ही बनवाया था। धूहडजीने मंडोरके पड़िहारोंपर आक्रमण किया था। अतः उनके और इनके बीच तिरसींगडी (तींगडी) के पास युद्ध हुआ। इसी युद्धमें धूहडजीकी मृत्यु हुई। वहींपर 'एक तालावके पास

---

(१) जोधाजीके ताम्रपत्रकी सनदसे पता चलता है कि लुंब ऋषि नामक सारस्वत ब्राह्मण धूहडजीके समय कन्नौजसे चक्रेश्वरीकी मूर्ति लाया था। इसी चक्रेश्वरीने प्रसन्न हो धूहडजीको नागके रूपमें दर्शन दिया। उसी दिनसे इसका नाम 'नागनेची' प्रसिद्ध हुआ और इसके पूजनेवाले राठोड़ 'नागनेचिया राठोड़' कहाए। नागाना नामक गाँव पचपदरासे करीब ८ मीलपर है और इसका नामकरण भी उक्त देवीके नामपर ही हुआ है। किसी किसी ख्यातमें लिखा है कि धूहडजी अपनी कुलदेवीको कल्याणी (कोंकन दक्षिण) से लाए थे। उक्त देवीके नामके पीछे 'ची' लगा होनेसे भी इस बातकी पुष्टि होती है। परन्तु कुछ लोग इस कल्याणीसे कन्नौजके कल्याण कटकका तात्पर्य लेते हैं। चित्तौड़के पास भी उक्त देवीका मन्दिर हैं। कहते है कि जब जयचन्दजीने उक्त स्थानपर अधिकार किया था तब यह मन्दिर बनवाया था।

(२) यह स्थान खेड़से करीब २०० कोसके फासले पर है और मंडोरसे भी इसका फासला करीब करीब इतना ही है।

(३) यह युद्ध थोब और तिरसींगडी नामक गाँवोंके बीच हुआ था। उस समय थोब तक खेड़ राज्यकी सीमा थी। कुछ ख्यातोंमें लिखा है कि आनल बाघेलेने थोबपर आक्रमण किया था और उसीके साथके युद्धमें धूहडजी मारे गए। (टाड साहबने लिखा है कि धूहडजीने कन्नौज पर भी आक्रमण किया था परन्तु उसमें सफलता प्राप्त न हुई। यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती।)

इनकी यादगारमें चबूतरा बनाया गया था। यह अब तक विद्यमान है।

उक्त स्थानसे वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) का इनका एक लेख मिला है।[1]

यह गाँव धूहडजीने ब्राह्मणोंको दानमें दिया था।

इनके सात पुत्र थे-१ रायपाल, २ चन्द्रपाल, ३ वेहड़, ४ पीथड़, ५ खेतपाल, ६ ऊनड़ और जोगा।[2]

४ राव रायपालजी।[3]

ये धूहड़जीके ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके पीछे गद्दीपर बैठे।

ये बड़े वीर और दानी थे। पहले पहल अपने पिताका बदला लेनेके लिए इन्होंने पड़िहारोंपर आक्रमण कर मंडोर पर अधिकार कर लिया। परन्तु कुछ ही समयके बाद वह फिर पड़िहारोंके कब्जेमें चला गया। इसके बाद इन्होंने पवाँरोंपर हमला कर उनसे बाडमेर छीन लिया। इससे महेवाका सारा परगना इनके अधिकारमें आगया। यह परगना आजकल मालानीके नामसे प्रसिद्ध है।

एक वार रायपालजीके राज्यमें वर्षा न होनेसे घोर अकाल पड़ा और प्रजा भूखके मारे मरने लगी परन्तु इन्होंने अपने राजकीय भण्डारसे नाज बाँटकर प्रजाके प्राण बचा लिये। उसी दिनसे लोग इन्हें 'महिरेलण' (इन्द्र) के नामसे पुकारने लगे।

---

(१) इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग ४०, पृ० ३०१।

(२) इनमेंसे पिछले पाँच पुत्रोंसे राठोड़ोंकी पाँच शाखाएँ चलीं। (कर्नल टाडने चन्द्रपाल, खेतपाल और ऊनडके स्थानमें कीर्तिपाल, दालू और बेगर नाम दिये है।)

(३) इन्होंने एक भाटी राजपूतको जबरदस्ती चारण बना दिया था। उसके वंशज रोड़िया बारहटके नामसे प्रसिद्ध हुए।

इनके १३ पुत्र थे । इनमेंसे सबसे बड़े पुत्रका नाम कनपाल था ।

५ राव कनपालजी ।

ये रायपालजीके बड़े लड़के थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए । इनके और जैसलमेरके भाटियोंके बीच राज्यकी सीमाके लिए अनेक युद्ध हुए । इन युद्धोंमें कनपालजीके पुत्र भीमने भाटियोंसे बहुतसा प्रदेश छीन लिया और काकनदीको अपने और भाटियोंके राज्यके बीचकी सीमा बनाया । अन्तमें यह कुँवर भाटियोंके साथके युद्धमें ही मारा गया।

इसके कुछ समय बाद महेवापर तुर्कोंने हमला किया और इसीमें कनपालजी भी मारे गए । इनके ३ पुत्र थे ।

६ राव जालणसीजी ।

ये कनपालजीके द्वितीय पुत्र थे और अपने बड़े भाई भीमके पिताके जीते जी ही मर जानेके कारण राज्यके स्वामी हुए । ये ऊमरकोटके

---

(१) इनके १३ पुत्रोंमेंसे छोटे १० पुत्रोंसे १० शाखाएँ चलीं । जैसे—रायपालजीका एक पुत्र केलण था । उसके पुत्र कोटेचाके नामसे एक शाखा चली । दूसरे पुत्रका नाम थांथी था । उसका पुत्र फिटक हुआ । उसके नामपर दूसरी शाखा चली । इसी प्रकार रायपालजीके अन्य पुत्र रांदो, डांगी, सूंडा, मोपा, मोहन, बूला और विकमने अपने अपने नामपर राठोड़ोंकी भिन्न भिन्न शाखाएँ चलाईं । (मुहणोत ओसवाल भी अपनेको उपर्युक्त मोहनके ही वंशज मानते हैं ।)

(२) इस आशयका यह सोरठा प्रसिद्ध है:—

" आधी धरती भींव, आधी लोद्रवै धणी ।
काक नदी छै सींव, राठोडांने भाटियाँ ॥ "

अर्थात्—राठोडोंके और भाटियोंके राज्यके बीच काक नदी सीमा है ।

सोढो राजपूतों और भीनमालके सोलङ्कियोंसे लड़ते रहते थे। इन्होंने सिन्ध और ठट्टाके परगनोंको भी लूटा था और मुलतानके हाकिमको हराकर उससे कर वसूल किया था।

सराई जातिके हाजी मल्लिकने इनके चाचाको मारा था। इसका बदला लेनेके लिए इन्होंने पालनपुर पर आक्रमण कर उसको मार डाला।

इस प्रकार इनके बढ़ते हुए प्रतापसे क्रुद्ध हो तुर्कोंकी एक बड़ी सेनाने इनपर चढ़ाई की। इसीके साथके युद्धमें जालणसीजी मारे गए। इनके ३ पुत्र थे—छाडा, भाकरसी और डूंगरसी।

७ राव छाड़ाजी।

ये जालणसीजीके बड़े पुत्र और उत्तराधिकारी थे। इन्होंने गद्दीपर बैठते ही उमरकोटके सोढा राजपूत दुर्जनसालसे करस्वरूप घोड़े लिये और जैसलमेरके भाटियोंको कहला भेजा कि यदि तुम लोग किलेके बाहर नगर बसाओगे तो उसके लिए तुम्हें कर देना होगा। भाटियोंने यह बात अङ्गीकार नहीं की। इसपर छाड़ाजीने जैसलमेर पर चढाई की। अन्तमें भाटियोंने हारकर अपनी एक कन्याका विवाह इनके साथ कर इनसे सुलह कर ली। इसके बाद

(१) जालणसीजीने सोढा राजपूतोंसे एक साफा छीना था। उसी दिनसे राठोड़ मस्तकपर उस जयका चिह्नस्वरूप साफा बाँधने लगे थे।

(२) कहते है कि मृत्युसमय इनकी अवस्था केवल २७ वर्षकी थी। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इनके पुत्र छाड़ाजीका इतिहास इसको असम्भव सिद्ध करता है।

(३) दुर्जन सालने जालणसीजीसे सुलह करते समय कुछ घोड़े भेट देनेका वादा किया था। परन्तु बादमें देनेमें हिचकिचाहट दिखला रहा था। अतः छाड़ाजीने राज्यपर बैठते ही उसे नियत संख्यासे चारगुने घोड़े देनेको बाध्य किया।

छाड़ाजीने भीनमाल, जालोर, पाली और सोजतपर हमला कर उक्त स्थानोंको लूटा। जिस समय ये इस युद्धयात्रासे लौटकर रमनिया गाँव (जालोर परगने) में पहुँचे उस समय सोनगरा[1] चौहानों और सीरोहीके देवड़ोंने मिलकर इनपर हमला किया। इसी हमलेमें सोनगरोंसे लड़ते हुए छाड़ाजी मारे गए।

उक्त स्थानपर इनका चबूतरा बना बतलाते हैं। इनके सात पुत्र[2] थे। इन्होंने वि० सं० १३८५ से १४०१ तक राज्य किया।

८ राव तीड़ाजी।

ये छाड़ाजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद गद्दीपर बैठे। इन्होंने अपने पिताका बदला लेनेके लिए सोनगरा[3] चौहानोंपर चढ़ाई की और उन्हें हराकर भीनमालपर अधिकार कर लिया। इसके बाद तीड़ाजीने देवड़ों, भाटियों, बालेचों और सोलङ्कियोंसे युद्धकर कर वसूल किया। इनकी राजधानी महेवा था।

उस समय सिवाना नामक स्थानपर तीड़ाजीके भानजे चौहान सातलसोमका अधिकार था। जिस समय मुसलमानोंकी सेनाने उक्त स्थान पर आक्रमण किया उस समय तीड़ाजी उसकी मददमें गए और वहीं पर युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए।

---

(१) उस समय सोनगरोंमें या तो वनवीरदेव होगा जिसका राज्य आसलपुरमें था या उसका पुत्र रणवीरदेव होगा; जिसका एक लेख नाडलाईसे मिला है। (भारतके प्राचीन राजवंश, भाग प्रथम, पृ० ३१३।)

(२) इनमेंसे खोखर, वानर, और सीहामलसे राठोड़ोंकी अलग अलग तीन शाखाएँ चलीं।

(३) ख्यातोंमें उस समयके सोनगरा चौहान राजाका नाम सामन्तसिंह लिखा है। परन्तु इसके वि० सं० १३३९ से १३५३ तकके लेख मिले हैं। अतः राव तीड़ाजीके समय इसका होना सिद्ध नहीं होता। (भारतके प्राचीन राजवंश, भाग प्रथम, पृ० ३०८।) सम्भव है यह कोई दूसरा सामन्तसिंह हो।

तीड़ाजी बड़े वीर और प्रतापी थे । महेवाका सारा प्रदेश इनके अधिकारमें था, इनके तीन पुत्र थे—१ कान्हड़देव, २ त्रिभुवनसी और सलखा ।

राव कान्हड़देवजी ।

राव तीड़ाजीके बाद उनके पुत्र कान्हड़देवजी राज्यके अधिकारी हुए । इनके समय मुसलमानोंने महेवापर हमला किया ।

यद्यपि ये उनसे बड़ी वीरतासे लड़े तथापि इन्हें सफलता न मिली और महेवापर मुसलमानोंका अधिकार हो गया । परन्तु कुछ ही दिनों बाद मौका पाकर कान्हड़देवजीने खेड़पर अधिकार कर लिया और अपने मृत भ्राता सलखाजीके ज्येष्ठ पुत्र मल्लिनाथजीको राज्यकार्यकी देखभालपर नियुक्त किया । राज्यपर बैठते समय कान्हड़जीने अपने भाई सलखाजीको जागीरमें एक गाँव दिया था ।

राव त्रिभुवनसीजी ।

कान्हड़देवजीकी मृत्युके बाद उनके छोटे भाई त्रिभुवनसीजी[2] उनके उत्तराधिकारी हुए । परन्तु सलखाजीके ज्येष्ठ पुत्र मल्लिनाथजीने मुसलमानोंकी सहायतासे इन्हें मार डाला और राज्यपर अपना अधिकार कर लिया ।

---

(१) तीड़ाजीका राज्यारोहण वि० सं० १४०१ और मृत्यु वि० १४१४ में हुई होगी ।

(२) इनके तीन पुत्र थे । उनमेंसे ऊदासे बेठवासिया ऊदावत नामकी शाखा चली । किसी किसी ख्यातमें तीड़ाजीके बाद पहले त्रिभुवनसीजीका राजा होना और उनके बाद कान्हड़देवजीका अधिकार पाना लिखा है । उनमें यह भी लिखा है कि जालोरके मुसलमानोंकी सहायतासे उन्हें मार मल्लिनाथजीने राज्य छीन लिया था ।

९ राव सलखाजी ।

जिस समय कान्हड़देवजीको हराकर मुसलमानोंने महेवापर अधिकार कर लिया था उसके कुछ समय बाद ही मुसलमानोंकी कमजोरीसे मौका पाकर सलेखाजीने उक्त प्रदेशका बहुतसा भाग छीन लिया और उस पर अपना अधिकार कर भिरड़कोटको अपनी राजधानी बनाया। इसके बाद इन्होंने सोनगरा चौहानोंपर आक्रमण कर भीनमालको लूटा। कुछ समय बाद मुसलमानोंने इनपर हमला किया। इसी हमलेमें ये शत्रुओंसे लड़ते हुए मारे गए।

इनके चार पुत्र थे—मल्लिनाथजी, जैतमालजी, वीरमजी और सोभितजी।

राव मल्लिनाथजी ।

सलखाजीकी मृत्युके बाद उनके पुत्र मल्लिनाथजी मय अपने भाइयोंके अपने चाचा कान्हड़देवजीके पास चले गए। उन्होंने भी इन (मल्लिनाथजी) को होनहार देखकर अपने राज्यका प्रबन्ध सौंप दिया। कुछ दिन बाद ये वहांसे वापिस चले आए। परन्तु जिस समय कान्हड़देवजीकी मृत्युके बाद त्रिभुवनसीजी उनके उत्तराधिकारी हुए उस समय इन्होंने मुसलमानोंकी सहायतासे उन्हें भगाकर राज्यपर अधिकार कर लिया।

(१) कुछ ख्यातोंमें लिखा है कि महेवापर मुसलमानोने अधिकार कर लिया था। परन्तु मंडोरके पड़िहार राजाकी सहायतासे वि० सं० १४२२ में मुसलमानोंको भगा कर सलखाजीने उक्त प्रदेशपर अधिकार कर लिया और वि० सं० १४३१ में मुसलमानोंके साथकी लड़ाईमें सलखाजी मारे गए।

(२) ख्यातोंमें मल्लिनाथजीके महेवापर अधिकार करनेका समय वि० सं० १४३१ लिखा है।

ये बड़े वीर थे। कुछ दिन बाद इन्होंने मंडोर, सिरोही, मेवाड़ और सिन्धके बीच लूट मार मचाकर मुसलमानोंको तंग करना शुरू किया। इसपर बादशाही फौजने इनपर चढाई की। इस फौजमें तेरह दल थे। परन्तु मल्लिनाथजीने इस वीरतासे युद्ध किया कि शाही सेनाको रण छोड़ भागना पड़ा। इस विषयका यह पद मारवाड़में अबतक प्रसिद्ध है:—

'तेरह तुंगा भांगिया माले सलखाणी'

अर्थात्—सलखाजीके पुत्र मल्लिनाथजीने शाही फौजके १३ दलोंको परास्त कर दिया।

इसके बाद इन्होंने सालोड़ी नामक गाँवमें अपना निवास कायम किया। यह स्थान मंडोर और जोधपुरसे ६–७ कोस पश्चिममें है।

जब यह खबर माळवाके सूबेदारको मिली तब उसने इन पर चढाई की। परन्तु उसे भी हारकर लौटना पड़ा। अन्तमें इसी स्थानपर इन्होंने अपने भतीजे चूडाजीको नियत कर दिया। जिस समय चूंडाजीने नागोर और डीडवाना पर हमले किय उस समय इन्होंने भी उन्हें मदद दी।

मल्लिनाथजीने मुसलमानोंसे छीन कर सिवाना अपने भाई जैतमालजीको, खेड़ वरिमजीको और ओसियां सोभितजीको[1] जागीरमें दी थी।

वि० सं० १४५६ मल्लिनाथजीकी मृत्यु हुई। मारवाड़के लोग

---

(१) इन्होंने ओसियांके पवाँरोको हराकर उक्त स्थानपर अधिकार कर लिया था। इनके वंशज सोहड़ नामसे प्रसिद्ध हुए।

इनको एक पहुँचा हुआ सिद्ध मानते हैं। लूनी नदीके किनारे तिलवाड़ा नामक गाँवके पास इनके नामपर बनाहुआ एक मंदिर अबतक विद्यमान है। हरसाल वहाँपर चैत्रमासमें मेला लगता है। इसमें मवेशियोंकी खरीद फरोख्त हुआ करती है।

इनके ८ पुत्र थे।

राव जगमालजी।

ये मल्लिनाथजीके ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी थे। इन्होंने गुजरातके मुसलमान शासकको हराकर उसकी कन्या छीन ली थी।

ये बड़े वीर थे। सिवानापर कब्जा करनेकी इच्छासे इन्होंने अपने चाचा जैतमालजीको मार डाला था। परन्तु उसमें इन्हें सफलता न मिली।

(१) इनकी रानीका नाम रूपादे था। ये शाक्तमतकी कूंडापंथ शाखाके उपासक थे। इनसे राठोड़ोंकी १८ शाखाएँ चलीं। १० तो इनके ज्येष्ठ पुत्र जगमालजीसे और ८ इनके दूसरे ६ पुत्रोंसे। जैसे—मांडणसे कुसमलिया। जैमासे आसडेचा। मण्डलीकसे महेचा, जसोलिया और वरयेचा। कूंपासे गोमेचा जगपालसे पारकरा। मेहासे फलसूंडिया।

(२) ख्यातोंमें इसका नाम गींदोली लिखा मिलता है। इसी युद्धमें जिस समय जगमालजीकी मारसे घबराकर गुजरातका शासक जनाने महलोंमें भाग गया उस समयका यह पद मारवाड़में अबतक प्रसिद्ध है–"**बीबी पूछे खानसे जग केता जगमाल।**"

अर्थात्—बेगम खानसे पूछती है कि दुनियामें ऐसे कितने जगमाल है जो आप ऐसे घबरा गए हैं।

(३) जैतमालजीसे राठोड़ोंकी पाँच शाखाएँ चलीं। जैतमालात, जुंझाणिया, राड़धड़ा, सोभावत और धवेचा।

जोइया दलाको शरण देनेके कारण ये अपने चाचा वीरमजीसे भी नाराज हो गए थे । इसीसे उन्हें खेड़ छोड़कर जाना पड़ा ।

इनके १३ पुत्र थे । परन्तु जगमालजीके बाद इनका राज्य इनकी औलादमें बँट गया और उसके टुकड़े टुकड़े हो गए । उसकी एवजमें वीरमजीके पुत्र चूंडाजीने मंडोरका राज्य कायम किया, जैसा कि इस कहावतसे प्रकट होता है–

' मालारा मइढे ने वीरमरा गइढे '

अर्थात्–मल्लिनाथजीके वंशज मालानीमे रहे और वीरमजीके वंशज गढ़के मालिक (राजा) हुए ।

१० राव वीरमजी ।

ये सलखाजीके पुत्र और मल्लिनाथजीके छोटे भाई थे । मल्लिनाथजीने इन्हें खेड़ नामक गाँव जागीरमें दिया था । परन्तु जोइया दलाके कारण इनके और मल्लिनाथजीके ज्येष्ठ पुत्र जगमालजीके आपसमें मनोमालिन्य हो गया था । इसीसे इन्हें खेड़ छोड़कर जाना पड़ा । ये

(१) लखवेराके जोइया राजपूत मुसलमान होकर दिल्लीमे बादशाही सेवामे चले गए थे । मौका पाकर इनका मुखिया जोइया दला चार लाख मुहरें और एक बढ़िया घोड़ी लेकर देहलीसे भाग निकला । मार्गमे जब यह महेवामे पहुँचा तब जगमालजीने उससे घोड़ी लेनेकी इच्छा प्रकट की । परन्तु दलाने देनेसे इनकार कर दिया और प्राणोंके भयसे भागकर वीरमजीके पास चला गया । उन्होंने इसकी बड़ी खातिर की। इससे प्रसन्न होकर इसने वह घोड़ी वीरमजीको दे दी । जब यह समाचार जगमालजीको मिला तब उन्होंने वीरमजीसे घोड़ी भेज देनेका कहलवाया । परन्तु उन्होंने भी इनकार कर दिया । इसीसे चाचा भतीजेके आपसमें मनोमालिन्य हो गया ।

(२) इनसे बाहडमेरा, वाटाड़ा, सागर, थूमलिया, खाबरिया, ऊंगा धारोइया, कानासरिया, कोटडिया और गागरिया नामकी दस शाखाएँ चलीं ।

घूमते घामते जांगलूमें सांखला ऊदाके यहाँ गए और वहाँसे जब जोया-वाटी (बीकानेरके करीब) पहुँचे तब पहले किये हुए उपकारका स्मरण कर जोइयोंने इनका बड़ा आदर सत्कार किया। परन्तु कुछ दिन वहाँ रहने पर वीरमजीके और जोइयोंके भी आपसमें वैमनस्य हो गया। अतः वि० सं० १४४० (ई० सं० १३८३) में वहीं पर जोइयोंके साथ लखवेरे गाँवमे लड़कर ये वीरगतिको प्राप्त हुए[1]।

इनके पाँच पुत्र थे—१ देवराज[2], २ चूडा, ३ गोगा[4], ४ जैसिंह और ५ चाहडदे। इनमेंसे चूंडाजी आर उनके वंशज तो मण्डोरके राजा हुए और बाकीके चारों पुत्रोंसे राठोड़ोंकी चार शाखाएँ चलीं।

११ राव चूंडाजी।

ये वीरमजीके दूसरे पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४३४ में हुआ था। इनके बड़े भाईका नाम देवराजजी था। उनको पिताने सेतरावा[3] नामक गाँव दे रक्खा था। पिताके मारे जानेके बाद चूंडाजीको अपनी बाल्यावस्थाके कारण कालाऊ नामक गाँवमें आल्हा चारणके यहाँ छिप-कर रहना पड़ा[5]। जब ये बड़े हुए तब उस चारणने इन्हें इनके चाचा

(१) कुछ ख्यातोंमें लिखा है कि नागोरको लूट कर जिस समय वीरमजी सिंध पहुँचे उस समय पहले किये उपकारका स्मरण कर जोइयोंने इनकी बड़ी खा-तिर की और सहवानका परगना इन्हें सौंप दिया।

(२) कर्नल टाडने एक पुत्रका नाम बीजा लिखा है। इससे बीजावत शाखा चली।

(३) खेड़से निकलकर वीरमजीने सेतरावा नामक गॉव बसाया था। यह गॉव बादमें इनके पुत्र देवराजको मिला।

(४) गोगाजीने दला जोइयाको मार अपने पिताका बदला लिया।

(५) इस विषयका यह पद्य प्रसिद्ध है:—

चूंडा थनै न चीत, काचर कालाऊ तणा।
भूप भयो भैभीत, मंडोवररै मालियै॥

मल्लिनाथजीके पास पहुँचा दिया। उन्होंने भी इन्हें वीर और होनहार समझकर सालोड़ी गाँवका शासक नियत किया परन्तु कुछ समयके बाद मल्लिनाथजी इनसे नाराज हो गए और उन्होंने इन्हें उक्त पदसे हटा दिया[1]। इसके बाद जिस समय ईंदा राजपूतोंने मुसलमानोंपर आक्रमण कर मंडोर-पर अधिकार कर लिया[2] उस समय चूडाजीने भी उनकी सहायता की थी। इसीसे अन्तमें वि० सं० १४५१ (ई० स० १३९५) में ईंदा राजपूतोंके मुखिया राय धवलने अपनी कन्याका विवाह चूडाजीके साथ कर दिया और उसीके दहेजमें मंडोर भी उनको दे दिया[3]। इसी आशयका यह सोरठा अबतक प्रसिद्ध है—

'ईंदारो उपकार, कमधज मत भूलो कदै।
चूंडो चँवरी चाढ, दियो मँडोवर दायजै॥'

अर्थात्—हे राठोड़ो! आप लोग ईंदा पड़िहारोंका उपकार कभी न भूलना; क्योंकि उन्होंने अपनी कन्यासे चूंडाजीका विवाह कर उसके दहेजमें मंडोवर दे दिया था।

जिस समय चूंडाजीका राजा होना सुन उक्त आल्हा चारण इनसे मिलने आया उस समय दरवाजेपर द्वारपालोंने रोक दिया। इसपर उसने यह पद्य जोरसे पढ़कर चूंडाजीको पुरानी बातका स्मरण दिलाया। यह सुन चूंडाजीने उसे भीतर बुलाकर उसकी बड़ी खातिर की।

(१) इन्होंने किसी सौदागरके घोड़े छीन लिये थे। परन्तु बादशाहने उनका हरजाना मल्लिनाथजीसे वसूल किया। इसीसे वे इनसे नाराज हो गए।

(२) मंडोरके मुसलमान शासकने आसपासमें रहनेवाले ईंदा राजपूतोंसे घास भेजनेको कहलवाया। इसपर ईंदोंने घासकी गाड़ियोंमें अपने योद्धाओंको छिपाकर किलेमें घुसा दिया और वहाँके मुसलमानोको मार उक्त स्थानपर अधिकार कर लिया।

(३) ईंदा राजपूतोंके लिए उस समय मुसलमानोंके खिलाफ मंडोर पर अधिकार बनाए रखना कठिन था। परन्तु चूंडाजीके पास राजपूतोंकी अच्छी सेना थी। अतः ईंदोंने मसलहत समझ मंडोर चूंडाजीको सौंप दिया।

जब हिजरी सन् ७९८ (वि० सं० १४५३) में यह खबर गुजरातके सूबेदार जफरखाँ प्रथमको मिली तब उसने मंडोर पर हमला किया और एक वर्षसे अधिक समयतक मंडोरको घेरे रहा। परन्तु अन्तमें चूंडाजीकी रणचातुरीके आगे उसे असफल हो लौटना पड़ा।

वि० सं० १४५५ में तैमूरके हमलेके कारण देहलीका शासन ढीला पड़ गया था। अतः चूंडाजीने सेनाको तैयार कर वि० सं० १४५६ में नागोर[1] पर आक्रमण किया और वहाँके शासक खोखरको मारकर उक्त-स्थानको अपनी राजधानी बनाया। इसी तरह धीरे धीरे डीडवाना, खाटू, सांभर और अजमेरपर भी इनका अधिकार हो गया[2][3]। इन युद्धोंमें इनके चाचा मल्लिनाथजी और जैतमालजीने भी इनकी सहायता की थी। इसके बाद इन्होंने अपने भाई जैसिंहजीको भगाकर फलोधीपर भी अधिकार कर लिया[4]।

मोहिल और भाटियोंके साथ चूंडाजीका विरोध था[5]। अतः जिस

---

(१) किसी किसी ख्यातमें उस समय नागोर पर खानजादे आजमका अधिकार होना लिखा है।

(२) अजमेर परगनेके छतारी गाँवमें अबतक भी चूंडावत राठोड़ भोमियोंके रूपमें विद्यमान हैं।

(३) टाड साहबके राजस्थानमें लिखा है कि नाडोलपर भी चूंडाजीने अधिकार कर लिया था।

(४) ख्यातोंमें लिखा है कि चूंडाजीके बुलाने पर भी ये उनकी सहायताके लिए नहीं आए। इसीसे नाराज होकर चूंडाजीने इनकी जागीर फलोधीपर अधिकार कर इन्हें महेवाकी तरफ भगा दिया।

(५) वीरमदेवजीको जोहियोंने मारा था। उसका बदला वि० सं० १४५७ में चूंडाजीके भाई गोगादेजीने लिया। परन्तु ये स्वयं भी उसी युद्धमें मारे गए। इनकी मृत्युके समय भाटी राणगदेवने इनसे कुछ अनुचित शब्द कहे थे। अतः

समय मुलतानका नवाब सलीमखां अजमेरमें जियारतके लिए आया उस समय ये लोग उससे मिले और उसे अपने साथ लेकर इन्होंने नागोरको घेर लिया। इसपर चूंडाजीने अपने पुत्रोंको तो नगरसे बाहर भेज दिया और स्वयं यवनसेनासे लड़कर वि० स० १४८० की चैत्र सुदी ३ को भाटी केल्हणके हाथसे मारे गए।

बीकानेर राज्यमेंका चूंडासर गाँव इन्हींका बसाया हुआ समझा जाता है। जोधपुरसे ८ कोस पर चावंडा नामक एक गाँव है। कहते हैं कि वहाँपरका चामुंडा देवीका मन्दिर भी इन्होंने ही बनवाया था।

इनके १७ पुत्र[२] थे। इन्होंने मरते समय अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमल्ल-

---

जिस समय मोहिल राजपूतोंके मुखिया माणिकदेवकी कन्या कोडमदेसे विवाह कर राणगदेवका पुत्र सादा वापिस लौट रहा था उस समय वि० सं० १४६३ में चूंडाजीके पुत्र अडकमलने मेहाराज माखलाके हाथसे उसे मरवा डाला। जब यह समाचार उसके सम्बन्धियोंको मिला तब उन्होंने मौका पा वि० सं० १४६४ में जैसलमेरके भाटी रावल देवराजकी सहायतासे मेहराजको मार डाला। परन्तु जैसे ही इस घटनाका समाचार चूंडाजीको मिला वैसे ही उन्होने घटनास्थलपर पहुँच अपने देश (पूँगल) को लौटते हुए राणगदेवको मार्गमे ही मार डाला। इसीसे इनके और मोहिल व भाटियोंके बीच वैर हो गया था।

(१) उक्त स्थानसे वि० सं० १४७१ का एक लेख मिला है। परन्तु इसमें चूंडाजीका नाम नही है। वडली गॉवसे वि० सं० १४७८ का इनका एक ताम्रपत्र भी मिला है।

(२) इनसे १५ शाखाएँ चलीं। रिणमलोत, सतावत, रणधीरोत, भीमोत, अर्जुनोत, चाचगदे, भूलावत, अडकमलोत, पूनावत, कान्हावत, शिवराजोत, लुंभावत, विजावत, सहसमलोत और हरचन्दोत। इनके एक कन्या भी थी। इसका नाम हंसा था। इसका विवाह चित्तौड़के राणा लाखाजी के साथ हुआ था। चूंडाजीके पुत्र रणधीरजीने झाडोलके झाला हमीरको मारा था।

जीसे प्रतिज्ञा करवा ली थी कि वे इनका राज्य स्वयं न लेकर अपने छोटे भाई कान्हाजीको दे दें। इन्होंने अपने पुत्र अडकमलजीको डीडवाना जागीरमें दिया था। टाड राजस्थानमें इनके राज्य पानेका समय वि० सं० १४३८ और मृत्युका १४६५ लिखा है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

राव कान्हाजी।

चूंडाजीकी इच्छाके अनुसार ये उनके नागोरके राज्यके अधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १४६५ मे हुआ था।

चूंडाजीकी मृत्युके बाद सांखलाराव पूर्णपालने जांगलू देशपर अधिकार कर लिया था। अतः कान्हाजीने उसे हराकर दुबारा उक्त प्रदेशको अपने अधीन किया। इसके बाद नागोरके आसपासके इलाकोंपर भी कब्जा कर लिया। इससे क्रुद्ध होकर वहाँके लोग मुसलमानोंसे जा मिले। मुसलमानोंको मौका मिल गया और उन्होंने नागोरपर अपना अधिकार जमा लिया[1]। इस पर कान्हाजी मंडोर पहुँचे और वहीं पर इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने करीब ११ महीने राज्य किया।

राव सत्ताजी।

नागोरपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया था। अतः कान्हाजीकी मृत्युके बाद उनके भाई सत्ताजी मंडोरके शासक हुए। ये शराब बहुत पीते थे, अतः इन्होंने राज्यका काम अपने भाई रणधीरजीको सौप दिया था।

सत्ताजीके पुत्रका नाम नरबदजी था। उनके और उनके चाचा रणधीरजीके आपसमें झगड़ा रहता था। इसीसे उन्होंने कह सुनकर सत्ता-

(१) किसी किसी ख्यातमें उस समय खानजादे फीरोजका नागोर पर अधिकार करना लिखा है।

जीको भी उनसे नाराज कर दिया। इसपर रणधीरजी अपने बड़े भाई रणमलजीके पास पहुँचे और उन्हें समझाया कि आपने पिताकी आज्ञासे कान्हाजीको राज्य दिया था। परंतु आपके रहते उसपर सत्ताजीका कोई हक नहीं हो सकता। यह बात उनकी समझमें भी आगई और उन्होंने राणा मोकलजीकी सहायतासे सत्ताजीको हटाकर मंडोरपर अधिकार कर लिया। इसपर सत्ताजी और उनके पुत्र नरबदजी भागकर चित्तौड़ चले गए। वहाँपर राणा मोकलजीने इन्हें जागीर देकर अपने पास रख लिया।

सत्ताजीने केवल तीन चार वर्षके करीब राज्य किया था।

१२ राव रणमल्लजी।

ये चूंडाजीके पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४४९ की वैशाख शुक्ल ४ (२८ अप्रेल सन् १३९२) को हुआ था। इन्होंने पिताकी आज्ञासे मारवाड़के राज्यका हक अपने छोटे भाई कान्हाजीको दे दिया और स्वयं वहाँसे जोजावरकी तरफ होते हुए मेवाड़के धणला गाँवमें जापहुँचे। राणा लाखाजीने इन्हें बुलाकर आदरके साथ अपने पास रख लिया और धणला इनको जागीरमें दे दिया।

पिताकी मृत्युके समय ये नागोरमें थे। इसके बाद ये वहाँसे चलकर सोजत पहुँचे और कुछ समय बाद लौटते हुए सलीमखाँको नेश आक्रमणमें मारकर चित्तौड़में राणाजीके पास चले गए।

राणाजी इनका बहुत मान रखते थे और ये भी उनकी तरफसे गुजरात और मालवाके शासकोंसे लड़ते रहते थे। इन्होंने मुसलमानोंसे अजमेर छीनकर वहाँपर राणा मोकलजीका अधिकार करवा दिया था। इसका उल्लेख वि० सं० १४८५ के एकलिंग महादेवके मंदिरके लेखमें है। इन्होंने

वि० सं० १४८२ में[1] सोनगरा चौहान रणधीरको मारकर नाडोलपर भी कब्जा कर लिया था। इसके बाद सेना भेजकर इन्होंने सिंधल राजपूतोंसे बगड़ी और जैतारण तथा हुलोंसे सोजत भी ले लिया।

इसके बाद (छोटे भाई कान्हाजीके मरनेपर) रणधीरजीके कहनेसे इन्होंने मंडोरपर हमला किया और राणा मोकलजीकी सहायतासे वि० सं० १४८४ में अपने भाई सत्ताजी और उनके पुत्र नरबदजीको निकालकर ये वहाँके शासक बन गए[2]।

(१) किसी किसी ख्यातमें इस घटनाका समय वि० सं० १४८० लिखा है।

(२) ख्यातोंमें लिखा है कि कान्हाजीके मरनेपर राणा मोकलजीने और रणमलजीने मंडोरपर आक्रमण किया था। परन्तु उस समय सत्ताजी और उनके भाई रणधीरजीके आपसमें मेल था। क्योंकि सत्ताजीने उन्हे आधा राज्य देनेका वादा किया था, इस लिए रणधीरजी नागोरमें खानजादा फीरोजको सत्ताजीकी मददके लिए बुला लाए। युद्ध हुआ। परन्तु रणमलजीको सफलता न हुई। इससे इन्हें लौट जाना पड़ा। कुछ दिन बाद सत्ताजीके पुत्र नरबदजीने अपने चाचा रणधीरजीको आधा राज्य देनेसे इनकार कर दिया। इस पर नाराज होकर ये रणमलजीके पास चले गए और उन्हें चढा लाए। युद्ध होनेपर सत्ताजी हार गये और रणमलजीने मंडोरपर अधिकार कर लिया। इस युद्धमें नरबदजीकी एक आँख फूट गई और ये बहुत जखमी हुए। अपनी विजय हो जानेपर राजनीतिमें चतुर रणमलजीने मेवाड़की सेनाको मंडोर नगरके अन्दर ले जाना उचित न समझा। यद्यपि राणाजीके सरदारोंने नगर व किला देखनेका बहुत आग्रह किया तथापि रणमलजीने उन्हें संग्रामभूमिसे ही विदा कर दिया। इससे नाराज होकर लौटते समय वे लोग जखमी नरबदजीको भी अपने साथ उठा ले गए और उनका इलाज आदि करवाकर उन्हें रणमलजीके विरुद्ध भड़काया। मंडोरपर रणमलजीका अधिकार हो जानेके बाद कुछ दिन तो उनके भाई सत्ताजी उन्हींके पास रहे और बादमें आसांपकी तरफ चले गए। नरबदजी भी तन्दुरुस्त होजानेपर अपने पिताके पास ही जा पहुँचे। कहते है कि

इसके बाद वि० सं० १४८५ में इन्होंने राणा मोकलजीकी सहायता कर फीरोजसे नागोर छीन लिया। इसका उल्लेख वि० सं० १५१७ के राना कुंभाजीके लेखमें किया गया है।

रणमलजीने चूडाजीके वैरका प्रतिशोध लेनेके लिए जैसलमेरपर भी कई वार हमले किये और उसे लूटा। इसीसे लाचार हो रावल लखमणजीने अपनी कन्याके साथ इनका विवाह कर इनसे सुलह कर ली। इसके बाद अपने पुत्र जोधाजीको साथ लेकर रणमलजी तीर्थयात्राको गए। उस समयतक पाली, सोजत, जैतारण, नाडोल, और मंडोरपर इनका अधिकार था। परन्तु जालोर बिहारी पठानोंके अधिकारमें था। उन्होंने चौहान वीसलदेवके मंडोरमें मारे जानेके बाद वि० सं० १४५० के करीब उसकी स्त्री पोपासे उक्त स्थान छीन लिया था। जिस

नरबदजीके पास ईंदा जातिके राजपूत उगमसीका पुत्र ऊदा था। उसने यह प्रण कर रक्खा था कि समरभूमिमे स्वामीकी आज्ञाके विना पृथ्वीपर कभी न गिरूँगा। जब नरबदजीके और रणमलजीके बीच युद्ध हुआ तब उस युद्धमे यह भी बहुत घायल हो गया। परन्तु अपने पूर्वकृत प्रणको निभानेके लिए यह तलवारके सहारेसे घुटनोंके बल पृथ्वीपर झुककर खडा रहा। यद्यपि पास ही नरबदजी भी घायल होकर पडे थे तथापि अचेतन होनेके कारण वे अपने स्वामिभक्त सेवककी हालतसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। इतनेहीमें उड़ता हुआ एक गीध आकर नरबदजीके शरीरपर बैठ गया और उनकी ऑख निकालनेका इरादा करने लगा। ऊदाजी यद्यपि मरणासन्न हो रहे थे तथापि स्वामीकी यह दशा उनसे देखी न गई और उन्होने अपने घावोके पाससे लटकते हुए मासको तोड तोड़कर गीधपर फैंकना शुरू किया। इसपर वह गीध उड गया और साथ ही नरबदजीको भी कुछ चैतन्यता आगई। उन्होने ऊदाजीकी दशा देख आज्ञा दी कि अब आप तकलीफ न करें, समरभूमिमे लेट जॉय। बस आज्ञा पाते ही वीर ऊदा पृथ्वीपर लेट गया और साथ ही उसके प्राण स्वर्गको प्रयाण कर गए।

समय रणमलजी तीर्थयात्रासे लौटे उस समय उन्होंने चढ़ाई कर मलिक हसनखाँसे जालोर भी छीन लिया।

कुछ समय बाद चावड़ोंने मेवाड़पर चढ़ाई की; परन्तु रणमलजीने राणाजीकी सहायता कर उन्हें भगा दिया।

रणमलजीने अपने राज्यमें एक ही प्रकारके नाप और तौलका प्रचार किया था।

वि० सं० १४९० में मुसलमानोंने गागरूनके खीची अचलाजीपर आक्रमण किया। यह खबर पाकर रणमलजी उनकी सहायताको चले। परन्तु मार्गमेंही इन्हें राणा खेताके दासीपुत्र, चाचा और मेरा द्वारा राणा मोकलजीके मारे जानेकी सूचना मिली। इसपर ये शीघ्र ही मेवाड़ पहुँचे और अपने अल्पवयस्क भानजे राणा कुम्भाको वहाँकी गद्दीपर बिठाकर उसके राज्यका प्रबन्ध करने लगे।

इन्होंने चाचा और मेराको तो मार डाला; परन्तु महपा पँवार—जो मोकलजीके मारनेमें शरीक था—औरतका भेस रखकर भाग निकला और मांडूके बादशाह महमूद खिलजीके पास पहुँचा। वहाँ उसे मोकलजीके बड़े भाई चूंडाजीने बादशाहसे कह सुनकर नौकर करवा दिया। यह समाचार पाकर रणमलजीने कुंभाजीको साथ ले मांडूपर चढ़ाई की। यह देख महमूदने महपाको वहाँसे निकाल दिया। इसपर महपा गुजरातके बादशाह अहमदशाहके पास चला गया। इसपर रणमलजीने मेवाड़की सेनाको लेकर उसपर भी आक्रमण किया। सारंगपुरमें युद्ध हुआ। इसमें रणमल्लजीकी विजय हुई। बहुतसी ख्यातोंमें रणमलजी द्वारा अहमदशाहका कैद किया जाना भी लिखा है।

परन्तु रणमलजीका इस प्रकार प्रबन्ध करना मेवाड़वालोंको पसन्द

न आया और इसीसे चाचाके पुत्र आका, परमार महपा[1], राणा मोकजीके बड़े भाई चूंडा आदिने मिलकर कुंभाजीको राज्य छिन जानेका भय दिखलाकर भड़काया। इसपर कुंभाजीने वि० सं० १४९५ की कार्तिक बदी ३० (दिवाली) को रणमलजीको सोते हुएमें[2] मरवा डाला। जब यह संवाद उनके पुत्र जोधाजीको मिला तब वे मय ७०० साथियोंके मारवाड़की तरफ भाग चले। परन्तु राणाजीकी फौजने इनका पीछा किया। इससे लड़ते भिड़ते ये थलकी तरफ चले गए। मंडोरपर राणाजीका अधिकार हो गया[3] और उन्होंने सहसमलके पुत्र (राव चूंडाजीके पौत्र) राघवदेवको रावकी पदवी देकर सोजतका अधिकारी बना दिया।

नरबदजी भी मेवाड़की सेनाके साथ थे। राणा कुंभाने इन्हें मंडोरका

---

(१) महपा कुछ दिन इधर अधर भटककर वापिस मेवाड़मे आ गया था और छिपकर षड्यन्त्र रचता था।

(२) सोते हुए रणमलजीको चारपाईसे बाँधकर उनपर प्रहार किया गया था। फिर भी जैसे ही वे जगे पलंगसहित उठ खड़े हुए और कई शत्रुओंको मारकर वीरगतिको प्राप्त हुए। कहते हैं कि चारपाईके लंबाईमें बड़ी होनेसे उनके पैर जमीनपर न पहुँच सके। इसीसे अन्तमें वे गिर पड़े। उसी दिनसे मारवाड़मे चारपाईसे पैर बाहर निकलते रखकर सोनेकी प्रथा चली है। मेवाड़वालोंका विचार जोधाजीको भी मारनेका था परन्तु रणमलजीने वहाँके वातावरणको बिगड़ता हुआ देख उन्हें पहलेसे ही सचेत कर गढ़पर आनेकी मनाई कर दी थी।

(३) नारलाई (गोडवाड़) के जैनमन्दिरवाले वि० सं० १४९६ के राणा कुंभाके लेखसे प्रकट होता है कि उस समयके पूर्व ही मण्डोरपर उनका अधिकार हो गया था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वि० सं० १४९६ में रणमलजीके मारे जाने पर ही मण्डोर राणा कुंभाके हाथ लगा होगा।

शासक बना देनेका लोभ दिया था । अतः इन्होंने जोधाजीको मार डाल-
नेकी बहुत कोशिश की । परन्तु वे इनके हाथ न आए ।

रणमल्लजी बड़े वीर थे और इन्हींकी सहायतासे राणा कुंभाजीको
मेवाड़का राज्य मिला था । इसीपरसे मारवाड़में कहावत चली है कि
'**रिडमलां थापिया जिके राजा**' । रिडमलजीके ३१ पुत्र थे

(१) टाड साहबके राजस्थानमें राणा कुंभाजीकी राज्यप्राप्तिका समय वि० सं० १४७५ (ई० स० १४१९) लिखा है । तथा वहीं पर यह भी लिखा है कि यदि इनको राठोड़ राजाकी सहायता न मिलती तो न जाने आज मेवाड़का इतिहास किस तरहका होता । इस सहायता मिलनेके दो कारण थे । एक तो इन्होंने स्वयं राठोड़राजसे सहायताकी प्रार्थना की थी और दूसरा राणा कुंभा उनके भानजे थे । इसीसे कुछ तो कर्तव्यज्ञानके कारण और कुछ स्नेहवश राठोड़ राजाने राणा कुंभाजीके लिए इतना कष्ट और परिश्रम उठाया था ।

पहले चूंडाजीके इतिहासमें (नीचेकी टिप्पणीमें) लिखा जा चुका है कि उनका वि० सं० १४७८ का एक ताम्रपत्र मिला है । इससे वि० सं० १४७५ में रणमलजीका कुंभाजीकी सहायता करना सिद्ध नहीं हो सकता । अतः कुंभाजीका राज्याभिषेक वि० सं० १४९० में ही हुआ था ।

कर्नल टाडने राणा मोकलजीके इतिहासमें लिखा है कि रणमल्लजीकी कन्याका विवाह राणा लाखाके साथ हुआ था । इसीसे मोकलजीका जन्म हुआ और इन्हींके राज्यसमय इनकी बाल्यावस्थाके कारण रणमलजीने आकर मेवाड़का राज्यभार हाथमें ले लिया था । अन्तमें चित्तौड़वालोंने साजिश कर सोते हुए इनको मार डाला और मारवाड़ पर अधिकार कर लिया ।

रणमल्लजीके पुत्र जोधाजीको भागकर जान बचानी पड़ी । उक्त इतिहासके अनुसार इस घटनाका समय ई० स० १३९८ (वि० सं० १४५५) के करीब आता है । अतः उस समय तो रणमल्लजीका होना असम्भव ही प्रतीत होता है ।

(२) इनसे निम्नलिखित शाखाएँ चलीं । इनमेंसे पाँच तो अखैराजसे चलीं और बाकी दूसरोंसे । राणासे राणावत, भदासे भदावत । ये दोनों अखैराजजीके पुत्र थे । अखैराजजीके पौत्र कूंपासे कूंपावत । पंचायनके पुत्र जैतासे जैतावत ।

इनमें सबसे बड़े पुत्रका नाम अखैराज था। उन्होंने हुलवंशी राजसिंहको मारकर सोजतपर अपना अधिकार जमाया था। अबतक बगड़ी (सोजत परगनेमें) नामक गाँव इन्हींके वंशजोंके अधिकारमें है और जोधपुरमें नवीन महाराजाके गद्दी बैठनेके समय यहींके ठाकुर पहले पहल उनको तिलक करते हैं।

१३ राव जोधाजी।

ये रणमल्लजीके द्वितिय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४७२ की वैशाख कृष्णा १४ (ई० स० १४१५ की ९ अप्रेल) को हुआ था। जिस समय रणमल्लजी चाचा मेराको मारनेके लिए मेवाड़की तरफ गए उस समय इनकी अवस्था १८ वर्षकी थी और ये भी उनके साथ गए थे। जब रणमल्लजी मारे गए तब मेवाड़वालोंने भागते हुए जोधाजीका पीछा किया। परन्तु राठोड़ वीरोंने मेवाड़की सेनासे युद्ध छेड़ इनको निकल जानेका मौका दिया। जिस समय ये भागे जा रहे थे उस समय मार्गमें इनकी भेट अपने भाई कांधलजीसे हो गई और

कलासे कलावत। कांधलसे कांधलोत। चापासे चापावत। लाखासे लाखावत। माडणसे माडणोत। रूपासे रूपावत। डूंगरसीसे डूंगरोत। करणसीसे करणोत। बीरासे बीरावत। साडासे साडावत। मंडलासे मंडलोत। अडमलसे अडवालोत। सिंघासे रिडमलोत। हापासे रणमलोत। नाथूसे नाथावत और हरखावत। भाखरसीसे बाला। जगमालसे जगमालोत। जैतमालसे भोजावत। पातासे पातावत। (खेनसीओत, करमचंदोत, ऊदावत जैतसीओत आदि शाखाएँ भी इन्हींसे चली मानी जाती हैं।)

इन सब पुत्रोंमें अखैराजजी बड़े थे। परन्तु उनके वंशजोंको तो बगड़ी नामक गाँव (सोजत परगनेमें) जागीरमें मिला और जोधाजी मंडोरके शासक हुए। अखैराजजीके पुत्रका नाम मेहराज और पौत्रका नाम कूंपा था।

(१) किसी किसी ख्यातमें इनका जन्म वैशाख सुदी ४ को लिखा है।

दोनों मिलकर कोडमदेसर[1] (बीकानेरमें) की तरफ निकल गए और इनके राज्यपर मेवाड़वालोंका अधिकार हो गया। यद्यपि इन्होंने अनेक बार अपने पैतृक राज्यको हस्तगत करनेकी चेष्टा की तथापि इन्हें सफलता न हुई। इसी गड़बड़में राना कुंभाजीने राव चूंडाजीके पौत्र राघवदेवको सोजतका परगना देकर राठोड़ोंके उद्योगको शिथिल करनेकी चेष्टा की। जब इससे भी शान्ति न हुई तब मारवाड़की गद्दी उसे दे दी। परंतु जोधाजीके आगे इनकी एक न चली। अन्तमें करीब पन्द्रह वर्षके लगातार परिश्रमके बाद वि० सं० १५१० में इन्होंने राणाजीके सेनापतियो—आका सीसोदिया और आहडा हिंगोला आदि—को मारकर मंडोरपर अधिकार कर लिया[2]। इसके बाद सोजत पर भी इनका अधिकार[3]

(१) उक्त स्थानसे वि० सं० १५१६ का इनका एक लेख मिला है। इससे ज्ञात होता है कि कोडमदेसर नामक तालाव जोधाजीकी मा कोडमदेकी यादगारमें बनाया गया था। (जर्नल. बंगाल एशियाटिक सोसाइटी भाग १२, पृ० २१७।)

(२) इस युद्धमें साखला हड़बू और भाटी जैसा भी इनके साथ था। मंडोरमें जो वीरोकी मूर्तियाँ हैं उनमेंसे कुछ तो इन्होंने और कुछ इनके वंशज महाराजा अजीतसिंहजीने बनवाई थीं। जोधाजीके भाई चापाजीने भी इन्हें मंडोर लेनेमें बड़ी सहायता दी थी और मेवाड़की सेनाके साथके युद्धमें वे घायल भी हो गए थे। वे बडे वीर थे। जोधाजीने जिस समय मेवाड़पर चढाई की उस समय भी वे उनके साथ थे। वि० सं० १५२२ में उन्होंने माडूके बादशाहको व सिंधलोंको पूनागरकी पहाडीके पास परास्त किया था। इसके बाद वि० सं० १५३६ में महाराणा रायमलजीको और सिंधलोंको मणियारी नामक स्थानमें पराजित किया। परन्तु इसी युद्धमें जखमी होकर ये वीरगतिको प्राप्त हुए।

(३) ख्यातोंमें लिखा है कि जिस समय जोधाजी सोजतमें थे उस समय नरबदजी गुजरातके बादशाहके पास पहुँचे और उससे धनकी मदद प्राप्त कर उन्होंने मारवाड़के बहुतसे सरदारोंको अपनी तरफ मिला लिया। उसके बाद उन सरदारोंकी सहायतासे कुछ दिनके लिये उन्होने मंडोरपर अधिकार भी कर लिया। परन्तु जोधाजीने शीघ्र ही उन्हें वहाँसे निकाल बाहर किया।

हो गया और सरदारोंकी सलाहसे वहीं रहकर ये सेना इकट्ठी करने लगे ।

जब यह समाचार राणा कुंभाजीको मिला तब ये स्वयं सेना लेकर लड़नेको चले । जोधाजी भी उनके आगमनकी सूचना पा ससैन्य मुकाबलेके लिए रवाना हुए । राठोड़ोंकी वीरवाहिनीको युद्धार्थ आती देख कुंभाजीने युद्धका विचार त्याग दिया और वे अपने देशकी तरफ लौट चले[1] । जोधाजीने पिताके रक्तका बदला लेनेका यही समुचित अवसर समझ गोड़वाड़को लूट लिया और वहाँसे आगे बढ़ चित्तौड़ पर आक्रमण किया । परन्तु कुंभाजी नगर छोड़कर भाग गए । वि० सं० १५१३ में इन्होंने चित्तौड़ पर घेरा डाल वहाँके सुदृढ दुर्गके किवाड़ जला दिये और नगरमें लूट मार मचा दी ।

यह देख राणाजीने अपने पुत्र ऊदाजीको उनके पास सन्धि कर लेनेके लिए भेजा । अन्तमें इनके आपसमें सन्धि हो गई[2] । इसके

---

(१) कहते हैं कि इस सेनामें बहुतसे योद्धा बैलगाड़ियोंमें बैठकर लड़ने गए थे । यह देख राणा कुंभाजीको निश्चय हो गया कि ये लोग मरने मारनेके इरादेसे ही आ रहे है । हार जाने पर भी इनका पीछे लौटना या भागना असम्भव है । अतः उन्होंने ऐसी सेनासे युद्ध करना उचित न समझा ।

(२) नागोरके पठान शासक गुजरातके बादशाहके भाइयोंमेंसे थे । वि० सं० १५१२ में जब फीरोजखां मर गया तब उसके भाई मजाहिदखाने अपने भतीजे शम्सखांसे नागोर छीन लिया । इसपर वह भागकर राणा कुम्भाजीके पास सहायता मॉगने गया । राणाजीने उनकी आपसकी फूटसे लाभ उठानेके इरादेसे नागोरपर चढ़ाई की । युद्ध होनेके बाद मजाहिदखा गुजरातकी तरफ भाग गया । परन्तु इसी अवसरपर महाराणाजीके और शम्सखांके आपसमें झगड़ा हो गया । उस समय तो राणाजी लौट कर उदयपुर चले गए । परन्तु कुछ ही दिन बाद उन्होंने फिर नागोरपर चढ़ाई की । शम्सखा भागकर अहमदाबाद (गुजरात) पहुँचा और उसने अपनी लड़कीका विवाह वहॉके सुलतान कुतुबशाहके साथ कर दिया । इसपर कुतुबशाहने इसकी सहायताके लिए सेना भेजी । वि० सं० १५१५ में फिर एकवार राणाजीने नागोरपर हमला किया । वि० सं० १५२६ में शम्सखां मारा गया ।

अनुसार जहाँ तककी पृथ्वीमें बाँवल (बबूल) के वृक्ष उगते थे वहाँतककी पृथ्वी मारवाड़ राज्यकी हुई और जहाँतककी जमीनमें आँवलके दरख्त लगते थे वहाँ तककी जमीन मेवाड़के नीचे रही ।

जोधाजी बड़े वीर और प्रतापी राजा थे । इन्होंने वि० सं० १५१६ की ज्येष्ठ शुक्ला ११ शनिवार (१२ मई सन् १४५९) के दिन मंडोरसे ६ मील दक्षिणमें नया किला बनवानेका प्रारम्भ किया[1] और इसके बन जाने पर उसके निकट अपने नाम पर जोधपुर नगर बसाया। इसी किलेके पास वि० सं० १५१६ में ही इनकी रानी जसमादेने एक तालाव बनवाया था । यह रानीसागरके नामसे प्रसिद्ध है और इसी समयके आसपास इनकी सोनगरी रानी चाँदकँवरने चाँद बावडी बनवाई । वि० सं० १५१७ में जोधाजीने अपने इसी नए किलेमें मंडोरसे लाकर चामुंडाकी मूर्ति स्थापित की ।

वि० सं० १५१८ में जोधाजीने अपने पुत्र बरसिंघजी और दूदाजीको मेड़ताकी तरफ भेजा और मालवाके हाकिमसे अजमेर परगने का बहुतसा प्रदेश छीनकर इनको दिया । (वि० सं० १५२५ में बरसिंघजीने मेड़तापर पूरा पूरा अधिकार कर लिया ।)

इसी वर्ष जोधाजी तीर्थयात्राके लिए रवाना हुए । आगरेमें इनकी कन्नौजिया राठोड़ करनसे मुलाकात हुई । यह करन देहलीके

---

(१) जोधपुरकी ख्यातोंमें जोधाजीके किले बनवानेका संवत् १५१५ लिखा है । परन्तु यह संवत् मारवाड़ी विक्रम संवत् है जो श्रावणसे प्रारम्भ होता है । परन्तु इन्होंने ज्येष्ठमें किलेका प्रारम्भ किया था । (यदि सं० १५१५ ही माना जाय तो उस दिन ई० स० १४५८ की २५ मई थी ।) अतः आम तौर पर माना जानेवाला विक्रम संवत् चैत्रमें ही बदल चुका था । यदि इसे साधारण वि० सं० १५१५ ही मानें तो गणना करनेसे उस संवतकी ज्येष्ठ शुक्ल ११ को शनिवार नहीं आता है ।

बादशाह बहलोल लोदीके उमराओंमें था । उसीके द्वारा रावजी बादशाहसे मिले और समय पड़नेपर मदद देनेका वादा कर तीर्थों पर लगाया हुआ कर बादशाहसे माफ करवा दिया । जिस समय ये तीर्थस्नान करते हुए गयाकी तरफ चले उस समय उक्त प्रदेश हुसेनशाहके अधिकारमें था और उसकी राजधानी जौनपुर थी । जोधाजीने उससे भी मुलाकात की और उसके दुश्मनोंपर चढ़ाई करनेका वादा कर गयाके यात्रियोंपर लगनेवाला कर भी छुड़वा दिया ।

घोसूंडी (मेवाड़) से वि० सं० १५६१ का राणा रायमलजीका एक लेख मिला है । उसमें लिखा है:—

श्रीयोधक्षितिपतिरुग्रखड्गधारानिर्यातप्रहतपठाणपारशीकः । ५ ।
पूर्वानतार्प्सद्भियया विमुक्तया काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपाश्रितः ।

(जर्नल, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ५६, अङ्क १, नं० २)

अर्थात्—जोधाजीने पठाणोंको परास्त किया, गयाके यात्रियोंपर लगनेवाली लाग छुड़वाई और काशीमे सुवर्णका दान दिया ।

इसके बाद लौटते हुए रावजीने पूर्वप्रतिज्ञानुसार हुसैनशाहके शत्रुओंपर आक्रमण कर उन्हे इधर उधर भगा दिया । ये लोग ग्वालियरके पास ही छोटे छोटे किले बनाकर रहते थे ।

इस प्रकार द्वारिका, प्रयाग, काशी और गया आदि तीर्थस्थानोंमें होते हुए रावजी जोधपुर पहुँचे । इसी अवसरमें सींधल आपमलने देवीदासके पिताको मार सिवाना ले लिया था । जब यह समाचार राव जोधाजीको मिला तब वे आपमलसे अप्रसन्न हो गए । यह देख देवीदासने पिताके वैरका प्रतिशोध लेनेके लिए भादराजूनपर चढ़ाई की । इसमें आपमल मारा गया और सिवाना वापिस देवीदासजीके अधिकारमें आ गया ।

जोधाजीके पुत्र नींबाजी सोजतमें और सूजाजी फलोदीमें रहकर वहाँ-का प्रबंध किया करते थे। परंतु वि० सं० १५२१ में बीसल जैसाके हाथसे जखमी होकर नींबाजी कुछ समय बाद ही मर गए। इसपर राव-जीने सूजाजीको फलोदीसे बुलाकर सोजत भेज दिया।

वि० सं० १५२४ के करीब नागोरके शासक कायमखानी फतन-खांके और जोधाजीके युद्ध हुआ। फतनखां हारकर भाग गया। इस युद्धमें करमसी और रायपालने भी साथ दिया था। इससे रावजीने खींव-सर करमसीको और आसोप रायपालको दी, फतनखां भागकर झूंझनूकी तरफ चला गया।

वि० सं० १५२५ में राना कुंभाजीके पुत्र ऊदाजीने अपने पिताको मार डाला और इस भयसे कि कहीं जोधाजी इस अवसरपर कुछ गड़बड़ न करें साँभर और अजमेर इन्हें दे दिया।

वि० सं० १५३१ के करीब जोधाजीने छापर (द्रोणपुर—बीकानेर-मेंके लाडनूके इलाके) के मोहिल राजाको परास्त कर भगा दिया। उक्त घटनाके बाद मोहिल वैरसलजी और नरबदजी भागकर झूंझणू (फतेपुर) चले गए। कायमखानी फतनखांने इन्हें बैरीका बैरी समझ अपने पास रख लिया। यह देख जोधाजीने फतनखांपर चढ़ाई कर उसे हराया और फतेपुरको जला दिया। इसपर वैरसल तो देहलीके बादशाह बहलोल लोदीके पास और नरबद जौनपुरके हुसैनशाहके पास पहुँचा। कहने सुननेपर इन दोनोंको सहायता मिल गई और दोनों ही दो सेना लेकर राव जोधाजीपर चढ़ आए। झूंझणूके पास भीषण युद्ध हुआ। परन्तु शाही सेनाओंको हारकर भागना पड़ा। विजयी जोधाजी लौटकर द्रोणपुर आये और उन्होंने अपने पुत्र जोगाजीको वहाँका अधिकार दिया। परन्तु ये आलस्यके कारण उक्त प्रदेशका प्रबन्ध ठीक

तौरसे न कर सके। इससे जोधाजीने उनके स्थानपर उनके भाई बीदाजीको भेज दिया। इसीसे उक्त प्रदेश बीदावाटीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। (किसी किसी ख्यातमें इस घटनाका संवत् १५२६ लिखा है।)

वि० सं० १५३५ में जालोरके मुसलमानों और सीरोहीके राव लाखाजीने मारवाड़में गड़बड़ शुरू की। इसपर रावजीने भी इनके मुकाबलेके लिये सेना भेजी। अन्तमें हारकर इन दोनोंको जोधाजीसे सन्धि करनी पड़ी।

जोधाजीके एक पुत्रका नाम वणवीरजी था। इनका विवाह सीरोही-में हुआ था। अतः वि० सं० १५२८ में जिस समय ये वहाँ थे उस समय शत्रुने सीरोहीपर आक्रमण किया और ये सीरोहीवालोंकी तरफसे लड़ते हुए मारे गए।

वि० सं० १५२२ के करीब जोधाजीके पुत्र बीकाजी जांगलूकी तरफ चले गये थे। वहाँपर उन्होने जांगल देशके सांखला राजा जेसलको मार उक्त प्रदेशपर कब्जा कर लिया और वि० सं० १५४२ में वहाँपर डेरा डाला जहाँपर बादमें उन्होंने अपने नामपर बीकानेर नामक नगर बसाया। जोधाजीके छोटे भाई काधलजी भी बीकाजीकी मददके लिए उनके साथ गये थे[1]। ये भी बड़े वीर थे और इन्होंने वि० सं० १५४४ के करीब हासी हिसारतकका देश दबा लिया था। परन्तु अन्तमें

(१) ख्यातोंमे लिखा है कि एक रोज दरबारके समय बीकाजी अपने चाचा कांधलजीसे धीरे धीरे बातचीत करने लगे। इस पर जोधाजीने व्यङ्गसे उनसे कहा कि क्या चाचा-भतीजे आज किसी नये प्रदेश पर अधिकार करनेका विचार कर रहे हैं? इसपर काधलजीने कहा कि यह कोई बड़ी बात नहीं है, ईश्वर चाहेगा तो ऐसा ही होगा। कहते हैं कि इसी पर ये नापाजी सांखलेकी सलाहसे बीकाजीको साथ लेकर जांगलूकी तरफ चले गए।

ये हिसारके हाकिम सारंगखांके हाथसे मारे गए। जैसे ही जोधाजीको यह समाचार मिला वैसे ही उन्होंने बीकाजीको साथ लेकर उक्त हाकिम पर चढ़ाई की और उसे मार अपने भाईका बदला लिया। वापिस द्रोणपुरमें पहुँचनेपर बीकाजीको रावकी पदवी देकर स्वतंत्र शासक बनवा दिया और जोधपुरसे छत्र चामर आदि राज्यचिह्न भेजनेका वादा किया। कहते हैं कि बीकाजीने वि० सं० १५४५ की वैशाख सुदी २ को बीकानेरके किलेकी नींव रक्खी थी।

वि० सं० १५४३ मे आमेरके राजा चन्द्रसेनने सांभरपर फौज भेजी। परन्तु उसे हारकर लौटना पड़ा।

वि० सं० १५४४ में जोधाजीकी आज्ञासे उनके पुत्र दूदाजीने जैतारणके सिंधल मेघापर चढ़ाई की। यह चढ़ाई नरबदजीके भाई आसकरणकी मृत्युके वैरके प्रतिशोधके लिए की गई थी। जैतारण पहुँचनेपर दूदाजीके और मेघाजीके बीच द्वंद्वयुद्ध हुआ। मेघा मारा गया।

वि० सं० १५४४ के बाद जैसलमेरके रावल देवीदासजीने सेना भेजकर शिव नामक स्थानपर अधिकार कर लिया। परन्तु रावजीकी सेनाके आनेपर रावलजीकी सेनाको वहाँसे भागना पड़ा।

वि० सं० १५४५ की वैशाख शुक्ल ५[1] (ई० स० १४८८ की १८ अप्रेल) को जोधपुरमें ही जोधाजीका स्वर्गवास हुआ। उस समय इनकी अवस्था ७३ वर्षकी थी[2]।

इन ७३ वर्षोंमेंसे २३ वर्ष तो ये अपने पिताकी सेवामें रहे, १५

---

(१) कहीं कहीं माघ सुदी ५ लिखी है।

(२) जोधाजीकी जन्मतिथि कहीं कहींपर वैशाख वदी ४ लिखी मिलती है।

वर्षतक विपत्तिमें पड़ इधर उधर भागते रहे और इसके बाद ३५ वर्ष तक राज्यका सुख भोगा । इनके १९ पुत्र थे ।

जोधाजीके समय देहलीकी बादशाहत शिथिल पड़ गई थी । गुजरात, मालवा, जौनपुर, मुलतान आदिके शासकोंने अपने अपने स्वतंत्र राज्य बना लिए थे और वे लोग एक दूसरेका मुल्क दबानेके लिए आपसमें लड़ा करते थे। उनके इसी गृहकलहसे जोधाजीको राज्यविस्तारका अच्छा मौका मिल गया था और इन्होंने मंडोर, मेड़ता, नागोर, फलोधी, महेवा, भाद्राजून, पौकरण, सोजत, गोड़वाड़, जैता-रण, सिवाना, साँभर और अजमेरका बहुतसा भाग अपने अधिकारमें कर लिया था ।

(वि० स० १५१२ के करीब जोधाजीने मंडोरके पास जोधेलाव नामक तालाब बनवाया था । सोजतका किला भी इन्हींके समय बना था ।)

---

(१) इनमे ११ शाखाएँ चलीं—बरसिंहोत, बीका, बीदावत, वनबीरोत, (जगाके पुत्रसे) खंगारोत, करमसोत, भारमलोत, शिवराजोत, रायपालोत, (दूदासे) मेड़तिया और चाँदावत । इसी दूदाजीके पुत्र रत्नसिंहकी कन्याका नाम मीराबाई था । इसका विवाह राणा साँगाके पुत्र भोजराजसे हुआ था ।

जोधाजीकी एक कन्याका नाम शृंगारदेवी था । इसका विवाह मेवाड़के राणा रायमलके साथ हुआ था ।

जोधाजीने वि० सं० १५१६ की मार्गशीर्ष शुक्ला २ को जोधपुरसे एक ताम्र-पत्र दिया था । यद्यपि यह असली नहीं मिला है, तथापि वि० सं० १६३५ में उनके वंशज महाराजा उदयसिंहजीने जो इसकी एवजमें सनद दी थी उससे उप-र्युक्त घटना प्रकट होती है । उसमें जोधाजीकी उपाधि महाराव लिखी है और उससे ज्ञात होता है कि धूहडजीके समय लुंब ऋषि नामक ब्राह्मण कन्नौजसे राठोड़ोंकी इष्टदेवीको लाया था ।

जोधाजीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम जोगाजी था । परन्तु जिस समय उनके राज्यतिलकका समय आया उस समय ये नहाने धोनेमें लगे

१४ राव सातलजी।

ये जोधाजीके पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १५४५ की ज्येष्ठसुदी ३ को गद्दीपर बैठे। (इनका जन्म वि० सं० १४९२ में हुआ था।)

वि० सं० १५४७ में मारवाड़में अकालका प्रकोप हुआ। इसपर सातलजीके भाई बरसिंघजी और दूदाजीने मेड़तेसे चलकर साँभर पर आक्रमण किया और वहाँके मुसलमान हाकिमको परास्तकर नगरको लूट लिया। यह खबर सुनकर वि० सं० १५४८ के चैत्र महीनेमें अजमेरके मल्लूखां (मेलिकखां) ने मेड़ता गाँवपर चढ़ाई की। जिस दिन मल्लूखां पीपाड़के पास कोसाना नामक स्थानमें पहुँचा उस दिन वि० सं० १५४८ की चैत्र शुक्ला तृतीया (सन् १४९१ की १३ मार्च) थी। अतः उस गाँवकी कुछ स्त्रियाँ गौरीके पूजार्थ बस्तीके बाहर गई हुई थीं। मल्लूखाँने इन सबको पकड़कर कैद कर लिया। जब इस घटनाकी सूचना रावजीको मिली तब उन्होंने अपने भाई सूजाजीको साथ लेकर इधरसे मल्लूखांपर आक्रमण कर दिया और उधरसे बरसिंघजी और दूदाजी भी चढ़ आए। युद्ध होनेपर

हुए थे। सरदारोंने जब इन्हें मुहूर्त बीतता हुआ देख बाहर बुलवाया तब भी ये आनेमें देर करते रहे। इसपर उन्होंने मिलकर सोचा कि ये तिलकके समय ललाट दूर कर रहे हैं, अतः इनके भाग्यमें राज्य नहीं है। यह विचार इनके छोटे भाई सातलजीको राजगद्दीपर बिठा दिया। बादमें जोगाजीको (बीलाड़ा परगनेका) खारिया नामक गाँव जागीरमें दिया गया। वहाँसे वि० सं० १५७० का इनके स्वर्गवास होनेके समयका एक शिलालेख मिला है।

(१) किसी किसी ख्यातमें मल्लूखांके स्थानपर अजमेरके हाकिमका नाम सिरियाखां लिखा है।

मल्लूखां भाग निकला और उसका सेनापति घडूका मारा गया। यद्यपि इस प्रकार राठोड़ वीरोंने विजयके साथ साथ कैद की हुई स्त्रियों-को भी प्राप्त कर लिया तथापि इस युद्धमें राव सातलजी ऐसे घायल हो गए कि उसी दिन रात्रिके समय उनका देहान्त हो गया और वहींपर कोसानेके तालावके पास इनका चबूतरा बनवाया गया।

वि० सं० १५१५ का एक लेख फलोदी परगनेके कोढू नामक स्थानसे मिला है। इसमें जोधाजीकी उपाधि महाराव और सातलजीकी राव लिखी है। इससे ज्ञात होता है कि जोधाजीने इनको फलोदीका परगना जागीरमें दिया था और उनके समयमें ही ये वहाँका शासन करते थे। वहींपर पोकरनके पास इन्होंने अपने नामपर सातलमेर नामका गाँव बसाया था।

सातलजीकी रानीका नाम फूला था। यह भाटी राजपूतोंकी कन्या थी। वि० सं० १५४७ मे इसने फुलेलाव नामका तालाव बनवाया था। यह अबतक जोधपुर शहरमें विद्यमान है।

सातलजीने केवल तीन वर्ष ही राज्य किया। इनके कोई पुत्र नहीं था। इससे इन्होंने अपने भाई सूजाजीके पुत्र नराजीको गोद ले लिया। परन्तु नराजीके वि० सं० १५३२ के लेखमे उनके पिताका नाम सूर-

(१) मारवाड़मे चैत्रमासमे जो घुड़लेका मेला होता है, वह इसी घडूकेकी यादगारमें किया जाता है। उस दिन कुम्हारके यहाँसे एक छेदोवाली मटकी लाई जाती है। इसके छेदोंसे घडूलेके शरीरमें लगे हुए जख्मोका तात्पर्य है। यह त्योहार उक्त घडूलेकी कन्याने अपने मृत पिताकी यादगारमें प्रचलित किया था।

(२) जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, सन् १९१६, पृ० १०८।

(३) वि० सं० १५३२ का नराजीका एक लेख फलोदीसे मिला है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग १२, पृ० ९४) किसी किसी ख्यात-तमें लिखा है कि नराजीने ही सातलजीके नामपर सातलमेर बसाया था। यह गाँव आजकल बिलकुल उजड़ा हुआ है।

जमल लिखा होनेसे प्रकट होता है कि उक्त संवत्के बाद ही सातल-जीने उन्हें गोद लिया होगा।

१५ राव सूजाजी।

ये राव सातलजीके छोटे भाई थे और उनके बाद वि० सं० १५४८ की वैशाख सुदी ३ को ५२ वर्षकी अवस्थामें राज्यके अधि-कारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १४९६ की भादौ वदी ८ (ई० स० १४३९ की ३ अगस्त) बृहस्पतिवारको हुआ था।

वि० सं० १५४५ में जोधाजीके समय इन्होंने सोजतमें मुसल-मानोंकी सेनाको हराया था। इनके पुत्र नराजीको सातलजीने गोद लिया था। परन्तु सूजाजीने उनको फलोदी जागीरमें देनेका वादा करके राज्यपर अपना अधिकार कर लिया। उस समय पौकरणपर मल्लिनाथजीके पौत्र हम्मीरके वंशजोका अधिकार था। अतः सूजाजीने सेना भेजकर वहाँके शासक खींवाको भगा दिया और वहाँका शासन नराजीको सौंप दिया। वि० सं० १५५५ में खींवा और उसके पुत्र लूंकाने बाहड़मेरके राठोड़ोंकी सहायतासे नराजीके गाय

---

(१) अजमालजीके पुत्र (रणसीजीके पौत्र) तुँवर रामदेवजीने मल्लिनाथ-जीकी सम्मतिसे पौकरण बसाया था। इनके एक कन्या थी। उसका विवाह जग-मालजीके पुत्र (मल्लिनाथजीके पौत्र) हम्मीरके साथ हुआ था और उसीके दहेजमें इन्होने पौकरण दे दिया था। इसके बाद ये स्वयं वहाँसे तीन कोस परके रुणेचे गाँवमें जारहे। वहीं पर उनकी कबरके आकारकी समाधि है और वे लोगोंमें रामसापीरके नामसे मशहूर हैं। इनके वंशके तँवर राजपूत मरनेपर गाड़े जाते हैं। किसी किसी ख्यातमें लिखा है कि रामदेवजीके भाई बरजांगने अपनी कन्याका विवाह मल्लिनाथजीके पौत्र जगपालसे कर पौकरण दहेजमें दे दिया था।

(२) वि० सं० १५५२ का सूजाजीके समयका एक लेख आसोसे मिला है। अतः उक्त घटना इस समयके पूर्व ही हुई होगी।

बैल आदि जानवर पकड़ लिये। इसपर नराजीने उसपर चढ़ाई की। परन्तु इस लड़ाईमे नराजी मारे गए। यह खबर पाते ही सूजा-जीने नराजीका बदला लेनेके लिए बाहड़मेरपर चढ़ाई की और उसे लूट लिया। इसके बाद उन्होंने नराजीके पुत्र गोविंद्दासको पोकरणका और हम्मीरको फलोदीका शासक नियत किया।[1]

इसी साल इन्होने अपने पुत्र शेखाजीको रायपुरके सिंधलोंपर हमला करनेको भेजा। अन्तमें सिंधलोंने हारकर संधि कर ली।

वि० सं० १५६० में सूजाजीने चांणोदके सिंधलोंको परास्तकर उनके राज्यपर अधिकार कर लिया। परन्तु अन्तमें उनके शरण आजानेपर उक्त स्थानका शासन उन्हें वापिस दे दिया।

पहले लिखा जा चुका है कि जोधाजीके पुत्र बीकाजीको जांगल-देशका शासन मिला था और उन्होंने वहाँ अपने नामपर बीकानेर नगर बसाया था।

सूजाजीके राज्यसमय उन्होंने जोधपुरपर चढाई कर जोधपुर नगरको घेर लिया। परन्तु राज्यके बड़े बड़े सरदारोंने मिलकर सूजा-जीके और इनके बीच सुलह करवा दी। इसपर बीकाजीको वापिस लौट जाना पड़ा।

पीपाड़से भागकर जब मल्लूखाँ (मलिकखाँ)[2] अजमेर पहुँचा तब उसने मांडूके शासकको लिखकर सहायता माँगी और वहाँसे सेना आ-दिके आजानेपर बरसिंघजीको धोखा देकर अजमेरके किलेमें कैद कर दिया। जैसे ही यह समाचार सूजाजीको मिला वैसे ही उन्होंने इधरसे

---

(१) इनके समयका वि० सं० १५७३ का एक लेख फलोदीसे मिला है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग, १२, पृ० ९५।)

(२) इसका नाम मलिक यूसुफ भी लिखा है। यह पठान जातिका था।

अजमेरपर चाढ़ई कर दी। उधर बीकानेरसे बीकाजी और दूदाजी भी चढ़ दौड़े। यह हाल देख मल्लूखां घबरा गया और उसने बरसिंघजीको छोड़ दिया[1]। इसके करीब ६ महीने बाद ही बरसिंघजीका स्वर्गवास हो गया और दूदाजी उनके उत्तराधिकारी हुऐ[2]।

जिस समय जोधाजीने अपने पिताके वैरकी एवजमें गोड़वाड़का बहुतसा भाग राणाजीसे छीन लिया था उसी समय जैतारणके सिंधल राठोड़ोंको हराकर जैतारण पर भी अधिकार कर लिया था और अन्तमें अपनी तरफसे उन्हींको उस देशका शासन सौंप दिया था। परन्तु सूजाजीने उनको हटाकर वहाँका अधिकार अपने पुत्र ऊदाजीको दे दिया[3]।

सूजाजीके बड़े पुत्रका नाम बाघाजी था[4]। इनका जन्म वि० सं० १५१४ की वैशाख कृष्णा ३० (ई० स० १४५७

(१) किसी किसी ख्यातमें बरसिंघजी और दूदाजीके साभर लूटनेके बाद इस घटनाका होना और इसके बाद मल्लूखाका कोसानेकी तरफ आना व घड़ूलेका मारा जाना लिखा है। कहते है कि उसी दिन राव सातलजीके स्वर्गवास होनेके कारण राज्यमें अब उस दिन केवल गौरीकी ही पूजा होती है। पहले उस दिन गौरी और ईश्वर दोनों पूजे जाते थे।

(२) मेड़तिये सरदार उन्हींकी औलादमे हैं।

(३) ऊदावत राठोड़ इन्हींके वंशज हैं।

(४) इनके ७ पुत्र थे। इनमें सबसे बड़े पुत्रका नाम वीरम था। कहते हैं कि जिस समय बाघाजीकी मृत्युका समय निकट आया उस समय उन्होंने अपने पितासे र्थिना की कि आपके बाद इस राज्यका स्वामी आपका पौत्र वीरम बनाया जाय। सूजाजीने अपने दूसरे पुत्र शेखाजीकी सम्मतिसे यह बात मंजूर कर ली। परन्तु जिस समय सूजाजीकी मृत्यु हुई और वीरमजीके राज्याभिषेकका समय आया उस समय अखैराजजीके पुत्र पंचायणकी अध्यक्षतामें मारवाड़के सब सरदार लोग एकत्रित हुए। इनके साथ इनके कुँवर भी थे। जब देर हो जानेके

की २५ अप्रेल) को हुआ था। वि० सं० १५६७ में राणा सांगाजीने सोजतपर चढ़ाई की परन्तु पिताकी आज्ञासे बाघाजीने मार्गमे ही उन्हें हराकर भगा दिया।

वि० सं० १५७१ की भादों सुदी १४ (ई० स० १५१४ की ३ सितंबर को युवराज अवस्थामे ही बाघाजीकी मृत्यु हो गई। इसीके दूसरे वर्ष अर्थात् वि० सं० १५७२ की कार्तिक वदी ९ (ई० स० १५१५ की २ अक्टूबर) को स्वयं राव सूजाजी भी ७६ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गको सिधार गए। इन्होंने २४ वर्ष राज्य किया। इनके १२ पुत्र थे।

सूजाजीके राज्यमे जोधपुर, फलोदी, पौकरण और जैतारणके परगने थे।

१६ राव गांगाजी।

ये बाघाजीके पुत्र थे और अपने दादाकी जिन्दगीमें अधिकतर मेवाड़में रहते थे। इनका जन्म वि० सं० १५४० की वैशाख सुदी ११

कारण इन बालकोको भूख लगी तब सरदारोने इन्हे वीरमजीकी माताके पास भोजनके लिए भेजा। परन्तु उन्होने अनादरके साथ कहला भेजा कि मैं तुम्हारे लिए खाना बनानेपर नियत नही हूँ। इस उत्तरमे सरदार लोग क्रुद्ध हो गए। जैसे ही यह समाचार बाघाजीकी दूसरी रानी--गांगाजीकी माता--के पास पहुँचा वैसे ही उन्होने भोजन तैयार करवाकर सरदारोंके बालकोको खिलवा दिया और बहुत कुछ सरदारोंके लिए भी भेज दिया। इसपर सरदारोने प्रसन्न होकर उनके पुत्र गागाजीको राज्यका अधिकारी बनानेकी ठान ली और शुभ मुहूर्तके आनेका बहाना कर वीरमजीके अभिषेकोत्सवको टालने लगे। उस समय गागाजी मेवाडमें थे। सरदारोने चुपचाप उन्हे जोधपुरमें बुलवाकर उनका राज्याभिषेक कर दिया। परन्तु जब यह समाचार वीरमजीके चाचा शेखाजीको मिला तब उन्होने इनको अपनी तरफसे तिलक देकर सोजत भेज दिया। वीरमजी और इनके भाई प्रतापके वंशज बाघावत राठोड़के नामसे प्रसिद्ध हुए।

(१) इनसे राठोडोकी ९ शाखाएँ चलीं--शेखावत, ऊदावत, देवीदासोत, सांगावत, प्रयागदासोत, नरावत, मापावत, तिलोकसीओत और खंगारोत।

(ई० स० १४८३ की १८ अप्रेल) को हुआ था। इन्होंने राणा सांगाको युद्धोंमें बहुत मदद दी थी। वि० सं० १५७२ की मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को ये गद्दी पर बैठे।

राणा सांगाकी कन्याका विवाह ईडरके राजा सूरजमलके पुत्र रायमल्लके साथ हुआ था। कुछ समय बाद रायमल्लको निकालकर उसके चाचा भीमने ईडरपर अधिकार कर लिया। परन्तु राणा-जीने रायमल्लकी सहायता कर वहाँका राज्य भीमके पुत्र भारमलसे छीन उसे दिला दिया। इसपर वि० सं० १५७२ (ई० सं० १५१५) मे गुजरातके सुलतान मुजफ्फरशाह द्वितीयने भारमलको पीछा ईडरका राजा बना दिया। यह देख राणाजीने डूंगरपुरके शासक रावल डूंगरसीजीको गांगाजीके पास सहायता माँगनेके लिए भेजा। इसपर स्वयं गांगाजी सेना लेकर उनकी सहायताको गए और वि० सं० १५७४ म गुजरातके शासक मुजफ्फरशाह द्वितीयको हराकर ईडरका राज्य रायमलको दिलवा दिया। इस युद्धमें मेड़तिया सर-दार वीरमजी भी इनके साथ थे। वि० सं० १५७६ में फिर राणाजीने ईडरके मुसलमान शासक मुबारिज पर चढ़ाई की। उस समय फिर इन्होंने उनकी सहायता की और ईडर पर राणाजीका अधिकार हो गया।

वि० सं० १५८२ में बादशाह बाबरने लोदी पठानोंसे देहलीका तख्त छीन लिया। इसपर पठानोंने राणा सांगाजीसे मददकी प्रार्थना की।

वि० सं० १५८४ में राणाजीके और बाबरके बीच बयानामें युद्ध हुआ। इसमें भी गांगाजीने ४००० सिपाही भेजकर राणा सांगाजीकी सहायता की।

---

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि राठोड़ोकी इस सेनाके सेनापति रायमल और मेड़तिया रतनसिंह थे। ये दोनों इसी युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए। परन्तु इस युद्धमें विजय बाबरके हाथ रही।

पहले लिखा जा चुका है कि शेखाजीने गांगाजीके बड़े भाई वीरमजीका पक्ष लिया था। अतः वैसे तो अक्सर वीरमजीके और गांगाजीके बीच युद्ध होता ही रहता था परन्तु वि० सं० १५८५ में शेखाजीने नागोरके खानजादा दौलतखांको अपनी तरफ़ मिला लिया और अपनी पीपाड़की जागीरसे असन्तुष्ट होकर जोधपुरकी गद्दीका हक़ प्रकट किया।

दौलतखां शेखाजीकी मददमें था अतः इधरसे इन्होंने चढ़ाईकर सेवकी नामक गाँव (जोधपुर परगने) में अपना डेरा डाला और उधरसे गांगाजी मय फौजके लड़नेको पहुँचे[1]। दोनों सेनाओंके बीच घोर युद्ध हुआ। बीकानेरके राव जैतसीजीने गांगाजीका पक्ष लिया। इसी बीच दौलतखांका हाथी राव गागाजीके हाथका तीर लगनेसे भड़क गया और अपनी ही फौजको कुचलता हुआ भाग निकला। इससे मुसलमानी सेनाका व्यूह भंग हो गया और वह हारकर भाग खड़ी हुई। शेखाजी इसी युद्धमें मारे गए[2]। हाथी भागकर मेड़ते पहुँचा। वहाँपर उसे दूदाजीके पुत्र वीरमजीने पकड़ लिया। गागाजीके पुत्र मालदेवजी भी उसके पीछे ही पीछे थे। अतः वहाँ पहुँच उन्होंने हाथी अपने हवाले कर देनेको कहा। परन्तु वीरमजीने देनेसे इनकार किया। इससे इन दोनोंके आपसमें शत्रुता हो गई।

(१) राव गागाजी अफीम बहुत खाते थे। जिस समय ये नवाबसे युद्ध करनेको चले उस समय सवारीपर बैठे हुए अफीमके नशेमें झूम रहे थे। यह दशा देख उनके सरदारोंने उनसे कुछ कठोर वचन कहे। इसपर आप एकदम चैतन्य होकर युद्धार्थ तैयार हो गए।

(२) किसी किसी ख्यातमें लिखा है कि शेखाजी जखमी हो गए थे। परन्तु उनके सरदार उन्हें उदयपुर ले गए। वहाँपर वे गुजरातके बादशाहके मुकाबलेमें लड़कर मारे गए।

वि० सं० १५८७ में गांगाजीके पुत्र मालदेवजीने अपने चाचा वीरमजीको[1] निकालकर सोजत पर अधिकार कर लिया। इस पर राणा-जीने वीरमजीका पक्ष लेकर गांगाजी पर चढ़ाई की। परन्तु इसमें उन्हें असफल हो लौटना पड़ा।

वि० सं० १५८८ की ज्येष्ठ[2] शुक्ल ५ (ई०स० १५३१ की २१ मई) को ऊपरसे गिर जानेके कारण गांगाजीका स्वर्गवास हो गया[3]।

जोधपुरमेंका गांगेलाव तालाव, गांगाकी बावड़ी और गंगश्यामजीका[4] प्रसिद्ध मन्दिर इन्हींका बनवाया हुआ है। राणा सांगाजीकी कन्या पद्मा-वतीका विवाह गांगाजीके साथ हुआ था। उसका बनवाया पद्मसर नामका तालाव रानीसागरके पास ही विद्यमान है। गांगाजीके ६ पुत्र[5] थे।

१७ राव मालदेवजी।

ये गांगाजीके पुत्र थे और वि० सं० १५८८ की पौषवदी १ (ई० स० १५११ की ४ दिसंबर) को उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए।

इनका जन्म वि० सं० १५६८ की पौष कृष्णा १ को हुआ था।

जिस समय ये राज्य पर बैठे उस समय जोधपुरका राज्य केवल जोध-पुर और सोजतमें ही था। ये बड़े वीर थे। अतः इन्होंने गद्दीपर बैठते

(१) वीरमजी बाघाजीके ज्येष्ठ पुत्र और गांगाजीके बड़े भाई थे।

(२) कहीं कहीं कार्तिक सुदी १ लिखी है।

(३) ख्यातोंमें लिखा है कि जिस समय गांगाजी महलके झरोखे पर खड़े थे उस समय मालदेवजीने धक्का देकर उन्हें नीचे गिरा दिया और इसीसे उनका स्वर्गवास हो गया।

(४) रावजी जब सीरोहीसे दूसरा विवाह कर लौटे तब यह मूर्ति वहाँसे लाए थे।

(५) इनमेंसे किशनसिंह और बैरीसालसे गांगावत जोधा नामकी शाखा चली।

ही राज्यका विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया और जालोर बिहारी पठानों-से, नागोर खानजादोंसे, सिवाना जैतमाल राठोड़ोंसे, चौहटन और पार-कर पवाँरोंसे, उमरकोट सोढोंसे, भादराजून सिंघल राठोड़ोंसे, जैतारण ऊदावत राठोड़ोंसे और मल्लानी मल्लिनाथजीके वंशजोंसे छीनकर अपने राज्यमें मिला लिया ।

उस समय हिन्दुस्तानमे बड़ी हलचल मची हुई थी । गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने वि० सं १५९२ में चित्तौड़ पर अधिकार कर-लिया था । परन्तु इसके १५ दिन बाद ही हुमायूँके आक्रमणके कारण उसे निराश हो वहाँसे भागना पड़ा । इसके बाद इधर तो मेवाड़में गृह-कलह प्रारम्भ हुआ और उधर पूर्वमें पठानोंका झगड़ा खड़ा हो जानेसे हुमायूँको उधर जाना पड़ा । इस मौकेसे लाभ उठाकर मालदेवजीने अपने बढ़े हुए राज्यको और भी बढ़ाना शुरू किया । पहले पहल अजमेर, केकरी, पुरमांडल, सलीमाबाद, सांभर वगैरः बादशाही इलाके फतह किए और इसके बाद राणा बनवीर और राणा उदयसिंहजीके आपसके झगड़ेमें मेवाड़का बहुतसा प्रदेश (गोढ-वाड़, बदनोर, मदारिया और कोसीथल) दबा लिया । इसके बाद अज-मेरसे आगे बढ़कर मालपुरा पवाँरोंसे और अमरसर (शेखावाटीमें) कछवाहोंसे छीन लिया ।

वि० सं० १५९७ में उदयसिंहजीकी प्रार्थनापर मालदेवजीने अपने

---

(१) वि० सं० १५९५ की आषाढ़ कृष्णा ८ को डूंगरसिंह जैतमालोतसे सिवाना छीना गया ।

(२) बहादुरशाहके भागनेपर चितौड वापिस राणा विक्रमादित्यके हाथ आया । परन्तु राणा सागाके दासीपुत्र बनवीरने उसे मारकर मेवाडपर अधिकार कर लिया । इसपर राणा सागाके सबसे छोटे पुत्र उदयसिंहने कुम्भलमेरपर कब्जा किया ।

सरदार जैता और कूंपा आदिको भेजकर उनकी सहायता की । बनवीर हारकर गुजरातकी तरफ भाग गया और राणा उदयसिंहजीको मेवाड़का राज्य मिला । इस सहायताकी एवजमें राणा उदयसिंहजीने ४०,००० फीरोजी सिक्के और एक हाथी रावजीको भेट किया ।

पहले लिखा जा चुका है कि हाथी न देनेके कारण मालदेवजीके और मेड़तिया बीरमजीके आपसमें विरोध हो गया था । अतः राज्यपर बैठनेपर वि० सं० १५८९ में इन्होंने बीरमजीसे मेड़ता छीन लिया । इसपर वे ढूंढाड़के कछवाहोंके पास चले गए । राव-मालदेवजीने अपने सेनापति जैता और कूंपाको उनपर चढाई करनेकी आज्ञा दी । इसके अनुसार ये दोनों सेना लेकर रणथंभोर तक गए । इस चढ़ाईसे नराना, चाटसू, लालसोत, बोनली, मलारना, टोंक, टोडा, जहाजपुर, आदि स्थानोंपर भी मालदेवजीका अधिकार होगया ।

इसके बाद इन्होंने देवड़ोंसे सिरोही, चौहानोंसे साँचोर, पवाँरोंसे रायधनपुर और खाबड़ छीन ली । परन्तु सीरोहीका राव मालदेवजीका नाना था इसलिए इन्होंने अपनी तरफसे उसे ही वहाँका शासक कर दिया ।

वि० सं० १५९७ मे जिस समय पूर्वमें शेरशाहसे हारकर हुमायूँ सिन्धकी तरफ भागा उस समय मौका पाकर राव मालदेवजीने आगरा और देहलीके आसपास तकके प्रदेशोंपर आक्रमण करके हिंडौन, बयाना फतेहपुरसीकरी और मेवातमें भी राठोड़ोंके थाने (छावनियाँ) नियत कर दिये ।

वि० सं० १५९८ में जैता और कूंपाने राव बीकाजीके पोते राव जैतसीजी पर आक्रमण किया । इसी युद्धमें जैतसीजी मारे गए और बीकानेर भी राव मालदेवजीके कब्जेमें आगया ।

इसके बाद राव मालदेवजी स्वयं बीकानेर गए और वहाँसे कायमखानी मुसलमानोंकी रियासत पर (जो आजकल शेखावाटीके नामसे प्रसिद्ध है) आक्रमण किया । उनकी राजधानी झुनझुनू थी । उसको विजयकर मालदेवजीने उसे बीकानेरकी विजयके पुरस्कारस्वरूप, अपने सेनापति राठोड़ कूंपाजीको दे दिया ।

इस प्रकार मालदेवजीका उदय होता हुआ प्रताप देखकर वि० सं० १५९९ के आषाढ़में स्वयं बादशाह हुमायूँ सिंधसे जैसलमेर होता हुआ मंडोरके करीबतक पहुँचा और उसने मालदेवजीसे सहायता माँगी। उसकी प्रार्थना पर मालदेवजीने भी सहायता देनेका वादा किया और शेर-शाहके मुकाबलेके लिये ५०,००० सवारोंकी एक सेना तैयार की। मिरजा हादीने इसकी संख्या ८०,००० लिखी है । इसी अवसरपर मेड़-तिया वीरमजी और बीकानेरके मृत राव जैतसीजीके पुत्र कल्याणसिंह-जीके छोटे भाई भींवराजजी शेरशाहके पास पहुँचे और उसे मालदेव-जी पर आक्रमण करनेके लिए भड़काया । परन्तु शेरशाहने मालदेवजी जैसे प्रतापी राजाका बादशाह हुमायूँसे मिल जाना अपने शासनके लिए हानिकारक समझ बड़ी चालाकीसे काम लिया । उसने मालदेवजीको कहला भेजा कि यदि तुम हुमायूँको पकड़कर मेरे पास भेज दोगे तो मैं तुम्हें गुजरातके विजय करनेमें सहायता दूँगा । यह समाचार हुमायूँको भी मिल गया और वह मालदेवजीसे पूछे विना ही वापिस लौट गया । मालदेवजीने उसके पीछे अपने आदमी भी भेजे परन्तु वह उमरकोट जा पहुँचा । वहाँपर सोढा राजपूतोंने उसका बड़ा आदर सत्कार किया । उसने भी उनकी सहायता करके वहाँसे मालदेवजीके आदमियोंको भगा

(१) मारवाड़की ख्यातोंमें लिखा है कि हुमायूँने मारवाड़में गाय मारी थी, इसीसे मालदेवजीने उसकी सहायता करनेसे इनकार कर दिया ।

दिया। इससे उमरकोट पर फिर सोढा राजपूतोंका अधिकार हो गया। (यहींपर वि० सं० १५९९ की कार्तिक शुक्ला ८ को अकबरका जन्म हुआ।)

जब यह समाचार शेरशाहको मिला तब उसने यह समझ कर कि मालदेवजीने साजिश करके हुमायूँको भगा दिया है आगरेसे अपनी ८०,००० सेना लेकर इनपर चढ़ाई की। ये भी अपनी ५०,०००सवारोंकी सेना लेकर उसके मुकाबलेको चले। यह रंग ढंग देख शेरशाह घबरा गया और वापिस लौट जानेका विचार करने लगा[1]। परन्तु वीरमजीने बहुत कह सुनकर उसे आगे बढनेको उद्यत किया।

जब बादशाह अजमेरके पास पहुँचा तब उसने अपनी सेनाके चारों तरफ रेतसे भरे बोरोंका कोट बनवा दिया। मालदेवजी भी सेनासहित मुकाबलेमे आकर डट गए। यहींपर बीकानेरके राव कल्याणसिंहजी भी अपनी ६००० सेना लेकर शेरशाहसे आ मिले। करीब एक मास तक तो दोनों इसी दशामें पड़े रहे। परन्तु अन्तमें वीरमजीने कुछ उमदा ढालें मँगवाकर मालदेवजीके सरदारोंके नामपर लिखे हुए बादशाही फरमान उनकी गद्दियोंमें सिलवा दिये और व्यापारियोंके द्वारा वे ढालें सस्ती कीमतमें उन सरदारोंके हाथ बिकवा दीं। जब यह काम हो चुका तब उसने अपने जासूसों द्वारा मालदेवजीको खबर दिलवाई कि आपकी सेनाके सब सरदार शेरशाहसे मिल गए है। यदि आपको इस बातका विश्वास न हो तो उनकी ढालोंकी गद्दियोंको खुलवाकर देख लें, इससे साराभेद आप ही खुल जायगा। यह सूचना पाकर मालदेवजीने

(१) फरिश्ता लिखता है कि शेरशाह बड़ी खुशीसे लौट जाता परन्तु उसका मोरचेसे बाहर आना बड़ा खतरनाक था। क्योंकि शत्रुको ऐसा अच्छा मौका मिल गया था कि वह उसपर भीषण आक्रमण कर सकता था।

अपने सरदारोंकी ढालें देखनेको मँगवाई । बेचारे सरदारोंको इस कपट-जालका कुछ भी पता न था । अतः उन्होंने तत्काल अपनी अपनी ढालें रावजीके देखनेके लिए भेज दीं । परन्तु जैसे ही मालदेवजीके सामने उनकी गद्दियाँ खोली गईं वैसे ही उनमेंसे बादशाही फर्मान निकल पड़े । उनमें लिखा था कि तुमने जो रावजीको पकड़वा देनेका वादा किया है, उसे जहाँतक हो शीघ्र पूरा करना चाहिए । यह देख सब लोग अचंभेमें आगए । अन्तमें सरदारोंने रावजीको हर तरहसे विश्वास दिलाया कि यह सब कपट-जाल रचकर आपको धोखा दिया गया है । परन्तु रावजी-को किसी तरह इसपर विश्वास न हुआ और वे जोधपुरकी तरफ चल पड़े ।

इस गड़बड़मे बहुतसे सरदार नाराज होकर चले गए । शेरशाहने भी धीरे धीरे रावजीका पीछा किया । जब रावजी पीछे हटते हटते सुमेल नामक स्थान (जैतारन परगने) में पहुँचे और वहाँसे भी पीछे हटनेको तैयार हुए तब जैता, कूंपा, आदि सरदारोंने रावजीका साथ देनेसे इन-कार कर दिया और उनसे साफ तौरपर कह दिया कि अबतक आप जिन स्थानोंको छोड़कर आए हैं वे तो आपहीके जीते हुए थे परन्तु यहाँसे आगेका प्रदेश हमारे दादा राव रिडमलजीका विजय किया हुआ है, अतः उसको हम अपने जीतेजी हरगिज नहीं छोड़ेंगे । पर रावजीने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया और वे जोधपुरकी तरफ रवाना हो गए । यह देख जैता और कूंपा करीब १२,००० सैनिकोंके साथ वहीं ठहर गए । वि० सं० १६०० की पौषशुक्ला ११ (ई० स० १५४४ की ५ जनवरी) की रातको राठोड़ सरदारोंने बाद-शाही सेनापर आक्रमण किया । यद्यपि रातका समय था, इससे अपने

(१) फरिश्ता लिखता है कि शाही सेनामे कमसे कम पचास या साठ हजार सवार थे ।

पराएको भी पहचानना कठिन था तथापि राठोड़ोंने ऐसी तलवार चलाई कि बादशाहके पैर उखड़ गए और वह भाग निकलनेका मौका ढूँढ़ने लगा। परन्तु भाग्यके प्रभावसे जलालखां जलवानी नामक उसका एक अमीर ऐन मौके पर नई सेना लेकर आ पहुँचा। इससे थकी हुई राठोड़ सेनाके पैर उखड़ गए। इस युद्धमें जैता, कूंपा, आदि बीस बड़े बड़े वीर सरदार और २००० सैनिक वीर गतिको प्राप्त हुए।

बादशाहकी सेनाके भी बहुतसे आदमी मारे गए और शेरशाह पर राठोड़ोंका सिक्का जम गया। उसने खुद अपने सरदारोंसे कहा कि 'बड़ी खैर हुई वरना मुट्ठीभर बाजरेके वास्ते मैने हिन्दुस्तानकी बादशाहत ही खोई थी'[1]।

जब यह समाचार राव मालदेवजीको मिला तब वे पीपलादके पहाड़ोंकी तरफ चले गए[2]। शेरशाह अजमेरमें अपना प्रबन्ध कर मेड़ते पहुँचा और वहाँकी गद्दी वीरमजीको देकर तथा नागोर पर अधिकार कर जोधपुरकी तरफ चला। यहाँ उस समय राठोड़ तिलोकसी वरजांगोत किलेदार था। उसने मय सेनाके बाहर निकल बड़ी वीरताके साथ शेरशाहसे युद्ध किया। परन्तु वह इसी युद्धमें मारा गया और किला शेरशाहके हाथ लगा। उसने वहाँपर मंदिर तुड़वा कर मसाजिद बनवाई और पूर्वकी तरफ एक रास्ता बनवाया। यह आजकल गोलकी घाटीके नामसे प्रसिद्ध है।

इसी गड़बड़में शेरशाहकी सहायतासे बीकानेर पर फिर राव कल्याणसिंहजीका अधिकार होगया।

---

(१) यह सारा हाल फरिश्ता नामक फारसी तवारीखसे लिया गया है।
(२) यह स्थान मारवाड़ राज्यके शिवाना परगनेमें है।

इन सब कामोंसे निपट कर और खवासखांको मारवाड़के प्रबन्धके लिए छोड़ कर शेरशाह लौट गया। वि० सं० १६०२ में उसने कालिंजर पर चढ़ाई की और वहाँके किलेपर हमला करते समय वह (शेरशाह) बारूदसे जलकर मर गया।

जब यह समाचार मालदेवजीको मिला तब उन्होंने चांपावत जैता भेरूंदासोत आदिको पठानों पर आक्रमण करनेके लिए भेजा। सोजतके पास युद्ध होने पर पठान सेना भाग गई और मालदेवजीने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने राठोड़ जैताजीके पुत्र पिरथीराजको सेनापतिका पद देकर अजमेर पर हमला करनेकी आज्ञा दी। वि० सं० १६०५ के करीब एकवार फिर अजमेर पर रावजीका अधिकार हो गया। इसी अवसर पर उदयपुरके राणा उदयसिहजीने भी अजमेरको हस्तगत करनेके लिए चढ़ाई की। जब यह समाचार पिरथीराजको मिला तब उसने आगे बढ धनला नामक गाँवके पास राणाजी पर आक्रमण किया। इससे उन्हें वापिस लौट जाना पड़ा। इसके बाद राठोड़ सेनापति पिरथीराजने नरावत राठोड़ोंको हरा कर पौकरण और फलोधी पर भी फिरसे मालदेवजीका शासन स्थापित किया। इसपर जैसलमेरके कुँवर हरराजने पौकरणवालोंकी सहायताके लिए चढ़ाई की। परन्तु राठोड़ोंकी वीरवाहिनीके सामनेसे उन्हें हारकर भागना पड़ा।

वि० सं० १६०७ तक उपर्युक्त कामोंसे छुट्टी पाकर वि० सं० १६०८ में रावजीने मल्लिनाथजीके वंशजोंसे कोटड़ा और बाहड़मेर भी छीन लिया। इसपर ये लोग भाग कर जैसलमेर पहुँचे और रावल हरराजजीकी सेनाको आपनी मददमें चढ़ा लाए। भाटियोंकी इस फौजने मलानीमें पहुँच मालदेवजीकी सेनाको वहाँसे भगा दिया और उक्त

(१) इस चढाईमें नागोर पर भी शेरशाहका अधिकार हो गया था।

स्थानसे आगे बढ़ पौकरणके इलाकेमें भी लूट मार शुरू की । यह देख वि० सं० १६०९ में मालदेवजीने कुँवर रायमल, दीवान पंचोली (कायस्थ) नेतसी और सेनापति पिरथीराजको जैसलमेर पर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी । इन्होंने वहाँ पहुँच उक्त प्रदेशको अच्छी तरहसे लूटा । रावलजीने इनका सामना करनेमें असमर्थ हो किलेमें घुसकर प्राण बचाए ।

इसी बीच मौका पाकर पठानोंने फिर अजमेर पर अधिकार कर लिया था । अतः रावजीने अपने सेनापति पिरथीराजको फिर उस पर अधिकार करनेके लिए भेजा । परन्तु वहाँका हाकिम इधर खुद तो किलेमें घुस कर बैठ रहा और उधर उसने मेवाड़के राणा उदयसिंहजीको अपनी मददके लिए बुलवाया । इस प्रकार दो शत्रुओंसे विना पूरी तौरसे तैयार हुए लड़ना अनुचित समझ राठोड़सेना वहाँसे लौट आई । इसी अवसरमे राव मालदेवजीने मेड़ता नगर पर आक्रमण कर दिया । यद्यपि राठोड़ वीर पिरथीराज आदिने उन्हें बहुत कुछ समझाया कि आप इस गृह कलहमें न फँस कर अजमेरपर चढ़ाई करें, यह तो बादमें भी जीत लिया जायगा तथापि मालदेवजीने इस पर ध्यान नही दिया । इस घटनाकी सूचना पाकर बीकानेरके राव कल्याणसिंहजीकी सेना भी जैमलजीकी सहायताको आ पहुँची । अन्तमें वहाँपर इन्हें (मालदेवजीको) वीरमजीके पुत्र जैमलजीसे हारना पड़ा । इसी युद्धमें वीर सेनापति पिरथीराज मारा गया । जब यह समाचार उसके भाई राठोड़ देवीदास जैतावतको मिला तब उसने अपने सब आदमियोंको एकत्रित कर भाईका बदला लेनेके लिए मेड़ते पर आक्रमण किया । रावजीने भी अपने कुमार चन्द्रसेनजीको उसके साथ कर दिया । यह देख जैमलजी भी इनका मुकाबला करनेको तैयार हो गए । परन्तु उस समय महाराणा उदयसिंहजी शादी करनेको बीकानेरमें जाते हुए उधर आ निकले और

उन्होंने जैमलजीको समझा बुझा कर अपने साथ ले लिया। मेड़ता पर मालदेवजीका अधिकार हो गया।

वि० सं० १६१२ के करीब बादशाह हुमायूँने इरानी सेनाकी मददसे दिल्ली पर अधिकार कर लिया और इसी वर्ष उसका पुत्र अकबर राज्यका स्वामी हुआ। उसने हेमू दूसर और हाजीखांको हराकर अपना राज्य जमाया। पठान हाजीखा अकबरके सामनेसे भागकर अजमेर आया और राणा उदयसिंहजी द्वारा नियत किए हुए रक्षकोंको निकालकर अजमेर और नागोर पर अधिकार कर बैठ गया। इस पर वि०सं० १६१३ में मालदेवजीने उस पर आक्रमण करनेके लिए सेना भेजी। यह देख हाजीखांने राणाजीसे सहायताकी प्रार्थना की। राणा उदयसिंहजी भी उसकी प्रार्थनानुसार ५,०० सवार लेकर सहायतार्थ आन पहुँचे। इसपर मालदेवजीकी सेना पीछे हट गई। परन्तु कुछ ही दिनोंमें हाजीखांके और राणाजीके आपसमें झगड़ा हो गया[1]। राणाजीने सेना इकट्ठी कर हाजीखा पर चढ़ाई की। लाचार हो हाजीखांने मालदेवजीसे मदद माँगी। इन्होंने भी मौका देख १५०० सवार तो उसकी सहायतार्थ भेज दिये और खुद जैतारणमें जाकर ठहर गए।

हरमाडेके पास राणाजीसे हाजीखाका युद्ध हुआ। इसी बीच जैमलजीने मेड़ता फिर ले लिया था और वे भी राणाजीकी तरफसे युद्धमें मौजूद थे। परन्तु मालदेवजीकी सहायतासे मैदान हाजीखांके हाथ रहा और राणाजीको हारकर लौटना पड़ा। जब यह समाचार रावजीको मिला तब उन्होंने जैतारणसे चलकर मेड़ता पर अधिकार कर लिया

---

(१) कहते हैं कि राणाजीने अपनी मददकी एवजमें हाजीखांसे रंगराय नामक वेश्याको मागा था। परन्तु यह उसकी प्रेमपात्री थी, इसलिए उसने देनेसे इनकार कर दिया। इस पर राणाजीके और हाजीखांके झगड़ा हो गया।

और जैमलजीके और उनके पूर्वजोंके बनवाए हुए स्थानोंको गिरवाकर वहाँपर अपने नामसे मालकोट नामका किला बनवाया । इन युद्धोंमें बीकानेरके राव कल्याणसिंहजी भी राणाजीकी तरफ थे ।

जिस समय अकबर बादशाहको हाजीखांकी विजयका पता लगा उसी समय उसने अजमेर पर आक्रमण करनेके लिए शाहकुलीखां और कासिमखाँकी आधीनतामें सेना भेजी । इसपर हाजीखांने रावजीकी शरण चाही । इन्होंने भी उसे जैतारणमें बुलवा लिया । बादशाही सेनाने अजमेर और नागोर फ़तह कर जतारण पर चढ़ाई की । हाजीखां तो गुजरातकी तरफ चला गया और जैतारण पर अकबरका अधिकार हो गया । यह घटना वि० सं० १६१४ में हुई थी ।

वि० सं० १६१६ में मालदेवजीने राठोड़ देवीदास जैतावतको जालोर पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी । उसीके अनुसार उसने एकबार फिर बिहारी पठानोंको हराकर जालोर पर कब्जा कर लिया और बदनोर पर हमलाकर वहाँसे भी जैमलजीको निकाल दिया । इसपर वे अकबर बादशाहके पास पहुँचे और उससे कह सुनकर वि० सं० १६१९ में अजमेरके सूबेदार मिरजा शरफुद्दीनको मेड़ते पर चढ़ा लाए । माल-देवजीकी सेना और शाही सेनाके बीच भीषण युद्ध हुआ । इसीमें राठोड़ वीर देवीदास जैतावत वीरगतिको प्राप्त हुआ ।

मेड़ते पर अधिकार होजानेपर मिरजाने उसे जयमलजीको दे दिया । कुछ दिन बाद ही शरफुद्दीनके बागी हो जानेके कारण बादशाहने मेड़ता जयमलजीसे छीनकर जगमलको दिलवा दिया । अतः जयमलजी वहाँसे राणा उदयसिंहजीके पास चले गए और वहींपर वि० सं० १६२४ में अकबर बादशाहके साथकी लड़ाईमें बड़ी वीरतासे लड़कर मारे गए ।

राव मालदेवजीने नागोर पर अधिकार करनेके लिए भी सेना भेजी थी परन्तु मिरजा शरफुद्दीनसे हारकर उसे लौट आना पड़ा। बस यही मालदेवजीकी आखिरी लड़ाई थी।

वि० सं० १६१९ की कार्तिक शुक्ला १२ (ई० स० १५६२ की ९ नवंबर) को जोधपुरमें रावजीका स्वर्गवास हो गया।

इन्होंने करीब ३१ वर्ष राज्य किया था। ये बड़े ही भाग्यशाली थे। उस समय हिन्दुस्तानमें एक भी ऐसा राजा न था जो इनकी बराबरी कर सकता हो। खुद पठानों और मुगलोंकी तवारीखोंमें भी इनकी वीरताकी तारीफ लिखी मिलती है। यदि तुच्छसी बातपर वीरमजीके और इनके आपसकी फूट न हुई होती तो भारतके इतिहासका कुछ और ही ढँग रहता।

कर्नल टाडने जो वि० सं० १६२५ में मालदेवजीका अपने द्वितीय पुत्र चन्द्रसेनको अकबरके पास अजमेरमें भेज कर उसकी अधीनता स्वीकार करना लिखा है वह बिलकुल ही भ्रमात्मक है; क्योंकि मालदेवजीका देहान्त तो वि० सं० १६१९ में ही हो गया था।

मालदेवजीने अनेक किले आदि बनवाए थे। इनकी बनवाई अजमेरके बीटालीके किलेकी बुर्जें आदि अबतक विद्यमान हैं[1]।

इनका एक विवाह जैसलमेरके रावल लूनकरनकी कन्या उमादेसे हुआ था। यह बड़ी हठीली थी। एक मामूली बातपर यह रावजीसे नाराज हो गई और इसीसे आयुपर्यन्त उनसे अलग रही। परन्तु रावजीके मरनेपर अन्य ३६ स्त्रियोंके साथ साथ यह भी सती हो गई।

---

(१) तारागढ़ पर पश्चिमकी तरफ झरनेमेंसे गढ़पर पानी पहुँचानेके लिए जो एक दूसरे पर तीन बुर्जे बने हैं वे भी इन्हींके बनवाए हुए हैं।

मारवाड़में अबतक यह रूठी रानीके नामसे प्रसिद्ध है। मालदेवजीके बहुतसे पुत्र और कन्याए थीं[1]।

१८ राव चंद्रसेनजी[2]।

वि० सं० १६१९ में मालदेवजीकी इच्छानुसार ये उनके उत्तराधिकारी हुए। इसपर इनके बड़े भाई राव राम तथा उदैसिंघ और छोटे भाई रायमलने इन पर चढ़ाई की। परंतु अंतमें उनको हारकर लौटना पड़ा। इसके बाद राव राम अकबरके पास पहुँचा और उससे कह सुनकर अजमेरके सूबेदार हसनकुलीखाको जोधपुर पर चढ़ा लाया। उसने आकर चंद्रसेनजीसे[3] अकबरकी अधीनता स्वीकार करनेका कहा। परंतु इनमें अपने पिताके समान ही स्वाधीनताका प्रेम था। अतः इन्होंने उसकी बात न मानी। इसपर वि० सं० १६२१ में हसनकुलीखांने जोधपुरके किलेको घेर लिया। दो वर्षतक चन्द्रसेनजीके और इसके बीच युद्ध होता रहा। परन्तु वि० सं० १६२२ के मँगसिर (अगहन)में जोधपुर हसन कुलीखाको सौप ये (चन्द्रसेनजी) भादराजून नामक स्थानकी तरफ चले गए।

---

(१) किसी ख्यातमे १४ पुत्र और १४ कन्याएँ लिखी हैं और किसीमें २२ पुत्र लिखे हैं। इनसे १३ शाखाए चलीं:--रामोत, चंद्रसेनोत, रतनसिंहोत, बाणोत, भोजराजोत, गोपालदासोत, महेशदासोत, विक्रमायत, तिलोकसिओत, डूंगरोत, केसरीसिंहोत, (मालदेवजीके पौत्र और रायमलके पुत्र अभैराजसे) अभैराजोत और (मालदेवजीके प्रपौत्र विहारीदाससे) विहारीदासोत।

(२) इनका जन्म वि० सं १५९८ की श्रावण शुक्ला ८ (ई० सं १५४१ की ३१ जुलाई) को हुआ था।

(३) कहते हैं कि अकबरने इनकी सुन्दरता देख इनसे कहा कि खुदाने तुमको नूर दिया पर भाग नहीं दिया और उदयसिंघजीको शरीरमें मोटाताजा देखकर मोटाराजाका खिताब दिया। इसीसे नाराज होकर चन्द्रसेनजी वहाँसे लौट आए।

हसन कुलीखांने किला हाथ आते ही वहाँपर मसजिद बनवाई और परगनेंमें इधर उधर मुसलमानोंकी छावनियाँ नियत कर दीं ।

वि० सं० १६२७में बादशाह अकबर जियारतके लिए (तीर्थयात्रार्थ) आगरेसे चलकर अजमेर पहुँचा और वहाँसे नागोर आया । यहाँ पर उसने राव चंद्रसेनजीको मिलनेके लिए बुलवाया । ये भी इस निमंत्रणको स्वीकार कर मार्गशीर्ष कृष्णा २ (ई० सं० १५७० की १५ नवंबर) को नागोर पहुँचे । इसी बीच जोधपुरका अधिकार पानेकी आशासे इनके भाई उदैसिंहजी फलोदीसे, रायमल सिवानासे, कल्यानसिंहजी और उनके पुत्र रायसिंहजी बीकानेरसे बादशाहके पास पहुँच गए । परंतु रावजीके स्वाधीन स्वभावके कारण बादशाह इनसे अप्रसन्न हो गया । इसपर चंद्रनसेनजी वहाँसे भादराजूनकी तरफ लौट गए ।

इसके बाद रायमल और कल्यानसिंहजी आदि भी अकबरकी अधीनता स्वीकार कर अपने अपने स्थानको लौट गए । केवल उदयसिंहजी बादशाहके पास रह गए ।

राव चंद्रसेनजी जिस समय लौटकर भादराजून पहुँचे उस समय सोजत और उसके आस पासके गाँवोंमें मुसलमान बड़ा जुल्म करते थे । अतः चंद्रसेनजीने सेना इकट्ठी कर उन पर आक्रमण किया और उनको वहाँसे निकाल दिया । इस पर अकबरने अजमेरके सूबेदार शाह कुलीखांको चंद्रसेनजी पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी । उसीके अनुसार उसने इनपर चढ़ाई की । राव चंद्रसेनजीके और उसके बीच सिवानेके पास युद्ध हुआ । पाँच वर्षतक सिवानेपर बादशाही फौजका घेरा रहा परन्तु सफलता नहीं हुई । इसी बीच चन्द्रसेनजीके भतीजे और रायमलजीके पुत्र कल्लाने मुसलमानोंका ध्यान सिवानेपर लगा हुआ देख नागोरपर अधिकार कर लिया ।

वि० सं० १६२९ में अकबरने जोधपुरका राज्य बीकानेरके राजा रायसिंहजीको लिख दिया। इसपर उन्होंने भी चंद्रसेनजी पर चढ़ाई की। परंतु रावचंद्रसेनजीने किलेमेंसे उनका ऐसा सामना किया कि उनको हारकर वापिस लौटना पड़ा। इसके बाद अकबरने बखशी शाहबाजखाँ कम्बोकी अध्यक्षतामें सिवानेपर सेना भेजी। वि० सं० १६३१ में राव चंद्रसेनजी मेवाड़की तरफ चले गये थे। इसीसे वि० सं० १६३३ में उनके आदमियोंने लाचार होकर सिवानेका किला उक्त कम्बोको सौंप दिया। इसके बाद नागोरपर भी उसका अधिकार हो गया और कल्लाने शाही सेवा स्वीकार कर ली। इसी वर्ष जैसलमेरके रावल हरराजजीने एक लाख फदिया सिक्के देकर उसके बदलेमें राव चन्द्रसेनजीसे पौंकरण गिरवी रख लिया। रावजी चार पाँच वर्षतक मेवाड़, सिरोही और डुंगरपुरमें घूमते रहे। इसी बीच इनका बड़ा भाई राम और उसका पुत्र कल्ला इस संसारसे कूच कर गए। (इसको मालदेवजीने सोजतका परगना दिया था)। इसपर मारवाड़के सरदारोंने राव चन्द्रसेनजीसे मारवाड़में लौट आनेकी प्रार्थना की। इसीके अनुसार वि० सं० १६३६ के चैत्र लगते ही ये देशमें लौट आए और आते ही इन्होंने सोजतपर अधिकार कर लिया। इसके कुछ दिन बाद ही सेना इकट्ठी कर चन्द्रसेनजीने अजमेरके इलाकेमें लूट मार शुरू की। यह देख अकबरने फिर एक फौज इन पर भेजी। रावजी भी इससे युद्ध कर सोजतको लौट गए।

वि० सं० १६३७ में इनका स्वर्गवास हो गया। कहते हैं कि बादशाहने इनकी स्वाधीन चित्तवृत्तिसे घबराकर इन्हें भोजनमें विष दिलवा दिया था। इनके साथ इनकी पाँच रानियाँ सती हुईं।

(१) किसी किसी ख्यातमें इस घटनाका समय वि०सं० १६३१ लिखा है।

वि० स० १६३७ का इनके समयका एक लेख सारन (सोजत परगने) से मिला है।

इनके तीन पुत्र थे। रायसिंह, उग्रसेन और आसकरन। इनमेंसे बड़े पुत्रने अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। अतः उस समय वह अकबरके साथ लाहौरमें था।

राव आसकरनजी।

राव चंद्रसेनजी[1]के मरने पर रायसिंहजीके लाहौरमें और उग्रसेनजीके बूंदीमें होनेके कारण राजतिलक आसकरनजीको मिला[2]। इनका जन्म वि० स० १६२७ की श्रावण वदी १ (ई० स० १५७० की १९ जून) को हुआ था। जब यह समाचार उग्रसेनजी[3]को मिला, तब वे मेड़ता नगरमें आकर मुगल अफसरोंसे मिले। परन्तु राठोड़ सरदारोंने उन्हें समझाया कि देशकी दशाके अनुसार उस समय राजाका होना अत्यन्त आवश्यक था। इसीसे आसकरनजीको राज्यगद्दी दी गई थी। अब हम आपको आधा राज्य दिलवा देंगे। नाहकके गृह-कलहसे सिवाय नुकसानके कुछ भी फायदा न होगा। यह बात उग्रसेनजीने भी मान ली और वे आसकरनजीके पास जैतारनमें चले आए। एक दिन दोनो भाई चौसर खेल रहे थे। आपसमें दो सेर मिसरीकी शर्त थी। उग्रसेनजीने मिसरी मँगवानेके बहाने आसकरनजीके आदमियोंको कमरेके बाहर भेज दिया, केवल एक आदमी वहाँ रह गया। वह भी अफी-

(१) चन्द्रसेनोत जोधा अजमेरके इलाकेमें अबतक है। उसी परगनेके भिनायके राजा उग्रसेनजीके पुत्र करमसेनजीके वंशज हैं। उग्रसेनजीकी मृत्युके समय उनके पुत्रकी अवस्था केवल एक वर्षकी थी।

(२) उस समय जोधपुरपर मुसलमानोका अधिकार था और इनकी राजधानी सोजत थी।

(३) उग्रसेनजीका जन्म वि० सं० १६१६ की भादों वदी १४ (ई० स० १५५९ की ३ अगस्त) को हुआ था।

मके नशेमें ऊँघ रहा था। अतः मौका देख उन्होंने राव आसकरनजी पर कटारीका वार किया। यह वार रावजीके मर्मस्थलपर हुआ। उनका कराहना सुनकर ऊँघता हुआ आदमी चौंक पड़ा और उसने अपने स्वामीकी यह दशा देख वही कटारी उग्रसेनजीकी छातीमें घुसेड़ दी। उग्रसेनजी तो उसी समय मर गए और कुछ देर बाद ही आसकरनजी-का भी स्वर्गवास हो गया। यह घटना वि० सं० १६३८की चैत्र सुदी २ (ई० स० १५८१ की ७ मार्च) की है।

वि० सं० १६३८ का आसकरनजीका एक लेख सारनसे मिला है। राणा उदयसिंहजीने जब आसकरनजी और उग्रसेनजीके मरनेकी खबर सुनी, तब उन्होंने मारवाड़के सरदारोंसे कहलाया कि रायमलके पुत्र केशोदासको गद्दीपर बिठा दो। परन्तु उन्होंने चन्द्रसेनजीके ज्येष्ठ पुत्र रायसिंहजीको राजतिलकके लिए बुलवाया और केशोदासको सिरियारी नामक (सोजत परगनेका) गाँव जागीरमें दे दिया।

राव रायसिंहजी।

ये चन्द्रसेनजीके बड़े पुत्र थे और पिताके जीतेजी ही बादशाहके पास जा रहे थे। इनका जन्म वि० सं० १६१४ में हुआ था। जिस समय शाही सेनाने काबुल पर चढ़ाई की, उस समय ये भी उसके साथ गए थे।

जब मारवाड़के सरदारोंका भेजा हुआ कासिद इनके पास पहुँचा तब बादशाहने भी इन्हें रावका खिताब और सोजतका परगना जागीरमें देकर विदा किया। ये सोजत पहुँच वि० सं० १६३९ में

(१) केशोदास इस जागीरसे सन्तुष्ट न हुए और अकबरके पास जा रहे। ये वहाँपर केशवमारूके नामसे प्रसिद्ध थे। इनको अकबरने मालवामें चोली महेसरका बड़ा इलाका जागीरमें दिया था। अमझिराके रईस इन्हींके वंशज थे। वि० सं० १९१४ के गदरके बाद यह इलाका भारत गवर्नमेण्टने जब्त कर लिया।

गद्दीपर बैठे। इसके बाद शीघ्र ही लौटकर बादशाहके पास फतहपुर चले गए। उसी समय राणा उदयसिंहजीका छोटा पुत्र जगमाल भी बादशाहके पास हाजिर हुआ और अर्ज की कि यद्यपि आपने मुझे सिरोहीका आधा राज्य दे दिया है तथापि वहाँका देवड़ा राव सुरतान मुझे उसपर अधिकार नहीं करने देता है। इसपर बादशाहने रायसिंहजीको आज्ञा दी कि वे स्वयं जाकर सुरतान और जगमालके बीच सिरोहीका राज्य आधा आधा बाँट दें। जब बादशाहकी आज्ञानुसार ये जगमालके साथ सिरोही राज्यके दतानी नामक गाँवमें पहुँचे तब राव सुरतानने इन पर रातमे अचानक आक्रमण कर दिया। इसीमें ये दोनों मारे गए।

यह घटना वि० सं० १६४० की कार्तिक शुक्ला ११ (ई० स० १५८३ की २७ अक्टोबर) को हुई थी।

इनके पीछे इनकी तीन रानियां सती हुईं।

१९ राजा उदयसिंहजी।

वि० सं० १६४० में रायसिंहजीके मरनेपर मारवाड़में भयानक अकाल पड़ा और यहाँकी प्रजा अन्नकी चिन्तामें इधर उधर भटकने लगी। इसपर बादशाह अकबरने उदयसिंहजीको जोधपुर और सोजतके परगने देकर मारवाड़का राज्य सौंप दिया।

वि० सं० १६४० की भादों वदी १२ (ई० स० १५८३ की १५ अगस्त) को ये गद्दीपर बैठे।

इनका जन्म वि० सं० १५९४ की माघ शुक्ला १२ (ई० स० १५३८ की १३ जनवरी) को हुआ था।

(१) कहीं कहीं भादोके बदले कार्तिक लिखा है और कहीं कहीं संवत् १६४१ लिखा है।

(२) कहीं १३ लिखी है।

मालदेवजीने इन्हें फलोदीका परगना जागीरमें दिया था।

जिस समय वि० सं० १६३५ में बादशाह अकबरने सादिकखाँको ओरछा और बुंदेलखंडके शासक मधुकरशाहपर चढ़ाई करनेको भेजा था, उस समय उदयसिंहजी भी उसके साथ गए थे और नरवरका किला खास तौरपर इन्हींकी वीरतासे फतह हुआ था। इसके बाद ये ग्वालियर के गूजर डकैतोंको दबानेके लिए भेजे गए। उसमें भी इन्होंने अच्छी वीरता दिखाई। इन्हीं कामोंसे प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें राजाकी पदवी और जोधपुरका राज्य दिया था। इन्होंने भी इस प्रकार जोधपुरका राज्य प्राप्त कर अपने कुटुंबवालों और सैनिकोंको समावली (ग्वालियर) से जोधपुरमें बुलवा लिया।

उसी दिनसे जोधपुरके शासक राजा कहलाने लगे।

वि० स० १६३९ में अकबरने अब्दुर्रहमान खानखानाको गुजरातके शासक मुजफ्फरशाहपर हमला करनेके लिए भेजा। राजा उदयसिंहजी भी इसके साथ गए। राजपीपलीके युद्धमें मुजफ्फरको हारकर भागना पड़ा।

पहले लिखा जा चुका है कि सिरोहीके राव सुरताननने जोधपुरके राव रायसिंहजीको मार डाला था। अतः उसका बदला लेनेके लिए बादशाहकी आज्ञासे इन्होंने सिरोहीपर हमला किया[1]। अकबरकी आज्ञासे जालोरका जामबेग पठान भी इनके साथ था। सुरताननने इनका सामना करना असम्भव समझ हरजाना दे अधीनता स्वीकार कर ली।

वि० सं० १६४३ में उदयसिंहजीने चारणोंके कुछ गाँव जब्त कर लिए। इससे उन लोगोंने (आउवा नामक गाँवके पास) जमा होकर चांदी (खुदकुशी) की।

वि० सं० १६४४ में अकबरने देवड़ा बीजाको सिरोहीका राज्य

(१) फरिश्ताने इस घटनाका समय वि० सं० १६५० लिखा है।

दे दिया । और राजा उदयसिंहजीको उसकी सहायताके लिए भेजा। उदयसिंहजीने पठान जामबेगको साथ लेकर राव सुरतानपर चढ़ाई की। इसका समाचार पाते ही सुरतान सिरोहीसे भाग निकला । बीजाने और जामबेगने उसका पीछा किया । वासथानजी नामक गाँवके पास इनकी मुठभेड़ होगई और इसमें बीजा मारा गया । इसपर बादशाहकी इच्छानुसार राजा उदयसिंहजीने राव कल्लाको सिरोहीकी गद्दीपर बिठा दिया ।

पहले लिखा जा चुका है कि नागोरके छिन जानेपर चन्द्रसेनजीके भतीजे राठोड़ कल्लाने बादशाहकी सेवा स्वीकार कर ली थी । कुछ समय बाद बादशाहने उसे लाहौरमें नियत कर दिया । वहाँ उसके और किसी मुसलमान अफसरके आपसमें झगड़ा हो गया । कल्ला उसे मार कर सिवानाके किलेमें आ रहा । इसपर बादशाहने राजा उदयसिंहजीको उसे दंड देनेकी आज्ञा दी । इन्होंने इसका भार अपने पुत्र सूरसिंहजीको सौंपा । सूरसिंहजीने भी अपने सेनापतियोंको सिवानेपर हमला करनेके लिये भेज दिया । एक रोज मौका पाकर रातके समय कल्ला सेना लेकर किलेसे बाहर निकला और किलेको घेर कर पड़ी हुई जोधपुरकी सेनापर उसने अचानक ऐसा आक्रमण किया कि उस सेनाके बहुतसे वीर योद्धा मारे गए । रहे सहे इधर उधर भाग निकले । जब यह खबर अकबरको मिली तब उसने राजा उदयसिंहजीको खुद जाकर कल्लाको दण्ड देनेकी आज्ञा दी । इसके अनुसार एक बड़ी सेना लेकर इन्होंने सिवानेपर हमला किया । परन्तु फिर भी कल्लाकी वीरता और रणचातुरीके आगे इन्हें सफलता न हुई । यह देख इन्होंने लालच देकर किलेके एक नाईको अपनी तरफ मिला लिया। उसने भी लालचमें फँस रस्सी द्वारा इनके कुछ सैनिकोंको किले में चढ़ा लिया । जब कल्लाको इस बातका पता लगा, तब उसने अपने कुटुम्बकी

औरतोंको बादमें होनेवाली बेइज्जतीसे बचानेके लिए अपने हाथसे ही मार डाला और खुद तलवार लेकर दुश्मनोंके सामने आ खड़ा हुआ। कुछ देरके युद्धके बाद शत्रुओंकी अधिकताके कारण कल्ला रायमलोत बड़ी वीरतासे लड़ता हुआ वीरगतिको प्राप्त हुआ।

यह घटना वि० सं० १६४५ में हुई थी। इसके बाद सिवानेपर उदयसिंहजीका अधिकार हो गया।

वृद्धावस्थामें राजा उदयसिंहजीका शरीर मोटा हो गया था। अतः बादशाहने उनकी सेवाओंका खयालकर (और नागोरमें कहे अपने वचनोंको यादकर) उनको मोटा राजाका ख़िताब और एक हजार सवारोंका मनसब दिया[1]।

वि० सं० १६५० में राजा उदयसिंहजीने रावल वीरमदेवको जसोलसे निकालकर वहाँपर अपना अधिकार कर लिया और बालोतरा नामक गाँवमें मल्लिनाथजीके नामसे एक मेला लगवाना प्रारम्भ किया। यह मेला अबतक हरसाल चैत्र मासमे लगता है और इसमें ऊँट, घोड़े और बैलोंका लेना बेचना होता है।

वि० सं० १६५२[2] की आषाढ़ सुदी १५ (ई० स० १६९५ की २३ जुलाई) को लाहौरमें राजा उदयसिंहजीका देहान्त हुआ। वहींपर रावी नदीके किनारे इनका अग्निसंस्कार किया गया। अकबर बादशाह खुद भी नावमें बैठकर इनके पीछे होनेवाली सतियोंकी दृढ़ताको देखनेके लिए आया और वहाँपर उसने इनके पुत्र सूरसिंहजीको बहुत तसल्ली दी।

---

(१) तबकाते अकबरीके अनुसार उस समय इनको १५०० सवारोंका मनसब था।

(२) कहीं कहीं वि० सं० १६५१ लिखा मिलता है। इस हिसाबसे सूरसिंहजी भी १६५१ के सावनमें गद्दीपर बैठे थे।

उदयसिंहजीने १२ वर्षके करीब राज्य किया। अकबर इनका बहुत मान रखता था और ये उसके दरबारमें प्रथम श्रेणीके रईस समझे जाते थे।

इनके १७ पुत्र थे[1]। इनमेंसे तीसरे सूरसिंहजी इनके उत्तराधिकारी हुए।

उदयसिंहजीके एक पुत्रका नाम कृष्णसिंह था। बादशाह जहाँगीरने उनको अजमेरमें जागीर दी थी। वहींपर उन्होंने अपने नामपर किशन-गढ नामका नगर बसाया। इस स्थानपर अबतक भी उन्हीके वंशजोंका राज्य है।

इनके एक पुत्रका नाम दलपत था। उसके कामोंसे प्रसन्न होकर बादशाहने उसे जालोरकी जागीर दी। उसीके पौत्र रतनसिंहजीको शां-हजहाँने मालवामें जागीर दी थी और वहींपर उन्होंने अपने नामपर रत-लाम शहर बसाया। अबतक रतलाममें उन्हींके वंशजोंका राज्य है।

जिस समय शाहजहाँकी तरफसे जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथमने उज्जैनके पास औरंगजेबसे युद्ध किया, उस समय वे भी उनके साथ थे और उसी युद्धमें वे वीरगतिको प्राप्त हुए।

२० राजा शूरसिंहजी।

उदयसिंहजीके बाद वि० सं० १६५२ के सावनमें उनके पुत्र शूर-सिंहजी लाहौरमें उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं १६२७

(१) इनसे नौ शाखाएँ चलीं। सगतसिंघोत, भोपतोत, नरहरदासोत, मोहनदासोत, माधोसिंहोत, सजनसिंघोत, दलपतोत, रतनोत और गोविंददासोत। खरवा (अजमेर) के रावजी सकतसिंहजीके वंशज सकतसिंघोतोंमें से हैं और इन सकतसिंहजीका जन्म वि० सं० १६१५ में होना बतलाते हैं। परंतु जोध-पुरकी ख्यातोंमें इनका जन्म वि० सं० १६२४ में होना लिखा है। जूनिया (अजमेर) के ठाकुर माधोसिंहोतोंमेंसे है। गोविन्दगढ (अजमेर) के जागीर-दार गोविंददासजीकी औलादमें हैं।

की वैशाखवदी ३० (ई० सं० १५७० की ४ अप्रेल,) को हुआ था। अकबर बादशाहने इन्हें जोधपुरके साथ गुजरातकी सूबेदारी, दो हजारी जात और सवा हजार सवारोंका मनसब दिया। इसके बाद लाहौरसे रवाना होकर ये जोधपुर पहुँचे और वि० सं० १६५२ की माघ सुदी ५ को इनका राज्याभिषेक हुआ।

इस कामसे छुट्टी पाकर और मारवाड़के प्रबन्धका कार्य भाटी गोविन्ददासको सौंप कर ये बादशाहकी आज्ञानुसार वि० सं० १६५३ में शाहजादे मुरादके साथ गुजरातकी तरफ रवाना हुए। मार्गमें इन्होंने राव सुरतानपर आक्रमण कर सिरोहीपर अधिकार कर लिया। परन्तु कुछ दिन बाद वहाँका अधिकार वापिस सुरतानको ही दे दिया। उसने भी इसकी एवजमें अपनी कन्याका विवाह इनके साथ कर दिया।

ये चार वर्षतक गुजरातमें रहे। इसी बीच एक बार तो उक्त प्रदेशके भूतपूर्व बादशाह मुजफ्फरने और दूसरी बार वि०सं० १६५४में उसके पुत्र बहादुरने अपने गए हुए गुजरातके राज्यपर हमला कर अधिकार करनेकी चेष्टा की। परन्तु राजा शूरसिंहजीकी शूरताके आगे उनकी एक न चली।

वि० सं० १६५४ में बादशाहने इन्हे शाहजादे दानियाल और अबुलफजलकी सहायताके लिए दक्षिणकी तरफ जानेकी आज्ञा दी। उस समय ये दोनों अहमदनगरवालोंके साथ लड़ रहे थे। इस युद्धमें भी राठोड़ राजाने बड़ी वीरता दिखलाई और वि० सं० १६५७ में नासिकके तथा वि० सं० १६५९ मे अमरचंपू[1] के साथके युद्धोंमें विजय पाकर उक्त स्थानोंपर अधिकार कर लिया।

इससे प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें सवाई राजाका खिताब, मेड़ता

(१) शाहजादे दानियालको और नवाब खानखानाको शत्रुओने घेर लिया था। परन्तु शूरसिंहजीकी शूरतासे उनके प्राण बच गए और अमरचम्पूकी पराजय हुई।

और जैतारनके परगने, नक्कारा और हाथी देकर मारवाड़में जानेकी आज्ञा दी। इसपर वि० सं० १६६१ में १० वर्षबाद ये जोधपुर पहुँचे।

वि० सं० १६६१ की कार्तिक सुदी १४ (२५ अक्टोबर सन् १६०५) को बादशाह अकबरका देहान्त हो गया और उसका पुत्र जहाँगीर बादशाहतका मालिक हुआ।

इसने तख्तपर बैठते ही शूरसिंहजीको गुजरातकी सूबेदारीपर जानेकी आज्ञा भेजी। वहाँपर उस समय बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। परन्तु राठोड़ राजने अहमदाबाद पहुँच कर उसको शान्त कर दिया। इसके बाद दो वर्ष तक वहाँका प्रबन्ध कर वि० सं० १६६३ के अन्तमें ये जोधपुरको लौट आए और कुछ दिन अपनी राजधानीमें रहकर वि० सं० १६६५ में आगरेमें बादशाहके पास पहुँचे।

जहाँगीरने इन्हें चार हजारी जात और दो हजार सवारोंका मनसब देकर दक्खनकी तरफ भेज दिया। वहाँपर ये करीब ६ वर्षो तक रहे और इन्होंने मंडवाके कोली जातिके राजा लालको मारकर उसके देशपर अधिकार कर लिया।

इसी बीच जहाँगीरने उदयपुरके राणा अमरसिंहजीपर फौज भेजी। परन्तु उसमें सफलता न होनेके कारण वि० सं १६६९ में बादशाहको अजमेर आना पड़ा। इसपर उसने राजा शूरसिंहजीको भी दक्षिणसे बुलवाया। ये गुजरातकी तरफ़ होते हुए जोधपुर पहुँचे। तीन चार महीने देशमें रहे और अन्तमें वि० सं० १६७० में अजमेरमें बादशाहके पास गए। बादशाहने इन्हें उदयपुरमें शाहजादे खुर्रमके पास

(१) उदयपुरके युद्धके समय महाबतखाने सोजतके परगनेपर अधिकार कर लिया था। परन्तु वि०सं० १६६८ में अब्दुल्लाखांने वह परगना वापिस महाराजको लौटा दिया।

जानेकी आज्ञा दी। ये वहाँसे चलकर मेवाड़में पहुँचे और तीन वर्षतक शाही सेनाके साथ रहे। अन्तमें नौ वर्षकी लगातार लड़ाईके बाद राजा शूरसिंहजीने राणा अमरसिंहजीके और शाहजादा खुर्रमके बीच सुलह करवा दी।

जब शाहजादा राणाजीके पुत्र करनको लेकर बादशाहके पास अजमेर आया तब राजा शूरसिंहजी भी साथ थे।

वि० सं० १६७२ की जेठ वदी ८ की रातको किशनगढ़के स्वामी किशनसिंहजीने इनके स्थानपर हमला किया और इनके मंत्री भाटी गोविन्ददासको मार कर वे किशनगढ़की तरफ चल दिये[२]। राजा शूरसिंहजीने इसको अपनी मानहानि समझ अपने पुत्र गजसिंहजीको इसका बदला लेनेकी आज्ञा दी। इसपर उन्होंने अपने चाचा किशनसिंहजीको मार पिताकी आज्ञाका पालन किया। इसके बाद किशनसिंहजीके पुत्र सहसमलजी किशनगढ़की गद्दीपर बिठाए गए।

बादशाहने राजा शूरसिंहजीको ५ हजारी जात और ३ हजार सवारोंका मनसब तथा खर्चके लिए जालेरका परगना देकर दक्षिणकी तरफ जानेकी आज्ञा दी। इसपर ये अजमेरसे चलकर जोधपुर आए और कुछ दिन जोधपुरमें रहकर वि० सं० १६७३ में देहली पहुँचे और वहाँसे दक्षिणकी तरफ रवाना हुए।

उस समय दक्षिणके बीजापुर और अहमदनगरके बादशाहों और देहलीके बादशाह जहाँगीरके बीच झगड़ा चल रहा था और इसीके वास्ते

(१) कहीं कहीं इस घटनाका समय जेठ वदी ९ लिखा है।

(२) उस समय राजा शूरसिंहजीका डेरा पुष्करमें था। भाटी गोविन्ददासने किशनसिंहजीके भतीजे गोपालदासको मारा था। उसीका बदला लेनेके लिए किशनसिंहजीने उसको मार डाला।

मुगल बादशाहकी बड़ी बड़ी सेनाएं वहाँपर रहती थीं । इन्हींकी देख-भालके लिए नबाब खानखाना और राजा शूरसिंहजी नियत किये गए थे ।

वि० सं० १६७४ में महाराज कुमार गजसिंहजीने विहारियोंसे जालोर छीन लिया ।

वि० सं० १६७५ मे दक्खनी पठानोंके एक बड़े दलने बुरहान-पुरको घेर लिया । बादशाहकी आज्ञा थी, कि जहाँतक हो उनसे युद्ध किया जाय और किला न छोड़ा जाय । परन्तु किलेमें खानेका सामान बहुत कम था । अतः जहाँतक हो सका, शूरसिंहजीने अपने सोने चादीके बरतन तक बेचकर सैनिकोंके भोजन आदिका प्रबन्ध किया । जब इस पर भी भोजन समाप्त हो चला, तब इन्होंने नवाबसहित किलेके बाहर निकल पठानोंपर ऐसा आक्रमण किया कि वे मारसे घबराकर भाग गए । यही राजा शूरसिंहजी की वीरताका अन्तिम कार्य था ।

वि० सं० १६७६ की भादों सुदी ९ (ई० स० १६१९ की १९ सितंबर) को बुरहानपुर जिलेके मेहकर नामक स्थानमें इनका स्वर्गवास हो गया ।

ये बड़े वीर, नीतिचतुर, दानी और विद्वान् थे । इन्होंने एक ही दिन में ४ कवियोंको एक लाखका दान दिया था ।

तलहटीके महल, सूरजकुण्ड और सूरसागरके महल इन्हींके बन-वाए हुए है । दक्षिणी पठान भी इनकी तलवारसे डरते थे ।

बादशाह जहाँगीर इनका बड़ा मान रखता था । जिस समय उसको इनकी मृत्युका समाचार मिला उस समय उसने बड़ा अफसोस किया और इनके पुत्र गजसिंहजीको बुलाकर टीका दिया ।

जहाँगीरने अपने इतिहासमें लिखा है:—

"हि० स० १२०८ (वि० सं० १६७६) मे मुझे दक्षिणमें राजा शूरसिंहकी मृत्यु होनेका समाचार मिला। ये राव मालदेवजीके पौत्र थे और इन्होंने अपने आप नाम और दर्जा हासिल किया था। इनके दादा और इनके पिताके समयसे भी इनके समय मारवाड़की अधिक तरक्की हुई थी। इन्होंने अपने पुत्र गजसिंहको अपने जीते जी ही राज्यकी देखभालमें लगा दिया था"

इनका मुख्य मंत्री भाटी गोविन्ददास भी बड़ा ही बुद्धिमान् था। उसने इनके राज्यका सब प्रबन्ध बादशाही ढँगपर बाँधा। मारवाड़में पहले पहल सरदारोंकी इज्जत और दरबारमें उनके बैठने उठनेके नियम आदि भी इसीने नियत किये थे। वही नियम आजतक चले आ रहे है।

इनके छोटे पुत्र सबलसिंहको राज्यकी तरफसे फलोधी और बाहशाहकी तरफसे गुजरातमें जागीर मिली थी।

२१ राजा गजसिंहजी

ये राजा शूरसिंहजीके पुत्र थे। इनका जन्म वि० स० १६५२ की कार्तिक शुक्ला ८ (ई० स० १५९५ की ११ नवंबर) को हुआ था। जिस समय इनको अपने पिताकी बीमारीका समाचार मिला, उसी समय ये बादशाहकी आज्ञा लेकर बुरहानपुरकी तरफ चले गए थे। जब शूरसिंहजीका स्वर्गवास हो गया, तब बाहशाह जहाँगीरने नवाब खानखानाके पुत्र दौराबखांके साथ वहींपर इनके लिए टीका भेजा और ३ हजारी जात तथा २ हजार सवारोंका मनसब दिया। वि० सं० १६७६ की आसोज (क्वाँर) सुदी ९ को ये गद्दीपर बैठे। उस समय दिल्लीकी बादशाहत मेहकर तक ही थी। इसके आगे अहमदनगरके बादशाहका राज्य था। वहाँके राजाके वजीरका नाम अम्मरचम्पू

था। यह हबशी जातिका बड़ा वीर योद्धा था। एकबार इसने आकर बादशाही सेनाको घेर लिया। इस शाही सेनाके आगेके भागमें गजसिंहजीकी वीरवाहिनी थी। तीन महीने तक शाही सेना घिरी रही और इस बीच पाँच सात लड़ाइयाँ भी हुई। परन्तु अन्तमें गजसिंहजीकी वीरतासे शाही सेना की विजय हुई और दक्षिणी भाग गए।

वि० सं० १६७७ में एक बार फिर दक्षिणियोंसे युद्ध प्रारम्भ हुआ और दो वर्ष तक बराबर चलता रहा। इस बार भी गजसिंहजीकी सेना शाही फौजके अग्रभागमें थी। इन्हींकी वीरतासे अन्तमें बादशाही सेनाकी जीत हुई। इस वीरतासे प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें चार हजारी जात और तीन हजार सवारोंका मनसब देकर 'दलथंबन' (दलस्तम्भन-सेनाको रोकनेवाला) का खिताब दिया।

इसी लड़ाईमें इन्होंने निजामशाह अम्मरचम्पूका लाल झंडा छीन लिया था, अतः उसी दिनसे जोधपुरके झंडेमें लाल रंगकी पट्टी लगने लगी।

वि० सं० १६७९ में शाहजादा खुर्रम आगरेसे दक्षिणमें आया और उसने अम्मरचम्पूसे सुलह कर ली। इसपर राजा गजसिंहजी शाहजादेकी आज्ञा लेकर वहाँसे फतहपुरसीकरीमें बादशाहके पास पहुँचे और उससे मिलकर वि० सं० १६७९ के भादोंमें जोधपुर आए। बादशाहने इनकी रवानगीके समय इन्हें जालोरका परगना दिया, परन्तु उस समय वहाँपर शाहजादे खुर्रमका अधिकार था। अतः उसके आदमियों ने किला खाली करनेसे इनकार कर दिया। गजसिंहजी भी समयको देख चुप हो रहे। कुछ समय बाद बादशाहने इन्हें फिर शाहजादेके पास जानेकी आज्ञा दी। उसीके अनुसार ये गुजरातमें जाकर उससे मिले। इस बार इनसे मिलकर वह बहुत ही

प्रसन्न हुआ और उसने जालोरके साथ ही साँचोरका परगना भी इन्हें दे दिया।

नूरजहाँ बेगमके कारण बादशाह जहाँगीर और शाहजादे खुर्रमके बीच मनोमालिन्य हो गया। इसपर शाहजादेने बगावत शुरू की। यह देख बादशाहने अपने दूसरे शाहजादे परवेजको वि० सं० १६८० में उसके दबानेके लिए भेजा और राजा गजसिंहजीको पाँच हजारी जात तथा चार हजार सवारोंका मनसब और फलोधीका परगना देकर उसके साथ कर दिया। वि० सं० १६८१ की कार्तिक सुदी १५ को हाजीपुर पटनेमें गंगाके किनारे दोनोंका सामना हुआ। उस समय उधर खुर्रमकी सेनाके अग्रभागमे राणा अमरसिंहजीका पुत्र भीम पाँच हजार सवारोंको लेकर खड़ा हुआ और इधर बादशाही सेनामें यद्यपि हमेशाके रिवाजके माफिक राजा गजसिंहजीको आगे रखना चाहिये था तथापि परवेजने इनकी एवजमे आमेरके राजा जयसिंहजीको बहुतसी सेना देकर फौजके अग्रभागमें रख दिया।

यह बात राजा गजसिंहजीको बुरी लगी और ये नाराज होकर अपनी सेनासहित नदीके बाएं किनारे कुछ हटकर खड़े हो गए। जब युद्ध आरम्भ हुआ और भीमकी सेनाने आगे बढ़ हमला किया, तब परवेजकी फौज भाग खड़ी हुई। यह देख भीमने अलग खड़ी हुई गजसिंहजीकी सेनापर आक्रमण किया। इसपर दोनों तरफसे लड़ाई शुरू हो गई। मौका पाकर गजसिंहजीने अपने बरछेसे भीमको हाथी-परसे नीचे गिरा दिया। अपने मुख्य सेनापतिकी यह दशा देख खुर्रम भाग निकला और शाही सेनाकी विजय हुई।

इसके बाद इन्होंने प्रयागमें पहुँच त्रिवेणीमें स्नान किया और चांदीका तुलादान दिया।

खुर्रम भागकर उड़ीसेके पहाड़ोंमें होता हुआ दक्षिणमें पहुँचा। बादशाहने राजा गजसिंहजीको और बूंदीके हाड़ा राव रतनको उसके पीछे भेजा। खुर्रमने बुरहानपुर पहुँच वहाँके कुछ गाँवोंको लूट लिया और राव रतनके कुछ सैनिकोंको भी मार डाला। इसपर महाराजा गजसिंहजी वहाँपर गए। यह देख खुर्रम भागकर आसेरके किलेमें घुस गया। यहींपर गोपालदास गौड़ अपने १४ बेटों और तीन हजार सिपाहियोंको लेकर खुर्रमसे आन मिला। दो वर्षतक बराबर खुर्रमके और शाही सेनाके बीच लड़ाई होती रही। अन्तमें खुर्रमको वहाँसे भी भागना पड़ा। परन्तु उस समय जो युद्ध हुआ उसमें उधर तो गोपालदास और बलराम गौड़ मारे गए और इधर भी कुछ राठोड़ सरदार वीरगतिको प्राप्त हुए।

वि० सं० १६८२ में बादशाहने महाबतखांको परवेजके पाससे बुलवाकर फिदाईखांको उसके स्थानपर भेज दिया। इसपर सारे अमीर मय शाहजादे परवेजके महाबतखांके साथ रवाना हो गए। उस समय राजा गजसिंहजीने शाहजादे परवेज, राजा जयसिंह, राव रतन हाड़ा, राव चांदा और राजा बरसिंह आदिको समझाकर मार्गसे वापिस लौटाया।

इसके बाद महाबतखाने आसफखां वजीरकी अदावतसे तंग आकर बादशाह जहाँगीरको कैद कर लिया। परन्तु इस अवस्थामें भी महाबतखां उसका बादशाहके समान ही मान रखता था।

कुछ दिन बाद वह बादशाहको काश्मीर ले गया। आखिर एक दिन महाबतखाके आदमियोंके और बादशाही शिकारियोंके बीच लड़ाई हो गई और इसीसे महाबतखांकी कैदसे बादशाहका पीछा छूटा। इसी समय फिदाईखां भी दक्षिणसे रवाना होकर बादशाहके पास पहुँच गया।

और उसने बादशाहसे राजा गजसिंहजीकी बड़ी तारीफ की। इसपर बादशाहने उन्हें मेड़तेका परगना वापिस दे दिया। यह परगना शाहज़ादे परवेज़ और महाबतखांने पहले ज़ब्त कर लिया था।

वि० सं० १६८३ के कार्तिकमें शाहजादा परवेज़ मर गया और महाबतखां बादशाही दरबारसे निकाल दिया गया।

महाराजके वकीलने बादशाहसे नागोरका परगना राजा गजसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र कुँवर अमरसिंहजीके नाम लिखवाया। इसपर वे राजसिंह कूंपावत और पंद्रह सौ सवारोंको साथ लेकर बादशाहके पास चले गए।

इसके बाद राजा गजसिंहजी बादशाहसे विना पूछे ही जोधपुर चले गए। इसपर बादशाहने अप्रसन्न होकर नागोर ज़ब्त कर लिया। यह देख राजाजी फिर दक्षिणको लौट गए।

वि० सं० १६८४ की कार्तिक वदी १३ को काश्मीरसे लौटते हुए मार्गमें राजौरमे जहांगीरकी मृत्यु हो गई।

वजीर आसफ़खांने जो नूरजहांका भाई और खुर्रमका श्वसुर था उस समय तो अवसर देखकर शाहजादे दावर बख्शको बादशाह बना दिया। परन्तु गुप्त रूपसे कासिद भेजकर दक्षिणसे खुर्रमको बुलवा भेजा। वह भी समाचार पा दक्षिणसे गुजरात होता हुआ मेवाड़ पहुँचा। वहाँसे राना करनसिंहजीके पुत्र जगतसिंहको साथ लेकर अजमेर आया। यहाँपर महाबतखांने अर्ज की कि गजसिंहजीको मेरा सिर काटनेके लिए नागोर मिली थी वह अब मुझे मिलनी चाहिए। यह सुन खुर्रमने नागोरकी जागीर उसको लिख दी। इसपर महाबतखांने अपनी सेना भेज वहाँपर अधिकार कर लिया।

---

१ वि० सं० १६८४ की माघ सुदी १० को शाहजहाँ गद्दीपर बैठा।

इसके बाद खुर्रमने गोपालदास गौडके पुत्र विट्ठलदासको उसकी सेवाओंके उपलक्षमें राजाकी उपाधि और अजमेरसे रणथंभोरतकका देश जागीरमें दिया।

इसी बीच दक्खनका सूबेदार खानजहाँ लोदी बालाघाटका सारा इलाका अहमदनगरके शासक निजामुलमुल्कको देकर मालवे चला आया। राजा जयसिंहजी और गजसिंहजी भी उसके साथ थे। परन्तु जब इनको खुर्रमके अजमेर पहुँचनेकी सूचना मिली तब राजा जयसिंहजी तो अजमेर पहुँचे और राजा गजसिंहजी जोधपुर चले आए। अजमेरसे चलकर खुर्रम आगरे पहुँचा और १८ शाहजादोंको जो उसके चचेरे भाई थे मारकर शाहजहांके नामसे तख़्तपर बैठा। राजा गजसिंहजी भी जोधपुरसे रवाना होकर आगरे पहुँचे और वहाँपर बादशाहसे मिले। बादशाहने भी इनकी बड़ी खातिर की और हाथी, घोड़े, जड़ाऊ हथियार और खिलत वगैरह देकर तथा जहांगीरके दिये मनसबको बहाल रखके इनका मान बढ़ाया।

इसके बाद बादशाहने महाबतखांको दक्षिणकी सूबेदारी दी और खानजहां लोदीको मालवेका सूबेदार नियत कर अपने पास बुलवाया। इसपर एक वार तो वह बादशाहके पास हाजिर हो गया; परन्तु वि० सं० १६८६ की फाल्गुन कृष्णा ६ को रातके समय वापिस भागकर निजामुलमुल्क दक्षिणीसे जा मिला। यह देख शाहजहां खुद उसके

(१) इस घटनापर एक मारवाड़ी कविने क्या ही अच्छा कहा है:—

सबल सगाई ना गिनै, नहिं सबलांमें सीर।
खुरम अठारै मारिया, कै काका कै बीर॥

अर्थात्—जबरदस्त लोग रिश्तेदारीको नहीं मानते, न उनसे रिश्तेदारोंको फायदा ही होता है। देखो खुर्रमने अपने चाचा और भाई मिलाकर १८ जनोंको मार डाला।

पीछे रवाना हुआ और राजा गजसिंहजीको बूंदी और बीकानेरके राजाओंके साथ पन्द्रह पन्द्रह हजार सवार देकर आगे रवाना किया। ये सब फौजें बुरहानपुरमें इकट्ठी हुई।

शाहजहांने आसेरसे हिन्दू मुसलमानोंकी एक सयुक्त सेना देकर राजा गजसिंहजीको दौलताबादकी तरफ भेजा। वहाँपर इनकी खान-जहासे कई लड़ाइयां हुई और उसे (खानजहांको) मालवेकी तरफ भागना पड़ा। वि० सं० १६८७ में कालिंजरके पास खानजहाँ राव रतन हाड़ाके बेटे माधवसिंहके हाथसे मारा गया। परन्तु बादशाहने राजा गजसिंहजीको इसके पहले ही अपने पास बुला लिया था। इसी वर्ष शाहजहांने बुरहानपुरसे बीजापुरके बादशाह आदिलखांपर सेना भेजी। इसके अग्रभागमें भी राजा गजसिंहजीकी सेना थी। अतः शाही सेनाकी विजय हुई। इसके बाद ये जोधपुर चले आए।

वि० सं० १६८९ में[1] बादशाह बुरहानपुरसे पंजाबको गया। राजा गजसिंहजी भी उसके साथ थे। लाहौरमें पहुँचकर महाराजाने अपने बड़े पुत्र अमरसिंहजीको[2] वहाँ बुलवाया और बादशाह शाहजहाँसे

(१) वि० सं० १६८९ के दो लेख फलोधीसे मिले हैं। इनमें महाराजा गज-सिहजीका और इनके बड़े महाराज कुमार अमरसिंहजीका उल्लेख है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी १९१६, पृ० ९७, ९८)

(२) कहते हैं कि गजसिंहजीको जसवन्तसिंहजीकी मातासे बड़ा प्रेम था। और उसीके कहनेसे गजसिंहजीने जसवन्तसिंहजीको अपना उत्तराधिकारी बनाकर उनके बड़े भाई अमरसिंहजीको बादशाहसे अलग जागीर और मनसब दिलवा दिया था। अमरसिंहजी भी बड़े वीर और मानी थे। इन्होंने दक्षिण बुंदेलखंडकी लड़ाइयोंमें मराठों और बुंदेलोंको कई बार हराया था। इसीसे प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहाने इनको तीन हजारी जात और तीन हजार सवारोका मनसब दिया था। ये शाहजादे शुजाके साथ काबुल भी गये थे।

जुदा मनसब और साढ़े चार लाख रुपये आमदनीकी जागीर दिलवाई। तथा जोधपुरके राज्यका उत्तराधिकारी अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंहजीको नियत किया।

वि० सं० १६९३ में महाराज लौटकर जोधपुर पहुँचे।

इनका जन्म वि० सं० १६७० की वैशाख सुदी ७ को हुआ था।

जिस समय राजा गजसिंहजी बहुत बीमार हुए उस समय बादशाह खुद उनसे मिलनेको आया। गजसिंहजीने उससे और अपने सरदारोंसे जसवन्तसिंह-जीको अपना उत्तराधिकारी बनानेके लिए कहा। उसीके अनुसार बादशाहने जसवन्तसिंहजीको चार हज़ारी जात व तीन हजार सवारोंका मनसब और खिलत आदि देकर मारवाड़का राज्य दिया, तथा अमरसिंहजीको तीन हजारी ज़ात, तीन हजार सवारोंका मनसब देकर रावकी पदवी दी और उसीके साथ नागोरका परगना जागीरमें दिया।

राव अमरसिंहजीके और बीकानेरवालोंके अक्सर सरहदी मामलोंपर झगड़े होते रहते थे, क्योंकि उस समयतक दोनो प्रदेशोंकी सीमाका निश्चय नहीं हुआ था। एक वार एक ऐसे ही मामलेमें लाखाणिया गाँवमें झगडा उठ खड़ा हुआ। बादशाहके सेनापति (बख्शी) सलाबतखांने बीकानेरके राजा करणसिंहजीका पक्ष लेकर शाही दरबारमें राव अमरसिंहजीको कुछ ऊँच नीच कहा। इसपर इन्होंने वहीपर उसे कटारसे मार डाला। इसी झमेलेमें खलीतउल्लाखा और अर्जुन गौडके द्वारा आगरेके किलेके फाटकके पास ही ये मारे गए। वह द्वार अबतक इनके नामका स्मरण दिलाता है। इनकी मृत्युके बाद इनके चापावत बल्लूजी और कूंपावत भाऊजी आदि सैनिकोंने युद्धमें प्राण देकर शव ले लिया और हिन्दू धर्मानुसार उसका दाहकर्म किया।

वि० सं० १७०१ की सावन सुदी २ को ये मारे गए थे।

इनके वंशज अमरसिंहोत जोधा कहलाते हैं। इनकी और इनके वंशजोंकी छतरियां नागोरमें अबतक मौजूद हैं। इनके पुत्रका नाम रायसिंह था। औरंग-जेबके समय इसने अपनी वीरतासे अच्छा पद पाया था। इसके पुत्र इन्द्रसिंहसे महाराजा अजीतसिंहजीने नागोर छीन लिया।

वि० सं० १६९४ में राजा गजसिंहजी अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंहजीके साथ आगरे गए और वि० सं० १६९५ की जेठ सुदी ३ (ई० स० १६३८ की २७ मई) को वहींपर इनका स्वर्गवास हुआ । जमनाके किनारे जिस स्थानपर इनका अन्त्येष्टि संस्कार हुआ था । उस स्थानपर इनकी यादगारमें बनाई हुई छतरी अबतक विद्यमान है ।

ये बड़े वीर, दानी और प्रतापी थे । इसीसे बादशाही दरबारमें भी इनका बड़ा मान था । बादशाहने इन्हें महाराजाकी पदवी दी थी और इनके घोड़ोंपर बादशाही मुहरका लगाना भी माफ कर दिया था । ये कुछ दिन दक्षिणके सूबेदार भी रहे थे । इन्होंने छोटे बड़े ५२ युद्धोंमें भाग लिया था और १४ कवियोंको लाख पसाव (अर्थात् चौदह लाख रुपये) दिये थे । इनके साथ हर समय सजे सजाए पाँच हजार वीर राजपूत रहा करते थे । ये अपनी सेनाकी देखभाल खुद ही किया करते थे । दानी ऐसे थे कि करीब करीब जोधपुरका सारा ही खजाना कवियों और वीरोंके पुरस्कारमें व्यय होता था । घोड़े और हाथियोंका भी इन्हें बड़ा शौक था और समय समयपर ये अपने मित्रों और अनुयायियोंको भी घोड़े या हाथी भेट या पुरस्कारके रूपमें देते रहते थे ।

इनके तीन पुत्र थे-अमरसिंहजी, जसवन्तसिंहजी और अचलदासजी ।

२२ महाराजा जसवन्तसिंहजी ।

ये राजा गजसिंहजीके द्वितीय पुत्र थे ।

इनका जन्म वि० सं० १६८३ की माघ वदी ४ (ई० स० १६२७ की ६ जनवरी) को बुरहानपुरमें हुआ था[१] । वि० सं० १६९५ में जिस समय ये १३ वर्षके थे इनके पिताका देहान्त हो

(१ (किसी किसी ख्यातमें माघ सुदी ४ लिखी है ।

गया । इसपर बादशाह शाहजहाँने इनको मारवाड़का उत्तराधिकारी बनाया ।

इसके बाद बादशाहने इनका मनसब बढ़ाकर पाँच हजारी ज़ात व पाँच हजार सवारोंका कर दिया था ।

वि० स० १६९५ की आषाढ वदी ७ को इनका राजतिलक हुआ ।

जिस समय बादशाह काबुलकी तरफ गया उस समय वह राजा जसवन्तसिंहजीको भी अपने साथ ले गया और मारवाड़के प्रबन्धके लिए बादशाही मनसबदार कूंपावत राजसिंहजीको[1] नियत कर गया ।

इन्होने मारवाडका प्रबन्ध बड़ी खूबीसे किया । कहते हैं कि इन्होंने वि० सं० १६९६ मे एक प्रेतके कहनेसे राजा जसवन्तसिंहजीके प्राणोके बदले अपने प्राण दे दिये थे । परन्तु मरते समय अपने वंशवालोंसे प्रतिज्ञा करवा ली थी कि वे आगेसे कभी राज्यका मंत्रित्व स्वीकार न करें । इनकी मृत्युके बाद राज्यके प्रबन्धका भार महेशदासजीको सोंपा गया । ये मोटा राजा उदयसिंहजीके पौत्र और रतलामके सस्थापक रत्नसिंहजीके पिता थे ।

कुछ समय बाद महाराजा लौटकर जोधपुर आ गए ।

वि० सं० १६९९ मे ये दाराशिकोहके साथ कन्दाहार भेजे गए । क्योंकि वहाँपर ईरानके बादशाहके आक्रमणका भय था ।

वि० सं० १७०२ में बादशाह शाहजहाँने राजा जसवन्तसिंहजीको

(१) वि० सं० १६९६ की आषाढ शुक्ला २ का इनके समयका एक लेख फलोधीसे मिला है । (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी १९१६, पृ० ९९ ।)

(२) बादशाहने इनको एक हज़ारी ज़ात और चारसौ सवारोंका मनसब दिया था ।

छः हजारी जात और छः हजार सवारोंका मनसब[1] तथा महाराजाकी पदवी दी। इसके बाद ये जोधपुर आए।

वि० सं० १७०४ में सवारोंमे एक हजारकी तरक्की हुई।

वि० सं० १७०६ में जेसलमेरका रावल मनोहरदास मर गया। यद्यपि वास्तविक हकदार सबलसिंह था तथापि वहाँवालोंने रामचन्द्रको गद्दी पर बिठा दिया। सबलसिंह शाहजहांके पास रहता था इससे उसने जसवन्तसिंहजीको उसकी मददके लिए भेजा। इन्होंने भी जोधपुर पहुँच अपनी सेना सबलसिंहके साथ कर दी। वि० सं० १७०७ की कार्तिक कृष्णा ६ को स सेनाने पोहकरनपर अधिकार कर लिया और वहाँसे भाटियाको भगाकर जैसलमेरको जा घेरा। रामचन्द्र नगर छोड़ भाग गया और राठोड़ सरदारोंने सबलसिंहको वहाँका रावल बनाया। इसकी एवज़मे उसने महाराजाको पोहकरन सौंप दिया।

वि० सं० १७१४ में शाहजहाँ बहुत बीमार हो गया और इसीसे लोगोंने उसके मरनेकी झूठी खबर फैला दी। यह खबर सुन दक्षिण, गुजरात और बंगालके सूबोंसे उसके पुत्र अपनी अपनी सेना लेकर बादशाहतपर कब्जा करनेके लिए रवाना हुए। जब यह समाचार आगरे पहुँचा तब अपने बड़े पुत्र दाराशिकोहकी सलाहसे बादशाहने उनको रोकनेके लिए सेनाएँ भेजीं।

इनमें जो सेना औरंगज़ेब और मुरादको रोकनेके लिए मालवेकी तरफ़ भेजी गई थी उसमें कासिमखां आदि कई मुसलमान और हिन्दू सरदार थे। बादशाहने महाराजा जसवन्तसिंहजीको सात हज़ारी ज़ात

(१) उस समय पाँच हजारी मनसबवालेको सालाना तीस लाख और छह हजारीको करीब चालीस लाख रुपये मिला करते थे।

और सात हज़ार सवारोंका मनसब, मालवाकी सूबेदारी और एक लाख रुपये नक़द देकर इस सेनाका सारा भार सोंप दिया। ये लोग आगरेसे चलकर उज्जैन पहुँचे। यहाँपर वि० सं० १७१५ की वैशाख वदी ८ को बिल्लोचपुर (फतेहाबाद) के पास औरंगजेब और मुरादकी सम्मिलित सेनाओंसे महाराजा जसवन्तसिंहजीकी सेनाका युद्ध हुआ। परन्तु औरंगजेबने शाही सेनाके मुसलमान सरदारोंको पहले ही अपनी तरफ़ मिला लिया था। इस लिए उन लोगोंने ऐन मौकेपर धोखा दिया। बादशाही सेनाका अफ़सर क़ासिमखां अपनी सेनाको लेकर युद्धसे पीछे हट गया। यद्यपि राठोड़ोंने बहुत ही जी तोड़कर युद्ध किया और क़रीब दस हज़ार शत्रुओंको क़यामतके दिनतक कब्रमें आराम करनेको भेज दिया तथापि अन्तमे युद्धकी भयङ्करता देख महाराजाके सरदारोंने इन्हें इच्छा न होनेपर मारवाड़की तरफ़ रवाना कर दिया और राठोड़ वीर रतनसिंहजीको अपना सेनानायक बनाकर शत्रुपर आक्रमण शुरू किया। इनकी वीरतासे औरंगज़ेबकी सेनाका सेना-नायक मुरशिद कुलीखां मारा गया। परन्तु अन्तमें राजा रतनसिंहजी आदि बड़े बड़े सरदारोंके मारे जानेपर राठोड़ सेनाको औरंगजेबका रास्ता छोड़ना पड़ा। विजयी औरंगज़ेब आगरेकी तरफ़ रवाना हुआ।

महाराजा जसवन्तसिंहजी उज्जैनसे चलकर सोजत होते हुए जोध-पुर पहुँचे। जब बादशाहको मुसलमानी सेनाकी करतूत और औरंगजे-बकी विजयका हाल मालूम हुआ तब उसने ५० लाख रुपये भेजकर महाराजा जसवन्तसिंहजीको नवीन सेना एकत्रित करके आगरेकी तरफ़ आनेको लिखा। महाराजा साहबने जोधपुरका प्रबन्ध अपने मंत्री मुहता नैनसीको सोंपकर आगरेकी यात्रा की। मार्गमें ये एक मासके क़रीब अजमेरमें सेनाका प्रबन्ध करनेके लिए ठहर गए और सब प्रबन्ध हे

जानेपर आगरेके पास दाराशिकोहकी सेनासे जा मिले । धौलपुरके पास फिर औरंगज़ेबकी सेनासे युद्ध हुआ । परन्तु इसमें भी बादशाही सेनाकी हार हुई और रूपनगर(किशनगढ़)के शासक राजा रूपसिंहजी आदि अनेक गण्यमान्य व्यक्ति मारे गए। महाराजा साहब लौटकर जोधपुर चले आए।

औरंगजेबने वि० सं० १७१५ में अपने बुड्ढे पिताको कैदकर देहलीके तख्तपर अधिकार कर लिया।

यद्यपि औरंगजेबने राज्यपर बैठते ही अपने विरोधियोंको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया, तथापि उसको राठोड़ वीर महाराजा जसवन्तसिंहजीसे छेड़छाड़ करनेकी हिम्मत न पड़ी। कुछ दिन बाद उसने आंबेरके मिरज़ा राजा जयसिंहजीको भेजकर जसवन्तसिंहजीको देहलीमें बुलवाया और अनेक प्रकारसे उनका आदरसत्कार कर उनसे सुलह कर ली।

इसी समय उसे बंगालकी तरफसे शाहशुजाके चढ़ाई करनेका समाचार मिला। तत्काल ही उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतान मुहम्मदको महाराजा जसवन्तसिंहजीके साथ उसके मुकाबले पर भेजा और पीछेसे स्वयं भी उधरकी तरफ चला। इलाहाबादसे ३० मील पश्चिम खजवाके पास पहुँच कर शुजाकी और सुलतान मुहम्मदकी सेनाओंका सामना हुआ। महाराजा साहबने शुजाको लिखकर समझा दिया कि आज रातको जिस समय इधर मैं औरंगजेबकी सेना पर आक्रमण कर लूट मार शुरू करूँ उस समय उधरसे तुम भी शाही सेना पर हमला कर देना। उसने भी इस बातको मंजूर कर लिया। इसीके अनुसार वि० सं० १७१५ की माघ वदी ६ को जसवन्तसिंहजीने पूर्व निश्चयानुसार सुलतान मुहम्मदकी सेनामें लूट मार शुरू कर दी। इससे शाही सेनामें हलचल मच गई और सैनिक

इधर उधर भाग खड़े हुए । परन्तु भाग्यके फेरसे शुजाने समय पर हमला न कर मौका खो दिया । जसवन्तसिंहजीने बहुत देरतक उसकी राह देखी । परन्तु जब उसे आता न देखा तब वे मारवाड़की तरफ चल दिये ।

दूसरे दिन औरंगजेबने अपनी बिखरी हुई सेनाको फिर एकत्रित कर शुजा पर आक्रमण किया । शुजाको हारकर बंगालकी तरफ भागना पड़ा । यह घटना वि० सं० १७१६ में हुई थी ।

इसके बाद औरंगजेबने आगरे पहुँच कर स्वर्गवासी राव अमरसिंह-जीके पुत्र रायसिंहजीको मारवाड़का अधिकारी बनानेका इरादा किया और मुहम्मद अमीनखाको दस हजार सवार देकर मारवाड़ पर अधि-कार करनेको भेजा । इसी बीच सेना इकट्ठी कर दाराशिकोह सिंधसे अजमेरकी तरफ आया और उसने जसवन्तसिंहजीसे सहायता चाही । ये भी अपनी सेना सजाकर उसकी सहायताको तैयार हो गए । यह देख औरंगजेब घबराया । परन्तु उसने राजा जयसिंहजीके द्वारा इनको गुजरातकी सूबेदारी और बड़ा मनसब आदि देनेका वादा कर दारा-शिकोहका पक्ष छोड़नेके लिए कहलवाया । इसपर इन्होंने दाराशिकोहको सहायता देनेसे इनकार कर दिया । इससे उसको औरंगजेबसे हारकर गुजरातकी तरफ भागना पड़ा । यह युद्ध अजमेरके पास हुआ था ।

इसके बाद औरंगजेबने महाराजा जसवन्तसिंहजीको दुबारा सात हजा-री ज़ात और सात हजार सवारोका मनसब देकर अहमदाबादका सूबेदार बनाया । महाराजा साहबने भी वहाँ जाकर अपना दखल जमा लिया । इसके

(१) यह मनसब इनको पहले ही बादशाह शाहजहांने दिया था । यह सूबेदारी वि० सं० १७१६ में मिली । इसी वर्ष अहमदाबाद जाते हुए मार्गमें [सि]रोहीके रावकी कन्यासे आपका विवाह हुआ था ।

करीब एक वर्ष बाद इनको गुजरातसे हटाकर अजमेरकी सूबेदारी दी गई। वि० सं० १७१९ में इन्हें दक्षिणके सूबेदार शाइस्ताखाँकी सहायताके लिए भेजा गया। उस समय वहाँ पर शिवाजीने मुसलमानोंको बहुत ही हैरान कर रक्खा था। जसवन्तसिंहजीके वहाँ पहुँचनेपर उनके और शाइस्ताखाँके बीच झगड़ा हो गया। इन्होंने भी हिन्दू प्रजाको मुसलमानोंके अत्याचारसे बचानेके लिए उद्यत हुए शिवाजीकी गुप्तरूपसे सहायता करनी शुरू की।

इस प्रकार जसवन्तसिंहजीकी तरफ़से निश्चिन्त होकर शिवाजीने एक रातको शाइस्ताख़ाँपर आक्रमण किया। भाग्यवश वह तो जखमी होकर भाग निकला और उसका पुत्र अबुलफ़तह मारा गया। बादशाह शाइस्ताखाँकी इस गफ़लतसे बहुत अप्रसन्न हुआ। परन्तु उसने सारा दोष महाराजा जसवन्तसिंहजीपर डाल दिया। इसपर बादशाहने उनको दक्षिणसे वापिस बुला लिया।

तीन चार वर्ष बाद वि० सं० १७२४ में शाहजादे मोअज़्ज़मके साथ फिर ये दक्षिणकी तरफ़ भेजे गए। इन्होंने वहाँपर शिवाजीके और शाहजादे मोअज़्ज़मके बीच सुलह करवा दी।

कुछ समय बाद बादशाहने मोअज्जमके स्थानपर महाबतखाँको दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा। इसपर जसवन्तसिंहजी लौटकर मारवाड़की तरफ़ चले आए।

जिस समय जसवन्तसिंहजी दक्षिणकी तरफ़ रवाना हुए थे उस समय राज्यका भार अपने एकमात्र पुत्र पृथ्वीसिंहजीको सौंप गए थे। इनका जन्म वि० सं० १७१०की आषाढ़ सुदी ५ (ई० स० १६५३ की ३० जून) को हुआ था।

पीछेसे औरंगज़ेबने उन्हें अपने पास बुलवाया और जब वे दरबारमें पहुँचे तब उनके दोनों हाथ पकड़कर कहा कि कहो अब तुम क्या कर सकते हो। इसपर राठोड़कुमारने बिना घबराए ही तत्काल उत्तर दिया कि जब बादशाह किसी छोटेसे छोटे पुरुषका एक हाथ भी पकड़ लेता है तब उसके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते है; फिर जब आपने मेरे दोनों हाथ पकड़े हैं तब क्यों मेरे सब मनोरथ पूरे नहीं होंगे? यह सुन बादशाहने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए राजकुमारको सिरोपाव इनायत किया। कहते हैं कि उसमें एक प्रकारका विष लगा हुआ था और उसके पहनते ही वह विष राजकुमारके शरीरमें प्रवेश कर गया। कुछ ही समय बाद वे बीमार हो[1] वि० सं० १७२४ की ज्येष्ठ वदी ११ (ई० स० १६६७ की१९ मई) को इस लोकसे चल बसे। जब यह समाचार महाराजा जसवन्तसिंहजीको मिला तब वे बहुत ही हताश और दुःखित हुए।

वि० सं० १७२८ में महाराजा जसवन्तसिंहजी फिर गुजरातके सूबेदार बनाए गए। ये तीन वर्ष तक वहाँ रहकर शासनका प्रबन्ध करते रहे। इसके बाद ये काबुलके सूबेदारकी सहायताके लिए खैबर-घाटीके जमरूदके थाने पर भेजे गए। वहाँपर इन्होंने पठानोंको हराकर उनके उपद्रवको शान्त कर दिया। अन्तमें बादशाहने इन्हें जमरूदका सूबेदार बना दिया। यह स्थान हिन्दुस्तान और काबुलकी सीमाके पास है। उस समय यूसुफ़ज़ई कौमके उपद्रवसे उधरसे आवा-

(१) किसी किसी ख्यातमें पृथ्वीसिंहजीका चेचककी बीमारीसे मरना लिखा है। वि० सं० १७१५ की वैशाख सुदी ५ का महाराज जसवन्तसिंहजीके समयका एक लेख फलोधीसे मिला है। इसमें महाराज कुमार पृथ्वीसिंहजीका भी नाम लिखा है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी १९१६, पृ० १००)

गमनका मार्ग ही बंद हो गया था। परन्तु जसवन्तसिंहजीने पठानोंकी उस उपद्रवी जातिको दबाकर उधरका मार्ग साफ कर दिया।

महाराजा साहब करीब पाँच वर्ष काबुलमें रहे और समय समयपर पठानोंको वीरताके ऐसे हाथ दिखाए कि वे इनके नामसे काँपने लगे।[1]

जसवंतसिंहजीके द्वितीय पुत्रका नाम जगतसिंह था। ये भी अपने पिताके जीतेजी ही स्वर्गको सिधार गए थे। इसके बाद वि० सं० १७३५ की पौष वदी १० (ई०स० १६७८ की ७ दिसंबर)को जमरूदमें महाराजाका भी ५२ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास हो गया।

ये बड़े प्रतापी, मानी और वीर थे। इनके प्रतापके आगे बादशाहको भी नीचा देखना पड़ता था। औरंगजेब हिन्दुओंसे बहुत बुरा बर्ताव रखता था। इसीसे ये दिलमें उससे नाराज रहते थे और समय समय पर छेड़ छाड़ कर उसका मान मर्दन किया करते थे। यद्यपि वह भी हृदयमें इनसे पूर्ण द्वेष रखता था तथापि प्रकट तौर पर हमेशा ही इन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता था। हाँ, जहाँ तक होता वह इन्हे अपने देशसे दूर ही रखनेकी चेष्टा करता। इसीसे उसने मौका पाकर इन्हें सुदूर काबुलकी तरफ भेज दिया था। इन्होंने करीब ४१ वर्षके राज्य किया। इसमेंसे पहलेके २० वर्ष तो बड़े आरामसे निकले। परन्तु औरंगजेबके जमानेका पिछला जीवन दावपेच और वीरतासे पूर्ण रहा। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस प्रकारका जीवन व्यतीत करने पर भी आपको विद्या और वैराग्यसे भी पूर्ण प्रेम था। इनके बनाए हुए

---

(१) कहते हैं कि उसी समय महाराजाने काबुलसे अनारोंके कुछ पेड़ जोधपुर भेजे थे। इसीसे यहाँके अनार अबतक प्रसिद्ध होते है।

(२) दक्षिणमें औरंगाबादके पास इनका बसाया जसवन्तपुरा गाँव अबतक मौजूद है।

भाषाभूषण, आनन्दविलास, अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धान्त, सिद्धान्त-बोध और सिद्धान्तसार[1] आदि ग्रन्थ इस बातके प्रमाण हैं ।

महाराजा जसवन्तसिंहजीके स्वर्गवासकी खबर सुनते ही औरंगजेबने मारवाड़को निस्सहाय समझ लिया और सजवन्तसिंहजीके साथके वैरका प्रतिशोध करनेका इरादा किया। उस समय मारवाड़के बड़े बड़े सरदार काबुलकी तरफ थे । इसलिए बादशाहने मौका देख एक बड़ी फौज मारवाड़ पर कब्जा करनेके लिए भेज दी और पीछेसे खुद भी अजमेरकी तरफ रवाना हुआ । जब यह समाचार जमरूदमें पहुँचा तब राठोड़ सरदार बादशाहसे विना आज्ञा लिए ही वहाँसे रवाना हो गए और अटक नदी परके मुसलमान रक्षकको हराकर लाहौर पहुँच गए । यहाँपर जसवन्तसिंहजीकी मृत्युके करीब तीन मास बाद उनकी दो रानियों जादमजी और नरूकीजीके गर्भसे वि० स० १७३५ की चैत्र कृष्णा ४ (ई० स० १६७९ की १ मार्च) को दो कुमार पैदा हुए। उनका नाम क्रमशः अजीतसिंहजी और दल-थंबनजी रक्खा गया ।

इसी बीच जोधपुर, सिवाना आदि नगरों पर बादशाहका अधिकार हो गया। इसपर औरंगजेबने राव अमरसिंहजीके पौत्र इन्द्रसिंहको राजा-का खिताब देकर मारवाड़का अधिकारी बना दिया । उसने भी इसकी एवज़में ३६ लाख रुपये भेट करनेका वादा किया ।

राठोड़ सरदार लाहौरमें कुछ दिन ठहर दिल्ली पहुँचे । यह समा-चार पाकर बादशाह खुद भी दिल्लीमें आया और उसने बालक महा-

(१) पिछले पाँचों ग्रन्थोंमेंसे सिद्धान्तबोध नामक ग्रंथ तो गद्यपद्यमय है और बाकीके चारों केवल पद्यमय हैं । ये पाँचों ग्रन्थ वेदान्तपंचकके नामसे हमने जोधपुर राज्यकी तरफसे प्रकाशित करवाए हैं ।

राजा अजीतसिंहजी और उनके सरदारोंपर कड़ा पहरा बिठा दिया।

राठोड़ वीर दुर्गादास आदिने सलाह कर खींची मुकुन्ददास और गोविन्ददासको सँपेरेके रूपमें मय दोनों बालकोंके मुसलमानोंके घेरेसे बाहर भेज दिया। उसी अवसरमें मेड़तिया सरदार विजयचन्दकी माता करमता भी तीर्थयात्रा करती हुई देहलीकी तरफ आ निकली थी। उसीके साथ मुकुन्ददासजी आदि मारवाड़की तरफ रवाना हो गए। मार्गमें दलथंबनजीका तो स्वर्गवास होगया; परन्तु अजीतसिंहजी सही सलामत बलूँदे पहुँचे और वहाँसे उन्हें लेकर मुकुन्ददासजी सीरोहीकी तरफ चले गए। यहाँपर महाराजा जसवन्तसिंहजीकी रानी देवड़ीजीकी सलाहसे पुरोहित जयदेव नामक पुष्करणे ब्राह्मणकी स्त्रीको उनके लालन पालनका भार सौंपा गया। यह सीरोहीके कालिन्द्री गाँवका रहनेवाला था।

जब इस बातकी खबर बादशाहके कान तक पहुँची तब उसने वि० सं० १७३६ की सावन वदी २ को राठोड़ सरदारोंके डेरेपर आक्रमण करनेके लिए सेना भेजी।

जसवन्तसिंहजीकी दोनों रानियाँ तो सतीत्व रक्षाके खयालसे स्वयं ही पतिका अनुसरण कर गईं और सरदार लोग युद्धके लिए तैयार हो गए। शाही सेनाके पहुँचनेपर भीषण युद्ध हुआ।

भाटी रघुनाथ, राठौड़ महेशदास और जोधा रणछोड़दास आदि बहुत से सरदार तो वीरगतिको प्राप्त हुए और राठोड़ दुर्गादास आदि कुछ योद्धा शाही सेनाके साथ लड़ते भिड़ते बचकर निकल गए। यह घटना वि० सं० १७३६ की सावन वदी ३ के दिन हुई थी।

देहलीके कोतवालने बादशाहको प्रसन्न करनेके लिए एक बनावटी

---

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि कुछ दिनके लिए अजीतसिंहजी मेवाड़के कैलवे गाँवमें भी रहे थे।

बालकको लाकर महाराजा अजीतसिंहजीके नामसे दरबारमें हाजिर किया। औरंगजेबने भी उसे मुसलमान बनाकर उसका नाम मुहम्मदी राजा रख दिया।

२३ महाराजा अजीतसिंहजी।

ये महाराजा जसवन्तसिंहजीके पुत्र थे।

पहले लिखा जा चुका है कि राठोड़ दुर्गादास आदिने मिलकर इन्हें खीची मुकुन्ददासजीके साथ सीरोहीके पहाड़ोंकी तरफ भेज दिया था और जोधपुरपर बादशाहका अधिकार हो गया था।

जब दुर्गादास आदि कुछ बचे हुए सरदार जोधपुर पहुँचे तब उन्होंने मिलकर मुसलमानों पर अक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। जहाँ तक होता ये लोग बादशाही चौकियोंपर रातके समय हमला कर उनके धन जनकी हानि किया करते। कुछ दिन बाद मौका पाकर उन्होंने मेड़ते और सिवानेके थानेदारोंको मार डाला। वि० सं० १७३६ की भादों वदी ११ को मेड़तिया, चापावत और ऊदावत सरदारोंने अजमेरके सूबेदार तहव्बुरखां पर हमला किया। पुष्करमें दोनोंके बीच भीषण युद्ध हुआ। तहव्बुरखा खेत छोड़ भाग गया। इसपर राठोड़ोंने अजमेरको लूट लिया।

पहले लिखा जा चुका है कि वि० सं० १७३६ की भादों सुदी ७ को इन्द्रसिंहजीने बादशाहको ३६ लाख रुपया नजराना देनेका वादा कर जोधपुरके किलेपर अधिकार कर लिया। इसपर चांपावत सानेग और राठोड़ दुर्गादास आदि मिलकर समय और सहायताकी प्रतीक्षामें मेवाड़की तरफ चले गए। वहाँपर महाराणा राजसिंहजीने इनका बड़ा आदर सत्कार किया।

कुछ समय बाद औरंगजेबको मराठोंके उपद्रवको दबानेमें लगा

हुआ देख राठोड़ोंने जालोरपर अधिकार कर लिया और वहाँसे मुसलमानोको मार भगाया। महाराणाने भी इस कार्यमें इनको पूरी सहायता दी। यह खबर पाकर वि० सं० १७३६ में बादशाह अजमेर आया और उसने अपने तीसरे पुत्र अकबरको एक बड़ी सेना देकर मेवाड़की तरफ़ भेजा। महाराणा राजसिंहजी उदयपुर खाली कर पहाड़ोंमें चले गए। जैसे ही यह समाचार मारवाड़में पहुँचा वैसे ही राठोड़ोंकी २५ हजार सेना राणाजीकी सहायताको जा उपस्थित हुई और उसने शाहजादे अकबरकी फ़ौजपर हमला कर उसकी रसद लूट ली। इसी प्रकार अनेक लड़ाइयाँ हुईं। अन्तमें शाहजादे अकबरने मारवाड़पर चढ़ाई की। राठोड़ोंने भी पहाड़ोंका आश्रय लेकर शाही सेनापर आक्रमण करना और समय समयपर उसकी रसद आदि लूटना आरम्भ किया। परन्तु इस प्रकार पूरी सफलता न होती देख राठोड़ वीर दुर्गादासने एक नई चाल चली। उन्होंने शाहजादे अकबरको बादशाह बना देनेका लालच देकर अपनी तरफ़ मिला लिया[1] और राठोड़ों और मुसलमानोंकी एक लाख सम्मिलित सेना लेकर औरंगजेबपर चढ़ाई कर[2] दी। बादशाह उस समय अजमेरमें था

---

(१) औरंगजेबने मेवाड़ और मारवाड़पर पूरा पूरा दबाव डालनेके लिए अपने बड़े लड़के मोअज़्ज़मको दक्खनसे और मँझले लड़के आजमको बंगालसे बुला लिया था। कहते हैं कि पहले दुर्गादास आदिने मिलकर मोअज़्ज़मको शीघ्र ही बादशाहत दिलवा देनेकी लालच देकर अपनी तरफ करना चाहा। परन्तु उसकी माने जो उसके साथ थी उसे समझाकर इस बातको मान लेनेसे रोक दिया।

(२) इसके पहले अकबरने एक खास परवाना महाराजा अजीतसिंहजीके नाम लिख कर भेजा था। उसमें उनको उनके पिताकी मानमर्यादाके साथ साथ मारवाड़का राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की थी और साथ ही मंदिरो वगैरहके बे रोक टोक बनानेकी आज्ञा और उनकी हर एक इच्छाकी पूर्ति करनेकी प्रतिज्ञा भी थी। तथा इन सब बातोंकी एवज़में उनको शीघ्र ही सेनासहित आकर युद्धमें मदद करनेके लिए लिखा था।

और उसके पास मुशकिलसे दस हज़ारके क़रीब सैनिक थे। जब उसको अपने पुत्रकी करतूतका पता लगा तब वह बहुत घबराया और उसने अपने ज्येष्ठपुत्र मौअज़्ज़मको शीघ्र ही अजमेर आनेके लिए लिखा।

मौअज़्ज़म उस समय अपनी सेनाके साथ उदयपुरके पास ही ठहरा हुआ था। जैसे ही उसको पिताका आज्ञापत्र मिला वैसे ही शीघ्रातिशीघ्र चलकर वह अजमेर पहुँच गया।

उस समय शाहज़ादे अकबरकी और राठोड़ोंकी सेना अजमेरसे दो कोसके फ़ासलेपर पड़ी थी। औरंगजेबने लोभद्वारा शाहज़ादेके यवन सेनापतियोंको फोड़कर अपनी तरफ़ कर लिया और स्वयं शाहज़ादे अकबर-को भी एक पत्र लिख भेजा। उसमें उसने साम दान भेद दण्डकी बातें लिखकर उसे अपने पास लौट आनेको लिखा था। परन्तु सपूत बापके सपूत बेटेने उसे उसीके पूर्वकृत कर्मोंको याद दिलाकर रूखा जवाब दे दिया। अकबरके उत्तरका एक वाक्य यहाँपर दिया जाता है:—

"वास्तवमें इस मार्गके गुरु और आचार्य तो हजरत ही हैं। फिर जो मार्ग आपने निकाला है वह कुमार्ग किस तरह हो सकता है?"

यह उत्तर पाकर कूटनीतिचतुर बादशाहने एक नई चाल चली। उसने एक पत्र अकबरके नाम इस आशयका लिखा:—

" तुम्हारी चतुराईसे हम बहुत प्रसन्न हैं। तुमने हमारी आज्ञाके अनु-सार अच्छी चाल चली है। देखो राठोड़ोंको धोका देकर फ़ौजके अगाड़ीके हिस्सेमें रखना ताकि युद्धके समय हमारी फ़ौज आगेसे और तुम्हारी फ़ौज पीछेसे हमला कर उन्हें आसानीसे नष्ट कर सके। खबरदार उनको इस चालका पता न लगने देना।"

जिस पुरुषके साथ यह पत्र भेजा गया था उसको पहलेसे ही समझा दिया गया था कि यह पत्र शाहज़ादेको न देकर राठोड़ सरदारोंके हाथ

दे देना। इस चतुर आदमीने भी बादशाहकी आज्ञाका पूर्णतया पालन किया। जब यह पत्र राजपूत सरदारोंके हाथ लगा तब उनका विश्वास एक बार ही शाहजादे अकबरपरसे उठ गया और वे उसे छोड़कर अलग हट गये।

यह देख अकबर अपने बालबच्चोंको दुर्गादासजीको सौंपकर उन्हींकी सलाहसे दक्षिणकी तरफ़ भाग निकला। दुर्गादासने भी पाँच सौ सवार लेकर उसका साथ दिया। यद्यपि इनको पकड़नेके लिये मोअज़्ज़मने इनका पीछा किया तथापि ये लोग राजपीपलाकी तरफ़ होते हुए पहाड़ीमार्गसे छत्रपति शिवाजीके पुत्र शंभाजीके पास पहुँच गए।

---

(१) बादशाहने इसी बीच राव इन्द्रसिंह, राठोड़ रामसिंह, आदिको शाहजादे मोअज़्ज़मके साथ दुर्गादास आदिपर हमला करनेको भेजा। परन्तु राठोड़ोंने जालोरके पास पहुँच इनकी रसद आदि छीन ली। इससे क्रुद्ध होकर बादशाहने इन्द्रसिंहजीसे जोधपुर और रामसिंहसे जालोर वापिस छीन लिया।

(२) अकबरका इरादा जहाँ तक हो शीघ्र भागकर औरंगजेबके राज्यसे निकल जाने और ईरानकी सीमामें पहुँच जानेका था। परन्तु दुर्गादासने सोचा कि ईरानकी सरहद मारवाड़से बहुत दूर है। बीचमें ३०० कोस तक—अर्थात् सिंध और बलुचिस्तान तक—औरंगजेबका राज्य है। अतः इसको छिपकर पार करना कठिन है और यदि वह रास्ता लिया भी जाय तो भी इससे बादशाहका कुछ नुकसान न होगा। वह बराबर मारवाड़पर अधिकार करनेकी कोशिश करता रहेगा। परन्तु यदि शाहजादेको दक्षिणमें मराठोंके पास पहुँचा दिया जाय तो वे उत्साहित हो कर बादशाहका और भी जोर शोरसे सामना करनेको तैयार हो जॉयगे। इससे औरंगजेबको लाचार हो कर अपना सारा बल उधर लगाना पड़ेगा। सम्भवतः इस तरह मारवाड़का पीछा छूट जायगा। इसके बाद उन्होंने सरदारोंसे बात चीत की। जब यह सलाह सब सरदारोंको पसंद आ गई तब दुर्गादासने शाहजादेसे कहा कि ईरानका जो रास्ता सिंधकी तरफसे जाता है वह मार्गमें मैदान ही मैदान होनेसे निष्कण्टक नहीं है। इससे दक्षिणमें होकर जहाज द्वारा ईरान पहुँचना ही अधिक निरापद है; क्योंकि एक तो दक्षिणका रास्ता पहाड़ोंसे पूर्ण है और दूसरा मराठे बादशाहसे बागी हो रहे हैं। यह सुन अकबरने इस बातको मंजूर कर लिया

इसी बीच शीशोदियों और राठोड़ोंने बादशाही सैनिकोंपर समय समयपर आक्रमण करना प्रारम्भ कर मारवाड़के सोजत आदि स्थानोंकी चौकियोंको लूट लिया[1] था। इसके बाद इन सब राजपूत वीरोंने, मिलकर मुसलमानी तरीकेसे ही अपना बदला चुकाना शुरू किया। अर्थात् जहाँतक हो सका मालवा और गुजरात तक हमले कर मसजिदों और मुसलमानी इमारतोंको नष्टभ्रष्ट करना, कुरानकी पुस्तकोंको जलाना और मुसलमानोंको हरतरहसे तंग करना आरम्भ किया।

इधर तो यह घटनाएँ हो रही थीं और उधर शाहजादे अक़बरके पहुँचनेसे पहलेके स्वाधीनताप्रेमी मराठोंने और भी उद्दण्डता धारण कर ली। यह देख वि० सं० १७३८में बादशाहने इन्द्रसिंहजीसे जोधपुर लेकर उन्हे वापिस नागौर भेज दिया। इसपर भी जब वहाँका प्रबन्ध ठीक न हो सका तब उसी वर्ष उसने राणा जयसिंहजीसे संधि कर ली। उसमें उनको मेवाड़का राज्य देनेके साथ साथ यह भी प्रतिज्ञा की गई थी कि महाराज अजीतसिंहजीको जब वे बालिग हो जाँयगे मारवाड़का राज्य लौटा दिया जायगा। इस प्रकार किसी तरह इधरसे पीछा छुड़ा कर बादशाह दक्षिणकी तरफ़ रवाना हुआ।

औरंगजेबने राठोड़ोको शान्त करनेके लिए महाराजा जसवन्तसिंहजीके बनावटी पुत्र मुहम्मदीराजको मारवाड़का अधिकारी बनानेका इरादा कर उसे देहलीसे बुलवाया था। परन्तु झगड़ेके तूल पकड़ लेनेके कारण उसे ऐसा करनेकी हिम्मत न पड़ी। वि० सं० १७४५ में मुहम्मदीराज बीजापुरमें इस आसार संसारसे कूच कर गया और वह बखेड़ा ही तय हो गया।

---

(१) यहाँकी बादशाही सेना किशनगढ़नरेश मानसिंहजीके अधिकारमें थी।

औरंगजेबके दक्षिणकी तरफ़ जानेके बाद वजीर असदख़ाँने राठोड़ोंसे राजा भीमसिंहजीकी मारफत सुलह करनी चाही। परन्तु इसी बीच चांपावत सरदार सोनग ऐतकादख़ाँके साथके युद्धमें मारा गया। यह देख वज़ीरने सुलहका प्रस्ताव वापिस ले लिया[1]।

वि० सं० १७४२ में राठोड़ोंने सिवानेके किलेको घेर लिया। कुछ ही समयमें इस किलेका किलेदार पुरदिलख़ाँ मेवाती मारा गया।

वि० सं० १७४४ में मारवाड़के सरदारोंने चापावत उदयसिंहको अपना मुखिया बनाकर खीची मुकुन्ददासके पास भेजा और अपने अज्ञात महाराजाके दर्शन करवानेका कहलाया। यद्यपि दुर्गादासके उस समय दक्षिणकी तरफ होनेके कारण उसने बहुत कुछ टालटूल की तथापि अन्तमें सरदारोंके आग्रहसे लाचार होकर उसे अजीतसिंहजीको प्रकट करना पड़ा। इसके बाद सरदारोंने अपने असली अधिकारीको पाकर दुगुने जोरसे मुसलमानी चौकियोंपर हमला शुरू किया। यह देख जोधपुरके प्रबन्धकर्ता इनायतख़ाँने राठोड़ सरदारोंको सिवानेका परगना और राहदारीका चौथा हिस्सा सौंप दिया।

जिस समय शाहजादा अकबर ईरानकी तरफ़ चला गया उस समय दुर्गादासजी भी दक्षिणसे चलकर हिसार, मालपुर आदि बादशाही इलाकोंको लूटते हुए मारवाड़मे चले आए और कुछ दिन अपने घर रहकर वि० सं० १७४५ में फिर महाराजकी सेवामें आ उपस्थित हुए।

इसी वर्ष अजमेरके सूबेदारने झूठा वादा करके महाराजको सिवानेसे बुलाया और पीछेसे सेना भेज सिवाना ले लिया। इसपर अजीत-

(१) इसपर राठोड़ोंने मेवाड़के पुरमांडल आदि स्थानों और मारवाड़के अनेक प्रदेशोंपर फिर जोर शोरसे आक्रमण शुरू किया।

सिंहजी तो उदयपुरके दक्षिणवाले छप्पनके पहाड़ोंमें चले गए (राणा जयसिंहजीने वहां पर इनका बड़ाआदर सत्कार किया) और राठोड़ोंने सिंधसे ले कर अजमेर तक लूट शुरू कर दी । इसपर फिर अजमेरके सूबेदारने बादशाहसे छिपाकर राठोड़ोंको चौथ आदि देनेका वादा कर लिया।

उदयपुरके महाराणा जयसिंहजीके दो विवाह हुए थे । यद्यपि हाड़ी रानीका पुत्र अमरसिंह (द्वितीय) बड़ा होनेके कारण राज्यका वास्तविक हकदार था तथापि राणाजीकी कृपा दूसरी रानी पर अधिक होनेसे वे उसके पुत्र उम्मेदसिंहको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। जब यह समाचार राजकुमार अमरसिंहको मिला तब उसने वि० सं० १७४९ में बूंदीसे सहायता प्राप्त कर बगावत कर दी । इसपर राणाजीने अजीतसिंहजीसे सहायता माँगी । उन्होंने भी शीघ्र ही राठोड़ वीर दुर्गादासकी अध्यक्षतामें तीस हजार सेना राणाजीकी सहायतार्थ भेज दी । दुर्गादासजीने वहाँ पहुँच पिता पुत्रके बीच सुलह करवा दी ।

वि० सं० १७५३ में फिर महाराणा और उनके पुत्रके बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ । इसपर महाराजा अजीतसिंहजी खुद मेवाड़ गए और फिर पिता पुत्रके बीच शान्ति हो गई । इससे प्रसन्न होकर महाराणाजीने अपने भाई गजसिंहजीकी पुत्रीका विवाह अजीतसिंहजीके साथ कर दिया ।

वि० सं० १७५४ में औरंगजेबने अहमदाबादके सूबेदार शजाअत-खाँकी मार्फत दुर्गादासजीको शाहजादे अकबरके पुत्र बुलन्दअखतर आदिको सौंपनेके लिये कहलवाया । बहुत कहासुनीके बाद दुर्गादासजी उनको लेकर स्वयं बादशाहके पास पहुँचे ।

बादशाहने इसकी एवज़में दुर्गादासजीको एक लाख रुपये नकद, मेड़ता और जैतारणके परगने, तीन हजारी जात व दो हजार सवारोंका मनसब दिया । इसी प्रकार दुर्गादासजीके अन्य साथियोंको भी जागीरें आदि मिलीं । राठोड़ मुकुन्ददासजीको बादशाहने पालीकी जागीर, ६ सौ जात और तीन सौ सवारोंका मनसब दिया । स्वयं महाराजा अजीतसिंहजीको भी दुर्गादासके कहनेसे बादशाहने जालोरकी[1] जागीर, डेढ़हजारी जात और पाँच सौ सवारोंका मनसब दिया ।

वि० सं० १७५९ में दुर्गादासजीको बादशाहने पाटनकी फौजदारीपर भेजा ।

कुछ दिन बाद शाहजादे आजमके कहनेसे अहमदाबादके सूबेदारने इनपर सेना भेजी । परन्तु इसकी खबर इनको पहले ही लग गई थी, इससे ये तो निकल गए । परन्तु इनके दो पुत्र वहाँपर मारे गए । यह घटना वि० सं० १७६२ में हुई थी । इसके बाद बादशाहने इनके पास तसल्लीका फरमान भेजा था ।

वि० सं० १७६२ में बादशाहके इशारेसे नागोरके राव इन्द्रसिंहजीके पुत्र मुहकमसिंह[2]ने जालोरपर चढ़ाई कर चालाकीसे वहाँके किले-

(१) जालोर उस समय मोजाहिदखाँके अधिकारमें था । अतः बादशाहने उसकी एवजमें उसे पालनपुरका इलाका दे दिया । उसीके वंशज इस समय तक वहाँके नवाब हैं ।

(२) ख्यातोंमें लिखा है कि कुछ समय बाद इन्द्रसिंहजीके पुत्र मोहकमसिंहने कुछ सरदारोंसे मिलावट कर जालोरपर आक्रमण किया । एक वार तो उसने जालोरपर अधिकार कर लिया । परन्तु शीघ्र ही अजीतसिंहजीने वहाँपर दुबारा कब्जा कर लिया । यह घटना वि० सं० १७६२ में हुई थी । उस समय मोहकमसिंह मेड़तेमें बादशाही थानेदार था ।

पर अधिकार कर लिया। परन्तु कुछ दिन बाद ही महाराजा अजीतसिंहजीने जालोरपर प्रत्याक्रमण किया। मुहकमसिंह हारकर मेड़तेकी तरफ़ भाग गया। महाराजाने उसका पीछा किया। परन्तु जोधपुरके बादशाही फौजदार जाफ़रबेगने महाराजाको समझा बुझाकर रोक लिया।

वि० सं० १७६३ की फाल्गुण कृष्ण १४ (ई० स० १७०७ की ३ मार्च) को दक्षिणमें औरंगजेबका देहान्त हो गया। यह खबर सुनते ही महाराजा अजीतसिंहजीने सूराचन्दसे रवाना होकर जोधपुर-पर हमला किया और वहाँके सेनानायक निजामकुलीखाँको भगा कर वि० सं० १७६३ की चैत्र वदी ५ (ई० स० १७०७ की २३ मार्च) को नगरपर अधिकार कर लिया[1]।

इस प्रकार महाराजा जसवन्तसिंहजीकी मृत्युके २९ वर्ष बाद ये जोधपुरकी गद्दीपर बैठे। इसके बाद महाराजने अपने सहायकोंको जागीरें और विरोधियोंको दण्ड दे कर अपना फर्ज अदा किया।

महाराजा अजीतसिंहजीने औरंगजेबके सबबसे बड़ी बड़ी तकलीफें उठाई थीं,। इसीसे ये मुसलमानोंके अत्याचारोंको दबानेके लिये तैयार हुए। इन्होंने जोधपुरपर अधिकार करते ही मसजिदों और मकबरोंको तोड़ फोड़कर मुल्लाओंको अजां देनेकी मनाई कर दी। जब यह समाचार औरंगजेबके उत्तराधिकारी बादशाह बहादुरशाहको मिला तब उसने जोधपुर और आंबेर[2]पर जब्ती भेज दी और स्वयं भी अजमेरकी तरफ़

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि महाराजा अजीतसिंहजीके जोधपुरपर अधिकार करनेके बाद कुछ सरदारोंने मिलकर बनावटी दलथंभनजीके नामसे देशमें बखेड़ा शुरू किया। परन्तु अन्तमें उन्हें विफल मनोरथ होना पड़ा। यह घटना वि० सं० १७६६ की है।

(२) आंबेरके राजा जयसिंहजीने आजमको दिल्लीके तख्तपर अधिकार करनेकी चेष्टामें मदद दी थी, इसीसे बहादुरशाह उनसे अप्रसन्न हो गया था।

रवाना हुआ । वि० सं० १७६४ में महाराजा अजीतसिंहजी और जयपुरमहाराजा जयसिंहजी दोनों पीपाड़में बादशाहके पास पहुँचे । बादशाहने झगड़ा शान्त करनेके इरादेसे दोनोंका बड़ा आदर सत्कार किया। इसी वर्ष जोधपुरकी सेनाने बीकानेरमहाराजा सुजानसिंहजीके समय एकवार उनके राज्यपर अधिकार कर लिया था ।

वि० सं० १७६५ की चैत्र सुदी १० को अजमेरमें बादशाहने राठोड़वीर दुर्गादासको मनसब देना चाहा । परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जब तक मेरे स्वामीको मनसब न मिलेगा तब तक मैं भी न लूँगा । इसपर बादशाहने अजीतसिंहको मनसब और सोजत वगैरहके परगने देने चाहे । परन्तु महाराजने जोधपुरका अधिकार पाए बिना इनके लेनेसे इनकार कर दिया ।

इसके बाद दोनों महाराजा बादशाहके साथ देहली होते हुए दक्षिणकी तरफ कामबख्शके मुकाबलेको गए । परन्तु नर्बदासे ये दोनों वापिस लौट आए और मार्गमें प्रतापगढ़के राव प्रतापसिंहजीकी मेहमानदारी ग्रहण कर उदयपुर पहुँचे । वहाँपर राणाजीसे मिल कर जोधपुरका रास्ता लिया ।

इनके आगमनका हाल सुन शाही फौजदार तो जोधपुर छोड़ अजमेर चला गया और अजीतसिंहजीने जोधपुर पहुँच वहाँ अधिकार कर लिया ।

महाराजा जयसिंहजी करीब ६ महीने तक जोधपुरमें रहे । यहींपर वि० सं० १७६५ की सावन सुदी ५ को अजीतसिंहजीने अपनी कन्याकी सगाई उनके साथ कर दी । इसके बाद दोनों महाराजाओंने

(१) यह बहादुरशाहका भाई था ।

मिलकर वि० सं० १७६५ की कार्तिक वदी १३ को सांभरपर अधिकार कर लिया । इस युद्धमें दुर्गदासजी भी इनके साथ थे । इसी बीच राठोड़ोंकी सहायतासे जयसिंहजीकी सेनाने आंबेरपर भी दखल कर लिया था । जब यह समाचार इनको मिला तो बड़ी प्रसन्नता हुई और दोनों राजाओंने मिलकर सांभरको आपसमें आधा आधा बाँट लिया । इसके बाद महाराजा अजीतसिंहजी जयसिंहजीके साथ आंबेर गए और कुछ दिन वहाँ रहकर जोधपुर लौट आए ।

इसके बाद पाली ठाकुर चांपावत मुकुन्ददास किलेमें धोकेसे मारा गया ।

वि० सं० १७६६ में महाराजने नागोरपर चढ़ाई की । वहाँसे डंड लेकर ये अजमेरकी तरफ चले । वहाँके सूबेदार शजाअतखाँने किशनगढके राजा राजसिंहजीकी मारफत पैंतालीस हजार रुपये फौज खर्चके देकर पीछा छुड़ाया । वहाँसे महाराजका इरादा शाहपुरेपर आक्रमण करनेका था परन्तु अन्तमें लोगोंके कहने सुननेसे इन्होंने यह विचार त्याग दिया । इसके बाद देवलिया प्रतापगढ़में अपनी शादी कर महाराज जोधपुरको लौट आए ।

जिस समय यह खबर बादशाहको मिली उस समय वह अपने भाई कामबख्शको हरा चुका था । अतः शीघ्र ही वहाँसे लौट अजमेर आया । परन्तु इसी बीचमें सिक्खोंने उपद्रव खड़ा कर दिया । इसकी सूचना पाकर बादशाहने महाराजा अजीतसिंहसे सुलह कर लेना ही उचित समझा ।

वि० सं० १६६७ में शाहजादे अजीमुश्शानकी मारफत इन दोनोंके बीच मैत्री हो गई ।

बादशाहने जोधपुर और आंबेरके महाराजाओंका सत्त्व उनके देशों-पर स्वीकार कर लिया। इस समय जो अहदनामा हुआ उसकी एक शर्त यह भी थी कि बिना विशेष प्रयोजनके ये लोग दिल्ली नहीं बुलाए जाँयगे। इस प्रकार इधरसे निपट बादशाह पंजाबकी तरफ़ रवाना हुआ।

वि० सं० १७६८ के भादोंमें महाराजाने कृष्णगढ़पर चढ़ाई की और वहाँके राजा राजसिंहजीसे दण्ड वसूल किया[1]।

वि० सं० १७७० में जूनियाके राठोड़ करणसिंह और जूंझारसिंह जोधपुरके किलेमें मारे गए।

उस समय देहलीके तख्तपर फर्रुखसीयर नया ही बादशाह बैठा था। इसीसे नागोरके राव इन्द्रसिंहजीका पुत्र मुहकमसिंह जोधपुर प्राप्तिकी अ-भिलाषासे उसे महाराजकी तरफसे भड़काया करता था। जब यह समाचार अजीतसिंहजीको मिला तब उन्होंने अपने आदमियोंको देहली भेज भादोंके महीनेमें मुहकमसिंहको मरवा डाला। इसपर बादशाहने उसके छोटे भाई मोहनसिंहको अपने पास बुलाया। महाराजाने अपने आदमियों द्वारा उसे भी मार्गमें ही मरवा दिया[2]। इसपर इन्द्रसिंह स्वयं बादशाहके पास गया। बादशाहने क्रुद्ध होकर सैयद हुसैनअलीको एक बड़ी फौज दे कर महाराजाके मुकाबिलेको भेजा। उसके आनेपर वि० सं० १७७१ में महाराजने उसके साथ सुलह कर ली और अपने बड़े महाराजकुमार अभय-सिंहजीको उसके साथ दिल्ली भेज दिया। फर्रुखसीयरने भी इनकी बड़ी खातिर की और महाराज को छः हजारी ज़ात और छः हज़ार सवारोंका

---

(१) किसी किसी ख्यातमें रूपनगरपर चढ़ाई कर दण्ड लेना लिखा है।

(२) किसी किसी ख्यातमें मोहनसिंहका वि० सं० १७७६ में मारा जाना लिखा है।

मनसब तथा अहमदाबादकी सूबेदारी दी[1]। वि० सं० १७७२ में महाराजकुमार तो जोधपुर लौट आए और महाराजा स्वयं देहली गए।

वि० सं० १७७३ के श्रावणमें महाराजने राव इन्द्रसिंहजीसे नागोर छीन लिया।

वि० सं० १७७४ में महाराज गुजरातसे द्वारिका होते हुए लौट कर जोधपुर आए और वि० सं० १७७५ में बादशाहके बुलानेपर देहली गए। बादशाहने इनकी बड़ी ख़ातिर की और सातहज़ारी मनसब, माही मरातब, आदि दे कर ढाई लाख रुपये सालाना आमदनीमें बढ़ाए। उस समय देहलीमे सैयद भ्राताओंका बड़ा जोर था। इनमेंसे एक सैय्यद अब्दुल्लाख़ाँ तो बादशाहका वज़ीर था और दूसरा सैय्यद हुसैनअलीख़ाँ शाही सेनाओंका सेनापति था। परन्तु बादशाह फ़र्रुख़सीयर इनकी बढ़ती हुई ताकतको देख कर इनसे मनमें जलता था। सैय्यद भ्राता भी इस बातसे चौकन्ने हो रहे थे। जैसे ही उन्हें यह सूचना मिली कि बादशाहने महाराजा अजीतसिंहजीको बुलवाया है वैसे ही उन्होंने इनसे मित्रता करनेकी ठान ली। एक रोज़ जिस समय महाराजा शाही दरबारसे लौट रहे थे उस समय सैय्यद अब्दुल्लाख़ाँने उन्हें अपने हाथीपर बिठा लिया[2]। इसके बाद वह महाराजको अपने घर ले गया और दोनोंके बीच पक्की मित्रता हो गई। जब बादशाहको इस बातकी सूचना मिली तब वह बहुत नाराज़ हुआ और जयसिंहजीसे मिल कर इनके मारनेकी तदबीरें करने लगा। परन्तु ये भी उससे ख़बरदार हो गए थे। अतः इनकी और अब्दुल्लाख़ाँ वज़ीरकी होशियारीसे बादशाहकी एक न चली।

---

(१) पहले ठट्ठेकी सूबेदारी दी थी; पर वह इन्होंने नहीं ली।

(२) महाराजाको अकेले अब्दुल्लाख़ाँके हाथीपर बैठते देख नींबाजठाकुर अमरसिंहजी भी उनके पीछे नौकरकी जगह चढ़ बैठे। उसी दिनसे सरदार लोग महाराजाके पीछे बैठने लगे हैं।

इसके बाद अब्दुल्लाखाँने अपने भाई हुसैन अलीख़ाँको दक्षिणकी सूबेदारीपरसे बुलवा लिया। वह भी तीस हज़ारके करीब फौज लेकर देहलीमें आपहुँचा।

इसके बाद इन्होंने वि० सं० १७७५ की फाल्गुण शुक्ला १० को जनानेमें छिपे फर्रुखसीयरको कैद कर दिया और उसके स्थानपर रफीउद्दरजातको[1] कैदसे निकाल कर बादशाह बनाया। इसपर उसने अजीतसिंहजीको गुजरातकी सूबेदारी दी और उनके कहनेसे जजिया नामक कर भी उठा दिया।

वि० सं० १७७६ की वैशाख सुदी १० को फर्रुखसीयर मारा गया। इसके बाद सैय्यद अब्दुल्लाखाँने आंबेरपर चढ़ाई करनेका विचार किया परन्तु राजा जयसिंहजीके प्रार्थना करनेपर अजीतसिंहजीने उसे कहसुन कर आंबेरपर हमला करनेसे रोक दिया। यद्यपि अब्दुल्लाखाँने इन्हें बहुत कुछ समझाया और जयसिंहजीने जो उनके विरुद्ध बादशाहके कान भरे थे उसका वर्णन कर इन्हीं (अजीतसिंहजी) के छोटे पुत्रको जयपुरका अधिकारी बनानेका वादा किया तथापि इन्होंने जयसिंहजीको अपना जामाता समझ उसे इस कामसे रोक दिया[2]।

नए बादशाहकी राजगद्दीका समाचार सुन आगरेमें कुछ अमीरोंने बग़ावत शुरू कर दी। परन्तु सैयदोंने और अजीतसिंहजीने बादशाहको साथ ले कर उनपर चढ़ाई की। इससे सब झगड़ा बखेड़ा शान्त हो गया।

वि० सं० १७७६ की आषाढ कृष्ण ९ को रफीउद्दरजात राजयक्ष्मा-

---

(१) यह बाहादुरशाहका पौत्र और रफीउश्शानका पुत्र था।

(२) सैय्यद भ्राताओंके साथ अनबन होनेसे जयपुरमहाराज जयसिंहजी अपने देशको चले गए थे। कुछ दिन बाद महाराज अजीतसिंहजीने पूर्व निश्चयानुसार अपनी कन्याका विवाह उनके साथ कर दिया।

की बीमारीसे मर गया। इसपर इन्होंने उसके भाई रफीउद्दौलहको शाहजहाँसानीके नामसे गद्दीपर बिठाया। यह भी भादोंके महीनेमें मर गया। इसके बाद बहादुरशाहके पोते (जहानशाहके पुत्र) रोशनअख्तरको मुहम्मदशाहके नामसे तख्तपर बिठाया। उसने भी अपने बादशाह बनानेकी एवज़में अजीतसिंहजीको अजमेर[1] और गुजरातकी सूबेदारी इनायत की।

इसके बाद अजीतसिंहजी जोधपुर चले आए और इन्होंने अजमेर और गुजरातमें गायका मारा जाना बन्द कर मुसलमानोसे पहिले किए हुए अत्याचारोंका बदला लेना शुरू किया। जिस समय इस बातकी शिकायत बादशाहके पास पहुँची उस समयके पहिले ही निज़ामुलमुल्ककी सहायतासे बादशाहने सैयदभ्राताओंमेंसे हसनअलीखाँको मरवा कर उसके भाई अब्दुल्लाखाँको कैद कर लिया था। इस लिए उसने अब अजीतसिंहजीसे क्रुद्ध हो कर गुजरातकी सूबेदारी हैदरकुलीखाँको और अजमेरकी सूबेदारी मुज़फ्फरअलीखाँको इनायत की। गुजरातपर तो हैदरकुलीखाँकी दखल हो गया। परन्तु जब यह खबर अजीतसिंहजीको मिली तब ये तीस हज़ार सवार ले कर अजमेर पहुँचे और इन्होंने शाही आदमियोंके द्वारा बादशाहको उसके और उसकी माताके किये हुए वादोंका हवाला दे कर कहलवा दिया कि खैर यदि आपकी मरजी नहीं है तो गुजरात मैं वापिस आपके नज़र करता हूँ, पर जीते जी अजमेरको हरगिज न छोड़ूँगा। जब इन बातोंकी सूचना नये नियत किए हुए सूबेदार मुजफ्फरअलीखाँको मिली तब वह रिवाड़ीमें ही बैठ रहा। उसकी आगे बढ़नेकी हिम्मत न हुई।

---

(१) गजेटियरमें लिखा है कि इन्होंने अजमेरमें अपना सिक्का चलाया था।

यद्यपि बादशाहने बहुत चाहा कि उसके अमीरोंमेंसे कोई अजीतसिंहजीपर चढाई करे । परन्तु उस समयके नाचगानप्रिय अमीरोंका वीर राठोड़केसरीसे टक्कर लेनेका साहस न हुआ। यह घटना वि० सं० १७७७ के करीबकी है । ऐसा भी लिखा मिलता है कि उस समय देहलीके दरबारकी हालत बहुत ही ख़राब थी । इस कारण वीर राठोड़राज अजीतसिंहजीके लिए देहली या आगरेमें गड़बड़ मचाना कुछ कठिन न था । पर सम्सामुद्दौलाने जहाँ तक बन सका ख़ुशामद और प्रलोभनसे इन्हें इस कार्यसे रोके रक्खा ।

इसके कुछ समय बाद ही बादशाहने हैदरकुलीख़ाँको अजमेरपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। इसके और अजीतसिंहजीके बीच खास दुश्मनी थी। इसीसे इसने मौका देख अचानक अजमेरपर हमला कर दिया[1] । परन्तु अन्तमें वि० सं० १७७९ में मेड़तेमें इनके आपसमें सुलह हो गई और महाराजाको अजमेर बादशाहके हवाले कर अपने ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार अभयसिंहजी[2]को शाही दरबारमें भेजना पड़ा। उनके वहाँ पहुँचनेपर बादशाहने उनका बड़ा आदर सत्कार किया । उस समय राठोड़राजका प्रताप बहुत बढ़ा चढ़ा था । इसीसे बादशाहके साथ ही

---

(१) उस समय अजीतसिंहजीकी तरफ़से नींबाज ठाकुर ऊदावत अमरसिंह वहाँका प्रबन्ध करता था । इसने हैदर कुलीख़ाँसे ख़ूब ही डट कर युद्ध किया ।

(२) अजीतसिंहजीने महाराजकुमारकी देखभालके लिए आउवेके चाँपावत हरनाथ और भंडारी रुघनाथको उनके साथ भेजा था । इस रुघनाथको अजीतसिंहजीने राजाकी पदवी दी थी और जिस समय वे जोधपुरके बाहर रहते थे उस समय इसीको वहाँका प्रबन्ध सौंपते थे । परन्तु यह भी बादशाहके चक्रमें पड़कर अपने स्वामीकी मृत्युका एक कारण बन गया था ।

साथ उसके पक्षमें होनेके कारण जयपुरनरेश जयसिंहजी भी अपने साथकी पहले की हुई भलाईको भूल कर इनसे ईर्ष्या करने लगे थे। इन दोनोंने भंडारी रुघनाथ (रघुनाथ) को अपनी तरफ मिलाया और तीनोंने मिल कर महाराजकुमार अभयसिंहजीको राज्य छीन लेनेका भय और शाही कृपाका लोभ दिखला कर अपने पिताको मरवा डालनेके लिए दबाया। नवयुवक राजकुमारने ऐसे अनुचित कर्मसे अपनेको बचानेकी बहुत कुछ कोशिश की। परन्तु उनकी एक न चली और सब तरफसे दबाव पड़नेके कारण और खास कर अपने श्वसुर जयपुरमहाराजके कहनेसे लाचार हो उनको अपने छोटे भाई बखतसिंहजीके नाम इस कार्यके लिए एक पत्र लिख कर भेजना पड़ा। पत्र पाकर वे भी घबरा गए और उचित अनुचितके निश्चय करनेमें असमर्थ हो वि० सं० १७८१ की आषाढ़ सुदी १३ (ई० स० १७२४ की ३ जुलाई) को रातके समय उन्होने सोते हुए महाराजाको मार डाला।

महाराजा अजीतसिंहजीने[1] बालकपनसे ही संसारचक्रकी गतिका बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था और उनकी सारी अवस्था लड़ाई भिड़ाईमें ही बीती थी। इस कारण वे निर्भय, वीर और राजनीतिज्ञ हो गए थे। ये समय समयपर औरंगजेब जैसे बादशाहसे भी छेड़छाड़ करनेमें नहीं चूकते थे और उसके बाद तो इनका प्रभाव यहाँ तक बढ़ गया था कि इन्होंने अपनी इच्छाके अनुसार देहलीके तख्तपरसे एक बादशाहको उतार कर दूसरेको बिठा दिया। इसी प्रकार अपनी मृत्युके पूर्व तक तीन बादशाहोंको इन्होंने ही तख्तपर बिठाया था।

इनमें बदला लेनेकी भी बड़ी आदत थी। इसीसे इन्होंने जहाँतक हुआ

---

(१) संस्कृतके अजितोदय और भाषाकी कवितावाले अजित ग्रंथमें इनका यशोवर्णन किया गया है।

निर्भय हो मुसलमानोंसे उनके किए हुए बर्तावके अनुरूप ही बदला लिया।

यहाँपर यह भी प्रकट करना ज़रूरी है कि मारवाड़के सरदारोंने हर तरहकी तकलीफ़ें उठाकर महाराजका साथ दिया और उन्हींकी सहायताके कारण मारवाड़का राज्य कायम रहा।

इनके २२ पुत्र थे। इनमेंसे बड़े कुँवर अभयसिंहजी तो इनके उत्तराधिकारी हुए, बखतसिंहजीको नागोर मिला और आनन्दसिंहजी ईडरके स्वामी हुए।

महाराजा अजीतसिंहजीके बनवाए हुए निम्नलिखित स्थान अब तक विद्यमान है:—(१) जोधपुरके किलेमेंका फतहपोल नामक दरवाजा और दौलतखानेका बड़ा महल तथा पत्थर और चाँदीकी अनेक प्रतिमाएँ। (२)

(१) महाराजा अजीतसिंहजीके जमानेमें चापावत मुकुन्ददास और राठोड़ (करणोत) दुर्गादास आदि कई बड़े वीर योद्धा हो गए हैं। इनमें औरोंके साथ ही साथ दुर्गादासजी विशेष उल्लेखयोग्य हैं। महाराजाकी बाल्यावस्थामें इन्होंने मारवाड़के लिए बड़े बड़े दुःख सहकर मुसलमानोंसे युद्ध किया था। इनकी वीरतासे औरंगजेब जैसा कट्टर बादशाह भी घबराता था। जब महाराजाका अधिकार जोधपुरपर हो गया तब उन्होंने भी इनके साथ बड़ा अच्छा सलूक किया। परन्तु अन्तमें लोगोंने उन्हें इनसे नाराज कर दिया। इससे मुकुन्ददास तो जोधपुरके किलेमें मारे गए और दुर्गादासजी वि० सं० १७६६ में उदयपुरकी तरफ चले गए। वहाँपर राणा अमरसिंहजी द्वितीयने इनका यथोचित सत्कार कर अपने पास रख लिया। कुछ समय बाद ये वहाँसे तीर्थयात्राके लिए उज्जैन पहुँचे। वहींपर इनका देहान्त हुआ। सफरा नदीके किनारे इनका दाहकर्म किया गया। उस स्थानपर जो छतरी बनाई गई थी वह अब तक राठोड़की छतरीके नामसे प्रसिद्ध है। वि० स० १७६३ (मारवाड़ी संवत् १७६२) की आषाढ़ सुदी १३ का लिखा इनका एक पत्र मिला है। इसमें भाट कवि कलशके कुटुम्बके भरणपोषणका आदेश है।

जोधपुरशहरका गंगश्यामजीका नया मन्दिर और ठाकुर मूलनायकजीका मन्दिर । (३) मंडोरमेंका एकथंभिया महल, महाराजा जसवन्तसिंहजीका देवल (छतरी), कालगोरा, भैरव और हड़बूजी, पाबूजी, रामदेवजी आदि वीरोंकी पहाड़में खुदी हुई बड़ी बड़ी मूर्तियाँ । (४) चाँदपोल दरवाजेके बाहरका जाडेची झालरा (तालाव) और गोलमेंका राणावतजीका मन्दिर इनकी रानियोंने बनवाया था । (ख्यातोंमें लिखा है कि मारवाड़में पहले पहल इन्होंने ही अपना सिक्का चलाया था ।)

२४ महाराजा अभयसिंह ।

ये महाराजा अजीतसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र थे । इनका जन्म वि० सं० १७५९ की मार्गशीर्ष कृष्णा १४ (ई० स० १७०२ की १८ नवम्बर) को हुआ था । ये करीब २२ वर्षकी अवस्थामें दिल्लीमें वि० सं० १७८१ की सावन सुदी ८ को गद्दीपर बैठे[1] । बादशाह मोहम्मदशाहने इस अवसरपर इन्हें राजराजेश्वरकी पदवीसे भूषित कर नागोरका[2] परगना इनायत किया । इन्होने हाड़ा दलेलसिंहसे छीनकर बूंदीकी गद्दीपर पीछा हाड़ा बुधसिंहजीको बिठा दिया । जैसलमेरके रावल अखयसिंहजी भी कई कारणोंसे कुछ दिनके लिए जोधपुरमें इनके पास रहे थे ।

---

(१) किसी किसी ख्यातमें इनका जन्म मगसिर वदी १० को और राजतिलक सावन वदी ८ को लिखा है । वि० सं० १७८१ की भादौं वदी ८ को मथुरामें महाराजा अभयसिंहजीका ब्याह जयपुरमहाराजा जयसिंहजीकी कन्यासे हुआ । यह राणा सामसिंहकी नवासी थीं ।

(२) उस समय नागोरपर राव अमरसिंहजीके पौत्र इन्द्रसिंहका अधिकार था । महाराजा अभयसिंहजीने वि० सं० १७८१ में उसे इसकी एवजमें दूसरी जागीर देकर वहाँका अधिकार अपने छोटे भाई बखतसिंहजीको दिया ।

वि० सं० १७८६ में इन्होंने गुसाईंजीको चौपासनी गाँव दिया।

जिस समय महाराजा जसवन्तसिंहजी मारे गए उस समय उनके छोटे पुत्र आनन्दसिंह और रायसिंहको उनकी माताओंने कुछ राजपूतोंके हवाले कर उनसे उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करवा ली थी। ये लोग कुछ समय तक तो मारवाड़में गड़बड़ मचाते रहे। इसके बाद जब बादशाह मोहम्मदशाहने महाराजा अभयसिंहजीको ईडर जागीरमें दिया, तब इन दोनों भाइयोंने जाकर उसपर अधिकार कर लिया। महाराजाने भी मारवाड़में शान्ति हो जानेके खयालसे इसमें कुछ आपत्ति नहीं की। यह घटना वि० सं० १७८५ के करीब हुई थी।

वि० सं० १७८३ में बादशाहकी तरफसे सरबुलन्दखाँको गुजरातकी सूबेदारी मिली। उस समय वहाँपर मराठोंका बड़ा उपद्रव था। उसको शांत करनेके लिए उसने मराठोंको सूबेकी आमदनीका चौथा हिस्सा देनेका वादा कर उनसे सुलह कर ली। परन्तु यह बात बादशाहको पसन्द न आई और वह उससे नाराज हो गया। इसपर वि० सं० १७८७ में सम्सामुद्दौलाके कहनेसे महाराजा अभयसिंहजीको गुजरातकी सूबेदारी दी गई। जब इसका परवाना महाराजाको मिला तब उन्होंने अपना एक आदमी वहाँका प्रबन्ध करनेके लिए भेज दिया। परन्तु सरबुलन्दने उसे हराकर भगा दिया। यह समाचार पाकर वे खुद चालीस पचास हजार सवार एकत्रित कर गुजरातकी तरफ रवाना हुए। राजा बखतसिंहजी भी साथ थे। मार्गमें इन्होंने सीरोहीके रांवाडे और पोसालिया आदि गाँवोंको लूट उक्त राज्यको बर्बाद करना शुरू किया। यह देख वहाँके महाराव मानसिंह (द्वितीय) ने अपनी कन्याका विवाह अभयसिंहजीके साथ कर दिया और अपनी तरफसे कुछ सेना इनके साथ करके सुलह कर ली। वहाँसे रवाना

होकर जब ये गुजरातकी सरहदपर पहुँचे तब वि० सं० १७८७ की आश्विन सुदी ७ को सरबुलन्दखाँने इनका सामना किया । परन्तु जब उसके बहुतसे आदमी मारे गए तब एक रातको सरबुलन्दखाँ खुद महाराजके पास आया और बोला कि मेरे और आपके पिताके बीच बड़ी मित्रता थी । महाराजा अजीतसिंहजी मेरे 'पगड़ी बदल' भाई थे। इससे मैं आपसे लड़ना नहीं चाहता । अगर आप मेरे सफरखर्चका इन्तिजाम कर दें तो मैं आपको यह सूबा सौंपकर जानेको तैयार हूँ। महाराजने भी यह सुन उसकी इच्छानुसार प्रबन्ध करवा दिया । इस पर वह गुजरातका अधिकार महाराजको सौंप आगरेकी तरफ रवाना हो गया ।

पहले लिखा जा चुका है कि गुजरातमें उस समय मराठोंका बड़ा जोर था । वि० सं० १७८८ में बाजीराव पेशवाने चौथ लेनेके लिए बड़ोदा नगर पर अधिकार कर लिया । यह देख महाराजने उसके मुकाबलेके लिए सेना भेजी । निजामुलमुल्क भी सहायताके लिए सूरत तक आपहुँचा । इसपर बाजीराव इनसे सुलहकर लौट गया । इससे कुछ दिनके लिए वहाँपर मराठोंका उपद्रव शान्त हो गया । कुछ समय बाद मराठोंने मारवाड़में उपद्रव मचाया । परन्तु उन्हें सफलता न हुई ।

इस प्रकार कुछ वर्षों तक गुजरातमें रहकर वि० सं० १७९० में महाराजा जोधपुरमें चले आए और अहमदाबादमें भंडारी रत्नसीको प्रबन्धके वास्ते रख दिया ।

वि० सं० १७९४ में यह सूबेदारी ज़ब्त हो गई ।

इसके बाद वि० सं० १७९० के आसोज (क्वांर) के महीनेमें महाराजके छोटे भ्राता बखतसिंहजी और बीकानेरके महाराजा

सुजानसिंहजीके बीच सरहदके बाबत झगड़ा उठ खड़ा हुआ। परन्तु अन्तमें दोनोंमें सुलह हो गई।

वि० सं० १७९१ के जेठमें महाराजासाहब पुष्कर गए। वहाँसे हुरडेकी तरफ रवाना हुए। वहाँ पहुँच आपने जयपुर और उदयपुरके नरेशोंसे मुलाकात की। इसके बाद शाहपुरेवालोंसे दण्डके रुपये वसूल किये।

कुछ समय बाद खुद महाराजा अभयसिंहजीने बीकानेरपर चढ़ाई की। यह देख बीकानेरके महाराजकुमार जोरावरसिंहजी इनके मुकाबलेको आ खड़े हुए। कुछ दिन तक तो दोनोंके बीच युद्ध होता रहा; परन्तु अन्तमें महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीयने बीचमें पड़ आपसमें मैत्री करवा दी। परन्तु बीकानेरके कुछ परगनोंपर वि० सं० १७९२ तक महाराजा अभयसिंहजीका ही अधिकार बना रहा। इसके बाद बखतसिंहजीने फिर एक बार बीकानेरपर अधिकार करनेकी कोशिश की। परन्तु इसमें भी सफलता न हुई। इसके बाद वि० सं० १७९६ में फिर महाराजा अभयसिंहजीने बीकानेरपर आक्रमण किया[1]। जब घेरेमें आजानेके कारण वहाँके किलेकी रसद समाप्त हो चली तब वहाँवालोंने बखतसिंहजीसे सहायता माँगी। परन्तु उन्होंने भाईके खिलाफ युद्ध करना अनुचित समझ

(१) बीकानेरके इतिहासमें लिखा है कि किसी कारणसे जोधपुरमहाराजा अभयसिंहजी और उनके छोटे भ्राता बखतसिंहजीके बीच झगड़ा हो गया। इसपर बीकानेरनरेशने अपने आठ हजार सैनिक बखतसिंहजीकी सहायतार्थ भेज दिये। यह देख अभयसिंहजीने भाईसे सुलह कर ली। अन्तमें इसीका बदला लेनेके लिए अभयसिंहजीने बीकानेरको घेर लिया। इसपर वहाँवालोंने बखतसिंहजीसे सहायता माँगी। परन्तु उन्होंने भाईके विरुद्ध खुद न आकर जयपुरनरेश जयसिंहजीको सिफारिश लिख भेजी। इसपर जयसिंहजीने जोधपुरपर चढ़ाई कर बीकानेरका पीछा छुड़वाया।

बीकानेरवालोंको जयपुरमहाराजा जयसिंहजीके पास भेज दिया । इसपर जयसिंहजीने जोधपुरपर चढ़ाई की । इससे लाचार हो अभयसिंहजीको बीकानेरका पीछा छोड़ जोधपुर लौट आना पड़ा । इसी गड़बड़में बखतसिंहजीने मेड़तेपर अधिकार कर लिया । परन्तु अन्तमें दोनों भाइयोंमें फिर मैत्री हो गई । जयपुरवाले कुछ दिन तो जोधपुर घेरे रहे; परन्तु बादमें अपनी फौजखर्चके रुपये लेकर वापिस लौट गए। इसके बाद अभयसिंहजीने जयसिंहजीपर आक्रमण करनेके लिए बखतसिंहजीको बुलवाया । यह समाचार पाते ही वे सेनासहित रवाना होकर जयसिंहजीके मुकाबलेको चले । जयपुरनरेश भी अपनी सेनाको लेकर मुकाबलेके लिए तैयार हो गए। जिस समय महाराजा अभयसिंहजी रीयांमें ही थे, उसी समय राजाधिराज बखतसिंहजी जयपुरकी फौजके सामने पहुँच गए। गँगवाणा (अजमेरके पास) में दोनों सेनाओंका सामना हो गया[1] । बखसिंहजीने बड़ी वीरता दिखलाई । इसके बाद बखतसिंहजी रीया आए और दोनों भाइयोंने फिर जयसिंहजीपर चढ़ाई की । परन्तु जयसिंहजीने मारवाड़के कुछ परगने जो पहले ले लिए थे वापिस लौटाकर अभयसिंहजीसे सुलह कर ली । इसके बाद राणा जगतसिंहजी द्वितीयने बीचमें पड़ जोधपुर और जयपुरके बीचकी यह सुलह पक्की करवा दी । यह घटना वि० सं० १७९८ में हुई थी ।

---

(१) कहते हैं कि इस युद्धमें बखतसिंहजी ५०६० सैनिक लेकर आए थे । परन्तु जयपुरवालोंसे लड़ते हुए इनमेंसे ५००० सैनिक मारे गये । जब केवल ६० सैनिक ही बच रहे तब बखतसिंहजीको बड़ा क्रोध आया और वे उन ६० सैनिकोंको लेकर एकाएक जहाँपर जयपुरका झंडा खड़ा था जा पड़े । यह देख जयपुरमहाराज जो कि झंडेके पास ही खड़े थे घबरा गए और वहाँ पर ठहरना खतरनाक समझ भाग खड़े हुए । इससे उनके सैनिक भी घबरा गए और बखतसिंहजीकी विजय हो गई । (इसी वर्ष नादिरशाहने चढ़ाई कर दिल्लीको लूटा था ।)

वि० सं० १८०० में जयपुरमहाराजा जयसिंहजीके मरनेपर महाराजा अभयसिंहजीने अजमेरपर अधिकार कर लिया। इसपर जयपुरमहाराजा ईश्वरीसिंहजीने अजमेरपर चढ़ाई की। परन्तु अन्तमें दोनोंके बीच सुलह हो गई और अजमेर अभयसिंहजीके अधिकारमें ही रहा।

वि० सं० १८०४ में महाराजने बीकानेरपर फिर फौज भेजी; पर कुछ दिन बाद दोनोंके बीच सुलह हो गई। इसी वर्ष फिर महाराजा अभयसिंहजीके और देहलीसे लौटनेपर उनके भाई बख़तसिंहजीके बीचमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ, परन्तु मल्हारराव हुल्करने इसे दूर कर दिया।

वि० सं० १८०६ की अषाढ सुदी १५ ई० स० १७४९ की ३० जून) को महाराजा अभयसिंहजीका अजमेरमें स्वर्गवास हो गया। ये बड़े वीर थे परन्तु अफीमका सेवन बहुत करते थे।

इनके समय कविराया करणीदानने विरदशृंगारनामक ग्रन्थ बनाया था[1]। उसमें अहमदाबादकी लड़ाईका वर्णन है। इसके लिए महाराजा अभयसिंहजीने उसे 'लाख पसाव' दिया था। इसके अलावा सूरजप्रकाश, राजरूपक और अभयविलास नामक ग्रन्थोंमें भी इनके प्रतापका वर्णन है। इनमेंके अगले दोनों भाषाकी कवितामें है और पिछला संस्कृतमें है।

मंडोरमेंकी वीरोंकी मूर्तियोंवाला दालान भी इन्हींके समय पूरा किया गया था।

२५ महाराजा रामसिंहजी।

ये महाराजा अभयसिंहके पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १७८७ की प्रथम भाद्रपद कृष्णा १० (ई० स० १७३० की ७ अगस्त)

---

(१) सूरजप्रकाश नामक ग्रंथ भी इसीका बनाया हुआ है।

को हुआ था । वि० सं० १८०६ की सावन सुदी १० को ये अपने पिताके मरनेपर जोधपुरकी गद्दीपर बैठे । इनके स्वभावमें बचपन बहुत था । इससे बहुतसे सरदार इनसे नाराज होकर बखतसिंहजीकी तरफ हो गए । प्रजा भी इनसे विशेष प्रसन्न न थी । यह हाल देख इनके चाचा बखतसिंहजीने राज्यपर अपना अधिकार करनेकी चेष्टा प्रारम्भ की और अनेक लड़ाइयाँ होनेके बाद इसीके लिए वे नागोरसे देहली पहुँचे । उस समय मराठोंने बड़ी गड़बड़ मचा रक्खी थी; अहमदशाह नाममात्रका बादशाह रह गया था । अतः बखतसिंहजीने जुल्फिकारजंगको अपनी तरफ मिलाया । उसको उसी समय अजमेरकी सूबेदारी मिली थी । बखतसिंहजीने मराठोंके विरुद्ध सहायता देनेका वादा कर उससे जोधपुरपर अधिकार करनेमें सहायता माँगी । वि० सं० १८०७ में उसने मारवाड़पर चढ़ाई की ।

जब यह समाचार महाराजा रामसिंहजीको मिला तब उन्होंने जयपुर-महाराज ईसरीसिंहजीको अपनी मददके लिए बुलवा लिया । पीपाड़में दोनों सेनाओंके बीच युद्ध हुआ । बखतसिंहजीने अपनी तरफकी सेनाके संचालनका भार अपने हाथमें लेना चाहा, परन्तु घमंडी जुल्फिकारजंगने इसे मंजूर न किया । अन्तमें मुसलमानी सेनाका प्रबन्ध ठीक न होनेसे रामसिंहजीकी विजय हुई और जुल्फिकारको हार कर भागना पड़ा[1] ।

---

(१) सैरुलमुताखरीनका कर्ता लिखता है कि एक दिन जिस समय दुपहरकी धूप और गरमीमें घमासान युद्ध हो रहा था उस समय जुल्फिकारजंगके कुछ सैनिक पानीकी खोजमें भटकते हुए राजपूतसेनाके सामने जा निकले । यदि राजपूत लोग चाहते तो उस समय उन्हें असानीसे मार या कैद कर सकते थे । परन्तु प्यासके मारे उन अधमरे मुसलमान सैनिकोंकी और उनके घोड़ोंकी बिगड़ीहुई दशा देख उनको दया आगई और उन्होंने कुछ देरके लिए शत्रुता

वि० सं० १८०७ के कार्तिकमें बखतसिंहजीने मेड़तेपर चढ़ाई की। परन्तु सफलता न हुई । इस चढ़ाईमें बीकानेरके राजा गजसिंहजी और रूपनगरके राजा बहादुरसिंहजी भी इनके साथ थे। इसके बाद कई एक लड़ाइयाँ होती रहीं। कुछ समय बाद जयपुरमहाराज ईसरीसिंह-जीका देहान्त हो गया। इससे बखतसिंहजीको अच्छा मौका मिल गया।

मारवाड़के सरदार और प्रजा तो रामसिंहजीसे पहले ही अप्रसन्न थीं। अतः इन्होने वि० सं० १८०८ की सावन वदी १२ (ई० स० १७५१ की २१ जुलाई)को जब कि महाराजा रामसिंहजी मेड़ते थे तब पीछेसे जोधपुरपर अधिकारकर नगरके द्वार बंद कर दिये। रामसिंहजीके लौटनेपर शहरके बाहर दोनों तरफके वीरोंका मुकाबला हुआ। परन्तु अन्तमें रामसिंहजीको हारकर भागना पड़ा। यहाँसे भागकर वे जयपुर-की तरफ चले गए और माधोजी सिंधियाके पास आदमी भेज सहा-यताकी प्रार्थना की।

वि० सं० १८०९ में मराठोंकी सहायतासे रामसिंहजीने जोधपुरपर चढ़ाई की। इससे एकवार फिर मारवाड़के कुछ इलाकोंपर इनका अधिकार हो गया। परन्तु अन्तमें वे परगने फिर इनके हाथसे निकल गये। अनन्तर बहुत दौड़ धूपके बाद बखतसिंहजीने साँभरका इलाका इनको भरण पोषणके लिए दे दिया।

वि० सं० १८११ में विजयसिंहजीके समय मराठोंकी सहायतासे

भूलकर उनके लिए अपने आदमियों द्वारा पानीका प्रबन्ध करवा दिया। जब वे और उनके घोड़े अच्छी तरहसे पानी पी चुके तब उन्होंने उन्हें शीघ्र ही वहाँसे भाग जानेकी सलाह देकर बिदा कर दिया।

(१) इस विषयका यह दोहा प्रसिद्ध है:--

रामो मन भावै नहीं, उत्तर दीनों देश। जोधाणो झाला करै, आव धणी बखतेश॥

इन्होंने फिर एक बार जोधपुरपर अधिकार करनेकी चेष्टा की थी। परन्तु अन्तमें मारोठ, मेड़ता, सोजत, बखतसर, सांभर आदि कुछ परगने लेकर इन्हें सन्तोष करना पड़ा ।

वि० सं० १८२९ की भादो सुदी ६ को जयपुरमें महाराजा रामसिंहजीका स्वर्गवास हुआ ।

२६ महाराजा बखतसिंहजी ।

ये महाराजा अभयसिंहजीके छोटे भाई थे। इनका जन्म १७६३की भादो वदी ८ (ई० स० १७०६ की १ सितम्बर) को हुआ था ।

वि० सं० १८०८ की श्रावण वदी १२ को अपने भतीजे महाराजा रामसिंहजीको हटाकर ये जोधपुरकी गद्दीपर बैठे । बीकानेरके महाराजा गजसिंहजीने भी इस कार्यमें इन्हे सहायता दी थी ।

इसपर रामसिंहजीने आपाजी सिंधियासे सहायताकी प्रार्थना की और उसकी मददसे उन्होंने अजमेरपर अधिकार कर लिया। परन्तु बखतसिंहजीकी वीरताके आगे उनके पैर नहीं जमे । महाराजा बखतसिंहजीने बड़ी चालाकीसे उसपर फिर अपना अधिकार जमा लिया ।

महाराजा बखतसिंहजी बड़े न्यायप्रिय और बुद्धिमान शासक थे। इन्होंने अपने नागोरके परगनेमें भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था। अतः जैसे हीं इनको अपने नये राज्यके प्रबन्धसे छुट्टी मिली वैसे ही इन्होंने एक बड़ी सेना इकट्ठी कर अपने राज्यकी सुखसमृद्धिके लिए देशमें दौरा करना शुरू किया। इस प्रकार दौरा करते हुए ये जयपुरकी तरफ चले। मार्गमें जिस समय सीन्धोलिया नामक स्थानपर पहुँचे उस समय ये बीमार हो गए और वहींपर वि० सं० १८०९ की भादो सुदी १३ (ई० सं० १७५२ की २२ सितम्बर) को

इनका स्वर्गवास हो गया[1] । उसी स्थानपर इनके पुत्र विजयसिंहजीने वि० सं० १८२२ में एक मन्दिर बनवाया था ।

महाराजा बखतसिंहजीने जोधपुरके किलेकी बहुत कुछ उन्नति की और राव मालदेवजीने नगरके चारों तरफ जिस शहरपनाहका बनवाना आरम्भ किया था (परन्तु जो अबतक अधूरा पड़ा था) उसको इन्होने ६ महीनेमें समाप्त करवा दिया । ये चारणोंसे नाराज थे और उनके कई गाँव ज़ब्त कर लिए थे । परन्तु इनके अन्तसमय पोहकरणके ठाकुर देवीसिंहने चारणोंके बदले अपने हाथपर संकल्प लेकर वे गाँव चारणों आदिको दिलवा दिये ।

ये महाराजा बड़े वीर, चालाक, दानी और राजनीतिज्ञ थे ।

२७ महाराजा विजयसिंहजी ।

ये महाराजा बखतसिंहजीके पुत्र थे । इनका जन्म वि० सं० १७८६ की मार्गशीर्ष कृष्ण ११ (ई० स० १७२९ की १६ नवम्बर) को हुआ था । जिस समय इनके पिताका स्वर्गवास हुआ उस समय ये मारोठ (जोधपुरसे पूर्व) में थे । जब यह समाचार इनको मिला

---

(१) ख्यातोंमें इनकी मृत्युके बाबत लिखा है कि जिस समय ये सीन्धोलिया नामक स्थानमें ठहरे हुए थे उस समय जयपुरमहाराज माधवसिंहजीको भय हुआ कि कहीं इनकी वजहसे जयपुर राज्यमें कुछ उपद्रव न खड़ा हो जाय । इससे उन्होंने अपनी रानीसे जो कि बखतसिंहजीकी भतीजी थी सहायता माँगी । उसने भी पतिके दबावसे एक विषसंयुक्त पोशाक और कुछ अन्य वस्तुयें अपने चाचाके पास उपहारस्वरूप भेज दीं । इसी पोशाकके पहननेसे महाराज बखतसिंहजीके शरीरमें विषका प्रवेश हो गया और वे कुछ ही समय बाद इस लोकसे बिदा हो गये ।

तब वहींपर ये वि० सं० १८०९ के भादोंमें गद्दीपर[1] बैठे।

वि० सं० १८११ में रामसिंहजीने एक वार फिर गए हुए राज्यको पानेकी कोशिश की और जयपुरमहाराज माधवसिंहजी प्रथम और आपाजीरावकी सहायतासे मारवाड़पर चढ़ाई की। यह[2] समाचार पाकर महाराजा विजयसिंहजीने भी युद्धकी तैयारी की। बीकानेरमहाराज गजसिंहजी और किशनगढ़के महाराजा बहादुरसिंहजी भी जोधपुर-महाराजाकी मददमें आ पहुँचे। मेड़तेके पास दोनों सेनाओंके बीच युद्ध हुआ। परन्तु महाराजको हारकर नागोरकी तरफ़ जाना पड़ा। मराठोंने वहाँपर भी इनका पीछा किया। कई दिनों तक युद्ध होता रहा। अन्तमें विजयसिंहजीने अपने दो राजपूतोंको[3] बनियोंके भेसमें मराठी सेनामें भेजा। ये दोनो आपसमें झगड़ते हुए आपाजीके पास पहुँचे

---

(१) वि० सं० १८०९ की माघ वदी १ का एक लेख विजयसिंहजीके राज्यसमयका फलोधीसे मिला है। इसमें महाराजकुमार फतहसिंहजीका भी नाम है। ये इनके सबसे बड़े कुँवर थे। परन्तु वि० स० १८३४ की कार्तिक शुक्ला ८ को इनका स्वर्गवास हो गया। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी १९१६, पृ० १००।)

(२)माधवराव पेशवा द्वारा जयआपा सेंधियाके मारवाड़पर आक्रमण करनेको भेजे जानेका एक कारण यह भी था कि जबसे वि० सं० १८१६ में दुर्रानियोंने करनालके युद्धमें मराठोंको हराया था, तबसे राजपूतानेके राजाओंने चौथ देना छोड़ दिया था। यह चौथ इन्होंने मोहम्मदशाहके समयसे देहलीकी बादशाहतके कमजोर हो जानेपर देनी शुरू की थी।

(३) इनमें एक खोखर जातिका और दूसरा गहलोत था। मारवाड़में यह कहावत अब तक मशहूर है —

"खोखर बड़ो खुराकी खाधौ आपा सरीखो डाकी"। आपापर जो छतरी बनी थी वह अब तक नागोरसे करीब १½ कोसके फ़ासले पर मौजूद है।

और वहाँपर मौका पाकर इन्होंने उसे मार डाला। यह घटना वि० सं० १८१२ की है[1]।

इसके बाद महाराजा विजयसिंहजी बीकानेर गए और वहाँके महाराजा गजसिंहजीको साथ लेकर सहायता माँगनेके लिए जयपुरमहाराजा माधवसिंहजी प्रथमके पास पहुँचे। जब बहुत कुछ कहा सुनीपर भी जयपुर महाराजने इन्हें किसी प्रकारकी सहायता देना स्वीकार नहीं किया, तब ये लौटकर नागोर आए और इन्होंने जया आपाके पुत्र जनकूको फौज खर्चके कई लाख रुपये देकर उससे सुलह कर ली। इसी सुलहके अनुसार मारोठ, मेड़ता, सोजत, परबतसर, साँभर आदि प्रदेश महाराजा रामसिंहजीको मिले।

वि० सं० १८१३ में रामसिंहजी शादी करने जयपुर गए। पीछेसे विजयसिंहजीने मेड़ता, सोजत और जालोर आदिपर अधिकार कर लिया। इसपर रामसिंहजीने फिर मराठोंसे सहायता माँगी। आपाके भाई रानोजी सिंधियाको अपने भाईका बदला लेनेका यह अच्छा अवसर मिला। उसने पेशवासे आज्ञा लेकर मारवाड़पर चढाई की और यहाँ पहुँच ऐसी लूटमार मचाई कि महाराजा विजयसिंहजीको डेढ़ लाख रुपये सालाना देनेका वादा कर और अजमेर देकर उससे सुलह करनी पड़ी। रामसिंहजीके भी सारे परगने उन्हें सौंप दिये गए। इसके बाद

(१) उस समय जोधपुर, जालोर, नागोर और डीडवानाको छोड़ बाकीके सब प्रदेशोंपर रामसिंहजीका अधिकार हो गया था। यह दशा देख महाराजा विजयसिंहजीने विजयभारतीको उदयपुर महाराणाप्रतापसिंहजीके पास मराठोंसे सुलह करवा देनेके लिए भेजा। इसपर महाराणाजीने सलूंबरके राणा जैतसिंहजीको दक्षिणियोंको समझानेके लिए भेज दिया। परन्तु उन्होंने इनके कहनेपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसीसे विजयसिंहजीको यह चालकी कर अप्पाजीको मरवाना पड़ा। मराठोंने इसकी एवजमें विजयभारतीको पकड़ कर मार डाला।

रानोजी अजमेर पहुँचा और वहाँका प्रबन्ध गोविन्दरावको सौंप दक्षिणको लौट गया।

मेड़तापर फिर रामसिंहजीका अधिकार हो गया और इससे देशमें बड़ी गड़बड़ मच गई। महाराजने गृहकलहको दबानेके लिए विदेशी सेना रक्खी। यह देख वि० सं० १८१५ में सब सरदार लोग जोधपुर छोड़ वीसलपुरकी तरफ चले गए और रामसिंहजीसे बात मिलाने लगे। इसपर महाराजा विजयसिंहजी खुद वहाँ पहुँचे और सरदारोंको लौटाकर ले आए।

इसके बाद महाराजके गुरु आत्मारामका किलेमें देहान्त हो गया। इस मौकेपर महाराजाने बड़े बड़े सरदारोंको किलेमें बुलाकर धोखेसे कैद कर लियाँ[1]। यह घटना वि० सं० १८१६ की फाल्गुन वदी १ की है। इससे देशमें फिर गड़बड़ शुरू हो गई। कुछ दिन बाद जब धाभाई जग्गूने रामसिंहजीसे मेड़ता छीन लिया तब वे भागकर अपनी सुसराल जयपुर चले गए। कुछ दिन वहाँ रहनेपर जयपुरवालोने इन्हें सांभरका इलाका सौंप दिया। इसपर वे वहाँ चले गए। इसके बाद वि० सं० १८१९ में जोधपुरकी फौजने अजमेरको घेर लिया। परन्तु इतनेहीमें वहाँपर माधवराव सिंधिया सेना लेकर आ पहुँचा। अतः महाराजकी सेनाको सफलता न हुई। उलटे नौ लाख रुपये देकर पीछा छुड़ाया। वि० सं० १८२२ मे फिर माधवराव सिंधियाके आनेकी सूचना मिली। परन्तु महाराजने उसे तीन लाख रुपये देकर शान्त कर दिया।

इसी वर्ष महाराजने बालकृष्णजीका नया मन्दिर बनवाया।

---

(१) इनमें ४ ठाकुर मुख्य थे—पोकरणके देवीसिंह, आसोपके छतरसिंह, रासके केसरीसिंह और नींबाजके दौलतसिंह। इनमेंसे तीन तो कैदमें ही मरे और चौथे दौलतसिंहको महाराजाने छोड़ दिया।

इसी समयसे महाराजने नाथद्वारेके वैष्णव संप्रदायके नियमोंका पालन करना शुरू किया[1] और अपने राज्यमें मांस और मदिराका पूर्णतया निषेध कर दिया। जीवहिंसा करनेवालोंको और शराब बनानेवालोंको सख्त सज़ा दी जाने लगी। वि० सं० १८२३ के कार्तिक महीनेमें महाराजा नाथद्वारे गए। लौटते हुए सरदारगढ़के ठाकुरकी कन्यासे इनका विवाह हुआ।

---

(१) वि० स० १७२६ में ये लोग गोवर्धननाथजीकी मूर्ति लेकर औरंगज़ेबके डरसे जोधपुरमें आरहे थे।

(२) महाराजा विजयसिंहजी परम वैष्णव थे। इन्होंने अपने राज्यभरमें मांस और मदिराका निषेध कर दिया था, परन्तु आउवेके ठाकुर जैतसिंहको यह खयाल था कि मेरे पिता कुशलसिंहने महाराजा बखतसिंहजीको जोधपुरका राज्य दिलवानेमें अपने प्राण दिये हैं, अतः महाराजा मुझे कुछ न कहेंगे। इसीसे वे शक्तिकी उपासनाके लिए पशुवध किया करते थे। महाराजने उन्हे कई बार मना किया। परन्तु उन्होंने भी शाक्त धर्मको छोड़ना नामज़ूर किया। इसपर महाराजने उन्हें जोधपुरके किलेमें बुलवाकर मरवा डाला। किलेके बाहर जहाँपर उनका दाहकर्म किया था एक चबूतरा बना है और लोग इसे जयसिंहजीका थड़ा कहकर पूजते हैं; क्यों कि इन्होंने अपने धर्मपर दृढ रहकर प्राण दिये थे। एक बार आसोपठाकुरने अपने गाँवसे बोरेमें भरकर एक मारा हुआ बकरा मंगवाया था। परन्तु जिस ऊँटपर वह बोरा था वह ऊँट शहरमें कुछ खड़खड़ाहट सुनकर चमक गया। इससे उस बकरेका सिर बाहर निकल पड़ा। जब इस बातकी सूचना महाराजको हुई तब उन्होंने आसोपठाकुरको बुलाकर अपनी आज्ञाके उल्लंघन करनेका कारण पूछा। परन्तु उसने काली ऊनका एक गोला पेशकर अर्ज की कि असलमें यह गोला बोरेसे निकलकर शहरमे गिर गया था। लोगोंने इसे ही बकरेका सिर समझ यह झूठी शिकायत की है। इस प्रकार ठाकुरने अपना बचाव किया। विजयसिंहजीने पशुवध रोककर कसाइयोंको मकानोंपर पत्थर चढ़ानेका काम सौंपा था। उनके वंशज अबतक यही काम करते हैं। एक बार एक मुसल्मान

जयपुरमहाराजा माधवसिंहजी (प्रथम) और जोधपुरमहाराजा विजयसिंहजीमें शत्रुता हो गई थी। इसीसे जब वि० सं० १८२४ में भरतपुरके जाटराजा जवाहरसिंहने जयपुरपर चढ़ाई की तब विजयसिंहजीने भी भरतपुरवालोंकी सहायता की थी।

वि० सं० १८२७ में मेवाड़के राणा अमरसिंह (अड़सी) जी और उनके सरदारोंमें झगड़ा हो गया। राणाजीने विजयसिंहजीसे सहायता माँगी। महाराजने भी अपनी राठोड़सेना भेज मेवाड़के सरदारोंका उपद्रव शान्त कर दिया और आगेके लिए भी समयपर उन्हे सहायता देनेका वादा किया। इसकी एवज़में रानाजीने गोड़वाड़का परगना महाराजाको सौप दिया। यह अबतक मारवाड़ राज्यमें ही शामिल है।

इसी बीच ऊमरकोटके सराई जातिके लोगोंने इधर उधर लूटमार शुरू कर दी थी। इसीसे विजयसिंहजीने उनको दबानेके लिये अपनी सेना भेजी। उस समय सोढा राजपूतोंको हटा कर सिंधके टालपुरा लोग वहाँके शासक बन बैठे थे। राठोड़ोंने टालपुरा जातिके मुखिया वीजड़को हराकर ऊमरकोटपर अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८२८ में महाराज दुबारा नाथद्वारे गए। साथमें बीकानेरमहाराजा गजसिंहजी भी थे। राणा अड़सीजी भी वहींपर आ कर इनसे मिले। कहते हैं कि इस समय अड़सीजीने गोड़वाड़ वापिस लेनेकी बहुत कुछ चेष्टा की; परन्तु इसमें सफलता नहीं हुई।

सैनिकने तलवारसे बैलको जखमी कर दिया। जब नगरका कोतवाल उसे पकड़ने गया तब सारी मुसलमान सेना बदल गई। इसपर लोगोंने महाराजको समझाया कि उक्त सैनिकको क्षमा कर देना ही उचित है, और यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो ये लोग नौकरी छोड़कर चले जायगे। इससे सरदार लोग और भी उपद्रव करेंगे। परन्तु महाराजने राज्य और प्राणोंकी परवाह न कर उक्त सैनिकको मय उसके साथियोंके दण्ड देकर ही छोड़ा।

वि० सं० १८२९ में जयपुरमें रामसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। इसपर उनके अधिकृत साँभरके परगनेपर महाराजा विजयसिंहजीने अधिकार कर लिया। वि० सं० १८३१ में आउवेके ठाकुर जैतसिंह जोधपुरके किलेमें मारे गए। वि० सं० १८३४ में महाराजाने रायपुरपर कब्ज़ा कर लिया और मराठोंको हराकर अजमेर भी अपने राज्यमें मिला लिया। वि० सं० १८३७ में उमरकोट विजय किया।

वि० सं० १८३८ में बीकानेरके महाराजकुमार राजसिंहजी अपने पितासे नाराज़ हो कर जोधपुर चले आए। महाराजा विजयसिंहजीने उनकी बड़ी खातिर की और वि० सं० १८४२ में पिता पुत्रोंमें सुलह करवाकर उन्हें वापिस बीकानेर भेज दिया।

जिस समय महाराजा पृथ्वीसिंहजीके मरनेपर महाराजा प्रतापसिंहजी जयपुरकी गद्दीपर बैठे उस समय पृथ्वीसिंहजीके पुत्र मानसिंहजीने माधवजी सिंधियासे सहायताकी प्रार्थना की। इसपर वि० सं० १८४४ में मराठोंने जयपुरपर चढ़ाई की। यह देख महाराजा प्रतापसिंहजी बहुत घबरा गए और उन्होंने जोधपुरमहाराजसे सहायता माँगी। विजयसिंहजीने तत्काल ही अपनी वीर राठोड़ सेनाको उनकी सहायताके लिए भेज दिया। इस सेनाने पहुँच तूंगा नामक स्थानके पास मराठोंसे ऐसा लोहा लिया कि वे खेत छोड़ सनवाड़की तरफ़ भाग निकले। इससे अजमेरपर फिर महाराजाका अधिकार हो गया। इसके बाद महाराजा विजयसिंहजीने रूपनगर व किशनगढ़पर फौज भेजी। सात महीने तक दोनों नगर घिरे रहे। अन्तमें वहाँके राजा प्रतापसिंहजीने तीन लाख रुपए दंडके देनेका वादा कर सुलह कर ली। इसके अलावा रूपनगर वीरसिंहजीके पुत्र अमरसिंहजीको सौंप दिया।

वि० सं० १८४७ में अपनी अगली हारका बदला लेनेके लिए माधवजी सिंधियाने मारवाड़पर चढ़ाई की । महाराजने बीकानेर और किशनगढ़के राजाओंको, अपनी सहायतार्थ बुलवाया । ये लोग भी मेड़तेमें जोधपुरकी सेनासे आ मिले । जिस समय मराठोंकी सेना फ्रेंच जनरल डी० बोईनेकी अध्यक्षतामें लूनीके पास पहुँची उस समय उसकी तोपें वहाँके कीचड़में फँस गई । यह देख कई राठोड़ सरदारोंने एकदम मराठों पर आक्रमण करनेकी सलाह दी । परन्तु 'मारवाड़ मनसोबे डूबी' कहावतके अनुसार वह मौका आपसके वाद विवादमें ही निकल गया । इसके बाद बीकानेर और किशनगढ़के राजा भी अपने अपने देशोंकी रक्षाके लिए लौट गए । अकेली मारवाड़की सेनाने वीरतासे मराठोंका सामना किया, पर भाग्यकी कुटिलतासे राठाड़ोंने अपनी ही एक सेनाको दुश्मनकी फ़ौज समझ उस पर आक्रमण कर दिया । इस गड़बड़में राठोड़-सेनाका व्यूह भंग हो गया और उन्हें पीछे हट जाना पड़ा । इस प्रकार विजयी होकर मराठोंने कुछ दूर तक राठोड़ोंका पीछा किया और फिर आगे बढ़ अजमेरको घेर लिया । समय देख देशको मराठोंके बार बारके आक्रमणसे बचानेके लिए महाराजाने उन्हें साठ लाख

---

(१) कहते हैं कि राठोड़ोंने युद्ध कर जयपुरकी रक्षा की थी । इससे कछवाहोंके चित्तमें उपकारके बजाय ईर्ष्याने स्थान ग्रहण कर लिया था और वे उन्हें नीचा दिखानेकी कोशिश करने लगे थे । इसी ईर्ष्यासे प्रेरित हो कर जयपुरमहाराजा प्रतापसिंहजीने सिंधियाको कई लाख रुपए देनेका वादा कर जोधपुरपर आक्रमण करनेको उत्साहित किया था ।

(२) De Boigne.

(३) साठ लाख रुपए नकद न दे सकनेकी वजहसे महाराजने गहने, जवाहरात, आदि मिलाकर कुछ तो उसी समय दे दिया और बाकीकी एवज़में जमानत दिलवा दी ।

रुपए नक़द और अजमेर देकर उनसे सुलह कर ली, तथा देहलीके बादशाहको जो कर दिया जाता था वह मराठोंको देना अङ्गीकार किया।

महाराजा विजयसिंहजीने एक जाट जातिकी स्त्रीको अपनी पासवान[1] बनाया था। इसका नाम गुलाबराय था। इस पर महाराजाकी बड़ी कृपा थी। इसीसे राज्यमें भी इसका बड़ा प्रभाव था। यह कभी कभी राज्यके कामोंमें भी दख़ल दे बैठती थी। इस कारण मारवाड़के बड़े बड़े सरदार इससे नाराज़ हो गए थे। इससे एकरोज़ ये सब लोग जोधपुर छोड़ कर चले गए और मुल्कमें गड़बड़ करने लगे। परन्तु वि० सं० १८४८के फाल्गुनमे महाराजा इनको वापिस बुला लानेके लिए इनके पीछे मालकोसनी तक गए। वि० सं० १८४९ की वैशाख कृष्णा ७ को पीछेसे इन विजयसिंहजीके पौत्र भीमसिंहजीने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। अन्तमें करीब १० महीनोंके बाद पौकरन ठाकुर सवाईसिंहके कहने सुननेसे झगड़ा निपट गया और भीमसिंहजी सिवानेकी तरफ रवाना हो गये। परन्तु मार्गमें झंवरमें इनके और महाराजाकी सेनाके बीच युद्ध हुआ। इसके बाद ये ठाकुर सवाईसिंहके साथ पौकरन चले गए। यह घटना वि० सं० १८५० के चैत्रमासकी है।

---

(१) पासवान उस रक्खी हुई स्त्रीको कहते हैं जिसका दरजा रानीसे कुछ ही कम होता है। यह पासवान भी वैष्णव संप्रदायकी माननेवाली थी। कुञ्जबिहारीजीका मन्दिर, गुलाबसागर तालाव, गिरदीकोट, और मायलाबाग इसीके बनवाए हुए हैं। एक बार महाराजके प्रधान मंत्री और कृपापात्र खीची गोवर्धनसे यह किसी बात पर नाराज़ हो गई। यह देख वह पौकरन ठाकुरके मकानपर चला गया और वहाँपर उसने सब सरदारोंको एकत्र कर पासवान गुलाबरायकी शिकायत की तथा महाराजाको समझानेके लिए सलाह की। परन्तु इसकी खबर पासवानको लग गई। इसीसे घबराकर सब सरदार बीसलपुरकी तरफ चले गए।

वि० सं० १८४९ की वैशाख वदी १० को मौका पाकर सरदारोंने पासवानको मार डाला। इसके बाद ही वि० सं० १८५० की आषाढ़ वदी १४ (ई० स० १७९३ की ८ जुलाई) को महाराजाका स्वर्गवास हो गया[1]। इनके ७ पुत्र थे।

इन्होंने करीब ४० वर्ष राज्य किया। ये परम वैष्णव थे। इन्होंने वि० सं० १८१७ में गंगश्यामजीके मन्दिरका विस्तार किया था। इन्होंने जो सिक्का मारवाड़में चलाया था वह बिजैशाही कहलाता था और यही चाँदीका सिक्का वि० सं० १८२२ से वि० सं० १९५७ तक मारवाड़मे प्रचलित था। उसके बाद यहाँ पर अँगरेजी सिक्केका प्रचार हो गया।

२८ महाराजा भीमसिंहजी[2]।

ये महाराजा विजयसिंहजीके पौत्र थे और अपने बड़े चाचा फतहसिंहजी और पिता भीमसिंहजीके विजयसिंहजीके समयमें ही मर जानेसे वि० सं० १८५० की आषाढ़ शुक्ला १२ (ई० स० १७९३ की २१ जुलाई) को अपने दादाके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १८२३ की आषाढ शुक्ला १२ (ई० स० १७६६ की १९ जून) को हुआ था।

जिस समय विजयसिंहजीका स्वर्गवास हुआ उस समय ये शादी करनेके लिए जैसलमेर गए हुए थे। उक्त समाचारके पहुँचते ही इन्होंने जोधपुर पहुँच राज्यपर अधिकार कर लिया। उस समय इनके

(१) किसी किसी ख्यातमें १४ के बदले ११ है और किसीमें ३० लिखी है।

(२) वि० सं० १८५२ को आषाढ सुदी ५ का इनके समयका एक लेख फलोधीसे मिला है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी १९१६, पृ० १०१)

चाचा ज़ालिमसिंहजी और चचेरे भाई मानसिंहजी भी जोधपुरमें ही थे। भीमसिंहजीके आते ही इन्होंने कुछ सरदारोंको साथ लेकर मारवाड़के गाँवोंको लूटना शुरू किया, परन्तु भीमसिंहजीने सेना भेजकर इस उपद्रवको शान्त कर दिया। इसपर इनके चाचा तो उदयपुर चले गए और भाई जालोरमें जा छिपे। इसके बाद मारवाड़ पर मराठोंकी फौजने चढ़ाई की। परन्तु महाराजने उन्हें कुछ दे दिलाकर बिदा कर दिया।

भीमसिंहजी जिस समय राज्यपर बैठे थे उस समय इनके चाचा ज़ालिमसिंहजीने गड़बड़ मचाई थी। इसीसे ये अपने चाचाओं और भतीजोंसे चौंकते रहते थे। अतः राज्यपर पूर्णतया अधिकार कर लेने पर इन्होने सेना भेजकर अपने चाचा ज़ालिमसिंहजीको गोड़वाड़से[1] निकालकर उक्त प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया और धीरे धीरे अपने दूसरे सारे भाई भतीजोंको भी मरवा डाला[2]। केवल गुमानसिंहजीके पुत्र मानसिंहजीने[3] जालोरके किलेका आश्रय ले अपने प्राण बचाए। वि० सं० १८५४ में भीमसिंहजीने जालोरपर सेना भेजी। वहाँपर बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा।

वि० सं० १८५८ में पुष्करमे विजयसिंहजीके बड़े पुत्र फतहसिंह-

---

(१) महाराजा विजयसिंहजीने अपने छोटे पुत्र ज़ालिमसिंहजीको गोडवाड़का परगना जागीरमें दिया था और उनकी इच्छा थी कि उनके बाद वे ही राज्यके उत्तराधिकारी बनाए जायँ। परन्तु पौकरन और आउवेके सरदारोंने सहायता कर भीमसिंहजीको राज्यका अधिकारी बना दिया।

(२) ये गोड़वाड़से भगाए जानेपर मेवाड़की तरफ़ चले गये और वि० सं० १८५४ में इन्होंने वहाँसे सेना लाकर मारवाड़ पर चढ़ाई की। परन्तु वि० सं० १८५५ में काछबलीमें इनकी मृत्यु हो गई।

(३) ये विजयसिंहजीके पौत्र थे और उन्होंने इनको जागीरमें जालोरका परगना दिया था।

की कन्यासे जयपुरमहाराज प्रतापसिंहजीका और प्रतापसिंहजीकी बह-नसे भीमसिंहजीका विवाह हुआ।

इसी वर्ष खर्चसे तंग होकर मानसिंहजीने पालीको लूट लिया[1]। जिस समय ये यहाँसे लौट रहे थे उस समय साकदड़ा नामक स्थानके पास इनका भीमसिंहजीकी सेनासे सामना हो गया। सम्भव था कि मानसिंहजी कैद कर लिये जाते, परन्तु आउवेके ठाकुरने इन्हें खतरेसे निकाल जालोर पहुँचा दिया। वहाँ पहुँच मानसिंहजीने अपने पुत्र छत्र-सिंहजीको सीरोहीके महाराव वैरीशालजीके पास सहायता माँगनेके लिए भेजा। परन्तु उन्होंने भीमसिंहजीके डरसे उनको मदद देनेसे इनकार कर दिया।

इसके बाद ही फिर महाराजा भीमसिंहजीने जालोरपर एक बड़ी सेना भेजी। इसने वहाँ पहुँच किलेको घेर लिया। वि० सं० १८५९ के मार्गशीर्ष महीनेमें जालोर नगरपर भीमसिंहजीकी सेनाका अधिकार हो गया। केवल किला ही मानसिंहजीके अधिकारमें बच रहा। इससे मान-सिंहजीका सम्बन्ध बाहरसे बिलकुल टूट गया और कुछ समय बाद रसद आदिके खर्च हो जानेसे उन्हें लाचार होकर किला छोड़नेका विचार करना पड़ा। परन्तु देवनाथ नामक एक योगीने उन्हें कुछ दिन और धैर्य रखनेका उपदेश दिया। यद्यपि किलेकी सामग्री समाप्त हो चुक-नेके कारण भीतरवालोंको बड़ी तकलीफ़ हो रही थी तथापि मानसिं-हजीने योगीका उपदेश मानकर किला छोड़नेके इरादेको ही छोड़ दिया। इसके चार पाँच रोज़ बाद ही वि० सं० १८६० की कार्तिक शुक्ला ४ (ई० स० १८०३ की २० अक्टोबर) को महाराजा भीमसिंहजीका

(१) उस समय महाराजा भीमसिंहजी शादी करने पुष्कर गए हुए थे।

स्वर्गवास हो गया[1]। जब यह समाचार जालोरको घेरकर पड़ी हुई राजकीय सेनामें पहुँचा तब भंडारी गंगाराम और सिंधी इन्द्राज वगैरहने भीमसिंहजीके पीछे पुत्र न होनेके कारण मानसिंहजीको ही राज्य-का एक मात्र उत्तराधिकारी समझ उनसे जोधपुरका राज्यसिंहासन सुशोभित करनेकी प्रार्थना[2] की। वे भी अपने मुसीबतके समयका अन्त हुआ समझ ईश्वरका धन्यवाद करते हुए जोधपुर पहुँच गद्दीपर बैठ गये।

महाराजा भीमसिंहजीने करीब ११ वर्ष राज्य किया। कहते हैं कि इनके समयमें मारवाड़में एक भी अकाल नहीं पड़ा।

मंडोरमें अजीतसिंहजीकी दाहक्रियाके स्थानपर जो देवल उनके पुत्र अभयसिंहजीने बनवाना प्रारम्भ किया था वह इनके समय पूरी तौरसे तैयार हुआ था।

२९ महाराजा मानसिंहजी।

ये महाराजा विजयसिंहजीके पौत्र (गुमानसिंहजीके पुत्र) और महाराजा भीमसिंहजीके भतीजे थे। इनका जन्म वि० सं० १८३९ की माघ शुक्ला ११ (ई० स० १७८३ की १२ फरवरी) को हुआ था। युवावस्थामें इन्होंने बहुत तकलीफें उठाई थीं। भीमसिंहजीके भयसे एक बार तो इनको मारवाड़ ही छोड़ देना पड़ा था। कुछ समय तक इधर

(१) इनकी पीठपर फोड़ा हो गया था। इसीसे इनका स्वर्गवास हुआ।

(२) जोधपुरसे इन्द्राज आदिको यह लिखा गया था कि यद्यपि महाराजा भीमसिंहजीका देहान्त हो गया है तथापि तुम जालोरपर घेरा जारी रखना; क्योंकि स्वर्गवासी महाराजाकी रानी गर्भवती है। परन्तु इन्द्राज आदिने सोचा कि यदि इस समय मैं मानसिंहजीकी सहायता करूँगा तो वे मेरा एहसान मानेंगे, इसीसे वह मानसिंहजीको लेकर जोधपुर चला आया।

उधर घूमकर ये जयपुर पहुँचे और वहाँसे कुछ सेना इकट्ठीकर इन्होंने जालोर पर अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८६० की मार्गशीर्ष कृष्णा ७ (ई० स० १८०३ की ७ नवंबर) को ये गद्दी पर बैठे[1]।

कहते हैं कि उस समय महाराजा भीमसिंहजीकी एक रानी गर्भवती थी। अतः कुछ सरदारोंने मिलकर उसे तलहटीके महलोंमें ला रक्खा। वहीं पर उसके गर्भसे एक बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम धौंकलसिंह रक्खा गया। इसके बाद उन सरदारोने उसे पौकरनकी तरफ़ भेज दिया। परन्तु महाराजा मानसिंहजीने इस बातको बनावटी माना और उस बालकका राज्याधिकार अस्वीकार कर दिया[2]। इस पर पौकरन ठाकुर सवाईसिंह

(१) वि० सं० १८६० की पौष सुदी ९ (ई० स० १८०३ की २२ दिसंबर) को इनके और ईस्ट इण्डिया कंपनीके बीच एक सन्धि हुई थी। परन्तु महाराजाने इसे मंजूर नहीं किया। इसके बाद इन्होंने कंपनीके विरुद्ध जसवन्तराव होल्करको सहायता दी। इससे ई० स० १८०४ में यह सन्धि रद हो गई। इस संधि करनेके समय अँगरेजोंके और मराठोंके बीच युद्ध हो रहा था। इसीसे इसमें किसी प्रकारके करके देनेका बंधन नहीं था। परन्तु इसके बाद जो संधि हुई उसमें यह बधन लगा दिया गया।

(२) ख्यातोंमें लिखा है कि गद्दी पर बैठते समय महाराजा मानसिंहजीने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि वास्तवमें स्वर्गवासी महाराजा भीमसिंहजीकी रानी गर्भवती है तो उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होनेपर मैं राज्य उसे दे दूँगा। परन्तु उक्त रानीको तब तक मेरी रक्षामें रहना होगा, जिससे इस विषयमें किसी प्रकारकी चालाकी न की जाय। यह बात रानीके पक्षवालोंको मंजूर न हुई; क्योंकि उनको यह भय था कि कहीं रानी पर कोई संकट न आ जाय। दोनों तरफकी शङ्काओंके मूलमें बहुत कुछ सचाई थी। धीरे धीरे इन्हीं शङ्काओंके कारण दोनों पक्षोंमें शत्रुता बढ़ गई और उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। इसका हाल उस समयके इतिहाससे प्रकट होता है।

आदि सरदारोंने मिलकर उस बालकको मय उसकी माताके खेतड़ी (जयपुर राज्य) की तरफ़ भेज दिया।

महाराजा मानसिंहजीने गद्दी पर बैठते ही अपने शत्रुओंसे बदला लेकर जिन्होंने संकटके समय इनकी सहायता की थी उनको जागीरें आदि दीं। इसके बाद इन्होंने सीरोही पर फ़ौज भेजी, क्योंकि वहाँके रावने संकटके समय इनके कुटुम्बको सीरोहीमें रखनेसे इन्कार कर दिया था। कुछ ही समयमें सीरोही पर इनका अधिकार हो गया। घाणेराव भी महाराजके कब्जेमें आगया।

वि० सं० १८६१[1] में धौंकलसिंहकी तरफसे शेखावत राजपूतोंने डीडवानापर आक्रमण किया। पर जोधपुरकी फौजने उन्हें भगा दिया।

उदयपुरके महाराणा भीमसिंहजीकी कन्या कृष्णकुमारीका विवाह जोधपुरके महाराजा भीमसिंहजीके साथ होना निश्चित हुआ था। परन्तु उनके स्वर्गवासी हो जानेपर राणाजीने उसका विवाह जयपुरमहाराज जगतसिंहजीके साथ करना चाहा। जब यह समाचार मानसिंहजीको मिला तब उन्होंने जयपुरमहाराज जगतसिंहजीको लिखा कि वे इस सम्बन्धको अङ्गीकार न करें; क्यों कि उस कन्याका वाग्दान जोधपुरके राजघरानेमें हो चुका है। अतः यदि भीमसिंहजी विवाहके पूर्व ही स्वर्गको सिधार गए तो भी उनके उत्तराधिकारीकी हैसियतसे उक्त कन्यासे विवाह करनेका पहला हक उन्हीं (महाराजा मानसिंहजी)का है।

बहुत कुछ समझानेपर भी जब जयपुरनरेशने इसपर ध्यान नहीं दिया तब महाराजा मानसिंहजीने वि० सं० १८६२ के माघमें जयपुर पर चढ़ाई की। जिस समय ये मेड़तेके पास पहुँचे उस समय इनको

(१) इस वर्ष इन्होंने होल्करको भी सहायता दी थी। इससे गवर्नमेंट नाराज़ हो गई।

पता लगा कि उदयपुरसे कृष्णकुमारीके विवाहका टीका जयपुर जा रहा है । यह समाचार पाते ही महाराजने अपनी सेनाका कुछ भाग उसे रोकनेके लिए भेज दिया । इससे लाचार हो टीकेवालोंको उदयपुर लौट जाना पड़ा ।

इसी बीच जोधपुरमहाराजने जसवन्तराव होल्करको भी अपनी सहायताके लिए बुलवा लिया था । जब राठोड़ोंकी और मराठोंकी सेनाएँ अजमेरमें इकट्ठी हो गईं तब लाचार होकर जयपुरमहाराजको पुष्करमें जोधपुरमहाराजसे सुलह करनी पड़ी । जोधपुरके इन्द्रराजजी सिंघी और जयपुरके दीवान रतनलाल (रामचन्द्र) के उद्योगसे होल्करने बीचमें पड़ जगतसिंहजीकी बहनसे मानसिंहजीका और मानसिंहजीकी कन्यासे जगतसिंहजीका विवाह निश्चित करवा दिया । वि० सं० १८६३ के आश्विनमासमें महाराज जोधपुर लौट आए । परन्तु कुछ ही दिनोंमें लोगोंके कहने सुननेसे यह मित्रता भंग हो गई । इसपर जयपुरमहाराजने धौंकलसिंहजीकी सहायताके बहानेसे मारवाड़पर हमला करनेकी तैयारी की । जब सब प्रबन्ध ठीक हो गया तब जगतसिंहजीने एक बड़ी सेना लेकर मारवाड़ पर चढ़ाई कर दी । मार्गमें खंडेलेमें बीकानेरमहाराज सूरतसिंहजी, धौकलसिंहजी और मारवाड़के अनेक सरदार भी इनसे आ मिले । पिंडारी वीर अमीरखाँ भी मय अपनी फौजके जयपुरकी सेनाके साथ था ।

(१) ख्यातों में लिखा है कि उस समय धौंकलसिंहजी खेतड़ी (जयपुर-राज्य) में थे और पौकरन ठाकुर सवाईसिंहजी आदि कई सरदारोंने इनका पक्ष लिया था । अतः जब जयपुरमहाराज जगतसिंहजीको जोधपुरनरेश महाराजा मानसिंहजीसे नाराज देखा तब अपना पक्ष प्रबल करनेके लिए उन्हें भी अपनी तरफ मिला लिया । जगतसिंहजीको भी अपने साथकी दुश्मनीका बदला लेनेका इससे अच्छा बहाना नहीं मिल सकता था । अतः उन्होंने इनसे मिल जोधपुर पर चढ़ाई कर दी ।

जैसे ही यह समाचार महाराजा मानसिंहजीको मिला वैसे ही वे भी अपनी सेनासहित मेड़ता नामक स्थानमें पहुँचे और मोरचा बाँध बैठ गए। साथ ही इन्होंने मराठा सरदार जसवन्तराव होल्करको भी अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। जिस समय अङ्गरेजोंके और होल्करके बीच युद्ध छिड़ा था उस समय महाराजने उसके कुटुम्बकी रक्षा की थी। इस पूर्वकृत उपकारका स्मरण कर होल्कर भी तत्काल इनकी सहायताके लिए रवाना हुआ। परन्तु उसके अजमेरके पास पहुँचने पर जयपुरमहाराजने उसे एक बड़ी रकम रिश्वतमें देकर वापिस लोटा दिया।

इसके बाद गींगोलीकी घाटीके पास जयपुर और बीकानेरकी सम्मिलित सेनासे जोधपुरकी फौजका सामना हुआ। युद्धके समय बहुतसे सरदार महाराजा मानसिंहजीकी सेनासे निकल जयपुरकी सेनामें धौंकलसिंहजीके पास चले गए[1]। इससे जोधपुरकी सेना कमज़ोर पड़ गई। अन्तमें विजयका लक्षण न देख कुछ सरदार महाराजा मानसिंहजीको वहाँसे जबरदस्ती जोधपुर लौटा लाए। जयपुरवालोंने विजयी हो मारोठ, मेड़ता, परबतसर, नागोर, पाली और सोजत आदि स्थानोंपर अधिकार कर जोधपुरको घेर लिया। होते होते वि० सं० १८६३ की चैत्र कृष्णा ७ को जोधपुरका शहर भी शत्रुओंके हाथ चला गया। केवल किलेहीमें महाराजाका अधिकार रह गया।

---

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि उस समय कुचामण, आहोर, नीमाज आदिके ठाकुरों, महन्त मोतीपुरी वैकुंठी आदि महापुरुषोंके बेड़ों और हिन्दालखाँके बेड़ेको छोड़कर बाकी सब सरदार आदि धौकलसिंहजीकी तरफ जा मिले थे। इस पर युद्ध करना हानिकारक जान कुचामण, आहोर और नीमाज आदिके सरदार तो महाराजा मानसिंहजीको लेकर जोधपुरकी तरफ रवाना हुए और महापुरुषोंके और हिन्दालखांके बेड़ोंने शत्रुका मुकाबला कर उन्हें अपने महाराजाका पीछा करनेसे रोक दिया।

यह देख सिंघी इन्दराजने, भंडारी गंगाराम और अन्य कुछ सरदारोंने महाराजसे अर्ज की कि यदि हम लोगोंको किलेसे बाहर निकलनेकी आज्ञा दी जाय तो हम लोग शत्रुके पराजयका कुछ उद्योग करें। मानसिंहजीने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें गुप्त रूपसे किलेके बाहर भेज दिया।

ये लोग बाहर निकल मेड़तेकी तरफ चले गए और वहाँपर सेना इकट्ठी करनेका उपाय करने लगे। इन्होंने दौलतराव सिंधियाके पास भी सहायताके लिए आदमी भेजे। इसी बीच जयपुरमहाराजके और अमीरखाँके बीच कुछ झगड़ा हो गया। इस पर जगतसिंहजीने उसकी तनख्वाह रोक दी। अमीरखाँ क्रुद्ध होकर मेड़तेकी तरफ चला गया। सिंघी इन्दराज और कुचामणके ठाकुर शिवनाथसिंहजीने उसे एक लाख तीस हजार रुपए देकर अपनी तरफ मिला लिया। यह देख जयपुरवालोंने उसे फिर अपनी तरफ ले आनेकी बहुत कुछ कोशिश की परन्तु उसका कुछ फल न हुआ।

---

(१) सिंघी इन्दराज पहले फौजका बखशी (अफसर) था। परन्तु मानसिंहजीने किसी कारणसे नाराज होकर उसे कैद कर दिया था। कहते हैं कि जिस समय इसको किलेसे बाहर भेजा उस समय महाराजने उसकी एवजमें उसके पुत्रकी देखभालके लिए पहरा बिठा दिया था कि वह (इन्दराज) शत्रुओंसे न मिल जाय।

(२) किसी किसी ख्यातमें लिखा है कि वे जयपुरमहाराजसे आज्ञा लेकर बाहर निकले थे। सम्भव है जयपुरमहाराजने समझा हो कि किलेसे जितने आदमी बाहर आ जायँ अच्छा है। फिर उनको यह भी आशा हुई होगी कि शायद ये लोग बाहर आकर हमसे मिल जायँ और अन्दरका भेद बतला दें। इसीसे उन्होंने उनको बाहर आने दिया होगा।

इसी बीच बापूजी सिंधिया और जान बुतीसी एक बड़ा मराठोंकी सेना लेकर जोधपुरकी सहायताको चले । परन्तु जयपुरवालोंने इनको भी रिश्वत देकर लौटा दिया ।

इसके बाद सिंधी इंदराज और शिवनाथसिंह आदिने अमीरखाँको साथ लेकर जयपुर पर आक्रमण किया । जब इसकी सूचना जयपुर-महाराजको मिली तब उन्होने राय शिवलालकी अधीनतामें एक बड़ी सेना उनके मुकाबलेको भेजी । इसीके साथ जोधपुरकी लूटका सामान भी भेजा गया था । वैसे तो दोनों सेनाओंके बीच मार्गमे कई युद्ध हुए; परन्तु टोंकके पास फागी नामक स्थानपर अमीरखाँने जयपुरकी सेनाको बुरी तरहसे हराकर उसका सारा सामान लूट लिया । जयपुरकी सेनाका सेनापति शिवनाथ भागकर जयपुरमहाराजके पास जोधपुर चला गया । इस युद्धमें कुचामण, आहोर और नीमाजके ठाकुर भी अमीरखाँके साथ थे ।

जोधपुरवालोंकी सेनाने जयपुर पहुँच उसे लूटना शुरू किया । जब यह खबर जगतसिंहजीको मिली तब वि० सं० १८६४ की भादों सुदी १३ को लाचार हो उन्हें जोधपुरका घेरा छोड़ जयपुरकी तरफ़ लौटना पड़ा । बीकानेरमहाराज सूरतसिंहजी, धौंकलसिंहजी आदि नागोर पहुँच वहीं ठहर गए ।

जब अमीरखाँ आदि लौटकर जोधपुर पहुँचे तब महाराजने उनका बड़ा आदर किया और अमीरखाँको तीन लाख रुपए नकद देकर व और भी बहुत कुछ देनेका वादा कर उसे नागोरपर अधिकार करनेको भेजा; परन्तु वहाँ पहुँचकर उसकी खुलकर युद्ध करनेकी हिम्मत न हुई ।

इसपर उसने कुरानकी शपथ खा कर पौकरन ठाकुर सवाईसिंहसे मित्रता कर ली और वि० सं० १८६५ की चैत सुदी ३ को उसे अपने

स्थानपर बुलाकर धोखेसे मार डाला[1]। यह देख महाराजा सूरतसिंहजी और धौंकलसिंहजी मय सवाईसिंहके पुत्रके भागकर बीकानेरकी तरफ चले गए।

जब अमीरखाँ इस प्रकार नागोर विजयकर वापिस आया तब महाराजा मानसिंहजीने उसे दस लाख रुपए नकद, तीस हजार रुपए सालाना आमदनीकी जागीर और सौ रुपए रोजका परवाना कर दिया।

यह घटना वि० सं० १८६५ की है।

इसी वर्ष (वि० सं० १८६५ में) अमीरखाँको साथ लेकर जोधपुरकी सेनाने बीकानेरपर चढ़ाई की। युद्ध होने पर बीकानेरवालोंकी हार हुई और सूरतसिंहजीको दो लाख रुपए नक़द देकर फलोधीका परगना भी जो उन्होंने धौंकलसिंहजीकी सहायता करनेकी एवजमें लिया था वापिस देना पड़ा।

इसके बाद मानसिंहजीने अमीरखाँको उदयपुर भेजा। उसने वहाँ पहुँच महाराणा भीमसिंहजीको अपनी कन्याको विष देकर मार डालनेके लिए विवश किया।

---

(१) अमीरखाँने मूंडवा नामक नगरमें पहुँच मानसिंहजीकी बुराई करनी शुरू की और लोगोंमें यह प्रसिद्ध कर दिया कि उन्होंने उसकी सहायताकी एवजमें जो कुछ उसे देनेका वादा किया था वह नहीं दिया। इसीसे मौका आनेपर वह उनसे इसका बदला लेगा। यह सुन पौकरन ठाकुर सवाईसिंहने उसे अपनी तरफ मिला लेनेमें कुछ हरज न समझा और उसकी प्रार्थनापर उससे मित्रता कर ली। उसने भी कुरानकी शपथ खाकर उन्हें अपनी सचाईका विश्वास दिला दिया। इसके बाद एक रोज उसने सवाईसिंहको अपने डेरेपर उत्सवमें शरीक होनेको बुलाया और उनके आजाने पर जिस शामियानेके नीचे वे बैठे थे उसकी रस्सियाँ कटवा कर उसमें आग लगवा दी। इससे पौकरनठाकुर सवाईसिंह, पालीठाकुर ज्ञानसिंह, बगड़ीठाकुर केसरीसिंह और चंडावतठाकुर बख्शीराम वहीं पर मारे गए।

जब अपने विवाहके कारण उत्पन्न हुए जयपुर और जोधपुरके राजाओंके विरोधसे अपने पितापर संकट आनेका समाचार कृष्णाको मिला तब उसने खुद ही विषपान कर इस असार संसारसे पीछा छुड़ाया।

इसके बाद जयपुर और जोधपुरके राजाओंके बीच सुलह हो गई और वि० सं० १८७० की भादों सुदी ८ और ९ को पूर्व निश्चयानुसार जगतसिंहजीकी बहनका विवाह मानसिंहजीके साथ और मानसिंहजीकी कन्याका विवाह जगतसिंहजीके साथ हो गया। इसी वर्ष आयस देवनाथजीने जोधपुर और बीकानेरके राजाओंके बीच मित्रता करवा दी। इसपर महाराजा सूरतसिंहजी जोधपुर आए। महाराजा मानसिंहजीने उनका बहुत आदरसत्कार किया।

इसी वर्ष सिंधके टालपुरा जातिके लोगोंने उमरकोट वापिस छीन लिया।

वि० सं० १८७१ में महाराजाने तीन लाख रुपए देकर अमीरखाँकी फ़ौजको जोधपुरसे विदा कर दिया। परन्तु वि० सं० १८७२ में

(१) ख्यातोंमें यह भी लिखा मिलता है कि मानसिंहजीके रिश्तेदार किशोरसिंहको गोडवाड़का परगना जागीरमें मिला था और इसका विवाह उदयपुरके राजवंशमें हुआ था। परन्तु महाराजा मानसिंहजीने गद्दीपर बैठते ही गोडवाड़पर कब्जा कर लिया था। अतः महाराणाने अमीरखाँसे कहा कि मैं तुम्हारे कहनेके अनुसार कृष्णाके मारनेका प्रबन्ध करूँगा। परन्तु इसकी एवजमें तुमको मानसिंहजीसे गोडवाड़का परगना किशोरसिंहको वापिस दिलवाना पड़ेगा। इसीके अनुसार अमीरखांने उक्त परगना किशोरसिंहको दिलवा दिया। यह भी कहते हैं कि किसी राणाने ही अपनी कन्याका विवाह किशोरसिंहसे कर गोडवाड़ दहेजमें दिया था। परन्तु मानसिंहजीने किसी कुसूरमें उक्त प्रदेश उससे छीन लिया था। इसीसे राणा भीमसिंह उनसे नाराज हो गया और उसने अपनी कन्या कृष्णाका विवाह उनके साथ करनेसे इनकार कर दिया।

अमीरखाँने मूंडवा, कुचेरा, आदि अपने जागीरके गाँवोंके अलावा मेड़ता और नागोरपर भी अधिकार कर लेनेका विचार किया।

यद्यपि महाराजने इसका विरोध नहीं किया तथापि उनके मंत्री सिंघी इन्दराजने इसमें आपत्ति की। इसपर मुहता अखैचंद आदि इन्दराजके शत्रुओंने नवाबको भड़का दिया। वि० सं० १८७३ की चैत सुदी ८ को नवाबने अपनी फौजके कुछ अफ़सरोंको किलेपर भेजा। उन्होंने वहाँ पहुँच दीवानसे व महाराजके गुरु आयस देवनाथजीसे अपनी चढ़ी हुई तनखा देनेके लिए ताकीद की। बातों ही बातोंमें झगड़ा हो गया और इन अफगान अफसरोंने इन्दराज और देवनाथजीको मार डाला। जब इस घटनाकी सूचना महाराजा मानसिंहजीको मिली और सरदारोंके शत्रुओंसे मिले होनेके कारण उन्होंने अपनेको असहाय अवस्थामें पाया तब राज्यप्रपंच छोड़ एकान्तवास ग्रहण कर लिया।

इसके बाद अमीरखाँ जोधपुर छोड़ जयपुरराज्यकी तरफ़ चला गया और वहाँ पर टोंक-रामपुरमें उसने अपना राज्य कायम किया।

वि० सं० १८७४ की वैशाख सुदी ३ (ई० स० १८१७ की २० अप्रेल) को सरदारोंने मिलकर महाराजा मानसिंहजीके पुत्र छत्रसिंहजीको युवराज बनाकर राज्यका कार्य सौप दिया और मुहता अखैचंदको उनका मंत्री बनाया।

---

(१) आयस देवनाथजीने जालोरमें महाराजा मानसिंहजीको शीघ्र ही राज्य मिलनेकी भविष्यवाणी की थी। इसकी एवजमें राज्यप्राप्तिके बाद उन्होंने इनको अपना गुरु बनाकर सब राज्यका कार्य सौंप दिया था। मंत्रीलोग इन्हींकी सलाहसे राज्यका प्रबन्ध करते थे।

(२) इसके पहले सिंघी इन्दराजके पुत्र गुलराजको मानसिंहजीने अपना दीवान बनाया था। परन्तु वि० सं० १८७४ की वैशाख वदी ३ को लोगोंने उसे कैद कर मार डाला।

छत्रसिंहजीका जन्म वि० सं० १८५९ की फाल्गुन शुक्ला ९ (ई० स० १८०३ की ३ मार्च) को हुआ था।

वि० सं० १८७४ में (ई० स० १८१८ की ६ जनवरीको) पिंडारी युद्धके प्रारम्भ हो जानेपर गवर्नर जनरल मार्किस ऑफ हेस्टिंग्जके समय ईस्ट इण्डिया कंपनीके और जोधपुर राज्यके बीच एक अहदनामा हुआ। इसके अनुसार उक्त कंपनीने जोधपुरकी रक्षाकी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली और इसकी एवजमें छत्रसिंहजीने सिंधियाको जो कर (१,०८,०००) दिया जाता था वह उक्त कंपनीको देनेका वादा किया और काम पड़ने पर राज्यकी पूरी सेनासे उसकी सहायता करनेका वचन दिया। तथा खास कंपनीके कामके लिए १५०० सवार रखना भी अङ्गीकार किया। इस अहदनामेकी एक शर्त यह भी थी कि जोधपुर महाराजा बिना कम्पनीसे पूछे किसी अन्य राजासे मैत्री नहीं कर सकते।

वि० सं० १८७४ की चैत्रवदी ४ (ई० स० १८१८ की २७ मार्च) को महाराजकुमार छत्रसिंहजीका देहान्त हो गया। परन्तु महाराजकी विरक्तिके कारण राज्यका कार्य सरदार और राजकर्मचारी मिलकर चलाने लगे। जब यह सूचना गवर्नर जनरलको मिली तब उसने मुन्शी बरकत अली और मिस्टर विल्डर्सको मानसिंहजीकी अवस्था देखनेके लिए भेजा। उन्होंने मानसिंहजीसे मिलकर गवर्नर जनरलको सूचित किया कि महाराजके विरुद्ध जितनी बातें कही जाती हैं वे सब झूठ हैं। वास्तवमें महाराजा राज्यकार्य करनेके योग्य हैं परन्तु समय देखकर वे विरक्त हो बैठे हैं।

इसपर मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्जने महाराजाको विश्वास दिलाया कि यदि आप फिर अपने राज्यका प्रबन्ध हाथमें लेंगे तो गवर्नमेंट (कम्पनी) आपके

(१) इसी संधिके द्वारा नांवा, सांभर आदि परगनों परसे नवाब अमीरखाँका दखल उठ गया।

भीतरी मामलोंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करेगी। जब इस प्रकार महाराजने पूरा प्रबन्ध कर लिया तब फिर वि० सं० १८७५ की कार्तिक सुदी ५ को करीब दो वर्ष और सात महीने बाद फिर राज्य-भार अपने हाथमें ले लिया। इसके बाद कुछ दिन तक उन्होंने ऐसी शान्तिसे कार्य किया कि शत्रुओंके दिलसे भी इनकी तरफ़की आशङ्का दूर हो गई। परन्तु वि० सं० १८७७ की वैशाख सुदी १४ को मौका पाकर महाराजाने मुहता अखैचंद और उसके चौरासी अनुयायियोंको कैद कर लिया और वि० सं० १८७७ की जेठ सुदी १४ को इनमेंसे अखैचंद आदि ८ मुखियोंको जबरदस्तीसे विषपान कराकर मार डाला। इसके बाद बाकीके बागी सरदारों आदिकी भी जागीरें जब्त कर बचे हुए दुश्मनोंसे बदला लिया और अपने शुभचिन्तक खैरख्वाह लोगोंको जागीरें व ऊँचे पद दिये।

वि० सं० १८७८ में सन्धिपत्रके अनुसार महाराजाने अपनी सेना कम्पनीके सहायतार्थ भेजी। यह सेना दूसरे वर्ष लौटकर आई। मेरवाड़ाका इलाका भी गवनमेंटने(कम्पनीने) जोधपुरकी फौजकी मददसे ही सर किया था।

वि० सं० १८८० में बागी सरदारोंने अपने वकीलोंको अजमेरमें गवर्नर जनरलके एजण्टके पास भेजा। उसने भी सब हाल सुनकर महाराजाको इस झगड़ेको शान्त करनेकी सलाह दी। इस पर महाराजाने लाचार हो कुछ सरदारोंको उनकी जागीरें लौटाकर कुछ दिनके लिए मामला ठंडा कर दिया। यह लिखा पढ़ी वि० सं० १८८० (ई० स० १८२४ की फरवरी)में हुई थी।

---

(१) मेरवाड़ेका परगना अजमेरसे ३२ मील पश्चिममें है। इसके जोधपुर-राज्यान्तर्गत प्रदेश पर ही अजमेरके तत्कालीन कमिश्नर मि० डिक्सनने नया शहर नामक नगर बसाया था जो ब्यावरके नामसे प्रसिद्ध है।

इसी वर्ष (वि० सं० १८८०की फाल्गुन सुदी ५=ई० स० १८२४ की ५ मार्चको) मेर और मीणा जातिके उपद्रवको शान्त करनेके लिए मेरवाड़के २१ गाँव–जो कि चंग और कोटकिराना परगनेमें थे और जिनपर जोधपुर महाराजाका अधिकार था–८ वर्षके लिये कम्पनीने ले लिए और उनके प्रबन्धके लिए १५,००० रुपए सालाना खर्चके भी लेने तय हुए।

वि० सं० १८९२ की कार्तिक सुदीमें (ई० स० १८३५ की २३ अक्टोबरको) और भी ७ गाँव इनमें जोड़कर फिर ९ वर्षोंके लिए यही प्रबन्ध दोहराया गया। अन्तमें वि० सं० १९०० (ई० स० १८४३) में ७ गाँव तो कम्पनीने लौटा दिये; परन्तु पहलेके २१ गाँव उसने हमेशाके लिए ही अपने अधिकारमें ले लिए।

वि० सं० १९४२ (ई० स० १८८५ की २ अगस्त) को इन २१ गाँवोंकी एवज़में कम्पनीने महाराजाको ३००० सालाना देनेका वादा किया और यह भी ठहराव हुआ कि यदि प्रबन्धका खर्च बाद देकर अधिक आमदनी होगी तो ४० रुपए सैकड़ा जोधपुर राज्यको दिया जायगा।

जिस समय अँगरेज़ोंने सिंधपर अधिकार किया और टालपुरोंसे उमरकोट छीना उस समय महाराजाने उक्त प्रदेशपर अपना पहलेका हक प्रकट किया[1]। यद्यपि कम्पनीने उनको उमरकोट तो नहीं दिया तथापि वहाँकी आमदनीके हिसाबसे १०,००० सालाना देनेका वादा किया और महाराज जो २,२३,००० रुपये सालाना करके रूपमें देते थे उसमेंसे यह रकम कम कर दी गई।

(१) यह पहले जोधपुरके अधीन था परन्तु वि० सं० १८७० में टालपुरोंने इसे पीछा छीन लिया था।

सीरोही और मारवाड़की सरहद पर भील और मीणा लोगोंका बड़ा उपद्रव था। यह देख गवर्नमेंटने मानसिंहजीको वहाँ पर ६०० सवार नियत कर उस उपद्रवको मिटानेके लिए लिखा। परन्तु उस समय भीमनाथजीके हस्तक्षेपके कारण राज्यका प्रबन्ध बिल्कुल शिथिल पड़ गया था। अतः किसीने भी इधर ध्यान नहीं दिया।

वि० सं० १८८४ में नागपुरका राजा मधुराजदेव भोंसले अँगरेजों द्वारा हराया जाकर जोधपुर पहुँचा। उस समय महाराजाने शरणागतकी रक्षा करना क्षत्रियका धर्म समझ उसे अपने पास रख लिया। इस पर गवर्नमेंटने महाराजाको उसे अपने हवाले कर देनेको लिखा। परन्तु महाराजाने लिख दिया कि आप किसी बातका विचार न करें। भोंसले चाहे आपकी निगरानीमें रहे चाहे आपके मित्रकी। इसमें कुछ विशेष अन्तर न होगा। और मै इसे किसी प्रकारकी गड़बड़ न करने दूँगा। कुछ समय बाद यहीं पर उसकी मृत्यु हो गई।

वि० सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में फिर धौंकलसिंहजीके पक्षवालोंने जयपुरमें सेना इकट्ठी कर जोधपुरपर हमला करना चाहा; परन्तु अन्तमें गवर्नमेटके दबावसे उन्हें अपना इरादा छोड़ देना पड़ा। इसपर धौंकलसिंह झज्झरकी तरफ चला गया। इसीके साथ गवर्नमेंटने मानसिंहजीको भी अन्तःकलह मिटाकर राज्यव्यवस्था ठीक करनेके लिए लिखा।

इसके बाद पोलिटिकल एजेण्टने अजमेरमें एक दरबार किया और उसमें राजपूतानाके सब रईसोंको बुलवाया। परन्तु महाराजा उसमें शरीक न हुए।

इन्होंने जबसे दुबारा राज्यका भार हाथमें लिया था तबसे ही राज्यमें नाथोंका बड़ा प्रभाव था। उन लोगोंने देशमें बड़ी गड़बड़ मचा रक्खी

थी। इससे सरदार फिर नाराज हो गए और इसीसे पौकरन ठाकुर बभूतसिंहजी आदिकी सहायता पाकर वि० सं० १८८५ में फिर एकबार धौंकलसिंहने चढ़ाईकर मारवाड़ राज्यके डीडवाना आदि प्रदेशोंपर अधिकार कर लिया। परन्तु पोलिटिकल एजेण्टके बीचमें पड़ जानेसे उसे फिर मारवाड़ छोड़ झज्झरकी तरफ़ लौट जाना पड़ा।

इसी बीच मल्लानीके जागीरदारोंने अपने वहाँ पर लूट मार शुरू कर दी थी। इस पर ४,००० रुपए साल्लाना महाराजाको देनेका वादा कर वि० सं० १८९१ (ई० स० १८३६) में पोलिटिकल एजेण्टने वहाँका प्रबन्ध अपने हाथमें ले लिया[1]।

वि० सं० १८९२ की पौष सुदी २ (ई० स० १८३५ की ७ दिसंबर) को महाराजाके और गवर्नमेंटके (कम्पनीके) बीच एक संधि हुई। इसके अनुसार महाराजाने पूर्वस्वीकृत १५०० सवारोंकी एवजमें १,१५,००० रुपए साल्लाना गवर्नमेंटको देनेका वादा किया। इसीसे कंपनीने ऐरनपुरमें जोधपुर लीजियन नामक सेना तैयार की[2]। परन्तु नाथोंके खर्चके मारे देशकी बड़ी दुरवस्था हो रही थी। इस कारण गवर्नमेंटको उपर्युक्त साल्लाना रकम भेजनेमें भी बड़ी गड़बड़ होती थी। भीमनाथजी[3]ने अपने खर्चेके लिए राज्यमें अनेक कर बढ़ा दिये थे और कई जागीरें भी जब्त कर ली थीं। इस पर फिर सरदारोंने उस

---

(१) महाराजा सरदारसिंहजी द्वितीयके समय उक्त प्रदेशका प्रबन्ध पीछा मारवाड़के अधीन किया गया।

(२) इस सेनाने गदरके समय बगावत की। अतः उसके स्थान पर ४३ वीं ऐरनपुरा रैजीमेंट स्थापन की गई।

(३) वि० सं० १८९४ में यह मर गया और लक्ष्मीनाथका राज्यमें दौर दौरा हुआ।

समयके कंपनीके एजेण्ट मि० सदरलैंडके पास अपनी शिकायतें पेश कीं। उसने भी तत्काल महाराजको राज्यप्रबन्ध ठीक कर इन अत्याचारोंको दूर करनेके लिए लिखा। परन्तु जब महाराजने इस पर ध्यान नहीं दिया तब वि० सं० १८९६ (ई० स० १८३९) की चैत्र सुदी ९ को कर्नल सदरलैंड (ए० जी० जी०) जोधपुर आए और उन्होंने सरदारोंकी जागीरें वापिस दिलवा दीं। फिर भी नाथोंका प्रबन्ध ठीक तौरसे न हुआ। इस कारण वि० सं० १८९६ की सावनसुदी १५ को कर्नल सदरलैंडने अजमेरसे मारवाड़ पर चढाई करनेका फ़रमान जारी किया और उसके बाद कुछ सेना लेकर जोधपुर पर चढ़ाई की।

राजपूतानेकी अन्य रियासतोंके वकील और मारवाड़के कुछ सरदार जिनकी जागीरें ज़ब्त हो चुकी थीं इनके साथ थे।

अन्य सरदारोंने कंपनीके एजेण्टसे साफ़ साफ़ कह दिया था कि जब तक आप महाराजको किसी प्रकारका नुकसान पहुँचानेका इरादा न कर राज्यका प्रबन्ध ठीक करनेका उद्योग करेंगे तब तक तो युद्धमें भी हम आपका साथ बराबर देते रहेंगे। परन्तु जिस समय आपका इरादा बदल जायगा उस समय हम भी आपसे बदल जायँगे।

मानसिंहजीको जब मि० सदरलैंडके इस प्रकार आनेका पता लगा तब वे बनाई[1] तक उसके सामने गए। जोधपुरमे पहुँचने पर एजेण्टने ६ महीनेके लिए महाराजसे किला खाली करवा लिया और वि० सं० १८९६ की आसोज सुदी ५ को उसपर अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद राज्यके प्रबन्धके लिए ८ सरदारों और ४ मुत्सद्दियोंकी एक सभा बनाई गई और कंपनीकी तरफ़से एक पोलिटिकल एजेण्ट जोधपुरमे रखना निश्चित हुआ। इसके अनुसार सूरसागरमें रेजीडेंसी कायम हुई

(१) यह गाँव जोधपुरसे ८ मील पूर्वमें है।

और लडलोसाहब पोलिटिकल एजेण्ट हुए। करीब ५ महीने बाद अँग-रेजी फ़ौज तो अजमेर चली गई और किला फिर महाराजको सौंप दिया गया।

मानसिंहजीने भी सब सरदारोंको अपनी जागीरोंपर वापिस भेज कर अन्तःकलहकी शान्ति की। परन्तु इस पर भी नाथोंका उपद्रव शान्त न हुआ। यह देख एजेण्टने उनके मुखियोंमेंसे श्रवणनाथको देशसे निकाल दिया। इस पर लक्ष्मीनाथ[1] स्वयं ही भाग कर बीकानेरकी तरफ चला गया। इसी प्रकार और भी बहुतसे दूसरे बड़े बड़े नाथ पकड़वाकर अजमेरकी तरफ भेज दिए गए और बहुतसे भयभीत हो खुद ही इधर उधर भाग गए।

इस घटनाके बादसे महाराजाने फिर विरक्ति ग्रहण कर ली। वि० सं० १९०० सावन सुदी ३ को वे जोधपुर छोड़ मंडोरमें जा रहे और वि० सं० १९०० की भादों सुदी ११ (ई० स० १८४३ की ५ सितंबर) की रातको वहीं पर इनका स्वर्गवास हो गया।

महाराजा मानसिंहजी बड़े समझदार, विद्वान्, गुणी और राजनीतिज्ञ थे। परन्तु सरदारोंसे अत्यधिक द्वेष और नाथों पर अत्यधिक भक्ति रखनेके कारण इनको राज्यप्रबन्धमें सफलता न हुई। इनके राज्यके ४० वर्षोंमेंसे शायद ही कोई ऐसा वर्ष गया हो कि जिसमें इन्हें चिन्ता न रही हो। आश्चर्य तो यह है कि इस प्रकार संकटोंका सामना रहने पर भी ये बराबर विद्वानोंका आदर करते थे। इसीसे इनकी सभामें कवि, गायक, योगी और पण्डित हर समय विद्यमान रहते थे। महाराजको स्वयं भी

---

(१) इसका स्थान महामन्दिर था। यह गाँव अब तक नाथोंके ही अधिकारमें है।

कविता करनेका शौक था[1]। इनके संग्रह किए हुए हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथो और बनवाए हुए चित्रोंका संग्रह अब तक जोधपुरमे विद्यमान है। इनमेंसे अनेक ग्रन्थ तो ऐसे हैं जो अबतक प्रकाशित नहीं हुए हैं। इनमें एक गुण यह भी था कि जो कोई इनके पास आता खाली हाथ वापिस न जाता। ये कहा करते थे कि जो कोई किसीके पास जाता है केवल लाभके लिए ही जाता है। अतः यदि हम उसे खाली हाथ लौटने दें तो फिर हममे और साधारण आदमीमें क्या भेद रह जायगा ?

इनके पीछे कोई पुत्र न था। केवल कन्यायें ही थीं। इनमेंसे एकका विवाह जयपुरमहाराजा और दूसरीका बूंदीमहाराजासे हुआ था। महाराजा मानसिंहजीने चारण जुगता बणसूरको लाख पसाव दिया था[2]।

३० महाराजा तख्तसिंहजी।

ये पहले ईडर राज्यमेंके अहमदनगरके स्वामी थे[3]। इनका जन्म वि० सं० १८७६ की जेठ सुदी १३ (ई० स० १८१९ की ५ जून) को हुआ था।

महाराजा मानसिंहजीके पीछे पुत्र न होनेसे रानियों और मुसाहिबों आदिकी सलाहसे भारत-गवर्नमेंट(कम्पनी) की तरफसे मि० सदरलैंडने इनको

(१) इनका बनाइ हुई 'कृष्णविलास' नामका पोथा हमने राज्यका ओरसे प्रकाशित कराई है। इसमें भागवतके दशम स्कन्धके ३२ अध्यायोंका पद्यमय अनुवाद है।

(२) लाख पसावमें पाँच हजारका जेवर अपने पहननेका, पाँच हजारका जेवर घोड़े और हाथीका, एक हाथी, कमसे कम दो घोड़े, पचीस हजारसे लेकर पचास हजार तक नकद और एक हजारसे पाँच हजार सालाना तककी आमदनीकी जागीर दी जाती थी।

(३) ये जोधपुरमहाराजा अजीतसिंहजीके वंशज करणसिंहजीके पुत्र थे।

वि० सं० १९०० की मार्गशीर्ष शुक्ला १० (ई० स० १८४३ की १ दिसंबर) को जोधपुरकी गद्दीपर बिठाया ।

इनके पुत्र महाराजकुमार जसवन्तसिंहजी भी इनके साथ जोधपुर चले आए और इनकी अहमदनगरकी जागीर ईडर राज्यमें मिला दी गई । इस अवसरपर धौंकलसिंहजीने फिर मारवाड़ राज्यपर अपना हक़ प्रकट किया । परन्तु गवर्नमेंटने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया।

महाराजा तख़तसिंहजीने राज्यपर बैठते ही सब झगड़े बखेड़े दूर कर दिये और नाथोंकी कई लाखकी जागीरें ज़ब्त कर लीं । इससे मारवाड़में फिर एक बार शान्ति हो गई ।

जिस समय गवर्नमेंटने सिंध फतह किया उस समय जोधपुरकी तरफ़से उमरकोटका दावा पेश किया गया । इस पर वि० सं० १९०४ (ई० स० १८४७) में गवर्नमेंटने उसकी एवज़में जोधपुर महाराजाको १०,००० रुपये सालाना देना तय कर दिया और राज्यसे जो गवर्नमेंटको सालाना १,०८,००० रुपये दिये जाते थे उसमेंसे उक्त रकम घटाकर सालाना केवल ९८,००० रुपये लेना मुकर्रर किया ।

इसी वर्ष शेखावत डूंगजी और जवारजी आगरेके किलेसे अँगरेज़ोंको धोखा देकर निकल भागे । उनमेंसे जब डूंगजी नागोर पहुँचा तब महाराजने गवर्नमेंटकी प्रार्थनाके अनुसार उसको पकड़वाकर गवर्नमेंटके हवाले कर दिया ।

---

(१) वि० सं० १९०० की कार्तिक सुदी ७ को ये जोधपुरके किलेमें पहुँचे थे ।

(२) महाराजा तखतसिंहजीने अहमदनगरका अधिकार भी अपने वशमें रखनेकी बहुत चेष्टा की । परन्तु सफलता न हुई और वि० सं० १९०५ (ई० स० १८४८) में अहमदनगर ईडर राज्यमें मिला दिया गया ।

वि० सं० १९१२ के बाद महाराज विवाह करनेको रीवाँ गए। मार्गमें जयपुरमहाराज रामसिंहजीने नगरसे तीन मील पश्चिम अमानी-शाहके नले तक आगे आकर इनसे मुलाकात की।

वि० सं० १९१४ में आउवा, आसोप, गूलर और नींबाजके जागीरदार महाराजासे बागी हो गए। इसपर महाराजाने सेना भेज कर उनको उनकी जागीरोंसे हटा दिया। इसी वर्षकी भादों वदी ५ को जोधपुरके किलेके बारूदखानेपर बिजली गिरी। इससे उसके साथ ही चामुंडा देवीका मन्दिर और वहाँके किलेकी दीवार भी उड़कर शहरपर जा गिरी। बहुतसे आदमी घरोंमें दबकर मर गए। इसी समय हिन्दुस्तानमें सिपाही-विद्रोह (ई० स० १८५७ का गदर) आरम्भ हुआ। पहले लिखा जा चुका है कि ऐरनपुरमें कम्पनीने अपनी फ़ौजकी छावनी डाल दी थी। यह फ़ौज जोधपुर लीजियन कहलाती थी। जिस समय यह फ़ौज सरकारसे बागी होकर देहली जाती हुई आउवे पहुँची उस समय इसने वहाँके बागी जागीरदारसे मिलकर आउवेके किलेपर अपना अधिकार कर लिया। वि० सं० १९१४ की भादो वदी १२ को इसकी सूचना जोधपुर पहुँची। इसपर महाराजने तत्काल एक सेना आउवेकी तरफ़ रवाना की। परन्तु इस सेनाको सफलता न हुई।

इसपर उधर जनरल लारैंसने नये शहरसे आउवेपर चढ़ाई की और इधर जोधपुरसे यहाँके पोलिटिकल एजेण्ट मेजर मेसन साहब उधरको रवाना हुए। परन्तु भाग्यवश ये (मेसनसाहब) विद्रोहियोंके बीच जा-पड़े और उनके हाथसे मारे गए।

उस समय और भी बहुत से अँगरेज स्त्री पुरुष जोधपुरमें महाराजाकी शरणमें आए हुए थे। सबको इन्होंने सूरसागरके बगीचेमें पोलिटिकल

---

(१) इसका खर्च जोधपुर राज्यसे दिया जाता था।

एजेण्टके पास ही ठहरा दिया था। जब महाराजाको मेसन साहबके मारे-जानेका समाचार मिला तब फिर इन्होंने आउवे पर आक्रमण करनेको एक सेना भेजी। इसने पहुँच बागियोंको आउवेसे निकाल दिया। इसके बाद जनरल राबर्टने नसीराबादसे आउवेपर चढ़ाई की। ठाकुर तो भाग गया परन्तु वहाँका किला नष्ट कर दिया गया।

इस विद्रोहके शान्त हो जानेपर लार्ड कैनिंगने महाराजाकी दी हुई सहायताकी एवज़में उन्हें जी० सी० एस० आई० की पदवीसे भूषित किया।

वि० सं० १९१५ में महाराजाने शाहबाजखांको अपना दीवान बनाया। पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल ईडन इससे नाराज़ थे। इसलिए उन्होंने इसके दीवान होनेपर बहुत कुछ आपत्ति की। परन्तु महाराजाने इसपर विशेष ध्यान नहीं दिया।

वि० स० १९१९ में जोधपुर राज्यको गोद लेनेका अधिकार मिला।

वि० स० १९२२ के करीब मि० टेलर नामका एक अवसर प्राप्त (रिटायर्ड) अँगरेज़ अधिकारी जोधपुरमें दीवानीके कामके लिए बुल-वाया गया। परन्तु लोगोंने षड्यन्त्र रचकर उसे कार्यभार ग्रहण करनेके पूर्व ही विदा करवा दिया।

वि० सं० १९२२ में गवर्नर जनरल लार्ड लारेंसने आगरेमें दर-बार किया। इसीमें महाराजाको जी० सी० एस० आई० का पदक प्रदान किया। गवर्नर जनरलका विचार राजपूतानेमें शस्त्र कानून (आर्म्स ऐक्ट) प्रचलित करनेका था। परन्तु महाराजाने अन्य रईसोंके साथ मिलकर बड़ी कुशलतासे इस विचारको रोक दिया।

इसके बाद हाजी मुहम्मदखाँको दीवानीका ओहदा मिला। उसने पुराने इन्तज़ामको बदलकर अँगरेज़ी ढँगपर नया इन्तज़ाम करना

शुरू किया । परन्तु उसके समय मुल्की और फ़ौजी कामोंपर बहुतसे मुसलमान नियत किए गए थे । इससे मारवाड़के सरदार आदि उससे नाराज़ हो गए और इसीसे वि० सं० १९२३ में पुष्करके पास निद्रित अवस्थामें वह मार डाला गया ।

इसके कुछ समय बाद कप्तान इम्पे द्वारा जोधपुर और बीकानेरकी सरहदका फैसला किया गया ।

इसी वर्ष महाराजा तख़्तसिंहजीने जोधपुर राज्यमें होकर निकलनेवाली रेलवेके लिए विना मूल्य लिये ही ज़मीन दी और उसके द्वारा मारवाड़में होकर बाहर जानेवाले मालपरकी चुंगी भी माफ़ कर दी ।

हाजी मुहम्मदखांके बाद मुंशी मरदान अलीख़ां दीवान बनाया गया । इसके समय भी सरदार लोग नाराज़ ही रहे ।

वि० सं० १८९६ में महाराजा मानसिंहजीने बागी सरदारोंको जागीरें आदि देकर शान्त करनेका जो वादा किया था वह तख़्तसिंहजीने तोड़ दिया और कई सरदारोंकी जागीरें भी जब्त कर लीं । इसपर निराश्रय हुए विद्रोही सरदार बीकानेरकी तरफ़ जा छिपे और समय समयपर मारवाड़की सरहदपर आकर लूट मार करने लगे । कुछ समय बाद जनरल लारैंसने आउवे आदिके जागीरोंका कसूर माफ़ कर दिया और वि० सं० १९२५ में महाराजासे कह सुनकर उनकी जागीरोंका कुछ हिस्सा उन्हें वापिस दिलवा दिया । इससे राज्यमें फिर शान्ति हो गई । इसके बाद राज्यके प्रबन्धके लिए एक सभा (काउंसिल) बनाई गई । उसमें निम्न लिखित पदाधिकारी नियुक्त हुए:—

(१) पहले जो बाहरका माल मारवाड़में होकर एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाता था उसपर भी चुंगी लगा करती थी ।

जोशी हंसराजजी, मेहता विजयसिंहजी, पण्डित शिवनारायणजी, मेहता हंसराजजी और सिंघी समर्थराजजी । यह प्रबन्ध ४ वर्षके लिए किया गया था ।

वि० सं० १९२५ में मारवाड़में अकाल पड़ा । इससे देशमें चारों तरफ़ हाहाकार मच गया । परन्तु महाराजा और ख़ास कर उनकी रानी जाड़ेचीजीकी तरफ़से लोगोंको भोजन देनेका बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया । इसी वर्ष गवर्नमेंटके और महाराजाके बीच एक दूसरेके राज्यके अपराधियोंको एक दूसरेको सौंप देनेके विषयमें संधि हुई और वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में इसमें कुछ संशोधन कर ब्रिटिश भारतके अपराधियोंका विचार ब्रिटिश भारतके कानूनके अनुसार होना निश्चित हुआ ।

वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में हुकमनामे (नये जागीरदारोंके गद्दीपर बैठनेके समयके कर) का कानून बनाया गया और जागीरदारोंके झगड़ोंको मिटानेके लिए एक कमेटी नियत हुई । तथा गोड़वाड़के परगनेकी एक लाख रुपयेकी आमदनी युवराज महाराजकुमार जसवन्तसिंहजीके खर्चके लिए अलग कर दी गई ।

इसी वर्ष आवागमनके सुभीतेके लिए ऐरनपुरसे पाली होती हुई बरतक एक सड़क बनानेकी आज्ञा दी गई और साथ ही जोधपुरसे पाली तककी सड़क बनानेका भी प्रबन्ध हुआ ।

वि० सं० १९२७ में गवर्नमेंटने १,२५,००० रुपये सालाना और ७,००० मन नमक देनेका वादा कर महाराजसे साँभरके नमकका वह आधा भाग जो उनके अधिकारमें था ठेकेपर ले लिया[1] । इसके साथ

---

(१) इसी प्रकारका प्रबन्ध जयपुर महाराजके साथ कर उनका साँभरका आधा भाग भी उसी वर्ष गवर्नमेंटने ले लिया ।

एक शर्त यह भी थी कि यदि सवा आठ लाख मन नमकसे अधिक नमक बेचा जायगा तो उस अधिक हिस्सेके लाभ पर २० रुपये सैकड़ा करस्वरूप राज्यको दिया जायगा। इसी वर्ष नावा और गुढ़ा नामक स्थानोंमें होनेवाली नमककी पैदावार भी गवर्नमेंटने ३,००,००० रुपये और ७,००० मन नमक सालाना देनेका वादा कर ठेकेके तौर पर ले ली। इसके साथ यह शर्त थी कि नौ लाख मनसे अधिक नमक बिकने पर उस अधिक हिस्सेके मुनाफेपर ४० रुपये सैकड़ा करस्वरूप राज्यको दिया जायगा।

इसी वर्ष लॉर्ड मेओने अजमेरमें एक दरबार किया। यद्यपि महाराजा तखतसिंहजी भी वहाँ गए थे तथापि वहाँ पर अपने दरजेके अनुसार बैठनेका प्रबन्ध न देख ये वाइसरायसे बिना मिले ही वापिस लौट आए। इस पर गवर्नमेंटने नाराज होकर इनकी सलामीकी तोपें १७[1] के स्थानमें घटाकर १५ कर दीं।

वि० सं० १९२८ में अपनी वृद्धावस्थाके कारण महाराजाने भारत गवर्नमेंटकी सम्मतिसे अपने बड़े राजकुमार जसवन्तसिंहजीको राज्यका काम सौंप दिया। उन्होंने भी प्रबन्ध हाथमें लेते ही गोड़वाड़में उपद्रव करनेवाले मीणों आदिको मारकर वहाँ पर शान्ति स्थापन की।

वि० सं० १९२९ में महाराजाके द्वितीय पुत्र जोरावरसिंहजीने राज्यका दावा कर नागोरपर अधिकार कर लिया। यद्यपि ये महाराजाके द्वितीय पुत्र थे तथापि तखतसिंहजीके जोधपुरकी गद्दीपर बैठनेके बाद सबसे पहले इन्हींका जन्म हुआ था। इसीसे ये अपनेको राज्यका असली अधिकारी बतलाते थे। बहुतसे सरदारोंने भी इनका

(१) जोधपुरमहाराजकी ये १७ तोपें वि० सं० १९२४ में महारानी विक्टोरियाने नियत की थीं।

पक्ष ग्रहण कर लिया। वि० सं० १९२९ की आषाढ़ सुदी १२ को महाराजा आबूसे लौट कर जोधपुर आए। इसके बाद मेजर इम्पीके साथ वे स्वयं नागोर पहुँचे और जोरावरसिंहजीको समझा बुझाकर अपने साथ ले आए। जिन लोगोंने जोरावरसिंहजीका साथ दिया था उनकी जागीरें छीन ली गईं और कुछ दिन तक स्वयं जोरावरसिंहजी भी अजमेरमें रक्खे गए।

इसके बाद जसवन्तसिंहजीको युवराजका पद देकर महाराजने राज्य-कार्यसे पूरी तौरसे विरक्ति ग्रहण कर ली। इसके करीब एक वर्ष बाद ही वि० सं० १९२९ की माघ सुदी १५ (ई० स० १८७३ की १२ फरवरी) को राजयक्ष्माकी बीमारीसे इनका स्वर्गवास हो गया।

महाराजा तखतसिंहजी बड़े वीर और चतुर थे। इन्हे मकान आदि बनवानेका भी बहुत शौक था। ये सब बातें होते हुए भी आप नशेका अत्यधिक सेवन करते थे, इस कारण राज्यका सारा भार मंत्रियोंके हाथमें था। महाराजा अधिकतर रनवासमें ही रहा करते थे। इसीसे मंत्रियोंको मनमानी करनेका मौका भी मिल जाता था।

महाराजने राजपूत जातिमें होनेवाले कन्यावधको रोकनेके लिए कठोर आज्ञाएँ प्रचारित की थीं और ऐसी आज्ञाओंको पत्थरोंपर खुदवा-कर मारवाड़के तमाम किलों और हकूमतोंके द्वारोंपर लगवा दिया था। इसी प्रकार जागीरदारोंके विवाह आदिमें लगनेवाली चारणों आदिकी लागें भी इन्होंने निश्चित कर दी थीं।

अजमेरमें जिस समय मेओ कालेजकी स्थापना की गई उस समय आपने उसके सहायतार्थ एक लाख रुपये प्रदान किए थे।

---

(१) महाराजाकी एक कन्याका विवाह जयपुर महाराजा रामसिंहजीसे हुआ था।

इन्होंने बाघानामक भाटको लाख पसाव भी दिया था ।

महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय) ।

ये महाराजा तख़तसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १९२९ की फाल्गुन सुदी ३ (ई० स० १८७३ की १ मार्च) को गद्दीपर बैठे[1] । इनका जन्म वि० स० १८९४ की आश्विन शुक्ला ८ (ता० ७ अक्टोबर १८३७) को हुआ था । वि० सं० १९३० के वैशाखमें आपने महकमाख़ास, अपील, दीवानी और फ़ौजदारी नामकी आदालतें कायम कीं, तथा फैजुल्लाखाँको अपना प्रधान मन्त्री बनाया ।

वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में जालोरकी तरफ़की सरहदका प्रबन्ध गवर्नमेंटने राज्यको वापिस सौंप दिया[2] ।

महाराजाको अपनी प्रजाको शिक्षित बनानेका भी पूरा खयाल था। इसीसे पहले तो जोधपुर शहरमें 'दरबार हाईस्कूल' नामक स्कूल खोला गया और इसके कुछ समय बाद अँगरेजीकी उच्च शिक्षाके लिए जसवन्तकालेजकी स्थापना हुई । इसमें बिनाफीस आदि लिये बी० ए० परीक्षा तककी पढ़ाईका प्रबन्ध किया गया और साथ ही छात्रोंको उत्साहित करनेके लिए छात्रवृत्तियाँ भी नियत की गईं ।

---

(१) जोधपुर गजेटियरमें ता० ८ मार्च सन् १८७३ लिखा है। उस रोज शायद गवर्नमेंटकी तरफ़से खिलत आदि भेट किया गया होगा ।

(२) यह प्रबन्ध उधरके सरहदी उपद्रवके कारण महाराजा तखतसिंहजीके समय वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में सीरोहीके ब्रिटिश पोलिटिकल सुपरिण्टेडेण्टके अधीन कर दिया गया था और उसकी सहायताके लिए जालोरमें जोधपुरकी सेना रक्खी गई थी। वि० स० १९३६-३७ (ई० स० १८७९-८०) में फिर उधरकी सरहदपर गड़बड़ मची । परन्तु रेवाड़ाके बागी जागीरदारके पकड़े जानेपर शान्ति हो गई ।

बालिकाओंकी शिक्षाके लिए कन्यापाठशाला (गर्ल्सस्कूल) भी खोली गई। इसी प्रकार आपने छत्तीस हजार रुपये देकर मारवाड़के विद्यार्थियोंके लिए अजमेरके मेओ कालेजमें बोर्डिंगहाऊस बनवा दिया और उक्त कालेजके लिए मकराने (संगमरमर) का पत्थर भी मुफ्त दिया।

जब आप महाराजा तखतसिंहजीकी अस्थियोंको लेकर हरिद्वार गए तब उस यात्रामें करीब चौबीस लाख[1] रुपये खर्च किए गए।

वि० सं० १९३२ में लार्ड नॉर्थब्रुक जोधपुर आए। महाराजाने सब सरदारों आदिको निमंत्रित कर बड़ा प्रदर्शन किया। इसी वर्ष सरदारों आदिकी पढ़ाईके लिए नोबल्सस्कूलकी स्थापना की गई। इसीके दूसरे वर्ष जोधपुरमे प्रिंस ऑफ वेल्सका[2] आगमन हुआ[3]। महाराजाने अतिथिके योग्य ही उनका सत्कार किया। इस अवसरपर स्वयं प्रिंस ऑफ वेल्सने महाराजको जी० सी० एस० आई० के पदकसे विभूषित किया।

१ जनवरी १८७७ (वि० सं० १९३३) मे देहली दरबारके अवसरपर महाराजा साहबकी सलामीकी तोपें बढ़ाकर १७ से १९ कर दी गईं और फिर ई० स० १८७८ (वि० सं० १९३५) में ये ही बढ़कर २१ हो गईं।

---

(१) यह रकम गवर्नमेंटसे कर्ज ली गई थी।

(२) ये ही पीछेसे बादशाह सप्तम एडवर्डके नामसे ब्रिटिश राज्यके सिंहासन पर बैठे।

(३) इसी प्रकार रूस और आस्ट्रियाके शाहजादे भी जोधपुर देखने आए थे।

आपके समय राज्यमें खर्च बहुत होनेसे जब राज्यपर बहुतसा कर्ज हो गया तब वि० सं० १९३३ के भादोंमे फैजुल्लाखाँकी एवजमें महाराजाके छोटे भ्राता किशोरसिंहजी राज्यके प्रधान मंत्री बनाए गए।

वि० सं० १९३४ में फिर मारवाड़में अकाल पड़ा। परन्तु राज्यकी तरफसे नाजका भाव ८ सेरका निश्चित हो जानेके कारण प्रजाको बहुत कुछ सुभीता हो गया।

वि० सं० १९३५ में महाराज किशोरसिंहजी तो राजकीय सेनाके कमाण्डर इन चीफ़ (सेनापति) बनाए गए और उनके स्थानपर उनके बड़े भाई महाराज प्रतापसिंहजी[1] मुसाहिब आला हुए। इनके छोटे भ्राता महाराज जालिमसिंहजी इनके एसिस्टेण्टका काम करने लगे और मुंशी हरदयालसिंहजी मुसाहिब आलाके सेक्रेटरी हुए। इन्होंने ही पहले पहल लिखित कानून आदिका प्रचारकर मारवाड़के राज्य-प्रबन्धमें बहुत कुछ उन्नति की। कुछ दिन बाद महाराज प्रतापसिंह-जीने एक काउंसिलकी स्थापना की। इससे राज्यका सारा काम महारा-जकी देखभालमें इसीके द्वारा होने लगा। (वि० स० १९४६ में इसी काउंसिलमे पोकरन ठाकुर मंगलसिंहजी[2] आदि कई सरदार भी नियुक्त किये गए।)

---

(१) ये पहले बहुधा अपने बहनोई जयपुराधीश महाराजा रामसिंहजीके पास ही रहा करते थे। इन्होंने राज्यका बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। इससे राज्यकी आमदनी भी बढ़ी और पहलेका चढा कर्जा भी उतर गया। ई० स० १८८१ के अगस्तसे ई० स० १८८२ के अक्टोबर तक १४ महीनोंको छोड़ ये बराबर मुसाहिब आलाके पद पर रहे।

(२) आप मारवाड़के प्रधान सरदार हैं। वि० सं० १९४६ से लेकर वि० सं० १९६० के करीब तक आप बराबर काउंसिलके मेम्बर रहे। इसके

वि० सं० १९३६ (ई० स० १८७९) में गवर्नमेंटने डीड-वाना, पचपदरा, फलोधी और लूनी इन चार नमककी खानोंका ठेका भी ले लिया और पिचियाक और मालकोसनीको छोड़ राज्यमेंकी सब नमककी खानें बंद कर दीं। तथा पिचियाक और मालकोसनीमें भी केवल सालाना बीस हजार मन नमक बनानेका वादा करवा लिया। इसकी एवज़मे गवर्नमेंटने राज्यको सालाना ५,१६,८०० रुपये नकद, १०,००० मन नमक मुफ्त और २,२५,००० मन नमक आठ आने मनके हिसाबसे देना किया। इसके अलावा मुनाफ़ेका आधा हिस्सा भी राज्यमें देना तय हुआ। तथा मारवाड़के जागीरदारोंको उनके नुकसानकी एवजमें १९,५९५ रुपए और दूसरे भूमिस्वामियोको ३,००,००० रुपए सालाना देना ठहरा। इस शर्तके अनुसार मारवाड़में दूसरे नमकका आना और यहाँसे राजकीय नमकका बाहर जाना बंद हो गया।

वि० सं० १९३८ मे देशमें राज्यकी तरफ़से जोधपुर बीकानेर रेल्वे बनवानेका निश्चय किया गया और इसके लिए मिस्टर होम नामक

बाद राजकीय काउंसिलके टूट जानेपर आप कन्सल्टेटिव काउंसिलके सभासद हुए। वि० सं० १९६८ में फिर काउंसिल बनी और आप फिर वि० सं० १९७३ तक इसके मेम्बर रहे। अन्तमें महाराजा सुमेरसिंहजी साहबके स्वर्गवास हो जाने पर वि० सं० १९७५ में पुनः काउंसिलकी रचना हुई। तबसे अब तक आप उसमें पी० डब्ल्यू० डी० मेंबरका कार्य करते हैं। वि० सं० १९६१ में आपको रावबहादुरका खिताब मिला और वि० सं० १९८१ में आप सी० आई० ई० बनाए गए। आपके पिता ठाकुर बभूतसिंहजी भी पहले काउंसिलके मेंबर थे और वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) में आपको भी गवर्नमेंटकी तरफसे राव बहादुरका खिताब व एक सरोपाव मिला था।

एक चतुर अँगरेज़ इंग्लैंडसे बुलाया गया। इसने बड़ी योग्यतासे मार-वाड़ और बीकानेरके राज्योंमें रेल्वेका प्रचार किया।

वि० सं० १९३९ (ई० सं० १८८२) में महाराज प्रतापसिंहजीने स्वयं जाकर जयपुरकी तरफ़की सरहदका झगड़ा मिटाया। इसी वर्ष राज्यकी सेनाने सराई जातिके मुसलमान लुटेरोंपर आक्रमण कर उन्हें इधर उधर भगा दिया।

चुंगी (सायर) के महकमेके प्रबन्धके लिए मि० हियूसन नामक अँगरेज़ अधिकारी नियुक्त किया गया। परन्तु यहाँ आनेपर शीघ्र ही उसका देहान्त हो गया। इसीके नामपर राज्यकी तरफ़से हियूसन अस्पताल बनाया गया, जहाँपर डाक्टरी तरीक़ेसे लोगोंका इलाज होने लगा। वि० सं० १९३९–४० (ई० स० १८८२–८३) में सायर (चुंगी) के नियमोंमें सुधार किया गया।

वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में लोहियानेके बागी जागीरदारसे लोहियाना छीन लिया गया और वहाँ पर महाराजाके नाम-पर जसवन्तपुरा नामक नया गाँव बसाया गया। इसी वर्ष जैसलमेरकी सरहदके पासके साँकड़ा आदि गाँवोंका प्रबन्ध कर उधरकी लूट खसोट

(१) वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में जोधपुरकी रेल्वे और बाँबे बड़ोदा एण्ड सेंट्रल इण्डिया रेल्वेके बीच एक दूसरेके माल व मुसाफिर ले जानेके विषयमें सन्धि हुई। वि० सं० १९५८ (ई० स० १९०१) में इसमें कुछ सुधार हुआ। १९४६ (ई० स० १८८९) में जोधपुर व बीकानेरकी सम्मिलित रेल्वे बनानेके नियम बने। इसके दूसरे वर्ष इसमें कुछ फेरफार किया गया। वि० सं० १९५२ (ई० स० १८९५) में फ़िर इस रेल्वेके और बी० बी० सी० आई० रेल्वेके बीच दूसरी संधि हुई। वि० सं० १९६०–६१ (ई० स० १९०३–४) में इसमें संशोधन किया गया।

भी मिटाई गई और अन्य स्थानोंके भी बहुतसे डकैत पकड़े गए, तथा जुरायम पेशा करनेवालोंको खेतीके काम पर लगाया गया।

वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में जागीरदारोंकी जुडीशल पावर (न्याय करनेके अधिकार) के नियम तय हुए। इसके बाद महाराजा कलकत्ते गये। वहाँ पर आपने लार्ड रिपनसे और (नवागत) लार्ड डफरिनसे मुलाकात की। इस यात्रामें आप किशनगढ़ और अलवरमें भी एक एक दिन ठहरे थे। इसके बाद आप उदयपुर गये।

गाँवोंकी सरहदके झगड़ोंको मिटानेके लिए महाराजने केपटिन लाक नामक एक अँगरेज अफ़सरको गवर्नमेंटसे माँगकर बुलवाया। इसने तमाम मारवाड़की सर्वे (नाप) करके बीगोड़ी बाँध दी, अर्थात् अब तक जो लगान नाजके रूपमें लिया जाता था वह सिक्केके रूपमें निश्चित कर दिया।

धीरे धीरे राज्यके प्रबन्धमें सुधार हो जानेके कारण वि० सं० १९४८ के करीब गवर्नमेंटने फौजदारी कामके सिवाय मल्लानी परगनेका सारा प्रबन्ध राज्यको सौंप दिया। केवल फौजदारी इख्तियारात रेजीडेंटके अधीन रह गए।

वि० सं० १९४२ में लार्ड डफ़रिन जोधपुर आए। इसके अगले वर्ष महाराजा जसवन्तसिंहजी पूना गए। वहाँ पर आपने ड्यूक आफ़ कनाटके स्वागतमें भाग लिया।

उपर्युक्त सेटलमेंट वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में समाप्त हुआ। इससे राज्यकी सीमा भी निर्धारित हो गई।

इसी वर्ष साँभरमें आठ लाख मनसे अधिक नमकके बिकने पर गवर्नमेंटने जो २० रुपए सैकड़ा मुनाफेका भाग राज्यको देना निश्चित

किया था उसके हिस्सेका भी फैसला हो गया । १ रुपएमें १० आने जोधपुरके और ६ आने जयपुरके ठहरे ।

इसके बाद महाराजाकी आज्ञासे रेज़ीडेंट मि० पाउलट और महाराज प्रतापसिंहजीने मारवाड़के सारे शासनप्रबन्धका नवीन ढंग पर संशोधन किया । राज्यमें नए क़ायदे कानून प्रचलित किए गए । बड़े बड़े सरदारोंको अपनी जागीरोंमें दीवानी और फ़ौजदारीके इख्तियारात दिए गए । जंगलात और पबलिक वर्क्स (सड़कें, मकान आदि बनवाने) के महकमे कायम हुए । शराब, अफ़ीम आदि नशीली चीज़ोंके बेचनेके लिए लाइसेस (परवाने) का तरीक़ा जारी हुआ । नगरवासियोंकी स्वास्थ्यरक्षाके लिए म्यूनिसिपालिटी कायम की गई । नाबालिग जागीरदारोंकी देखभालके लिए एक अलग महकमा बनाया गया । लोगोंके जानमालकी रक्षाके लिए पुलिसका प्रबन्ध हुआ । युद्ध आदिके समय गवर्नमेंटकी सहायताके लिए इम्पीरियल सर्विस कोर (सरदार-रिसाला) के नामसे दो रिसाले तैयार किए गए।[1] छापेखानेकी उन्नति हुई । डाकखानोंका (वि० सं० १९४१=ई० स० १८८४ में) प्रचार हुआ । तारघर बनाया गया । मारवाड़के भीषण जलकष्टको दूर करनेके लिए जगह जगह कूँए, तालाव और बाँध बनवाए गए । कहाँ तक कहें, सुयोग्य राजा और प्रवीण मंत्रीकी अध्यक्षतामें कुछ ही दिनोंमें मारवाड़ औरसे और हो गई ।

---

(१) वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में ६०० सवारोंका पहला रिसाला और वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९१) में दूसरा रिसाला बना।

(२) वि० सं० १९४९ में महाराजा जसवन्तसिंहजी बीकानेर, अलवर व जयपुर गये ।

परन्तु खेदके साथ लिखना पड़ता है कि वि० सं० १९५२ की कार्तिक वदी ८ (ई० स० १८९५ की ११ अक्टोबर) को महाराजा जसवन्तसिंहजीका स्वर्गवास हो गया[1]।

महाराजा जसवन्तसिंहजी बड़े दानी, सरलस्वभाव और बुद्धिमान थे। उदयपुरसे जो पुराना विरोध चला आता था, उसे दूर कर इन्होंने दोनों राज्योंमे नए सिरेसे मित्रता कायम की[4]। इसीके फलस्वरूप महाराणा फतेहसिंहजीने अपनी कन्याका विवाह महाराजकुमार सरदारसिंहजीके साथ करना निश्चित किया[1]। महाराजा जसवन्तसिंहजीको कविता और कलाकौशलसे भी बड़ा प्रेम था।

महाराजाके समय उनके सभासद और राज्यकवि बारहट मुरारिदानने 'यशवन्तयशोभूषण' नामक अलङ्कारका ग्रन्थ बनाया। इसपर महाराजाने उन्हें कविराजाकी उपाधि और लाख पसाव दिया।

वि० सं० १९३५ में इस इतिहासके लेखकके पिता (पण्डित मुकुन्दमुरारि रेउ) ने पहले पहल महाराजाके दर्शन किये। उस समय उन्होंने अपना बनाया महादेवका एक चित्र श्रीमान्को भेट किया।

---

(३) इस अवसर पर बूंदी, किशनगढ़, खेनडी, सीकर, कोटा, बीकानेर उदयपुर, जयपुर, धौलपुर, जैसलमेर आदिके राजा लोग आए थे। बड़ोदाके गायकवाड़ने अपनी एवजमें अपने चाचाको भेजा था।

(४) इस पर पहले तो उदयपुरमहाराणा सज्जनसिंहजी जोधपुर आए और बादमें महाराजा साहब उदयपुर गए।

(१) महाराजकुमार सरदारसिंहजीका पहला विवाह वि० सं० १९४९ में बूंदीके महाराव राजा रामसिंहजीकी कन्यासे हुआ था। इस अवसरपर बीकानेर, रतलाम, अलवर, नरसिंहगढ़, पटियाला, धौलपुर, सीरोही, खेतड़ी, झाबुवा और टोंकके नरेश निमंत्रित होकर आए थे। तथा काश्मीरनरेशने अपने भाईको और जैसलमेर रावलजीने अपने पिताको प्रतिनिधि बनाकर भेजा था।

महाराजने उसकी चित्रणकलाको बहुत ही पसन्द किया, और उस दिनसे जब कभी वे श्रीमान्के दर्शनार्थ उपस्थित होते थे तब ही आप उनका बड़ा आदर सत्कार करते थे ।

महाराजा जसवन्तसिंहजीको व्यायामका भी बड़ा शौक़ था । इसीसे आपने अपने यहाँ बड़े बड़े नामी पहलवानोंको नियत कर रक्खा था । आपकी सज्जनताके कारण आपके समय अनेक गण्य मान्य व्यक्ति आपसे मिलने और जोधपुर देखने आया करते थे । उनमेंसे कुछ आनेवालोंके नाम नीचे दिए जाते हैं:—

महाराजा माइसोर[1], महाराजा अलवर[2], लॉर्ड रे, प्रिंस एलबर्ट[4] विक्टर, लॉर्ड लैन्सडाउन[3], ग्राड ड्यूक जारविच ऑफ़ रशियाँ[5], गायकवाड़ बड़ौदा, महाराणा उदयपुर[6], महाराव कोटा, महाराजा कोल्हापुर, महाराजा बूंदी[8] आर्च ड्यूक ऑफ ऑस्ट्रियाँ[10], लार्ड राबर्ट, बॉम्बे गवर्नर, महाराजा इन्दौर[11], महाराव कोटा[12] और महारावल जैसलमेर[13] ।

महाराजा सरदारसिंहजी ।

ये महाराजा जसवन्तसिंहजीके पुत्र थे और उनके स्वर्गवास होनेपर वि० सं० १९५२ की कार्तिक सुदी ७ (ई० स० १८९५ की २४ अक्टोबर) को गद्दी पर बैठे । इनका जन्म वि० सं० १९३६ की माघ सुदी १ (ई० स० १८८० की ११ फरवरी) को हुआ

(१) ई० स० १८८८ की फरवरीमे। (२) ई० स० १८८८ की जुलाईमें। (३) ई० स० १८९० के नवंबरमें। (४) ई० स० १८९१ की जनवरीमें। (५) ई० स० १८९१ के अगस्तमें। (६) ई० स० १८९२ के सितबरमें। (७) ई० स० १८९२ के अक्टूबरमें। (८) ई० स० १८९२ के नवंबरमें। (९) ई० स० १८९२ के नवबरमें। (१०) ई० स० १८९३ में। (११) ई० स० १८९४ की जनवरीमे। (१२) ई० स० १८९४की जुलाईमें। (१३) ई० स० १८९४ के नवंबरमें।

था। राज्यप्राप्तिके समय इनकी अवस्था केवल १६ वर्षकी थी, इसलिए राज्यका प्रबन्ध करनेके लिए महाराज प्रतापसिंहजीकी अध्यक्षतामें एक 'रीजैन्सी काउंसिल' की स्थापना की गई।

वि० सं० १९५४ में महाराजा सरदारसिंहजी जयपुर और रतलाम गए। दो वर्ष बाद १८ वर्षकी अवस्था होनेपर वि० सं० १९५४ की फाल्गुन वदी १३ (ई० स० १८९८ की १८ फ़रवरी) को राज्यका कार्य महाराजाको सौंप दिया गया।

वि० सं० १९५३ में[1] लार्ड एलगिन जोधपुर आए। उस समय महाराजाने स्त्रियोंकी डाक्टरी ढंगकी चिकित्साके लिए अपने स्वर्गवासी पिताके नामपर 'जसवन्त फीमेल अस्पताल'की और राजपूत बालकोंकी शिक्षाके लिए 'राजपूत एलगिन स्कूल'की स्थापना की।

वि० सं० १८५४ में[2] तिराहकी चढ़ाईके समय महाराजाने अपना सरदार रिसाला गवर्नमेण्टकी सहायताके लिए भेजा। इसने हिन्दुस्तानकी उत्तर-पश्चिमी सरहदपर बड़ी नामवरीके साथ अपना काम किया। इसके दो वर्ष बाद दक्षिण आफ्रिकाके युद्धके समय यह रिसाला मथुरा भेजा गया। इसीके दूसरे वर्ष वि० स० १९५७ (ई० स० १९००) में वहींसे यह बक्सर विद्रोहके समय चीन पहुँचा। वहाँपर भी इसने बड़ी वीरता दिखलाई। इसपर अगले वर्ष गवर्नमेण्टने चीनकी ४ तोपें महाराजाको भेट कीं।

वि० सं० १९५५ (ई० स० १८९८) में गवर्नमेण्टने मल्लानी-के फौजदारी इख्तियारात भी राज्यको सौंप दिए। उस समय पंडित

(१) इस वर्ष बीकानेर, जैसलमेर और खेतड़ीके राजा लोग भी जोधपुर आए थे। (२) इस वर्ष धौलपुर और इन्दौरके महाराजा जोधपुर आए और जोधपुरमहाराजा किशनगढ़ गए। (३) इस वर्ष महाराजा बूंदी और बीकानेर गए, तथा बीकानेर-नरेश जोधपुर आए।

माधवप्रसादजी उक्त प्रदेशके सुप्रिंटेंडेंट थे और उन्होंने इस कार्यमें बड़ा उद्योग किया था।[1]

वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) में गवर्नमेण्टके और महाराजा सरदारसिंहजीके बीच एक संधि हुई। उसके अनुसार मारवाड़से बाहर युद्धार्थ जानेपर राजकीय रिसालेके संचालनका भार गवर्नमेण्टको सौंप देना निश्चित हुआ।[2] इसी वर्ष मारवाड़में भीषण अकाल पड़ा। महाराजाने अपनी प्यारी प्रजाके प्राणोंकी रक्षाके लिए करीब ३६ लाख रुपए खर्च किए। इसी वर्ष रजिस्ट्रीका महकमा बनाया गया। इसके बाद ही वि० सं० १९५७ मे देशमें मारवाड़के चाँदीके 'विजैशाही सिक्के' के बदले गवर्नमेण्टका चाँदीका सिक्का चलाया गया।[3]

---

(१) उस समयके रेज़िडेंट ए० मार्टिण्डेलने आपके विषयमें लिखा है:—
"It is chiefly due to his assistance that the Criminal arrears in Mallani have been cleard off during the last year, thus enabling me to recommend to the Government the complete restoration of the Mallani tract to Jodhpur." इन्होंने पहले कुछ रोज राज्यकी तरफसे रेजीडेंसीके वकीलका कार्य किया और वि० स० १९५१ (ई० स० १८९४) में महाराजा जसवन्तसिंहजी साहबने प्रसन्न होकर इनको राजकीय काउंसिलका मेंबर बना दिया।

(२) पहले पहल वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में गवर्नमेण्टकी सहायताके लिए ६०० सवारोंका एक रिसाला बनाया गया था। उसके बाद इसके सवारोंकी संख्यामें वृद्धि करके दो रिसाले कर दिये गए।

(३) इसके पहले जोधपुर, पाली, सोजत (नागौर और मेड़ता) में राज्यकी टकसाल थी। नागौर और मेड़तामें तो पहलेसे ही सिक्का बनाना बंद कर दिया गया था, परन्तु इस वर्षसे केवल जोधपुरमें सोने व ताँबेका सिक्का ही बनने लगा। (इनके अलावा एक टकसाल जोधपुर महाराजाकी आज्ञासे कुचामन नामक स्थानमें भी वहाँके जागीरदारने खोल रक्खी थी। उसमें एक तीसंदा नामक चाँदीका सिक्का बनाया जाता था।)

इनके समय रेलका भी खूब विस्तार हुआ; जो बढ़कर पश्चिममें सिंध, उत्तरमें भटिंडा और पूर्व पश्चिममें हाँसी हिसार तक पहुँच गया[1]। नगरमें गिरदीकोट नामक स्थानमें एक 'घण्टा घर' बनवाकर[2] उसके चारों तरफ़ 'सरदार मारकैट' नामका नया बाज़ार बनवाया गया। गरीब परदानशीन औरतों आदिकी सहायताके लिए फंड खोला गया। घाची, तेली, कुम्हार, आदि नीची जातियोंपर जो कर लगता था वह उठा दिया गया। इसी वर्ष महाराजाने 'जोधपुर बीकानेर रेल्वे' की अधिकृत भूमिका प्रबन्ध अलग कर दिया[3]।

महाराजाने लंका, इंग्लैंड, फ्रांस, स्विटजरलैंड और आस्ट्रिया तककी यात्रा की थी[4]। वि० सं० १९५८ में राजपूतानाके राजाओंमें पहले पहल आपने ही लंदनमे बादशाह एडवर्ड सप्तमसे मुलाकात की। वहाँसे लौटनेपर करीब पौने दो वर्ष तक आप देहरादूनमें रहकर कैडैटकोरमे शिक्षा पाते रहे। आपको पोलोका भी बड़ा शौक़ था और उस समय जोधपुरके खिलाड़ियोंने कई बार इसमें नामवरी प्राप्त की थी।

---

(१) वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) में जोधपुर और बीकानेर राज्यने मिलकर बालोतरासे हैदराबाद तक रेल बनानेका निश्चय किया। वि० स० १९६१ (ई० स० १९०४)में जोधपुर बीकानेर रेल्वेके और बी० बी० एन्ड सी० आई० आर० के बीच मारवाड़ जकशनपर सम्मिलित काम करनेके बाबत संधि हुई।

(२) यह पहले महाराजा विजयसिंहजीकी पासवान गुलाबरायने बनवाया था।

(३) इसी वर्ष महारानी विक्टोरियाका स्वर्गवास हुआ और (२८ जनवरी सन् १९०१ को) बादशाह सप्तम एडवर्ड गद्दीपर बैठे।

(४) इस यात्रामें आप आष्ट्रिया और इग्लैंडके बादशाहोंसे मिले। उन्होंने आपका बड़ा आदर सत्कार किया।

इसके बाद कई राजकीय और शारीरिक कारणोंसे आपको दो वर्षके लिए पचमढ़ीमें रहना पड़ा। उस समय (वि० सं० १९५९ में) इनके चाचा महाराजा प्रतापसिंहजी गवर्नमेण्टद्वारा ईडरकी गद्दीपर बिठा दिए गए थे। इस कारण राज्यकी देखभालका भार रैजिडैंट मिस्टर जैनिंग्सपर था और पंडित सुखदेवप्रसादजी मंत्रीका काम करते[1] थे। वहाँसे लौटने पर वि० सं० १९६२ में फिर एक बार महाराजाने राज्यकार्यको अपने हाथमें लिया। इसी वर्ष पुलिसका भी नवीन प्रबन्ध किया गया[2]। वि० सं० १९६० (ई० स० १९०३) में जैसलमेर और जोधपुरके बीच एक दूसरेके अपराधियोंको एक दूसरेको सौंप देनेके बाबत संधि हुई।

वि० सं० १९६५ के प्रारम्भमें (१७ अप्रेल १९०८ को) महाराजाका दूसरा विवाह उदयपुरके महाराणा फ़तेहसिंहजीकी कन्यासे हुआ[3] और आप के० सी० एस० आई० बनाए गए[4]। तथा आपने जोध-

(१) वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२ के नवंबर) में लार्ड कर्जन जोधपुर आए। इसके बाद महाराज पचमढ़ी गए और ई० स० १९०५ की २० मईको वहाँसे लौटे। आप कर्जनके देहली दरबारमें भी शरीक हुए थे।

(२) ई० स० १९०५ के नवंबरमें जोधपुर महाराजा जाते हुए लार्ड कर्ज़नसे और आते हुए लार्ड मिंटोसे मिलनेको बबई गए। इसके बाद आप रावलपिंडी जाकर प्रिंस ऑफ वेल्सके स्वागतमें शरीक हुए। इसी वर्षके दिसंबरमें जैसलमेरके रावलजी और अगले वर्षके मार्चमें नाभाके महाराज जोधपुर आए।

(३) उस समय गरमीका मौसम होनेके कारण ई० स० १९०९ की जनवरीको विवाहका उत्सव किया गया। इसमें राजपूतानाके और बाहरके अनेक राजा एकत्रित हुए थे।

(४) ई० स० १९०७ के अप्रेल और अगस्तमें किशनगढ़ और ई० स० १९०८ के मार्चमें जैसलमेरनरेश तथा जुलाईमें ईडरनरेश महाराजा प्रतापसिंहजी जोधपुर आए।

पुरमें अजायबघरकी स्थापना की। इसी वर्ष लार्ड मिंटो जोधपुर आए। महाराजाने उनका बड़ा सत्कार किया। वि० सं० १९६६ में (१ जनवरी १९१० को) आपको जी० सी० एस० आई० की उपाधि मिली और राज्यका सारा भार आपने अपनी देखभालमें ले लियाँ।

परन्तु दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि वि० सं० १९६७ की की चैत्र वदी ५ (ई० स० १९११ की २० मार्च) को करीब ३१ वर्षकी अवस्थामें ही आपका स्वर्गवास हो गया।

महाराजा सरदारसिंहजी बड़े ही सरलहृदय और उदार प्रकृतिके थे। आपकी आँखोंमें लिहाज़ भी बहुत था। जिस स्थानपर स्वर्गवासी महाराजा जसवन्तसिंहजीका दाहकर्म किया गया था उस स्थानपर इन्होंने उनकी स्मृतिमें संगमर्मर (मकराने) के पत्थरका एक भवन

---

(१) ई० स० १९०९ के अप्रेलमें लार्ड किचनरके जोधपुर आनेपर अजायब घर कायम किया गया और वि० सं० १९७० में इस इतिहासके लेखकके उद्योगसे इसमें पुरातत्त्व विषय (Archaelogy) की शाखा खोली गई।

(२) इस शुभ अवसर पर महाराजाने बहुतसी वस्तुओं परको चुंगी माफ कर दी और बहुतसी वस्तुओं पर उसकी दर घटा दी।

(३) ई० स० १९१० की मईमें बादशाह एडवर्ड सप्तम मर गये और बादशाह जार्ज पंचम इंग्लैंडकी गद्दीपर बैठे। इसी वर्षकी जनवरीमें जैसलमेरनरेश जोधपुर आए और इसी वर्ष महाराजा साहबने उदयपुर, बूंदी, बीकानेर, कलकत्ता, बंबई और पूनाकी यात्रा की। अगले वर्ष फिर आप कलकत्ता, लखनऊ और मेरठ गए। वहीं पर आपको ज्वर आने लगा। इससे आप अजमेर होकर जोधपुर चले आए।

(४) इस पर उदयपुर, बीकानेर, ईडर, बूंदी, जामनगर, किशनगढ़, पालनपुर, अलवर, रतलाम, झालावाड़ आदिके राजा, शाहपुरा, और दांताके राजकुमार तथा काश्मीर, बड़ोदा, ग्वालियर, जयपुर, नाभा, झींद, आदि रियासतोंके प्रतिनिधि मातमपुरसीके लिए जोधपुर आए।

बनवाया था। यह स्थान बहुत ही सुंदर और देखने लायक है। इनके समय सरदार समंद, एडवर्ड सागर, सुमेर समंद, आदि कई नये बंध भी तैयार किये गए और शहरमें आवागमनके सुभीतेके लिए पत्थरकी सड़कें बनवाई गईं।

इनके[1] तीन पुत्र थे—सुमेरसिंहजी, उम्मेदसिंहजी और अजीतसिंहजी।

महाराजा सुमेरसिंहजी।

ये महाराजा सरदारसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके स्वर्गवास होनेपर वि० सं० १९६८ की चैत सुदी ७ (ई० स० १९११ की ५ अप्रेल) को गद्दी पर[2] बैठे। इनका जन्म वि० सं० १९५४ की माघ वदी ६ (ई० स० १८९८ की १४ जनवरी) को हुआ था। राज्यप्राप्तिके समय इनकी अवस्था करीब १४ वर्षकी थी, इस लिये फिर दूसरी बार राज्यप्रबन्धके लिए रीजेन्सी काउंसिलकी आवश्यकता हुई। इस अवसरपर महाराजा प्रतापसिंहजीने जोधपुर-राज्यके प्रबन्धके लिए ईडरका राज्य अपने गोद लिए हुए पुत्र महाराजा दौलतसिंहजीको सौंपकर जेठके महीनेमे इस रीजैंसी काउंसिलका अध्यक्ष पद ग्रहण किया।

राज्यपर बैठनेके बाद ही महाराजा सुमेरसिंहजी दो वर्षके लिए इंग्लैंड भेज दिये गए। वहीं पर आपकी शिक्षाका प्रबन्ध किया गया[3]।

---

(१) महाराजा साहबके दो कन्याएँ भी थीं। बड़ी कन्याका विवाह जयपुरनरेश महाराजा मानसिंहजीसे और छोटीका रीवां-नरेश महाराजा गुलाबसिंहजीसे किया गया है।

(२) उस समय बूंदी और किशनगढ़के नरेश जोधपुरमें ही थे।

(३) ई० स० १९११ की २२ जूनको बादशाह पंचमजार्जके राज्यतिलकका उत्सव था। अतः महाराजा प्रतापसिंहजी भी इनके साथ ही इंग्लैंड गए थे। बादशाहने इन्हें जोधपुरमें रीजैंट रहें तब तकके लिए महाराजा बहादुरका खिताब और १८ तोपोंकी सलामीकी इज्जत बख्शी।

कुछ ही दिन बाद राज्यमें बहुतसे उलट फेर किए गए और राज्य-प्रबन्धका नया ढंग चलाया गया। चीफ़ कोर्टकी स्थापना कर राज्यकी तरफ़से वकीलोंकी परीक्षाएँ नियत की गईं। नगरमें बिजलीकी रोशनीके प्रबन्धके लिए एक बड़ा भारी कारखाना खोला गया।

वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११ के दिसंबर) में बादशाहने देहलीमे तिलकोत्सव किया। उस अवसरपर जोधपुरमहाराजा भी उसमे भाग लेनेको इंग्लैंडसे यहाँ आए और इसके बाद फिर विद्याभ्यासके लिए वापिस वहीं लौट गए। वि० सं० १९६९ में महाराजा साहब शिक्षा समाप्तकर जोधपुर लौट आए और इसके बाद वि० सं० १९७० में लार्ड हार्डिंजका जोधपुरमे आगमन हुआ। वि० सं० १९७१ की सावन सुदी १४ (ई० स० १९१४ की ४ अगस्त) को यूरोपका महाभारत छिड़ गया। इस पर महाराजाने अपने रिसालेको युद्धमें जानेकी आज्ञा देनेके साथ ही स्वयं भी वहाँ जानेकी इच्छा प्रकट की और भारत गवर्नमेण्टकी सम्मति आ जानेपर खुद भी अपने दादा महाराजा प्रतापसिंहजीके साथ ही (ई० स० १९१४ के सितंबरमें) फ्रांसके रणक्षेत्रमें जा पहुँचे। ये करीब ९ महीने युद्धक्षेत्रमें रहे और इसके बाद (जून १९१५ में) वापिस जोधपुर आए।

(१) इसकी स्थापना ई० स० १९१२ में गई थी।

(२) इस शुभ अवसर पर जोधपुर राज्यने लोगोंका बहुतसा कर्ज़ माफ कर दिया।

(३) इसी वर्ष किशनगढ, बीकानेर, सैलाना और जैसलमेरनरेश जोधपुर आए थे।

(४) वि० सं० १९७१ की कार्तिक वदी १० (ई० स० १९१४ की १५ अक्टोबरको) महाराजा सुमेरसिंहजी गवर्नमेंटकी सेनाके आनरेरी लैफ्टिनैंट बनाए गए और ई० स० १९१५ की जनवरीमें तीसरी स्किनर्स हौर्स सेनाके आनरेरी अफसर नियत हुए। आपने तुर्की कैदियोंको रखनेके लिए सुमेरपुर गाँव गवर्नमेंटको सौंप दिया था।

इसके कुछ ही दिन बाद वि० सं० १९७२ की मार्गशीर्ष सुदी ३ (ई० स० १९१५ की ९ दिसंबर) को इनका विवाह जामनगरके जाम साहब रणजीतसिंहजीकी बहनसे हुआ[1]।

इसी वर्ष (ई० स० १९१६ की फरवरीमें) महाराजा हिन्दू यूनीवर्सिटीके प्रारम्भिक उत्सवमें शरीक होनेके लिए बनारस गए[2]। जोधपुरराज्यकी तरफसे इस विश्वविद्यालयको दो लाख रुपये नकद दिए गए और चौबीस हजार रुपये सालाना एक प्रोफेसरके वेतनके लिए देना निश्चित किया गया[3]।

वि० सं० १९७२ की फाल्गुन वदी ८ (ई० स० १९१६ की २६ फरवरी) को लार्ड हार्डिंजने जोधपुरमें आकर १९ वर्षकी अवस्था होनेपर आपको राज्यका प्रबन्ध सौंप दिया[4]। इस पर आपने

(१) वि० सं० १९७३ की आसोज सुदी ९ (ई० स० १९१६ की २० सितंबर) को आपके एक कन्या हुई।

(२) ई० स० १९१६ के मार्च और जुलाईमें जामनगर, ईडर और किशनगढ़के नरेश जोधपुर आए और इसी वर्षके मार्चमें जोधपुर महाराजा जामनगर गए। इसके बाद अक्टोबरमें फिर आप जामनगर गए और जाम साहबको साथ लेकर जोधपुर आए। इसके बाद आप उनके साथ ही देहली जाकर नृपतिमंडलमें शरीक हुए और वहाँसे बंबई होते हुए राजधानीको लौट आए। दिसंबरमें आप फिर बंबई गए। इसके बाद ई० स० १९१७ की जनवरीको नगरमें बिजलीके कारखानेका उद्घाटन किया। फरवरीमें फिर आप जामनगर गए। जूनमें महाराजा अलवर और अक्टोबरमें टोंक नवाबके पुत्र जोधपुर आए, तथा दिसंबरमें महाराजा साहब कलकत्ते गए।

(३) इस २४ हजार वार्षिकसे युनिवर्सिटीमें माइनिंग (खान) या इजीनियरिंगके प्रोफेसरका वेतन दिया जाता है।

(४) ई० स० १९१५ के अक्टोबरमें महाराजा प्रतापसिंहजी भी युद्धसे आ गए थे। अतः जबतक वे यहाँ रहे राज्यका प्रबन्ध उन्हींके अधीन रहा और

राज्यप्रबन्धके लिए रीजैंसी काउंसिलको तोड़ कर स्टेट काउंसिल बना दिया। ई० स० १९१६ की मईमें आपने जामनगर राज्यके मेहरबानजी पेस्टनजी नामक पारसी सज्जनको अपना दीवान बनाया।

वि० सं० १९७३ (ई० स० १९१६) के अक्टोबरमें प्रजाके लाभके लिए इस इतिहासके लेखकके उद्योगसे अजायबघरके साथ ही एक पब्लिक लाइब्रेरी (सार्वजनिक पुस्तकालय) भी खोली गई। ई० स० १९१८ की १ जनवरीको महाराजा साहबकी युद्धमें की हुई सेवाओंके उपलक्षमें गवर्नमेण्टने आपको के० बी० ई० की उपाधिसे भूषित किया। कुछ ही समयके बाद वि० सं० १९७४ में (ई० स० १९१८ की ३ मार्चको) मेहरबानजी पेस्टनजी वापिस जामनगर चले गए और उनके स्थानपर गौड ब्राह्मण टी० छज्जूराम मंत्री हुए। इस वर्ष जोधपुरमें प्लेगको बड़ा प्रकोप हुआ और लोग घरबार छोड़ इधर उधर चले गए। इसपर राज्यकी तरफ़से नगरके बाहर लोगोंके रहनेके लिए राज्यके मकानात खाली कर दिए गए और

जब १९१६ के अप्रेलमें वे रणक्षेत्रको लौट गए तब मेहरबानजी पेस्टनजी मुसाहिब आला बनाए गए।

(१) पहले अजायब घरका नाम इण्डस्ट्रियल म्यूजियम था। ई० स० १९१६ में गवर्नमेंटने इसे स्वीकृत अजायबघरोंकी नामावलीमें सम्मिलित किया। इसके अगले वर्ष इसका नाम बदलकर स्वर्गवासी महाराजा सरदारसिंहजीके नामपर 'सरदार म्यूजियम' कर दिया गया और इसके साथकी लाइब्रेरीका नाम आपके नामपर 'सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी' रक्खा गया।

(२) इस वर्ष (ई० स० १९१८ में) महाराजा साहबने देहली, उमरकोट, कलकत्ता, उटकमंड और पूनाकी यात्रा की।

(३) पण्डित निरंजननाथ गुर्टू हैल्थ आफीसर जोधपुरने इस अवसरपर सफाई आदिका बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था। ये बड़े सज्जन व्यक्ति हैं और लोग इन्हें बहुत चाहते हैं।

नगरमें चोरी आदिको रोकनेके लिए रिसालेको शहर भरमें गश्त लगानेकी आज्ञा दी गई। इसके साथ ही नाजकी मँहगाईको दूर करनेके लिए सस्ते भाव पर नाज बेचनेके वास्ते राज्यकी तरफ़से दूकानें खुलवा दी गई। बादमें जब नगरमें इन्फ्लुएंज़ा (एक तरहका बुखार) फैल गया, तब भी राज्यकी तरफ़से बीमारोंको दवाई पहुँचाने और उसके साथ ही गरीब रोगियोंके खानेका प्रबन्ध करनेके लिए एक कमेटी बनाई गई। इससे शीघ्र ही बीमारीकी भीषणता कम हो गई और लोगोंका शान्ति प्राप्त हुई।

वि० सं० १९७५ की वैशाख सुदी १३ (ई० स० १९१८ की २३ मई) को आपका दूसरा विवाह सोहिन्तरा (परबतसर परगना) के चौहान ठाकुरके छोटे भाईकी कन्यासे हुआ। इस पर एक बड़ा जलसा किया गया।

खेदके साथ लिखना पड़ता है कि वि० सं० १९७५ की आसोज वदी १४ (ई० स० १९१८ की ३ अक्टोबर) को २१ वर्षकी अवस्थामें ही इन्फ्लुएंजाकी बीमारीसे महाराजा सुमेरसिंहजी साहबका असमयमें स्वर्गवास हो गया। छोटी अवस्था होनेपर भी महाराजा साहब बड़े वीर, निर्भीक, प्रभावशाली, चतुर और साहसी थे। प्रजापर

(१) इस अवसरपर भी निरंजननाथ गुर्टू हैल्थ आफीसरका प्रबन्ध सराहनीय रहा। इस समय बीमारोंको औषधि, गरीबोंको भोजन और सर्वसाधारण नगरवासियोंको सस्ता नाज पहुँचानेके लिए जो कमेटी बनाई गई थी उसमें इस ग्रन्थका लेखक भी एक मेम्बर था। इस कमेटीके कार्यकी स्वयं महाराजा साहबने श्रीमुखसे सराहना की थी।

(२) ई० स० १९१८ की १६ सितंबरको आप पूनासे लौटे। मार्गमें ही आपको ज्वरने आघेरा। आपके असमयमें स्वर्गवास होनेपर जामनगर, उदयपुर, किशनगढ, आदि राज्योंके नरेश मातमपुरसीको जोधपुर आए और ग्वालियर, बूंदी, सीकर, तथा नरसिंहगढ़के राजाओंने अपने प्रतिनिधियोंको भेजा।

आपकी बड़ी कृपा रहती थी, और बालकपनसे ही इंग्लैण्डमें शिक्षा पानेके कारण आप पाश्चात्य ढंगको अधिक पसंद करते थे।

महाराजा उम्मेदसिंहजी ।

ये महाराजा सुमेरसिंहजीके छोटे भाई हैं। इसी कारण उनके स्वर्गवासके बाद वि० सं० १९७५ की आसोज सुदी ९ (ई० स० १९१८ के १४ अक्टोबर) को उनके उत्तराधिकारी हुए[1]। आपका जन्म वि० सं० १९६० की आषाढ़ सुदी १४ (ई० स० १९०३ की ८ जुलाई) को हुआ था[2]। गद्दी पर बैठते समय आपकी अवस्था १६ वर्षकी थी, इससे तीसरी वार फिर मारवाड़में रीजैंसी काउंसिलकी स्थापना हुई। महाराजा प्रतापसिंहजी जो अब तक रणक्षेत्रमें थे फिर इसके अध्यक्ष नियुक्त हुए और महाराजा उम्मेदसिंहजी मेओ कॉलेज, अजमेरमें रहकर विद्याभ्यास करने लगे।

वि० सं० १९७६ की[3] आषाढ वदी १२ (ई० स० १९१९ की २५ जून) को आपकी द्वितीय बहनका विवाह रीवांनरेश महाराजा गुलाबसिंहजीके साथ हुआ। इस अवसर पर अनेक राजा लोग जोधपुरमे एकत्रित हुए[4]। वि० सं० १९७७ की गरमीमें महाराजा साहब

(१) उस समय किशनगढ़नरेश जोधपुरमें मौजूद थे।

(२) ई० स० १९१२ में अस्वस्थताके कारण आपने वायुपरिवर्तनके लिए मिश्रकी यात्रा की। अपने स्वर्गवासी बड़े भ्राताके समय आपने एक वर्षके करीब राजकोटके राजकुमार कालेजमें भी शिक्षा पाई थी।

(३) वि० स० १९७६ की ग्रीष्म ऋतुमें आप श्रीनगर (काश्मीर) गए। वि० सं० १९७५–१९७६ में जामगनर, ईडर और रतलामके राजा जोधपुर आए।

(४) जोधपुरकी तरफसे किशनगढ़, जामनगर और जावरा तथा रीवांकी तरफसे अलवर, रतलाम, डुमराओ, तरवर, आदिके राजा और शाहपुरा, खूनबाड़ा आदिके महाराजकुमार विवाहमें सम्मिलित हुए।

उटकमंडमें रहे और बादमें (अक्टोबरके महीनेमें) कुछ दिनके लिए भरतपुर और (ई० स० १९२१ की जनवरीमें) कोटा गए[1]। इसी वर्ष गवर्नमेंटने मारवाड़ राजके भीतर महाराजाकी सलामीकी दो तोपें बढ़ाकर १९ कर दीं, तथा इसी वर्ष (ई० स० १९२१ के फरवरीमें) आप देहलीमें नृपतिमण्डलमें सम्मिलित होकर ड्यूक ऑफ कनाटसे मिले। वि० सं० १९७८ (ई० स० १९२१ के नवंबर) में प्रिंस ऑफ़ वेल्सके हिन्दुस्तानमें आनेपर आप उनके साथ बंबई, अजमेर, देहली और करांची गए। इसी वर्षकी कार्तिक सुदी ११ (ई० स० १९२१ की ११ नवंबर) को महाराजाका विवाह वर्तमान ढींकाईके ठाकुर जयसिंह-जीकी कन्यासे हुआ[2]। इसके बाद १९ नवंबरको वर्तमान प्रिंस ऑफ़ वेल्स जोधपुर आए। महाराजने उनके योग्य ही उनका आदर सत्कार किया। इसके बाद आप मेओ कालेजकी पढाई समाप्त कर जोधपुर चले आए और यहाँ पर राज्यकार्यका अभ्यास करने लगे।

जनवरी १९२२ में आपने काउंसिलमें बैठकर काम देखना शुरू किया और इसके बाद अगस्तमें कुछ महकमोंका प्रबन्ध आपके तत्त्वाव-धानमें होने लगा। इससे उन महकमोंके मेम्बर उनके संबन्धके कागजात आपके सामने पेश करने लगे। इसी वर्ष (१७ मार्च ई० १९२२ को) गवर्नमेंटने आपको के० सी० वी० ओ० की पदवीसे भूषित किया[3]।

वि० सं० १९७९ की भादों सुदी १३ (ई० स० १९२२ की ४ सितंबर) को महाराजा प्रतापसिंहजीका ७६ वर्षकी अवस्थामें

(१) इस वर्ष जोधपुरमें रीवा और रतलामके राजाओंका और (नवबर १९२० में) लार्ड चैम्सफोर्डका आगमन हुआ।

(२) इस अवसर पर रीवा और जामनगरके नरेश उत्सवमें भाग लेनेको जोधपुर आए थे।

(३) ई० स० १९२२ में महाराजा दोबार जयपुर और एकबार रीवां गए।

अचानक स्वर्गवास हो गया। इसपर रीजैन्सी काउंसिलका काम जोधपुरके रैज़िडैंट मिस्टर रेनाल्डस, आई० सी० एस० की अध्यक्षतामें होने लगा।

वि० सं० १९७९ की माघ सुदी १० (ई० स० १९२३ की २७ जनवरी) को १९ वर्ष की अवस्थामें महाराजा साहबको राज्याधिकार सौंप दिया गया। इसपर आपने राज्यप्रबन्धके लिए रीजैन्सी काउंसिलको बदलकर स्टेट काउंसिल बना दिया। अब तक वही प्रबन्ध चला आता है। महाराजा साहबको अपनी प्रजाका बहुत ख़याल है और आप हमेशा ही उसकी भलाईका काम करते रहते हैं। अभी हालहीमें आपने मारवाड़से गायों आदि पशुओंका बाहर जाना रोक कर प्रजाका बड़ा हित साधन किया है।

श्रीमान् महाराजा उम्मेदसिंहजी साहबको पोलो और शिकारका भी बड़ा शौक है। आज तक मारवाड़की पोलो टीमने अनेक स्थानोंमें विजय प्राप्त की है।

वि० सं० १९८० की द्वितीय जेठ सुदी २ (ई० स० १९२३ की १६ जून) को महाराज कुमार श्रीहनुमंतसिंहजी साहबका शुभ जन्म हुआ। ईश्वर हमारे महाराजा साहब और महाराजकुमारको चिरायु करे।

---

(१) ई० स० १९२२ के नवंबरमें महाराजा साहबने बीकानेरकी, १९२३ की फरवरीमें देहलीकी और मार्चमें अलवरकी यात्रा की।

(२) इस समय जोधपुरकी राजकीय काउन्सिलमें ४ मेम्बर हैं:—

१ महाराज फतेहसिंहजी सी० एस० आई०—होम मेंबर

२ राव बहादुर ठाकुर मंगलसिंहजी सी० आई० ई—पबलिकवर्क्स मेम्बर।

३ पण्डित सर सुखदेवप्रसादजी सी० आई० ई०—पोलिटिकल एण्ड जुडीशल मेम्बर

४ मिस्टर डी० एल० ड्रेक ब्रोकमैन आई० सी० एस०—रैविन्यु मेम्बर।

ई० स० १९१५ की ६ जनवरीको जोधपुरमें प्रिंस अर्थर ऑफ़ कनाटका आगमन हुआ।

वि० सं० १९८० की माघ कृष्णा ९ (ई० स० १८२४ की ३० जनवरीको) महाराजा साहबकी प्रथम बहनका विवाह जयपुरनरेश महाराजा मानसिंहजीके साथ बड़ी धूम धामसे हुआ। इस अवसर पर अनेक नृपतिगण जोधपुरमें एकत्रित हुए थे।

वि० सं० १९८१ की चैत वदी ११ (ई० स० १९२५ की ११ मार्च) को महाराजा साहब सपरिवार इंग्लैण्डकी यात्राको पधारे। वहाँपर सम्राट् और उनके प्रधान अधिकारियोंने आपका अच्छा स्वागत किया। आपके साथकी मारवाड़की विख्यात पोलो टीमने इंग्लैण्डमें भी अनेक खेलोंमें विजय प्राप्त कर अच्छी ख्याति प्राप्त की।

वि० सं० १९८२ की जेठ सुदी ११ (ई० स० १९२५ की ३ जून) को श्रीमान् के० सी० एस० आई० की पदवीसे भूषित किए गए और वि० सं० १९८२ की आषाढ़ वदी ३० (ई० स० १९२५ की २१ जून) को इंग्लैण्डमें ही आपके द्वितीय महाराजकुमारका जन्म हुआ।

महाराजा साहबके छोटे भ्राता महाराज अजीतसिंहजी साहब भी बड़े होनहार, योग्य और प्रजाप्रिय व्यक्ति हैं। इस समय आप राजकार्यकी

(१) वि० सं० १९२४ के दिसंबर मासमें महाराजा साहब कलकत्ता गए और वहाँसे सुन्दरबन होते हुए रीवां होकर जोधपुर आए। इसी अवसर पर कलकत्तेमें जोधपुरकी पोलो टीमने वायसराय कप जीता।

(२) कुछ दिन आप बंबईमें रहे और ता० २८ मार्च १९२५ को वहाँसे लंडनके लिए रवाना हुए।

शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। आपका जन्म वि० सं० १९६४ की वैशाख वदी ४ (ई० स० १९०७ की १ मई) को हुआ था[1]।

मारवाड़राज्यका विस्तार ३५,०१६ वर्गमील है और ई० स० १९२१ की मनुष्यगणनाके अनुसार इस देशमें १८,४१,६४२ मनुष्य बसते हैं। इस देशका पश्चिमी भाग बहुत ही उजाड़ और रेतीला है। परन्तु जैसे जैसे पूर्वकी तरफ़ बढ़ते जाइए वैसे ही वैसी पृथ्वी अधिकाधिक उपजाऊ मिलती जायगी। इस देशमें कोई बड़ी नदी ऐसी नहीं है जो बारह महीने बहती हो। इसकी आमदनी करीब १,२०,००,००० के है और सालाना ख़र्च करीब ९२,००,००० के है।

इस राज्यसे गवर्नमेंटको सालाना १,०८,००० रुपए दिये जाते हैं। इसके अलावा १,१५,००० रुपए ऐरनपुरा रैजीमैंटके खर्चके भी यह राज्य देता है और करीब २५,६४,७२८ रुपए सालाना इम्पीरियल सर्विस रिसालेके रखनेमें ख़र्च होते हैं।

(१) वि० सं० १९८१ की माघ वदी ५ (ई० स० १९२५ की २९ जनवरी) को श्रीमान्का विवाह ईसरदे (जयपुर राज्यमें) के ठाकुर साहबकी कन्यासे हुआ।

मारवाड़के राठोड़ राजाओंका वंशवृक्ष ।

वरदायी सेन (हरिश्चन्द्र) कन्नौजके राजा
|
[सेतराम]
|
१ राव सीहाजी (पहले पहल मारवाड़में आए)

- २ राव आसथानजी
- राव सोनगजी (ईडरमें राज्य कायम किया)
- अज (उखामंडलके स्वामी)

२ राव आसथानजी
|
३ राव धूहड़जी
|
४ राव रायपालजी
|
५ राव कनपालजी
|
६ राव जालणसीजी
|
७ राव छाडाजी
|
८ राव तीडाजी

- राव कान्हड़देवजी
- राव त्रिभुवनसीजी
- ९ राव सलखाजी

९ राव सलखाजी

- राव मल्लिनाथजी — राव जगमालजी
- १० राव वीरमजी — ११ राव चूडाजी

११ राव चूडाजी

- राव कान्हाजी
- राव सत्ताजी
- १२ राव रणमल्लजी

१२ राव रणमल्लजी
|
१३ राव जोधाजी

- १४ राव सातलजी
- १५ राव सूजाजी
- राव बीकाजी (बीकानेरका राज्य कायम किया)

१५ राव सूजाजी
|
कुंवर बाघाजी
|
१६ राव गांगाजी
|

[शेष आगे पेजमें ।]

१७ राव मालदेवजी
१८ राव चन्द्रसेनजी
१९ राजा उदयसिंहजी
राव रायसिंहजी
उग्रसेनजी
राव आसकरनजी
२० राजा सूरसिंहजी
दलपतसिंहजी
कृष्णसिंहजी
(किशनगढ़में राज्य कायम किया)
२१ राजा गजसिंहजी
महेशदासजी
२२ महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम)
रतनसिंहजी
(रतलामका राज्य कायम किया)
२३ महाराजा अजीतसिंहजी
२४ अभयसिंहजी
२६ बखतसिहजी
आनन्दसिंहजी
रायसिंहजी
(ईडर राज्यकी दूसरी शाखाकायमकी)
२५ महाराजा रामसिंहजी
२७ महाराजा विजयसिंहजी
कुंवर भोमसिंहजी
कुवर गुमानसिंहजी
२८ महाराजा भीमसिंहजी
२९ महाराजा मानसिंहजी
कुंवर छत्रसिंहजी
३० महाराजा तखतसिंहजी
(ईडरके अहमदनगरसे गोद आए)
३१ महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय)
महाराजा प्रतापसिंहजी
(ईडर गोद गए)
३२ महाराजा सरदारसिंहजी
३३ महाराजा सुमेरसिंहजी
३४ महाराजा उम्मेदसिंहजी
महाराजा अजीतसिंहजी
महाराजकुमार हनुमंतसिंहजी

मारवाड़के राठोड़ राजाओंका नकशा।

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका संबन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१	सीहाजी	राव	कन्नौजके राजा वरदायीसेन के पौत्र	वि. सं. १३३०	उदयपुर महाराजाधिराज जैत्रसिंहजी, तेजसिंहजी और समरसिंहजी, जयपुराधीश कील्हणजी, जयसलमेर रावल चाचिगदेवजी, करणजी और लखणसेनजी, शम्सुद्दीन अल्तमश
२	आसथानजी	राव	नं. १ के पुत्र	(वि.सं.१३३० से १३४८)	उदयपुर महारावल समरसिंहजी, जयपुराधीश कील्हणजी और कुन्तलजी, जयसलमेर रावल लाखणसेनजी, पुण्यपालजी और जैतसीजी, ईडरके राव सोनगजी, चावडा भोजराज, शम्सुद्दीन अल्तमश, जलालुद्दीन फीरोजशाह(द्वितीय)
३	धूहडजी	राव	नं. २ के पुत्र	(वि.सं.१३४८ से १३६६) वि. सं. १३६६	उदयपुरके महारावल समरसिंहजी, रत्नसिंहजी और राणा अरसिंहजी, जयपुराधीश कुंतलजी जयसलमेररावल जैतसीजी, मूलराकुंजजी, दूदाजी और घड़सीजी, आनलबाघेला,
४	रायपालजी	राव	नं. ३ के पुत्र		सीरोहीके महाराव लुंभाजी

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
५	कनपालजी	राव	नं. ४ के पुत्र		सीरोहीके महाराव तेजसिंहजी
६	जालणसीजी	राव	नं.५ के पुत्र		सोढा दुर्जनसाल
७	छाडाजी	राव	नं. ६ के पुत्र	(वि.सं.१३८५ से १४०१)	उदयपुरके महाराणा हम्मीरसिंहजी,जयपुराधीश झोणसीजी, जयसलमेर रावल घड़सीजी और केहरजी, सोढा दुर्जनसाल, सोनगरा वणवीर(या रणवीर)
८	तीडाजी	राव	नं. ७ के पुत्र	(वि.सं.१४०१ से १४१४)	उदयपुरके महाराणा हम्मीरसिंहजी, जयपुराधीश झोणसीजी, जयसलमेर रावल केहरजी चौहान सामंतसिंह, चौहान सातलसोम
	कान्हडदेवजी	राव	नं. ८ के पुत्र		उदयपुरमहाराणा हम्मीरसिंहजी
	त्रिभुवनसीजी	राव	नं. ८ के पुत्र		उदयपुरमहाराणा हम्मीरसिंहजी और क्षेत्रसिंहजी
९	सलखाजी	राव	नं. ८ के पुत्र	(वि.सं.१४२२ से १४३१)	उदयपुरमहाराणा क्षेत्रसिंहजी, जयपुराधीश झोणसीजी और उदयकरणजी, जयसलमेर रावल केहरजी
	मल्लिनाथजी	राव	नं. ९ के पुत्र	(वि.सं.१४३१ से १४५६)	उदयपुरमहाराणा क्षेत्रसिंहजी, लाखाजी और मोकलजी, जयपुराधीश उदयकरणजी और नृसिंहजी, जयसलमेर रावल केहरजी और लखमणजी

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
	जगमालजी	राव	मल्लिनाथ-जीके पुत्र		उदयपुरमहाराणा मोकलजी, जयपुराधीश नृसिंहजी, ईडरके राव रणमल्लजी, जोइया दला
१०	वीरमजी	राव	न. ९ के पुत्र	(वि.सं.१४४० में मृत्यु)	उदयपुर महाराणा मोकलजी, जयपुराधीश उदयकरणजी, जयसलमेर रावल केहरजी, जोइया दला, सांखला ऊदा
११	चूंडाजी	राव	नं. १० के पुत्र	(वि.सं.१४५१ से १४८०) १४५१, १४७८	उदयपुरमहाराणा मोकलजी, जयपुराधीश नृसिंहजी, जयसलमेर रावल केहरजी और लखमणजी, जयसलमेरके भाटी देवराजजी, भाटी राणगदेव, भाटी सादा, ईडरके राव रणमल्लजी, ईदा रायधवल, मोहिल माणिकदेव, गुजरातका सुबेदार जाफरखां, बादशाह तैमूर, मुजफ्फरशाह, शम्सखां, खानजादा आजम, मुलतानका शासक सलीमखां, खोखर
	कान्हाजी	राव	नं. ११ के पुत्र	(वि.सं.१४८० से १४८१)	उदयपुरमहाराणा मोकलजी, जयपुराधीश नृसिंहजी, जयसलमेर रावल लखमणजी, सांखला पूर्णपाल, खानजादा फीरोज

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
	सत्ताजी	राव	नं. ११ के पुत्र	(वि.सं. १४८१ से १४८४)	उदयपुर महाराणा मोकलजी, जयपुराधीश नृसिंहजी, जयसलमेर रावल लखमणजी, ईडरके राव पुंजोजी, खानजादा फीरोज
१२	रणमल्लजी	राव	नं. ११ के पुत्र	(वि.सं. १४४८ से १४९५)	उदयपुर महाराणा मोकलजी, और कुंभाजी, जयपुराधीश नृसिंहजी और बनवीरजी, जयसलमेर रावल लखमणजी और वैरसीजी, ईडरके राव पुंजोजी और नारायणदासजी, चौहान रणधीर, खीची अचलाजी, हुलवशी राजसिंह, खानजादा फीरोज, मलिक हसनखा बिहारी, महमूद खिलजी, अहमदशाह, सलीमखां
१३	जोधाजी	राव	नं. १२ के पुत्र	(वि.सं. १५१० से १५४५) १५१५, १५१६	उदयपुर महाराणा कुंभाजी, उदयकर्णजी और रायमल्लजी, जयपुराधीश उद्धरणजी और चन्द्रसेनजी, जयसलमेर रावल चाचाजी और देवीदासजी, ईडरके राव भाणजी, सांखला हडबू, राठोड करन, सीरोहीके महारावलन लाखाजी और जगमालजी, मोहिल

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
					वैरसल, बीकानेरके राव बीकाजी, सिंघल मेघा, बहलोल लोदी. हुसैनशाह (जौनपुर), सारंगखां, फीरोजखां (द्वितीय)
१४	सातलजी	राव	नं. १३ के पुत्र	(वि.सं. १५४५ से १५४८) १५१५	उदयपुर महाराणा रायमल्लजी, जयपुराधीश चन्द्रसेनजी, जयसलमेर रावलजी देवीदासजी, सीरोहीके महाराव जगमालजी, बीकानेरके राव बीकाजी, मल्लूखां (सिरियाखा), घडूला
१५	सूजाजी	राव	न. १४ के छोटे भाई	(वि.सं. १५४८ से १५७२) १५३२, १५५२	उदयपुर महाराणा रायमल्लजी और संग्रामसिंहजी, जयपुराधीश चन्द्रसेनजी और पृथ्वीराजजी, जयसलमेर रावल देवीदासजी और जैतसीजी, ईडरके राव सूरजमलजी, राव रायमल्लजी, राव भीमजी और भारमलजी, सीरोहीके महाराव जगमालजी, बीकानेरके राव बीकाजी, नराजी, लूणकरणजी

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१६	गांगाजी	राव	नं. १५ के पुत्र	(वि.सं.१५७२ से १५८८)	उदयपुर महाराणा संग्रामसिंहजी और रत्नसिंहजी, जयपुराधीश पृथ्वीराजजी और पूर्णमल्लजी, जयसलमेर रावल जैतसीजी और लूणकरणजी, ईडरके राव रायमल्लजी और भाग्मल्लजी, डूंगरपुरके शासक डूगरसीजी, मेडतिया वीरमजी, बीकानेरके राव लूणकरणजी और जैतसीजी, सीरोहीके महाराव जगमालजी और अखैराजजी, सुल्तान मुजफ्फर (द्वितीय), मुबारिजशाह, खानजादा दौलतखां, बादशाह बाबर
१७	मालदेवजी	राव	नं. १६ के पुत्र	(१५८८ से १६१९)	उदयपुर महाराणा विक्रमादित्यजी, वनवीर और उदयसिंहजो, जयपुराधीश पूर्णमल्लजी, भीमसिंहजी, रत्नसिंहजो, और राजा भारमल्लजी, जयसलमेर रावलजो लूणकरणजो, मालदेवजी और हरिराजजो, सीरोहीके महाराव अखैराजजी, रायसिंहजो, दूदाजी और उदयसिंहजो, ईडरके राव

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
					भारमल्लजी, बीकानेरके राव जैतसिंहजी, और कल्याणसिंहजी, सुल-तान बहादुरशाह, बाद-शाह हुमायूं, शेरशाह, बादशाह अकबर.
१८	चन्द्रसेनजी	राव	नं. १७ के पुत्र	(१६१९ से १६३७) १६३७	उदयपुर महाराणा उद-यसिंहजी और प्रताप सिंहजी (प्रथम), जय-पुराधीश भारमल्लजी और भगवानदासजी, जयसलमेर रावल हरि-राजजी और भीमजी, सीरोहीके महाराव उद-यसिंहजी, मानसिंहजी और सुरतानजी, ईड-रके राव पुजोजी (द्वि-तीय) और नारायणदा-सजी, बीकानेरके राव कल्याणसिंहजी और रा-यसिंहजी, कल्ला रायम-लोत, बादशाह अकबर
	आसकरनजी	राव	नं. १८ के पुत्र	(१६३७ से १६३८) १६३८	उदयपुरमहाराणा प्रता-पसिंहजी (प्रथम), जयपुर राजा भगवान-दासजी, जयसलमेर रा-वल भीमजी, सीरोहीके महाराव सुरतानजी, बीकानेर राव रायसिं-हजी, बादशाह अकबर

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
	रायसिंहजी	राव	नं. १८ के पुत्र	(१६३९ से १६४०)	उदयपुर महाराणा प्रतापसिंहजी (प्रथम), जयपुर राजा भगवानदासजी, जयसलमेर रावल भीमजी, सीरोहीके महाराव सुरतानजी, बीकानेर राव रायसिंहजी, राणा उदयसिंहजीके पुत्र जगमालजी, बादशाह अकबर
१९	उदयसिंहजी	राजा	नं. १७ के पुत्र	(१६४० से १६५२)	उदयपुर महाराणा प्रतापसिंहजी (प्रथम), जयपुर महाराजा भगवानदासजी और मानसिंहजी, जयसलमेर रावल भीमजी, सीरोहीके महाराव सुरतानजी, बीकानेरके राव रायसिंहजी, राव कल्ला, कल्ला रायमलोत, बादशाह अकबर, मधुकरशाह, मुजफ्फरशाह, जालोरका पठाण जामबेग
२०	सूरसिंहजी	राजा	नं. १९ के पुत्र	(१६५२ से १६७६)	उदयपुर महाराणा प्रतापसिंहजी (प्रथम) और अमरसिंहजी, जयपुर महाराजा मानसिंहजी और मिर्जा राजा भावसिंहजी, जयसलमेररावल भीमजी और कल्याणजी, सीरोहीके महाराव सुरतानजी

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञातसमय	समकालीन राजा आदि
२१	गजसिंहजी	राजा	नं. २० के पुत्र	(१६७६ से १६९५)	और राजसिंहजी, बीकानेर राव रायसिंहजी, दलपतसिंहजी और सूरसिंहजी, किशनगढ़ राजा किशनसिंहजी और सहसमलजी, बादशाह अकबर, बादशाह जहांगीर, मुजफ्फरशाह, बहादुर, अम्बरचंपू उदयपुर महाराणा अमरसिंहजी, कर्णसिंहजी और जगतसिंहजी, जयपुर महाराजा भावसिंहजी और जयसिंहजी, जयसलमेर रावल कल्याणजी और मनोहरदासजी, सीरोहीके महाराव राजसिंहजी और अखैराजजी (द्वितीय), बीकानेरके राजा सूरसिंहजी और करणसिंहजी, किशनगढके राजा सहसमलजी, जगमालजी और हरिसिंहजी, राणाजीका पुत्र भाम, गोपालदास गाड, राव रतन हाडा, बादशाह जहांगीर, बादशाह शाहजहां, बादशाह आदिलखां, अम्बरचंपू

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
२२	जसवन्तसिंहजी	महाराजा	नं. २१ के पुत्र	(१६९५ से १७३५) १६९६	उदयपुर महाराणा जगतसिंहजी और राजसिंहजी, जयपुर महाराजा जयसिंहजी और रामसिंहजी, जयसलमेर रावल मनोहरदासजी, रामचन्द्रजी, सबलसिंहजी, और अमरसिंहजी, सीरोहीके महाराव अखैराजजी (द्वितीय), उदयसिंहजी और वैरशालजी, ईडरके राव जगन्नाथजी, राव पुंजोजी (तृतीय) और राव गोपीनाथजी, बीकानेरके राजा करणसिंहजी और अनूपसिंहजी, किशनगढ़के राजा हरिसिंहजी, रूपसिंहजी और मानसिंहजी, नागोरके राव रायसिंहजी, छत्रपति शिवाजी, दुर्गादास, बादशाह शाहजहां और औरंगजेब
२३	अजीतसिंहजी	महाराजा	नं. २२ के पुत्र	(१७६३ से १७८१)	उदयपुर महाराणा राजसिंहजी, जयसिंहजी, अमरसिंहजी (द्वितीय) और संग्रामसिंहजी (द्वितीय), जयपुर महाराजा रामसिंहजी, बिष्णुसिंहजी, सवाई

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
					राजा जयसिंहजी, जयसलमेर रावल अमरसिंहजी, जसवन्तसिंहजी, बुधसिंहजी, तेजसिंहजी, सवाईसिंहजी, और अक्षयसिंहजी, सीरोहीके महाराव वैरीशालजी, छत्रशालजी, दुर्जनसिंहजी, मानसिंहजी, उम्मेदसिंहजी, ईडरके राव करणसिंहजी और चन्द्रसिंहजी, बीकानेर महाराजा अनूपसिंहजी, स्वरूपसिंहजी और सुजानसिंहजी, किशनगढ़ नरेश मानसिंहजी, राजसिंहजी, राव इन्द्रसिंहजी, मोहकमसिंहजी, बादशाह औरंगजेब, बहादुरशाह, जहांदारशाह, फर्रुखसीयर, रफीउद्दरजात, रफीउद्दौला (शाहजहां द्वितीय) और मुहम्मदशाह, नादिरशाह, सैय्यद हुसैनअलीखां और अब्दुल्लाखां
२४	अभयसिंहजी	महाराजा	नं. २३ के पुत्र	(१७८१ से १८०६)	उदयपुर महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय), जगतसिंहजी (द्वितीय), जयपुर महाराजा स-

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
					वाई जयसिंहजी और ईश्वरीसिंहजी, जयसलमेर रावलजी अक्षयसिंहजी सीरोहीके महाराव मानसिंहजी, उम्मेदसिंहजी और पृथ्वीराजजी, बीकानेर महाराजा सुजानसिंहजी, जोरावरसिंहजी और गजसिंहजी, किशनगढ़के राजा राजसिंहजी और सामंतसिंहजी, ईडरके राजा आनन्दसिंहजी और शिवसिंहजी, बूंदीनरेश हाडा दलेलसिंहजी और बुधसिंहजी, बादशाह मोहम्मदशाह और अहमदशाह, सरबुलन्दखां
२५	रामसिंहजी	महाराजा	नं. २४ के पुत्र	(१८०६ से १८०८)	उदयपुर महाराणा जगतसिंहजी (द्वितीय) और प्रतापसिंहजी (द्वितीय), जयपुरके महाराजा ईश्वरीसिंहजी और माधवसिंहजी, जयसलमेर रावल अक्षयसिंहजी, सीरोहीके महाराव पृथ्वीराजजी, बीकानेरनरेश गजसिंहजी, किशनगढ़नरेश सामन्तसिंहजी और बहादुरसिंहजी, ईडरके

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
२६	बखतसिंहजी	महाराजा	नं. २४ के भाई	(१८०८ से १८०९)	राजा शिवसिंहजी, बखतसिंहजी (नागोर), माधवजी सिंधिया, बादशाह अहमदशाह उदयपुर महाराणा प्रतापसिंहजी(द्वितीय), जयपुरनरेश माधवसिंहजी, जयसलमेर रावल अक्षयसिंहजी, सीरोहीके राव पृथ्वीराजजी, बीकानेरके राजा गजसिंहजी,किशनगढ़नरेश सामन्तसिंहजी और बहादुरसिहजी, ईडरके राजा शिवसिहजी, महाराजा रामसिंहजी, माधवजी सिंधिया, बादशाह अहमदशाह
२७	बिजयसिंहजी	महाराजा	नं. २६ के पुत्र	(१८०९ से १८५०) १८०९	उदयपुर महाराणा प्रतापसिंहजी (द्वितीय), राजसिंहजी (द्वितीय), अरिसिंहजी (अड़सीजी), हमीरसिंहजी (द्वितीय) और भीमसिंहजी, जयपुर महाराजा माधवसिंहजी, पृथ्वीसिंहजी और प्रतापसिंहजी, जयसलमेर रावल अक्षयसिंहजी और मूलराजजी, सीरोही महाराव पृथ्वी-

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
					राजजी, तखतसिंहजी, जगत्सिंहजी और वैरीसालजी (द्वितीय), बीकानेर महाराजा गजसिंहजी, राजसिंहजी और सूरतसिंहजी, किशनगढ-नरेश सामन्तसिंहजी सरदारसिंहजी, बहादुरसिंहजी, बिड़दसिंहजी, और प्रतापसिंहजी, ईडरके राजा शिवसिंहजी, और भवानीसिंहजी, महाराजा रामसिंहजी, माधवराव पेशवा, जनकोजी, रानोजी सिंधिया, डी० बोइने, बादशाह अहमदशाह, मुहम्मद आलमगीर (द्वितीय), शाहजहां (द्वितीय), शाहआलम (द्वितीय), वारन हेस्टिंग्ज, सर जॉन मैकफरसन, अर्ल कॉर्नवालिस
२८	भीमसिंहजी	महाराजा	नं. २७ के पुत्र	(१८५० से १८६०) १८५२	उदयपुर महाराणा भीमसिंहजी, जयपुर महाराजा प्रतापसिंहजी और जगत्सिंहजी, जयसलमेर रावल मूलराजजी, सीरोही महा-

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
२९	मानसिंहजी	महाराजा	न. २७ के पौत्र	(१८६० से १९००)	राव वैरीसालजी (द्वितीय), बीकानेर महाराजा सूरतसिंहजी, किशनगढ़ नरेश प्रतापसिंहजी और कल्याणसिंहजी, ईडरके राजा गंभीरसिंहजी, सर जॉन शोर, मार्किस वैलैसली उदयपुर महाराणा भीमसिंहजी, जवानसिंहजी सरदारसिंहजी, और स्वरूपसिंहजी, जयपुर महाराजा जगत्‌सिंहजी, जयसिंहजी और रामसिंहजी, जयसलमेर रावलजी मूलराजजी और गजसिंहजी, सीरोही महाराव वैरीसालजी(द्वितीय), उदयभानजी और शिवसिंहजी, बीकानेर महाराजा सूरतसिंहजी और रतनसिंहजी, किशनगढ़-नरेश कल्याणसिंहजी, मुहकमसिंहजी और पृथ्वीसिंहजी, ईडरके राजा गभीरसिंहजी और जवानसिंहजी, जसवन्तराव होल्कर, दौलतराव सिंधिया, बापूजी सिंधिया, नागपुरका मधुराजदेव भों-

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
					सले, धौंकलसिंहजी, अमीरखां, मार्किस वैलैसली, लॉर्ड कॉर्नवालिस, सर जॉर्ज बार्लो, अर्ल ऑफ मिण्टो, मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्ज, लॉर्ड ऐमहर्स्ट, लॉर्ड बैंटिक, सर चार्ल्स मैटकाफ्, अर्ल ऑफ ऑकलैण्ड, लॉर्ड ऐलनबरो
३०	तखतसिंहजी	महाराजा	न. २९ के गोद आए	(१९०० से १९२९)	उदयपुर महाराणा स्वरूपसिंहजी और शम्भूसिंहजी, जयपुर महाराजा रामसिंहजी, जयसलमेर रावलजी गजसिंहजी, रणजीतसिंहजी और बैरीसालजी, सीरोही महाराव शिवसिंहजी और उम्मेदसिंहजी, बीकानेर महाराजा रतनसिंहजी और सरदारसिंहजी, किशनगढ़नरेश पृथ्वीसिंहजी, ईडरके राजा जवानसिंहजी और केसरीसिंहजी, धौकलसिंहजी, क्वीन विक्टोरिया, लॉर्ड एलनबरो, लॉर्ड हार्डिंज,

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
					अर्ल ऑफ डेलहाउजी, लॉर्ड कैनिंग वायसराय, अर्ल ऑफ एलगिन, सर लॉरेंस, लॉर्ड मेओ, अर्ल ऑफ नार्थब्रुक
३१	जसवन्त-सिंहजी	महा-राजा	नं. ३० के पुत्र	(१९२९ से १९५२)	उदयपुर महाराणा शम्भूसिंहजी, सज्जनसिंहजी और फतेहसिंहजी, जयपुर महाराजा रामसिंहजी और माधवसिंहजी, जयसलमेर रावल वैरीसालजी और शालिवाहनजी, सीरोहीके महाराव उम्मेदसिंहजी और केसरीसिंहजी, बीकानेर महाराजा सरदारसिंहजी, डूगरसिंहजी और गंगासिंहजी, किशनगढ़ महाराजा पृथ्वीसिंहजी और शार्दूलसिंहजी, ईडरके राजा केसरीसिंहजी, बूंदीके महाराव राजा रामसिंहजी, क्वीन विक्टोरिया अर्ल ऑफ नॉर्थब्रुक, लॉर्ड लिटन, मार्किस ऑफ रिपन, अर्ल ऑफ डफरिन, मार्किस ऑफ लैन्सडाउन, अर्ल ऑफ ऐलगिन

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
३२	सरदारसिंहजी	महा-राजा	नं. ३१ के पुत्र	(वि.सं.१९५२ से १९६७)	उदयपुर महाराणा फतेहसिंहजी, जयपुर महाराजा माधवसिंहजी, सीरोही महाराव केसरीसिंहजी, बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी, किशनगढ़नरेश शार्दूलसिंहजी और मदनसिंहजी, ईडरके राजा केसरीसिंहजी और प्रतापसिंहजी, क्वीन विक्टोरिया और किंग ऐडवर्ड सप्तम, अर्ल ऑफ एलगिन, लॉर्ड कर्जन और लॉर्ड मिंटो
३३	सुमेरसिंहजी	महा-राजा	नं. ३१ के पुत्र	(वि.सं.१९६७ से १९७५)	उदयपुर महाराणा फतेहसिंहजी, जयपुर महाराजा माधोसिंहजी, सीरोहीके महाराव केसरीसिंहजी, बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी, किशनगढ़नरेश मदनसिंहजी, ईडर महाराजा प्रतापसिंहजी और दौलतसिंहजी, किंग ऐडवर्ड सप्तम और किंग जॉर्ज पंचम, लॉर्ड मिण्टो, लॉर्ड हार्डिंज और लॉर्ड चैम्सफोर्ड

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
३४	उमेदसिंहजी	महाराजा	नं. ३३ के भाई	वि. सं. १९७५ में गद्दीपर बैठे	उदयपुर महाराणा फतेहसिंहजी, जयपुर महाराजा माधवसिंहजी और मानसिंहजी, सीरोही महाराव केसरीसिंहजी और बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी, किशनगढमहाराजा मदनसिंहजी, ईडरके महाराजा प्रतापसिंहजी, और दौलतसिंहजी, किंग जार्ज पंचम, लॉर्ड चैम्सफर्ड और अर्ल रीडिंग

नोट—ज्ञात समयके खानेमें कोष्ठके अन्दरके संवत् उनके राज्यसमयको प्रकट करते हैं और बाहरके उनके ज्ञात समयको ।

बीकानेरके राठोड़।

जोधपुरके राव जोधाजीके पुत्रोंमेंसे सातलजी तो उनके उत्तराधिकारी हुए और बीकाजीने जांगलूदेशकी तरफ़ जाकर अपने नामपर बीकानेरका नया राज्य क़ायम किया।

१ राव बीकाजी।

ये जोधाजीके पुत्र थे। इनकी एक जन्मपत्रिका मिली है। उसमें इनका जन्म वि० सं० १४९७ की प्रथम सावन सुदी १५ को होना लिखा है। परन्तु बीकानेरकी ख्यातोंमें इनका जन्म १४९५ की सावन सुदी १५ को होना लिखा है।

ये बड़े वीर और उत्साही थे। वि० सं० १५२२ की आश्विन सुदी १० को इन्होंने अपने भाग्यकी परीक्षाके लिए जांगलूकी तरफ़ प्रयाण किया। जोधाजीने भी एक सौ सवार और पाँच सौ पैदल सिपाहियोंके साथ अपने चाचा कांधलजी, और भाई बीदाजी, आदि अनेक वीरोंको इनके साथ कर दिया। इस प्रकार जोधपुरसे रवाना होकर ये लोग तीन वर्ष चूंडासरमें, छः वर्ष देष्णोकमें, तीन वर्ष कोडमदेसरमें और दस वर्ष जागलूमें रहे। वहाँपर इन्होंने भाटियो, जाटों, चौहानों,

---

(१) बीकाजीने पूंगलके भाटी रावकी कन्यासे विवाह कर उनसे रिश्तेदारी पैदा कर ली थी।

(२) ये जाट आपसमें लड़ा करते थे। इनके मुखिया गोदार जातिके जाटोंसे बीकाजीने मित्रता कर दूसरी कुछ शर्तोंके साथ ही साथ एक यह भी शर्त कर ली कि बीकाजीके वंशज गद्दी पर बैठनेके समय इन जाटोंके वंशजोंके हाथसे ही राज्यतिलक करवावेंगे। इस पर जाटोंने इनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

मोहिलों, और जोहिया मुसलमानोंको हराकर बहुतसी पृथ्वीपर अधिकार कर लिया। वि० सं० १५४२ में पहले पहल इन्होंने उस स्थानपर डेरा डाला जिस स्थानपर आजकल बीकानेर नगर विद्यमान है और वहींपर किलेकी नीव रक्खी। वि० सं० १५४४ तक इनके चाचा कांधलजीने हाँसी हिसार प्रदेशपर अधिकार कर लिया। इसके बाद ये हांसी हिसारके हाकिम सारंगखाँ (शाहरुख) के हाथसे मारे गए। इस समाचारके मिलते ही जोधाजीने जोधपुरसे और बीकाजीने जांगलूसे सारंगखाँ पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर सारंगखाँ मारा गया। इसके बाद लौटते हुए राव जोधाजी द्रोणपुर आए और बीकाजीको रावकी पदवी देकर स्वतन्त्र राजा बना दिया तथा जोधपुरसे उनके लिए छत्र, चामर आदि राज्यचिह्न भेजनेका भी वादा किया।

वि० सं० १५४५ की वैशाख सुदी २ को बीकाजीने अपने नाम पर बीकानेर नगर बसाया। राव सूजाजीके राज्यसमय बीकाजीने जोधपुर पर चढ़ाई की और नगरको घेर लिया। परन्तु राज्यके बड़े बड़े सरदारोंने बीचमें पड़ इनके आपसमें सुलह करवा दी। इसकी एवज़में जोधाजीकी कही हुई छत्र चामर आदि वस्तुएँ बीकाजीको मिल गईं।

जिस समय अजमेरके सूबेदार मल्लूखाँ (मलिकखाँ) ने जोधाजीके पुत्र बरसिंहजीको धोखा देकर अजमेरके किलेमें कैद कर दिया, उस समय जोधपुरनरेश सूजाजी आदिके साथ ही बीकाजीने भी उस पर चढ़ाई की। इससे लाचार होकर उक्त सूबेदारने बरसिंहजीको छोड़ दिया।

इसके बाद राव बीकाजीने खंडेला पर हमला किया और वहाँके राव रिड़मल शेखावतको हराकर उक्त नगर पर अधिकार कर लिया।

---

(१) 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्'में इस घटनाका समय १५४१ और बीकाजीको जोधाजीका ज्येष्ठपुत्र लिखा है।

इस पर रिड़मलने भागकर बादशाहकी शरण ली। बादशाहकी तरफ़से नवाब हिन्दालने बीकाजीपर चढ़ाई की; परन्तु युद्ध होने पर नवाब और रिड़मल दोनों मारे गए।

वि० सं० १५६१ की आसोज सुदी ३ को बीकाजीका स्वर्गवास हो गया।

पहले लिखा जा चुका है कि बीकाजी बड़े वीर और साहसी थे। इन्होंने अपना नया राज्य जमाया था। उस समय इनके अधीन करीब तीन हज़ार गाँव थे।

वि० सं० १५३१ के करीब जोधाजीने मोहिलोंसे छापर—द्रोणपुर (लाडनूका इलाका) छीन कर अपने पुत्र बीदाजीको जागीरमें दे दिया था। यह स्थान बीदावाटीके नामसे अब तक बीकानेर राज्यके अधीन है। बीकाजीको करणीजीका[1] बड़ा इष्ट था।

बीकाजीके १० पुत्र थे—नराजी, लूणकरणजी, घड़सी, राजसी, मेघराज, केलण, देवसी, विजयसिंह, अमरसिंह और बीसा।

२ राव नराजी।

ये बीकाजीके बड़े लड़के थे और उनके बाद वि० सं० १५६१ की आसोज सुदी १५ को बीकानेरकी गद्दीपर बैठे।

इनका जन्म वि० स० १५२५ की कार्तिक वदी ४ को हुआ था। राज्यपर बैठनेके चार महीने बाद ही वि० सं० १५६१ की माघ सुदी ८ को इनका देहान्त हो गया।

---

(१) ये चारण कुलमें उत्पन्न हुई थीं। चारण लोग इन्हें अपनी कुलदेवी मानते हैं। इनका निवास देश्णोक नामक गाँवमें था। वि० सं० १५९५ की चैत्र सुदी ९ को जैसलमेरसे लौटते हुए मार्गमें गड़ियाला गाँवके तलावके पास इनका देहान्त हुआ।

३ राव लूणकरणजी।

ये नराजीके छोटे भाई थे और उनकी मृत्युके बाद वि० सं० १५६१ की फागुन वदी ४ को उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १५२६ की माघ सुदी १० को हुआ था। वि० सं० १५६६ में ददरेवाके चौहानोंने बगावत की। इस पर इन्होंने चढ़ाई कर बागियोंके नेता मानसिंह देवलोतको मार डाला और उक्त स्थानपर अधिकार कर लिया। वि० सं० १५६९ में इन्होंने फतहपुरके कायमखानी दौलतखाँको हराकर उससे १२० गाँव छीन लिए। वि० सं० १५७० के फागुनमें चित्तौड़में इनका विवाह महाराणा सांगाजीकी बहनके साथ हुआ।

वि० सं० १५८३ में इनके और जैसलमेरके रावल देवीदास चाचावतके बीच युद्ध हुआ[1]। लूणकरणजीकी सेनाने जैसलमेरके किलेको घेर रावलजीको पकड़ लिया। अन्तमें रावलजीने अपनी दोनों कन्याओंका विवाह इनके दो पुत्रोंके साथ कर देनेका वादा कर सुलह कर ली। इसपर लूणकरणजी जैसलमेरसे वापिस लौट गए। परन्तु देवीदासजीने अपने अपमानका बदला लेनेके लिए सिंधके नवाबसे सहायता लेकर इन पर हमला कर दिया। जिस समय दोनों सेनाओंके बीच युद्ध छिड़ा उस समय बीकानेरकी सेनाके भाटी और बीदावत राजपूत भाग खड़े

(१) कहते हैं कि इन्होंने अपने विवाहके समय चारण आदिकोंको बहुत कुछ दान दिया था। इन चारणोंमें एक लाला नामक चारण भी था। उसने जैसलमेर पहुँच लूणकरणजीकी बड़ी तारीफ की। इससे वहाँके रावल देवीदासजी नाराज हो गए। यह देख वह चारण बीकानेर चला आया और देवीदासजीकी शिकायत कर लूणकरणजीको उनकी तरफसे क्रुद्ध कर दिया। इसीसे इन्होंने जैसलमेर पर चढ़ाई की थी।

हुए। इससे बीकानेरकी सेना कमजोर हो गई और वि० सं० १५८३ की सावन वदी ४ को ये अपने तीन पुत्रोंसहित युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए। इनके १२ पुत्र थे[2]।

४ राव जैतसीजी।

ये लूणकरणजीके पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १५८३ की सावन वदी ९ को गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० स० १५४६ की कार्तिक सुदी ८ को हुआ था[3]।

इनके गद्दीपर बैठनेके पहले द्रोणपुरका जागीरदार उदयकरण बीदावत बीकानेर पर अधिकार करनेके लिए चढ़ आया। परन्तु इन्होंने नगरको सुरक्षित कर उसको अन्दर न घुसने दिया। इसके बाद गद्दीपर बैठते ही इन्होंने द्रोणपुर पर चढाई की। उदयकरण भाग निकला। इस पर इन्होंने उक्त प्रदेश बीदाजीके पोते साँगाजी (सलगाजी) को देकर उन्हें जोइयोंसे बदला लेनेके लिए भेजा। साँगाजीके वहाँ पहुँचने पर जोइया राजपूत भाग गए और उनके परगने (हिसारकी सरहदके पासके प्रदेश) पर बीकानेर राज्यका अधिकार हो गया।

---

(१) प्रतापसिंह, नेतासिंह और वैरिसिंह।

(२) १ जैतसी, २ प्रतापसिंह (इसके प्रतापसीहोत बीका हुए), ३ वैरसी (वैरिसिंह-इसका पुत्र नारायणसी। इससे नारायणोत बीका हुए), ४ रत्नसी (इसके वंशज रत्नसीहोत बीका हुए। महाजन ठाकुर इसी शाखामें हैं), ५ तेजसी (इसके तेजसीहोत बीका), ६ नेतसी, ७ कर्मसी, ८ कृष्णसी, ९ सूरजमल, १० रामसी, ११ कुशलसी, १२ रूपसी। कहते हैं कि इनमेंसे ७ वें पुत्र कर्मसीने अपनी प्रशंसाके एक दोहे पर बारहट आशाको अपना पुत्र कार्तिकसिंह ही दे दिया था। इसके वंशज सीरोहीमें कर्मसीहोत बीकाके नामसे अब तक मशहूर हैं।

(३) किसी किसी ख्यातमें कार्तिक वदी २ को इनका जन्म होना लिखा है।

जिस समय आंबेरके राजा पृथ्वीराजजीकी मृत्यु हुई उस समय उनके पुत्र रत्नसिंहजी उनके उत्तराधिकारी हुए। परन्तु पृथ्वीराजजीके दूसरे पुत्र साँगाजीका विवाह बीकानेरके स्वर्गवासी राव लूणकरणजीकी कन्याके साथ हुआ था। अत: बीकानेरके राव जैतसीजीने मदद देकर उन्हें आंबेरकी गद्दी पर बिठा दिया।

वि० सं० १५८५ में जोधपुरके राव गाँगाजीके और उनके चाचा शेखाजीके आपसमें लड़ाई हुई। इसमे नागोरके खानज़ादा दौलतखाँने शेखाजीका पक्ष लिया था और राव जैतसीजीने राव गाँगाजीका। अन्तमें गाँगाजीकी विजय हुई।

वि० सं० १५९५ में भटनेरके एक श्रीपूज्य (जैनसाधु)ने बादशाह बाबरके पुत्र (हुमायूंके भाई) कामरांको राठोड़ोंके विरुद्ध भड़काया। इसपर उसने भटनेर पर अधिकार कर बीकानेरकी तरफ़ चढ़ाई की। राव जैतसीजी भी अपनी राठोड़ सेनाको लेकर मुकाबलेको चले और युद्धके समय एक रोज़ रातको मुसलमान सेनापर अचानक जा पड़े। इससे कामरांकी फ़ौज घबरा कर भाग खड़ी हुई।

वि० सं० १५९८ में जोधपुरके राव मालदेवजीने अपने सेनापति जैता और कूंपाको बीकानेरपर चढ़ाई करनेके लिए भेजा। यह खबर पाकर राव जैतसीजी भी अपनी सेना सजाकर इनके मुकाबलेको चले और सोवा ग्राममें अपना मोरचा बाँधा। परन्तु एक रात्रिको जिस समय ये किसी कामके लिए चुपचाप बीकानेरकी तरफ़ चले गए थे उस समय पीछे इनकी सेनाके लोगोंने समझ लिया कि रावजी भाग गए हैं। इसीसे सब लोग इधर उधर भागने लगे। जब प्रात:काल जैतसीजी लौटे तब उन्हें जोधपुरकी सेनाने घेर लिया। इस पर वि० सं० १५९८ की चैत्र वदी ११ को राव जैतसीजी उक्त सेनासे बहा-

दुरीके साथ लड़कर स्वर्गको सिधारे । इसके बाद मालदेवजीकी सेनाने आगे बढ़ बीकानेरके किलेको घेर लिया । यह देख वहाँके किलेदार भोजराज साखलाने अपने १५०० आदमियोंको लेकर इनका सामना किया । परन्तु अन्तमें भोजराज और उसके सब आदमी मारे गए और बीकानेर पर मालदेवजीका अधिकार हो गया ।

राव जैतसीजीके १२ पुत्र थे—१ कल्याणसिंह, २ भींवराज, ३ ठाकुरसी, ४ कान्ह, ५ श्रृंग, ६ सुरजन, ७ कर्मसेन, ८ पूर्णमल्ल, ९ अचलदास, १० मान, ११ भोजराज और १२ तिलोकसी ।

५ राव कल्याणसिंहजी ।

ये जैतसीजीके ज्येष्ठ पुत्र थे । इनका जन्म वि० सं० १५७५ की माघ सुदी ६ को हुआ था ।

जिस समय इनके पिता वीरगतिको प्राप्त हुए और बीकानेर पर मालदेवजीका अधिकार हो गया उस समय ये महाराणा संग्रामसिंहजीके पास थे । जब यह समाचार इनको मिला तब ये सिरसा नामक गाँवमें जारहे और जो कुछ थोड़ासा इलाका बच रहा उसीसे गुजारा करने लगे । इनके छोटे भ्राता भींवराजजी ५० सवारोंके साथ बादशाह हुमायूँकी सेवामें चले गए । बादशाहने इन्हें शेरखाँकी अधीनतामें रख दिया । कुछ दिनों बाद जिस समय हुमायूँ बंगालकी तरफ़ गया उस समय शेरखाँने बगावत कर हुमायूँको हिन्दुस्तानसे निकाल दिया और खुद वि० सं० १५९७ में शेरशाहसूरके नामसे बादशाह बन बैठा ।

---

(१) 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनं काव्यम्' में लिखा है कि कर्मचन्द्रके उद्योगसे अकबरने कल्याणमलजीको जोधपुरका राज्य दे दिया था । परन्तु यह विचारणीय है ।

(२) वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२७ के मार्च) में बाबरके साथके युद्धमें कल्याणसिंहजीने भी भाग लिया था ।

इसके बाद मौक़ा पाकर भींवराजजीने और मेड़तिया वीरमजीने उसे मालदेवजी पर चढ़ाई करनेके लिए तैयार किया। इस पर शेरशाह अजमेर आया। यहीं पर राव कल्याणसिंहजी भी अपनी ६,००० सेना लेकर उससे आ मिले।

जिस समय इधर मालदेवजी शेरशाहके मुकाबलेमें लगे थे उस समय उधर राव लूणकरणजीके पुत्र कृष्णसिंहजीने बीकानेरके राठोड़ोंको एकत्रित कर बीकानेरके आसपास हमले करने शुरू कर दिये। अन्तमें लाचार होकर राव मालदेवजीने अपने सेनापति कूंपा महाराजोतको बीकानेरसे वापिस बुला लिया। इससे वि० सं० १६०१ की पौष सुदी १५ को बीकानेरपर राव कल्याणसिंहजीका अधिकार हो गया। रावजी भी शेरशाहसे आज्ञा लेकर बीकानेर चले आए।

इसके कुछ समय बाद वि० सं० १६१० में मालदेवजीने मेड़तेपर चढ़ाई की। यह ख़बर पाकर राव कल्याणसिंहजीने वीरमदेवजीके पुत्र जयमलजीकी सहायताको अपनी फ़ौज भेज दी।

वि० सं० १६१३ में जिस समय मालदेवजीने हाजीख़ाँपर चढाई की और महाराणा उदयसिंहजीने उसकी सहायता की उस समय तथा दुबारा जब महाराणाने हाजीख़ाँसे नाराज होकर उसपर चढ़ाई की और उसने मालदेवजीसे सहायता माँगी तब भी राव कल्याणसिंहजी महाराणाजीके साथ थे।

जिस समय वि० सं० १६२७ की मंगसिर वदी २ को बादशाह अकबर नागोर पहुँचा उस समय रावजी भी मय अपने पुत्र रायसिंहजीके उससे मिलनेको गए थे।

वि० सं० १६२८ की वैशाख वदी ५ को इनका देहान्त हो गया।

इनके दस पुत्र थे—१ रायसिंह, २ रामसिंह, ३ पृथ्वीराज, ४ अमरसिंह, ५ भाण, ६ सुरताण, ७ सारंगदे, ८ भाखरसी, ९ गोपालसिंह, १० राघवदास ।

६ राजा रायसिंहजी ।

ये कल्याणसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १६२८ की वैशाख सुदी १ को बीकानेरकी गद्दीपर बैठे ।

इनका जन्म वि० सं० १५९८ की सावन वदी १२ को हुआ था। जिस समय इनका विवाह महाराणा उदयसिंहजीकी कन्यासे हुआ था उस समय इन्होंने कई लाख रुपए चारण और भाटोंको दान दिए थे।

वि० सं० १६२८ में इन्होंने सोरठकी तरफ़ जाते हुए मार्गमें सीरोहीके राव सुरतानसे आधा राज्य बादशाहको नजर करवाकर उनके शत्रु बीजासे उन (रावजी) का पीछा छुड़वाया। इसके बाद बादशाहने उक्त आधा भाग महाराणा उदयसिंहके पुत्र जगमालको दे दिया।

वि० सं० १६२९ के करीब अकबरने जोधपुरका राज्य रायसिंहजीको लिख दिया था। परन्तु राव चन्द्रसेनजीके मुकाबला करनेके कारण इन्हें इसमें सफलता न हुई। इसी वर्ष अकबरने इनको उदयपुरके महाराणा प्रतापसिंहजी (प्रथम) के आक्रमणोंसे गुजरातके मार्गकी रक्षा करनेका भार सौंपा ।

वि० सं० १६३० में जब इब्राहीम हुसेन मिरजाने सरनालसे भागकर नागोरको घेर लिया तब इन्होंने खानेकलांकी सहायता कर इब्राहीम मिरजाको भगा दिया ।

वि० सं० १६३३ में जब बादशाह अकबरने उदयपुरकी तरफ़ चढ़ाई की तब ये उससे अजमेरमें जाकर मिले । बादशाहने इन्हें नागोर-

पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। इसीके अनुसार इन्होंने वहाँके शासक खानको हराकर उक्त नगरपर शाही झंडा खड़ा कर दिया।

कुछ दिन बाद जब पंजाबमें पठानोंने झगड़ा उठाया तब ये जयपुर-महाराजकुमार मानसिंहजीके साथ उनके मुकाबलेको अटककी तरफ़ भेजे गए[1]। इन्होंने वहाँपर बागियोंको दबानेमें बड़ी वीरता दिखाई। इससे प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें राजाकी पदवी और चार हजारी ज़ात व चार हज़ार सवारोंका मनसब दिया।

इसके बाद रायसिंहजी कुछ दिन तक बीकानेरमें आकर रहे और जब लौटकर देहली गए तब बादशाह अकबरने अहमदाबाद (गुजरात) पर चढाई की। रायसिंहजी भी उसके साथ गए। वहाँपरके युद्धोंमें भी इन्होंने ऐसी वीरताके काम किये[2] कि बादशाह इनसे बहुत ही खुश हुआ।

सीरोहीके राव सुरतानके समय अकबरने वहाँका आधा राज्य महाराणा उदयसिंहके पुत्र जगमालको दे दिया था। परन्तु राव सुरतानने मौका पाकर उसे दतानी गाँवमें मार डाला। इस पर अकबरने जोधपुरके राजा उदयसिंहजीको सीरोहीके रावको दण्ड देनेकी आज्ञा दी। वि० सं० १६४४ में जिस समय उन्होंने सीरोही पर चढ़ाई की उस समय शायद बीकानेरके राजा रायसिंहजी भी उनके साथ थे।

(१) वि० सं० १५३९ के करीब ये काबुलकी तरफ भेजे गये और इसके दो वर्ष बाद इन्होंने बंगालमें भी अच्छी वीरता दिखाई।

(२) इन्होंने वहाँके सूबेदार मिरजा महम्मद हुसेनको मार डाला था। कुछ तवारीखोंमें लिखा है कि, इसीसे प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें राजाकी पदवी और दस लाख रुपये आमदनीकी जागीर दी तथा इनके भाई रामसिंह-जीको भी बादशाही मनसबदार बनाया।

वि० सं० १६४५ में रायसिंहजीने बीकानेरमें एक नया किला बनवाना प्रारम्भ किया। इसके बाद ये बादशाहकी आज्ञासे दक्षिणकी तरफ़का प्रबन्ध करनेके लिए चले गए। उक्त किला वि० सं० १६५० में पूरी तौरसे बनकर तैयार हुआ था। इसी वर्ष आपने द्वारिकाकी यात्रा की।

वि० सं० १६५२ में इनके मंत्री मेहता कर्मचंद आदि कुछ लोगोंने इनको मारनेकी और इनके स्थानमें इनके पुत्र दलपतसिंहजीको गद्दी पर बिठानेकी साजिश की। परन्तु यह भेद खुल गया। इस पर कर्मचंद भागकर अकबरकी शरणमें चला गया और उसे रायसिंहजीकी तरफ़से भड़काने लगा। अकबरने भी उसके कहनेमें आकर बीकानेर राज्यके भरथनेर आदि कई परगने राजकुमार दलपतसिंहजीको जागीरमें दे दिए। इसी दिनसे बाप बेटोंमें अनबन शुरू हुई। दलपतसिंहजीने राज्यके कई परगनों पर कब्जा कर लिया। जिस समय वि० सं० १६६४ में रायसिंहजी देहली गए उस समय कर्मचंद मृत्युशय्या पर पड़ा था। अतः ये भी उससे मिलनेको गए और उसका अन्तिम समय निकट देख बड़ा शोक प्रकट किया। जब कर्मचंद मर गया तब उसके पुत्रोंको भी इन्होने बहुत कुछ दिलासा दिया।

इसी बीच वि० सं० १६६२ में बादशाह अकबर मर चुका था और जहाँगीर देहलीके तख्त पर बैठा था। परन्तु वह भी इनसे नाराज हो गया, इसलिए ये लौट कर बीकानेर चले आए।

कुछ दिन बाद जहाँगीरने इन्हें बुरहानपुरके सूबे पर भेज दिया। वहीं पर वि० सं० १६६८ में इनका स्वर्गवास हुआ।

---

(१) कहते हैं कि कर्मचंदने मरते समय अपने पुत्रोंको समझा दिया था कि वे राजा रायसिंहजीके प्रलोभनमें पड़कर कभी बीकानेर न जावें। राजाजीने जो शोक प्रकाशित किया है वह केवल इस कारणसे है कि वे मुझसे बदला न ले सके और पहले ही मेरा अन्त समय निकट आ पहुँचा है।

कहते हैं कि मरते समय इन्होंने अपने द्वितीय पुत्र शूरसिंहजीसे कहा था कि हो सके तो कर्मचन्दके पुत्रों आदिसे तुम मेरा बदला अवश्य लेना । राजा रायसिंहजी बड़े वीर थे । इन्होंने अटक, गुजरात, दक्षिण, बलूचिस्तान और सिन्ध आदिके युद्धोंमें बड़ी वीरता दिखाई थी । इसीसे प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें ५२ परगने जागीरमें दिये थे । इन्हींमें हांसी हिसार भी थे । बीकानेरकी ख्यातोंसे ज्ञात होता है कि अकबरने इन्हें ४,००० सवारोंका मनसब दिया था । परन्तु जहाँगीरने इसे बढ़ाकर ५,००० सवारोंका कर दिया ।

राजा रायसिंहजीके ४ पुत्र थे—१ दलपतसिंहजी, २-सूरसिंहजी, ३ किशनसिंहजी, ४ भोपतसिंहजी ।

७ राजा दलपतसिंहजी ।

ये रायसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १६६८ में बीकानेरकी गद्दीपर बैठे । देहलीमें बादशाह जहाँगीरने अपने हाथसे इन्हें टीका देकर खिलत पहनाया था ।

इनका जन्म वि० सं० १६२१ की फागुन वदी ८ को हुआ था। इन्होंने अपने भाई सूरसिंहजीको फलोधी परगना जागीरमें दिया था; परन्तु बादमें अपने मंत्री मेहता राजसी वैद्य और पुरोहित महेश दलपत आदिके कहनेसे फलोधीके सिवाय बाकीके सब गाँव छीन लिए । यह देख वे स्वयं बीकानेर आए और अपनी जागीरके गाँवोंको प्राप्त करनेकी उन्होंने बहुत कुछ चेष्टा की । परन्तु इसका कुछ फल न हुआ । इसपर लाचार हो इन्होंने देहली जानेका इरादा किया और अपनी माताको गंगास्नान

(१) बीकानेरकी ख्यातोंमें लिखा है कि अकबरने इनके पिताके जीतेजी ही इनको ५०० सवारोंका मनसब दिया था और इन्होंने भी उसके समय सिंधमें बड़ी वीरता दिखाई थी ।

करवानेके लिए लेजानेके बहानेसे ये घाट पहुँचे। वहाँसे देहली जाकर इन्होंने बादशाहसे सब घटना कह सुनाई।

राजा दलपतसिंहजी गद्दीपर बैठनेके बाद केवल एक बार ही शाही दरबारमें गए थे। उसके बाद यद्यपि बादशाहने कई बार उन्हें बुलवाया था तथापि वे हरबार टाल टूल करते रहे थे। इससे बादशाह उनसे नाराज था। अतः उसने मौका देख जियाउद्दीनखाँको फौज देकर सूरसिंहजीकी सहायताको भेजा। जब ये लोग बीकानेरके पास पहुँचे तब राजा दलपतसिंहजी भी अपनी सेनासहित मुकाबलेके लिए आ मौजूद हुए। युद्ध होनेपर शाही सेनाकी हार हुई। यह देख सूरसिंहजीने बीकानेरके बहुतसे सरदारोंको अपनी तरफ़ मिलाकर[1] दूसरी बार युद्धकी तैयारी की। इसपर राजा दलपतसिंहजी भी हाथीपर बैठकर रणक्षेत्रमें आ पहुँचे। परन्तु युद्धके प्रारम्भ होनेके पूर्व ही हाथीपर पीछेकी तरफ बैठे हुए चूरूके ठाकुर भीमसिंहने पीछेसे दलपतसिंहजीके दोनों हाथ बाँध उन्हें शाही सेनाके हवाले कर दिया। इसपर ये ५० सवारोंके साथ हिसारके सूबेदारके पास भेज दिये गए और कुछ समय बाद वहाँसे बादशाह जहाँगीरके पास अजमेरमें लाए गए। बादशाहने इनको क़ैदकर इनके चारों तरफ़ पहरेका प्रबन्ध कर दिया। यह घटना वि० सं० १६७० की है।

(१) खारबाके ठाकुर भाटी तेजमालने सूरसिंहजीसे कहा था कि यदि आप मेरी कन्याके साथ विवाह कर लें तो मुझे आपका विश्वास हो जाय और मैं आपकी तरफ हो जाऊं। इसीके अनुसार सूरसिंहजीने उसकी कन्यासे विवाहकर उसे अपनी तरफ मिला लिया।

(२) फारसी तवारीखोंमें लिखा है कि यद्यपि रायसिंहजीका विचार अपने छोटे पुत्र सूरसिंहजीको उत्तराधिकारी बनानेका था; परन्तु बादशाह जहाँगीरने

बीकानेरकी ख्यातोंमें लिखा है कि उन्हीं दिनों मारवाड़की तरफ़से चांपावत हाथीसिंह गोपालदासोत सुसराल जाते हुए अजमेरमें पहुँचा और जब उसने सुना कि दलपतसिंहजीको बादशाहने वहींपर कैद कर रक्खा है तब उसने किसीके साथ उन्हें अपना मुजरा (अभिवादन) कहलवाया । दलपतसिंहजीने इसकी एवज़में उससे मिलनेकी इच्छा प्रकट की । वीर चापावत सरदार अपने साथी राठोड़ोंको लेकर उनसे मिलने चला । परन्तु वहाँ पहुँचनेपर बादशाही सैनिकोंने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया । कहा सुनीमे बात बढ़ गई और राठोड़ोंने बादशाही पहरेदारोंको मार दलपतसिंहजीकी बेड़िया काट दीं । यह ख़बर पाते ही अजमेरका सूबेदार चार हज़ार सिपाहियोंको लेकर आ पहुँचा । राठोड़ बहुत थोड़े थे । अतः सबके सब दलपतसिंहजी सहित वहींपर वीरगतिको प्राप्त हुए । यह घटना वि० सं० १६७० की फागुन वदी ११ की है ।

इस निस्वार्थ वीरताके कारण ही अब तक चापावत सरदारोंको बीकानेरके किलेमे हाथी पोलतक घोड़ेपर चढ़कर जानेकी आज्ञा है । परन्तु दूसरे लोगोंको किलेके बाहर ही सवारीसे उतरना पड़ता है ।

८ राजा सूरसिंहजी ।

ये दलपतसिंहजीके छोटे भाई थे और उनके बाद वि० सं० १६७० के मंगसिरमें बीकानेरकी गद्दीपर बैठे ।

इनका जन्म वि० सं० १६५१ की पौष सुदी ११ को हुआ था ।

उनकी बातोंसे नाराज होकर बड़े पुत्र दलपतसिंहजीको गद्दीपर बिठा दिया । वि० सं० १६७० में जहाँगीरको खबर मिली कि सूरसिंहजीने बीकानेरपर अधिकार कर लिया है और दलपतसिंहजीको हिसारके फौजदार हाशिमने गड़बड़ करनेके कारण मरवा डाला है ।

गद्दीपर बैठनेके बाद ये अजमेरमें बादशाह जहाँगीरके पास पहुँचे। बादशाहने इनके मनसबमें पाँच सौ ज़ात और दो सौ सवारोंकी तरक्की की। इसके बाद ये बादशाहके साथ देहली चले गए। जब वहाँसे लौटने लगे तब इन्होंने कर्मचन्दके पुत्र लक्ष्मीचन्द और भागचन्दको बुलाकर बीकानेर आनेके लिए कहा। इसपर वे दोनों बीकानेर लौट आए। सूरसिंहजीने भी इन्हें अपना दीवान बनाकर प्रकटमें बड़ी मेहरबानी दिखाई। परन्तु करीब दो महीने बाद एक रातको सेना भेजकर बालबच्चोंसहित इन्हें मरवा डाला। इस प्रकार इन्होंने कर्मचंदके खानदानसे अपने पिताका बदला लेकर उनकी आज्ञाका पालन किया। इसके बाद पुरोहित मानमहेश, बारहट चौथदान, आदि अपने पिताके दूसरे शत्रुओंकी जागीरें भी छीन लीं। इस पर इन लोगोंने किलेके सामने आत्मघात करके प्राण दे दिये[1]।

वि० सं० १६७२ में चारण चोला गाडणने 'सूरसिंहजीकी बेल' नामक ग्रन्थ बनाया था। इस पर सूरसिंहजीने उसे लाख पसाव दिया।

जिस समय शाहजादे खुर्रमके बगावत करनेके कारण उसके भाई शाहजादे परवेजने उसपर चढ़ाई की उस समय नर्मदाके पासवाले युद्धमें सूरसिंहजी भी शाही सेनाके साथ थे।

वि० सं० १६८६ की चैत वदी ६ को बादशाह शाहजहाँने सूरसिंहजीको चार हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवारोंका मनसब देकर शाही सेनाके साथ दक्षिणकी तरफ़ भेज दिया। वहीं पर बुरहानपुर

(१) उक्त स्थानपर सूरसिंहजीने सूरसागर नामका तालाव बनवाया था। यह अब तक विद्यमान है।

सूबेके बोहरी नामक स्थानमें वि० सं० १६८८ के आश्विनके करीब इनका देहान्त हे गया[1]।

इनके ३ पुत्र थे—१ कर्णसिंह, २ शत्रुसाल[2], और ३ अर्जुनसिंह।

९ राजा कर्णसिंहजी[3]।

ये राजा सूरसिंहजीके बड़े पुत्र थे और अपने पिताके बाद वि० सं० १६८८ की कार्तिक वदी १३ को राजगद्दीपर बैठे। बादशाहने इन्हें दो हज़ारी ज़ात व डेढ हज़ार सवारोंका मनसब देकर रावका खिताब दिया था। इनका जन्म वि० सं० १६६३ की सावन सुदी ६ को हुआ[4] था।

राज्यपर बैठते ही इन्होंने गृहकलहकी जड़ मिटानेके लिए खारवेके ठाकुर तेजमालको और उसके पुत्रको मरवा डाला। इसके बाद ये देहली पहुँचे। बादशाह शाहजहाँने इन्हें चार हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवारोंका मनसब दिया। जिस समय बादशाहने वज़ीरखाको दक्षिणकी तरफ़ (दौलताबादको) भेजा उस समय इन (कर्णसिंहजी) को भी घोड़ा और ख़िलत (सरोपाव) देकर उसके साथ कर दिया। वहाँपर इन्होंने

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि सूरसिंहजीकी एक भतीजीका विवाह जैसलमेरके रावल भीमजीके साथ हुआ। भीमजीकी मृत्युके बाद वहाँवालोंने उनके शिशु पुत्रको मार डाला। इससे सूरसिंहजीने प्रतिज्ञा की कि आजसे बीकानेरकी राजकुमारीका विवाह जैसलमेरमें न किया जायगा। इस बातका पालन अब तक किया जाता है।

(२) शत्रुसालजीको बादशाहने पाँच सौ ज़ात और दो सौ सवारोंका मनसब दिया था।

(३) टॉड साहबने इनके पिताके जीते जी इनका २,००० सवारोंका मनसबदार और दौलताबादका सूबेदार होना लिखा है।

(४) कई ख्यातोंमें इनके जन्मका संवत् १६७३ लिखा है।

और इनके भ्राता शत्रुसालने बीजापुरके युद्धोमें बड़ी वीरताके काम किए । कहते हैं कि जवारीका परगना इन्हींकी वीरतासे विजय हुआ था । ये बहुत दिनों तक दक्षिणमें रहे ।

वि० सं० १६९२ की फागुन सुदी १० को बीजापुरके आदिलखाँकी और महाराष्ट्रवीर साहूकी सेनाने मिलकर बड़ी गड़बड़ मचाई । इसपर बादशाहने उनको दबानेके लिए जो सेना मुकर्रर की उसमें भी कर्णसिंहजी मौजूद थे । वि० सं० १६९३ की चैत सुदी १ को ये लोग शाहगढकी तरफ़से होते हुए धारोर पहुँचे और वहाँसे आगे बढ़कर तीन दिनकी लड़ाईके बाद इन्होंने अंबरचंपूसे सराधैनका किला छीन लिया । इस प्रकार उक्त दुर्गपर अधिकार कर यह सेना आगे बढ़ी और इसने धारासेवन, कान्ति, आदिके किलोंपर भी अधिकार कर लिया । इसके बाद बीजापुरकी सेनाने अनेक बार शाही सेनाका मुकाबला किया, परन्तु हरबार उसको हार कर भागना पड़ा । इन सब युद्धोंमें बीकानेरके राजा कर्णसिंहजी शाही फ़ौजके हरावल (अग्रभाग) में थे ।

जिस समय कर्णसिंहजी उधर बीजापुरके युद्धोंमें लगे हुए थे उस समय इधर बीकानेरमें लाखाणिया गाँवके करीब इनके राज्यवालोंके और नागोरके राव अमरसिंहजीके बीच झगड़ा उठा खड़ा हुआ । इसीके परिणामस्वरूप राव अमरसिंहजी आगरेमें सलावतखाँको मार कर वीरगतिको प्राप्त हुए ।

इसके बाद कर्णसिंहजी लौटकर बीकानेर आए । उन दिनों पूंगलके राव भाटी सुन्दरसेनने बीकानेरके आसपास बड़ी गड़बड़ मचा रक्खी थी । इसलिए इन्होंने पूंगलपर चढ़ाई कर वहाँके किलेको बर्बाद कर दिया और आगे बढ़ लखवेरेके जोहियोंसे दण्ड वसूल किया ।

जिस समय बादशाह शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके चारों शाहज़ादे राज्यके लिए लड़नेको तैयार हुए उस समय कर्णसिंहजी औरंगजेबके पास औरंगाबादमें थे। परन्तु जब औरंगजेब युद्धार्थ आगरेकी तरफ़ चला तब ये अपने पुत्र केसरीसिंह और पद्मसिंहको उसके पास छोड़कर स्वयं बीकानेर चले आए। इससे औरंगजेब इनसे नाराज़ हो गए। परन्तु कुछ समय बाद उसने इन्हें औरंगाबादके सूबेपर भेज दिया। वि० सं० १७२६ की आषाढ़ सुदी ४ को वहींपर इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने वहाँपर तीन गाँवें—कर्णपुरा, केसरीसिंहपुरा और पद्मपुरा—नामके बसाए थे[2], तथा कर्णपुरेमें कर्णीजीका एक मन्दिर भी बनवाया था।

इनके ८ पुत्र थे—१ अनूपसिंहजी, २ केसरीसिंहजी, ३ पद्मसिंहजी, ४ मोहनसिंहजी[3], ५ देवीसिंहजी, ६ मदनसिंहजी, ७ अजबसिंहजी और ८ अमरसिंहजी।

---

(१) बीकानेरकी तवारीखमें लिखा है कि औरंगजेबने सब राजाओंको मुसलमान बनानेका इरादा किया था। परन्तु कर्णसिंहजीके जाहिरा तौर पर विरोध करनेसे उसकी इच्छा पूरी न हुई। इसीसे वह इनसे दिलमें कुढ़ा हुआ था। कुछ समय बाद उसने इन्हें देहली बुलवाया। इसका इरादा वहाँपर इन्हें मरवा डालनेका था। परन्तु जिस समय ये अपने पुत्र केसरीसिंह और पद्मसिंहके साथ दरबारमें पहुँचे उस समय उसने अपना विचार बदल दिया। कहते हैं कि इन्हीं केसरीसिंहजीने दाराशिकोहके साथके युद्धमें औरंगजेबकी जान बचाई थी। इसीसे इन्हें देख बादशाहने इनके पिताको मरवानेका इरादा छोड़ दिया।

(२) वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) में बीकानेर महाराजाने कोकनवारीके साथ ही ये तीनों गाँव भी गवर्नमेन्टको सौंप दिए। इसकी एवजमें गवर्नमेंटने इनको २५,००० रुपए नकद और दो गाँव हिसार परगनेमें दिए।

(३) मोहनसिंहजीने एक हरिण पाला था। एक रोज उस हरिणको देहलीके कोतवालने पकड़ लिया। इसीसे इनके और कोतवालके बीच सरे दरबार झगड़ा हुआ और उसीमें ये मारे गए। इस पर इनके बड़े भाई पद्मसिंहने कोत-

१० महाराजा अनूपसिंहजी ।

ये कर्णसिंहजीके पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १७२६ में बीकानेरके राजा हुए । इनका जन्म वि० सं० १६९५ की चैत सुदी ६ को हुआ था ।

बादशाह औरंगजेबने इन्हें शाही फ़ौजके साथ दक्षिणकी तरफ़ भेज दिया । वहाँपर इन्होंने बीजापुर और गोलकुण्डाके युद्धोंमें बड़ी वीरता दिखाई । इसीसे बादशाहने इन्हे महाराजाकी पदवी दी । वि० सं० १७३५ में इन्होंने भाटियोंको दबानेके लिए अनूपगढ़का किला बनवाया । महाराजा अनूपसिंहजीके और उनके सरदारोंके बीच मनोमालिन्य हो गया था । इससे इन्होंने बाहरके लोगोंकी एक सेना एकत्रित की । इसी बीच स्वर्गवासी राजा कर्णसिंहजीके दासीपुत्र वनमालीदासने मुसलमान हो जानका वादा कर बादशाहसे बीकानेरका आधा राज्य प्राप्त कर लिया और उसपर अधिकार करनेके लिए शाही सेना लेकर रवाना हुआ । यह देख अनूपसिंहजीने उसे आधा राज्य देनेका वादाकर सोनगरा लक्ष्मीदासके द्वारा धोखेसे मरवा डाला और उसके साथ जो बादशाही अमीर था उसे भी एक लाख रुपए देकर अपनी तरफ़ मिला लिया ।

कुछ समय बाद ये मद्रासके बेलारी परगनेके अदोनीस्थानका प्रबन्ध करनेको भेजे गए । वहींपर वि० सं० १७५५ में महाराजा अनूपसिंहजीका देहान्त हो गया । इनके ४ पुत्र थे—१ स्वरूपसिंह, २ सुजानसिंह, ३ रुद्रसिंह और ४ आनन्दसिंह ।

बालको और उनके बालको मार भाईका बदला लिया । वि० सं० १७३९ में दक्षिणके युद्धमें तापती नदीके पास जादूराय दक्षिणीसे लड़कर ये वीरगतिको प्राप्त हुए । ये बड़े वीर और दानी थे ।

(१) बीकानेरकी ख्यातोंमें लिखा है कि बादशाहने इनको ३,००० सवारोंका मनसब भी दिया था ।

११ महाराजा स्वरूपसिंहजी।

ये अनूपसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १७५५ में अदोनी नामक स्थानमें ही उनके उत्तराधिकारी हुए। इसपर बादशाह औरंगजेबने इन्हें वहींपर रहनेकी आज्ञा भेज दी।

इनका जन्म वि० सं० १७४६ की भादौं वदी १ को हुआ था। अतः इनकी बाल्यावस्थाके कारण राज्यका कार्य इनकी माता सँभालती थीं। परन्तु उन्होंने कुछ सरदारोंके बहकानेसे अपने राज्यके चार कर्मचारियोंको मरवा डाला। इससे राज्यके कर्मचारी इनसे नाराज हो गए और उन्होंने स्वरूपसिंहजीके छोटे भाई सुजानसिंहजीको राज्य दिलवानेका विचार किया। इसी अवसरमें वि० सं० १७५७ में स्वरूपसिंहजीका अदोनीमें ही शीतला (चेचक) से देहान्त हो गया।

१२ महाराजा सुजानसिंहजी।

ये स्वरूपसिंहजीके छोटे भाई थे और उनके बाल्यावस्थामें ही मर जाने पर वि० सं० १७५७ की वैशाख सुदी ७ को बीकानेरकी गद्दीपर बैठे।

इनका जन्म वि० सं० १७४७ की सावन सुदी ३ को हुआ था।

वि० सं० १७६३ में बादशाह औरंगजेब मर गया। इसपर महाराजा अजीतसिंहजीने जोधपुरपर अधिकारकर मुसलमानी सेनाको वहाँसे भगा दिया। इसके बाद वि० स० १७६४ में उन्होंने बीकानेरपर फौज भेजी। परंतु अन्तमें उक्त सेना वहाँसे वापिस बुला ली गई।

वि० सं० १७७६ में बादशाह मुहम्मदशाहने इन्हें देहली बुलवाया। परन्तु इन्होंने शाही सहायताके लिए केवल अपनी सेनाको ही देहली भेज दिया।

वि० सं० १७७६ की आषाढ़ सुदी ८ को महाराजा सुजानसिंहजी शादी करनेके लिए डूंगरपुर गए और लौटते हुए करीब एक महीनेतक

उदयपुरमें महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीयके मेहमान रहे । फिर वहाँसे रवाना होकर नाथद्वारे होते हुए बीकानेरको लौट आए ।

वि० सं० १७९० के भादोंमें नागोरके राजा बखतसिंहजीने सरहदी झगड़ेके कारण बीकानेरपर चढ़ाई की और आसोज सुदी ११ को उनकी और बीकानेरकी सेनाओंके बीच लड़ाई हुई । परन्तु अन्तमें आपसमें सुलह हो गई । इसके बाद जोधपुरमहाराजा अभयसिंहजीने सेना लेकर खुद बीकानेरपर हमला किया । इसपर बीकानेर-महाराजकुमार जोरावरसिंहजी इनके मुकाबलेको आ पहुँचे । कुछ दिन तक तो युद्ध होता रहा; परन्तु फिर महाराणा संग्रामसिंहजीने बीचमें पड़ दोनों राजाओंके बीचका वैमनस्य दूर कर दिया ।

महाराजा सुजानसिंहजीके और राजकुमार जोरावरसिंहजीके बीच लोगोंके कहने सुननेसे झगड़ा हो गया था । परन्तु महाराजा अभयसिंहजीके साथके युद्धमें जोरावरसिंहजीने अच्छी वीरता दिखाई थी । इससे पितापुत्रमें मेल हो गया और सुजानसिंहजीने प्रसन्न होकर राजका काम जोरावरसिंहजीको सौंप दिया ।

बीकानेरकी ख्यातोंमें लिखा है कि उन्हीं दिनों नागोरके स्वामी बखतसिंहजीने बीकानेरके किलेदार सांखला दौलतसिंह आदिको अपनी तरफ़ मिलाकर उक्त किले पर अधिकार करनेकी कोशिश की थी; परन्तु इसका भेद खुल जानेसे सांखला दौलतसिंह तो मार दिया गया और किलेमें नवीन प्रबन्ध कर दिया गया । इससे बखतसिंहजीको सफलता न हुई ।

(१) बीकानेरकी ख्यातोंमें लिखा है कि बखतसिंहजीको इस युद्धमें सफलता न हुई; क्योंकि राजकुमार जोरावरसिंहजीने बड़ी वीरतासे इनका सामना किया था ।

वि० सं० १७९२ की पौष सुदी १३ को महाराजा सुजानसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। इनके दो पुत्र थे—ज़ोरावरसिंह और अभयसिंह।

१३ महाराजा ज़ोरावरसिंहजी।

ये सुजानसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १७९२ की माघ वदी ९ को बीकानेरके राज्यसिंहासन पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १७६९ की माघ वदी १४ को हुआ था।

इनके राज्यपर बैठनेके समय बीकानेरके दक्षिणी भाग पर जोधपुरमहाराजा अभयसिंहजीका अधिकार था। परन्तु इन्होंने राज्य पर बैठते ही वहाँसे जोधपुरकी सेनाको हटा दिया।

वि० सं० १७९६ में जोधपुरमहाराजा अभयसिंहजीने बीकानेरपर चढ़ाई कर उक्त नगरको घेर लिया और चूरू आदिके कई जागीरदार भी उनसे मिल गए। इस पर बीकानेरवालोंने नागोरके स्वामी बखतसिंहजीसे सहायता माँगी। परन्तु उन्होने खुद अपने बड़े भाईके मुकाबले पर आना उचित न जान बीकानेरसे आए हुए आदमियोंको जयपुरमहाराजा जयसिंहजीके पास सहायता माँगनेके लिए भेज दिया। उनके जयपुर पहुँचने पर वहाँके महाराजाने जोधपुर पर चढ़ाई की। इससे लाचार होकर अभयसिंहजीको बीकानेरका घिराव उठाना पड़ा और वे अपनी सेनाको लेकर जोधपुरकी तरफ़ चले गए। इसके बाद बीकानेरमहाराजा भी अपनी सेना साथ ले जयपुरवालोंके शरीक होनेको रवाना हुए।

(१) बीकानेरकी ख्यातोंमें लिखा है कि वि० सं० १७७७ में बादशाह मुहम्मदशाहने इन्हें दक्षिणकी तरफ भेज दिया था। वहाँ पर ये करीब १० वर्ष तक रहे। किसी किसी ख्यातमे यह लिखा है कि वि० सं० १७६३ में औरंगजेबके मरने पर बहादुरशाहने इन्हें दक्षिणकी तरफ भेज दिया था। वहाँसे लौटकर वि० सं० १७७६ में ये बीकानेर आए।

कुछ दिन तक तो जयपुरमहाराजा जोधपुरको घेरे रहे और उसके बाद अपनी फ़ौजके खर्चके रुपए वसूल कर जयपुरको लौट गए । मार्गमें बनाड़ नामक गाँवमें इनकी मुलाकात ज़ोरावरसिंहजीसे हुई । वहाँसे ये दोनों राजा जयपुर चले गए । कुछ दिन बाद ज़ोरावरसिंहजी बीकानेरकी तरफ़ लौटे । मार्गमें जिस समय ये सानू नामक स्थान पर पहुँचे उस समय इन्होंने चूरूके ठाकुरको भय उसके भाईके धोखेसे मरवाकर अपने साथ किए हुए विश्वासघातका बदला लिया ।

इसके बाद ये हिसारकी तरफ अधिकार करनेको गए और वहाँसे लौटते हुए वि० सं० १८०२ की जेठ सुदी ६ को अनूपपुरमें इनका स्वर्गवास हो गया । इनके पीछे कोई पुत्र न था । इस लिए इनके छोटे भाई (महाराजा अनूपसिंहजीके छोटे पुत्र) आनन्दसिंहजीके द्वितीय पुत्र गजसिंहजी इनकी गद्दीपर बिठाए गए[1] ।

१४ महाराजा गजसिंहजी ।

ये महाराजा अनूपसिंहजीके छोटे पुत्र आनन्दसिंहजीके द्वितीय पुत्र थे और अपने चाचा ज़ोरावरसिंहजीके पीछे लड़का न होनेके कारण वि० सं० १८०२ की आषाढ़ वदी १४ को बीकानेरकी गद्दीपर बिठाए गए । इनका जन्म वि० सं० १७८० की चैत सुदी ४ को हुआ था ।

(१) यद्यपि आनन्दसिंहजीके बड़े पुत्र होनेके कारण अमरसिंहजी राज्यके अधिकारी थे तथापि भूकरकाके ठाकुर कुशलसिंहने इनके छोटे भाईको गद्दीपर बिठा दिया । महाराजाकी मृत्युके बाद कुशलसिंहजी ही राज्यका प्रबंध करते थे। उन्होंने गजसिंहजीसे इसकी एवजमें यह शपथ ले ली थी कि वे जिस समय जोधपुरकी सेनाने बीकानेर घेर रक्खा था उस समयके खर्चेका हिसाब उनसे नहीं माँगेगे ।

जब गजसिंहजी गद्दीपर बैठ गए तब इनके बड़े भाई अमरसिंहजी महाजनों और भादराके ठाकुरोंके साथ अजमेरमें जोधपुरमहाराजा अभयसिंहजीके पास पहुँचे और अपना सारा हाल सुनाकर सहायताकी प्रार्थना करने लगे। इस पर वि० सं० १८०४ में अभयसिंहजीने इनकी सहायताके लिए बीकानेरपर सेना भेजी। महाराजा गजसिंहजी भी दल-बल सहित सामने आए। कई दिन तक युद्ध होता रहा। अन्तमें जोधपुरकी सेना वापिस लौट गई। इसी वर्ष बखतसिंहजी देहलीसे लौटे और उनके और उनके भ्राता महाराजा अभयसिंहजीके बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस पर महाराजा गजसिंहजी भी अपना बदला लेनेके लिए बखतसिंहजीकी सहायताको जा पहुँचे। परन्तु मल्हारराव होल्करने बीचमें पड़कर इस झगड़ेको शान्त कर दिया।

वि० सं० १८०७ में महाराजा रामसिंहजीके और बखतसिंहजीके बीच जो युद्ध हुआ था उसमें भी गजसिंहजीने बखतसिंहजीका पक्ष लिया था। परन्तु उसमें उन्हें सफलता न हुई।

वि० सं० १८०८ के माघमें ये जैसलमेरके रावल अखयसिंहजीकी कन्यासे विवाह करनेके लिए गए[1]।

वि० सं० १८०९ मे मराठोंकी सहायतासे जिस समय रामसिंहजीने जोधपुरपर चढ़ाई की उस समय गजसिंहजी भी महाराजा बखतसिंहजीकी तरफ़से लड़े थे। इसी वर्ष अहमदशाहने इन्हें मनसूरअलीके दमनके लिए सेना भेजनेको लिखा। इन्होंने भी तत्काल ही एक बड़ी सेना भेज बादशाहकी आज्ञाका पालन किया। इससे प्रसन्न होकर

(१) इस यात्रामें महाराजा बखतसिंहजीके पुत्र महाराजकुमार विजयसिंहजी भी इनके साथ थे।

बादशाह अहमदशाहने वि० सं० १८१० में इन्हें सात हज़ारी मनसब, राजराजेश्वरकी पदवी, हिसारका परगना और साथ ही अपना सिक्का बनानेका अधिकार भी दिया ।

वि० सं० १८११ में फिर महाराजा रामसिंहजीने मराठोंकी सहायतासे मारवाड़पर हमला किया । जोधपुरमहाराजा विजयसिंहजी भी अपनी सेना लेकर मेड़तेके पास आ पहुँचे । युद्ध होनेपर विजयसिंहजीको हारकर नागोरकी तरफ़ भागना पड़ा । इस युद्धमें भी बीकानेरके महाराजा उनके साथ थे । इसके बाद गजसिंहजी बीकानेर चले आए । कुछ दिन बाद महाराजा विजयसिंहजी भी बीकानेर आए और इन्हें साथ लेकर जयपुरमहाराजा माधवसिंहजी प्रथमके पास सहायताके लिए पहुँचे । परन्तु उन्होंने बहुत कुछ कहने सुननेपर भी सहायता करना अस्वीकार कर दिया । इसपर ये दोनों लौटकर वापिस चले आए।

वि० सं० १८१२ में इनका विवाह जयपुरमहाराजा जयसिंहजीकी कन्यासे हुआ । इसी वर्ष बीकानेरमे भीषण अकाल पड़ा । परन्तु राज्यकी तरफ़से शहरपनाह आदि बनवानेके काम प्रारम्भ करके प्रजाके लिए अन्नवस्त्रका अच्छा प्रबन्ध कर दिया गया । इसके बाद बीकानेरमें कई भीतरी झगड़े उठ खड़े हुए। परन्तु महाराजाने उन्हें बड़ी योग्यतासे शान्त किया ।

वि० सं० १८२४ में जिस समय भरतपुरके जाटराजा जवाहिरमल्लने जयपुरपर चढ़ाई की उस समय गजसिंहजीने अपनी सेना जयपुरकी सहायताको भेजी और स्वयं भी जानेको तैयार हुए। परंतु लड़ाई समाप्त हो जानेके कारण यह विचार स्थापित करना पड़ा।

वि० सं० १८२७ की चैत वदी ४ को महाराजाकी पोती (कुँवरराजसिंहजीकी पुत्री) का विवाह जयपुरमहाराजा पृथ्वीसिंहजीसे हुआ ।

इसके बाद जिस समय मेवाड़में बखेड़ा खड़ा हुआ उस समय भी ये महाराणा अरिसिंह (अड़सी) जीकी सहायताके लिए गए और वहाँसे नाथद्वारे होते हुए बीकानेरको लौट आए।

वि० सं० १८३२ में बीकानेरमहाराजा गजसिंहजी और उनके पुत्र महाराजकुमार राजसिंहजीके बीच कुछ खटपट हो गई। इससे पहले तो राजसिंहजी देष्णोकमें जारहे और पीछे वि० सं० १८३८ में वहाँसे जोधपुरमहाराजा विजयसिंहजीके पास चले गए, जहाँ वे वि० सं० १८४२ तक रहे। इसी वर्ष महाराजा विजयसिंहजीने पितापुत्रोंमें सुलह करवाकर इन्हें वापिस बीकानेर भेज दिया।

वि० सं० १८४४ की चैत सुदी ६ को महाराजा गजसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। इनके कई पुत्र थे।

१५ महाराजा राजसिंहजी।

ये राजसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १८४४ की वैशाख सुदी २ को उनके उत्तराधिकारी हुए[1]। इनका जन्म वि० सं० १८०१ की कार्तिक वदी २ को हुआ था।

वि० सं० १८४४ की वैशाख सुदी ८ को राजयक्ष्मासे इनका देहान्त हो गया। इनके प्रतापसिंह नामका १० वर्षका एक पुत्र था।

[१६ प्रतापसिंहजी।]

कहते हैं कि मृत्युके समय राजसिंहजीने अपने पुत्रको राज्यका उत्तराधिकारी बनाकर राज्यका प्रबन्ध अपने छोटे भाई सूरतसिंहजीको सौंप

(१) किसी किसी ख्यातमें वैशाख सुदीके बदले वैशाख वदी २ लिखा मिलता है।

दिया था[1]। परन्तु ये उसे मारकर स्वयं ही राजा बन बैठे।

प्रतापसिंहजीका जन्म वि० सं० १८३४ में हुआ था।

१६ महाराजा सूरतसिंहजी।

ये राजसिंहजीके छोटे भाई थे और बीकानेरकी ख्यातोंके अनुसार वि० सं० १८४४ की आसोज सुदी १२ को गद्दी पर[2] बैठे।

इनका जन्म वि० सं० १८२२ की पौष सुदी ६ को हुआ था।

इन्होंने अपने भतीजेको मारकर राज्यपर बैठनेके कारण राज्यमें जो गड़बड़ शुरू हो गई थी उसे शान्तकर वि० सं० १८४७ में अपने राज्यकी नीव दृढ कर ली और वि० सं० १८५५ में जयपुर और बीकानेरके बीचके सरहदी झगड़ोंको दोनों राज्योंके वकीलोंकी मारफत तय कर लिया। वि० सं० १८५६ में इन्होंने सोढल गाँवके स्थानमें अपने नाम पर सूरतगढ नामक नगर बसाया।

वि० सं० १८६३ में उदयपुरमहाराणा भीमसिंहजीकी कन्या कृष्णाकुमारीके विवाहके बाबत जोधपुरके महाराजा मानसिंहजी और जयपुरके महाराजा जगतसिंहजीके बीच विरोध पैदा हो गया और इसीके कारण जयपुरमहाराजा जगतसिंहजीने धौंकलसिंहजीका बहाना लेकर जोधपुरको घेर लिया। यह घेरा वि० सं० १८६४ की भादों सुदी १३ तक रहा। इसमें बीकानेरमहाराजा सूरतसिंहजी भी जयपुर-वालोंके साथ थे। परन्तु इस चढ़ाईमें जयपुरवालोको सफलता न हुई और सूरतसिंहजी भी नागोर होते हुए बीकानेर लौट आए।

---

(१) टाड साहबने लिखा है कि १८ मास तक तो सूरतसिंहजीने ठीक तौरसे राज्य प्रबन्ध किया, इसके बाद राज्यके सरदारोंको अपनी तरफ़ मिलाकर और विरोधियोंको कैद करके भतीजेको मार डाला। इस प्रकार बीकानेरपर इनका अधिकार हो गया। अतः प्रतापसिंहजी नाम मात्रके राजा हुए।

(२) किसी किसी ख्यातमें इस घटनाकी तिथि आसोज वदी २ लिखी है।

वि० सं० १८६५ में इधर तो जोधपुरमहाराजा मानसिंहजीने सूरतसिंहजीसे बदला लेनेके लिए संघवी इन्द्राजकी अध्यक्षतामें बीकानेर पर सेना भेजी और उधरसे जोइया आदि सिंधके मुसलमानों और बहावलपुरवालोंने[1] चढ़ाई की। इसपर लाचार होकर सूरतसिंहजीने फलोधीका परगना और तीन लाख रुपए देकर जोधपुरवालोंसे सुलह कर ली।

इसके बाद वि० सं० १८७० में आयस (नाथ) देवनाथजीके उद्योगसे जोधपुर और बीकानेरके महाराजाओंमें मित्रता हो गई। इसपर महाराजा सूरतसिंहजी खुद जोधपुर गए। वहाँके महाराजा मानसिंहजीने इनका बड़ा आदर सत्कार किया।

वि० सं० १८७१ में चूरूके जागीरदारने बगावत की। इसपर महाराजाने सेना भेजकर चूरू जब्त कर लिया।

वि० सं० १८७२ में बीकानेरके जागीरदारोंने और मीरखा व जमशेदखा आदिने राजमें उपद्रव मचाया। इसी गड़बड़में वि० सं० १८७३ में मौका पाकर चूरूके जागीरदारने वहाँके क़िलेपर अधिकार कर लिया। इस गड़बड़को देख वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१८ की ९ मार्च को) में सूरतसिंहजीने अँगरेज़ोंसे (कम्पनीसे) सन्धि कर ली।

इसीके अनुसार कम्पनीने अपनी सेना बीकानेरमहाराजाकी सहा-

---

(१) सूरतसिंहजाने इनके छः किले वापिस लौटाकर इनसे सुलह कर ली।

(२) जिस समय जोधपुरको सेनाने बीकानेरको घेर रक्खा था उस समय मि० एलफिन्स्टन काबुल जाते हुए बीकानेरकी तरफसे निकले। बीकानेरमहाराजाने इनका बड़ा सत्कार किया और इनसे कम्पनीकी सहायता प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु उस समयकी अँगरेज़ोंकी नीतिके अनुसार उन्होंने इस कार्यमें अपनी असमर्थता प्रकट की।

यताको भेजी और बागी सरदारोंको निकालकर बीकानेरके १२ इलाके महाराजको सौंप दिये[1]।

वि० सं० १८७७ में इनके बड़े महाराजकुमारका विवाह उदयपुरके महाराणा भीमसिंहजीकी पुत्रीसे हुआ और मँझले कुमार मोतीसिंहका विवाह बागौरके अधिपति शिवदानसिंहजीकी कन्यासे हुआ।

वि० सं० १८८५ की चैत सुदी ९ को महाराजा सूरतसिंहजीका स्वर्गवास हो गया।

इनके तीन पुत्र थे—१ रत्नसिंह, २ मोतीसिंह, ३ लखमसिंह।

१७ महाराजा रत्नसिंहजी।

ये सूरतसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १८८५ की वैशाख वदी ५ को बीकानेरके सिंहासनपर बैठे।

इनका जन्म वि० सं० १८४७ की पौष वदी ९ को हुआ था।

इनके राज्यपर बैठनेपर जैसलमेरके भाटी सरदारोंने बीकानेर राज्यके सरहदी प्रदेशमें उपद्रव करना शुरू किया। इसपर रत्नसिंहजीने वहाँपर शान्ति स्थापित करनेके लिए सेना रवाना की। परन्तु सेनाको सफलता न हुई। इसी बीच अँगरेजोंने हस्तक्षेपकर उदयपुरमहाराणा जवानसिंहजीके मारफत मामला निपटा दिया।

इसी प्रकार कम्पनीने सर जार्ज क्लार्क द्वारा जोधपुर, जयपुर, और बीकानेरकी सीमाके झगड़े भी तय करवा दिये। इसके बाद सरहदी किलोंको तुड़वाकर महाजनके ठाकुरको कैद कर लिया। यद्यपि कुछ

(१) इनमेंका भादराका गढ़ प्रतापसिंह पहाड़ासहोतसे सिक्खोंने छीन लिया था। वह भी कम्पनी सरकारने महाराजको दिलवा दिया। परन्तु उसने उक्त परगना अपनी दी हुई सैनिक सहायताके बदले ४ वर्ष तक अपने अधिकारमें रक्खा।

दिन बाद ६०,००० रुपए दण्डके देकर उसने महाराजासे क्षमा माँग ली, तथापि वि० सं० १८८६ में महाजनके ठाकुर वैरीसालने फिर उपद्रव उठाया । महाराजने सेना भेज उसकी जागीर पर अधिकार कर लिया । यह देख उक्त ठाकुर जैसलमेर और पूंगलके भाटियोंसे जा मिला । महाराजने पूंगलपर आक्रमण कर उक्त प्रदेश भाटी शार्दूल-सिंहको दे दिया ।

वि० सं० १८८८ में अलावाना नामक स्थानपर महाराजकुमारके नामपर 'सरदार शहर' बसाकर वहाँपर एक क़िला बनवाया गया । इसी साल देहलीके बादशाह अकबरशाह द्वितीयकी तरफ़से ख़िलअत, हाथी, घोड़े, नक्कारा आदिके साथ ' नरेन्द्रसवाई ' का खिताब महाराजा रत्न-सिंहजीको दिया गया । जब ये चीज़ें बीकानेर पहुँचीं तो महाराजाने बड़े आदरके साथ इन्हें ग्रहण किया । इसके बाद दण्डके रुपए लेकर महाराजाने महाजन, बीदास और चारवासके जागीरदारोंको उनकी जागीरें लौटा दीं । इसी साल आप तीर्थयात्रार्थ हरिद्वारकी तरफ़ गए और वापिस लौटते हुए हिसारके किलेसे ठाकुर प्रतापसिंहको छुड़वा दिया । यह डकैतीके अपराधमें पकड़ा गया था । कुछ दिन बाद इसने फिर वही काम शुरू किया, तब इन्होंने उसे देष्णोककी तरफ़ भगा दिया ।

वि० सं० १८९१ मे रत्नगढमें महाराजाकी और एजेण्ट गवर्नरज-नरलकी मुलाकात हुई और महाराजाने डकैती रोकनेके लिए २२ हजार सालाना खर्चेपर एक फ़ौज भर्ती की । इसका नाम 'शेखावाटी ब्रिगेड' रक्खा गया । इसपर कम्पनी सरकारका अधिकार था । यह सेना ७ वर्ष तक रही ।

वि० सं० १८९३ में रत्नसिंहजी गयाजीकी यात्राको गए और लौटते हुए रीवाँमें इनके महाराजकुमार सरदारसिंहजीका विवाह हुआ ।

वि० सं० १८९६ मे आप पुष्करकी यात्राको गए और वहाँसे निमंत्रण पाकर उदयपुर पहुँचे । यहाँपर पौष सुदी १२ को महाराणा सरदारसिंहजीकी कन्याके साथ महाराजकुमार सरदारसिंहजीका दूसरा ब्याह हुआ ।

वि० सं० १८९७ में उदयपुरमहाराणा सरदारसिहजी तीर्थयात्रासे लौटते हुए बीकानेर पहुँचे और वहींपर उनके साथ रत्नसिंहजीकी कन्याका विवाह हुआ

वि० सं० १८९९ में महाराजा रत्नसिंहजी गवर्नर जनरलसे मिलनेके लिए देहली गए और उन्होंने अफ़गान-युद्धके अवसर पर २०० ऊँट सहायताके लिए दिए ।

वि० सं० १९०१ (ई० स० १८४४) में बीकानेरकी सरहदमेंसे होकर जानेवाले मालपर लगनेवाले चुंगीके नियम बनाये गए ।

इसके बाद सिक्खोंके साथकी लड़ाईमें सहायता देनेके कारण कम्पनीने इन्हें दो तोपें भेट दीं । धीरे धीरे राज्यके सीमासम्बन्धी सारे झगड़े भी कम्पनीने निपटा दिये । इनके समय शेखावाटीके राजपूत डूंगजी और जवारजी आगरेके किलेसे निकल भागे थे । उनमेंसे डूंगजी तो जोधपुरकी तरफ़ गया और जवारजी बीकानेर आया । इस पर कम्पनी सरकारने महाराजाको उसे अपने सुपुर्द करनेके लिए लिखा । परन्तु इन्होंने उसके उपद्रवोंकी जिम्मेदारी लेकर उसको अपने पास रख लिया । वि० सं० १९०८ की सावन सुदी ११ को इनका स्वर्गवास हो गया ।

इन्होंने अपने राज्यमें राजपूत जातिमें प्रचलित कन्यावधको और विवाह आदिके समय होनेवाले चारणोंके उपद्रवोंको रोक दिया था।

इन्हींके समय जागीरदारोंसे रेख (नकद रुपए वसूल करने) की प्रथा चली।

१८ महाराजा सरदारसिंहजी।

ये रत्नसिंहजीके पुत्र थे और उनकी मृत्युके बाद वि० सं० १९०८ की भादौं वदी ७ को गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १८७५ की भादौं सुदी १४ को हुआ था।

इनके गद्दी पर बैठनेके समय राज्य पर करीब साढ़े आठ लाखका ऋण था; क्योंकि कुछ अरसेसे राज्यमें उपद्रव जारी था और बीचबीचमें अकालोंने भी इसमें सहायता दी थी। अतः इस ऋणसे पीछा छुड़वानेके लिए राज्यप्रबन्धको सुधारना अत्यन्त आवश्यक था। इसी लिए इन्होंने करीब १८ दीवान बदले और लगानमें भी वृद्धि की।

वि० सं० १९१४ में गदरके समय महाराजाने अँगरेजोंको हाँसी हिसारके किले छीननेमें अच्छी सहायता दी और जो अँगरेज भागकर बीकानेर पहुँचे उनकी हर तरहसे रक्षा की। इससे प्रसन्न होकर भारत गवर्नमेंटने वि० सं० १९१८ में इन्हें टीबी (सिरसा) परगनेके ४१ गाँव [1]दिये। इसके दूसरे ही वर्ष इनको और इनके वंशजोंको गोद लेनेका अधिकार मिला।

वि० सं० १९२५ में जागीरदारोंके उपद्रव और डकैतियोंको रोकनेके लिए गवर्नमेंटकी तरफ़से मि० ब्रैडफोर्ड सुजानगढ़ आए और

---

(१) ये गाँव पहले गवर्नमेंटने बीकानेरसे ले लिये थे। वि० स० १९२६ (ई० स० १८६९) में इन गाँवोंके प्रबन्धमें महाराजाकी तरफसे कुछ परिवर्तन किया गया।

इसके बाद ही कैप्टन पाउलट बीकानेरके पोलिटिकल एजेण्ट नियत हुए।

वि० सं० १९२६ में गवर्नमेंटके और बीकानेर महाराजके बीच एक दूसरेके अपराधियोंको एक दूसरेको सौंपनेके विषयमें संधि हुई[1]।

वि० सं० १९२७ में पोलिटिकल एजेण्टने सरदारोंकी शिकायतोंको दूर करनेके लिए जागीरोंके विषयमे कुछ कायदे बनाए। इनके अनुसार जागीरदारोंको नजरानेके सिवाय राज्यकी सहायताके लिए जो घोड़े रक्खे जाते थे उनकी एवजमें फ़ी घोड़ा २०० सालाना राज्यको देना पड़ा। यह प्रबन्ध १० वर्षके लिए किया गया था।

वि० सं० १९२८ में राज्यमें बाक़ायदा दीवानी, फौजदारी अदालतें और काउंसिलकी स्थापना हुई।

वि० सं० १९२९ (ई० स० १८२७ की १६ मई) की वैशाख सुदी ८ को महाराजा सरदारसिंहजीका स्वर्गवास हो गया।

इनके पीछे कोई पुत्र न था। इसलिए ठाकुर लालसिंहजीके पुत्र डूंगरसिंहजी बीकानेरकी गद्दीपर बिठाए गए। ये बीकानेर महाराजा गजसिंहजीकी पाँचवीं पीढ़ीमें थे।

१९ महाराजा डूंगरसिंहजी।

ये महाराजा सूरतसिंहजीके छोटे भाई छत्रसिंहजीके वंशमें थे। वि० सं० १९२९ की श्रावण वदी १ (ता० २१ जुलाई सन् १८७२) को इनका राजतिलक हुआ[2]।

---

(१) वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में इसमें कुछ परिवर्तन करके ब्रिटिश भारतके मुलजिमों पर ब्रिटिश कानूनका प्रयोग करना निश्चित हुआ।

(२) इनके राज्यपर बैठनेके समय कुछ लोगोंने गड़बड़ की। परन्तु गवर्नर जनरलके एजेंटके असिस्टेंट कैप्टिन ब्रैडफोर्डने भुजानगढ़से आकर स्वर्गवासी महाराजाकी पटरानी आदिकी सलाहसे इनको गोद बिठा दिया।

इनका जन्म वि० सं० १९११ में हुआ था। इनके राजगद्दीपर बैठनेके समय इनकी अवस्था केवल १८ वर्षकी थी। इस लिए राज्य-प्रबन्ध पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टिन बिटनकी देखरेखमें रीजैंसी काउंसिलके अधीन रहा।

वि० सं० १९२९ की माघ वदी ९ (ई० स० १८७३ की २२ जनवरी) को गवर्नर जनरलके राजपूतानाके एजेण्ट कर्नल पेलीने बीकानेर जाकर १८ वर्षकी अवस्थामें महाराजाको राज्यके अधिकार सौप दिए। इस पर महाराजा डूंगरसिंहजीने अपने पिता लालसिंहजीको महाराजका खिताब देकर काउन्सिलका सभापति बनाया।

इसके करीब एक वर्ष बाद जागीरदारोंने मिलकर गवर्नमेंटसे राज्य-प्रबन्धकी शिकायत की। इसपर गवर्नर जनरलके एजेंटने महाराजाका ध्यान इस तरफ दिलाया और अपने पोलिटिकल एसिस्टेन्टको राज्यके भीतरी कामोंमें विशेष हस्तक्षेप न करनेको लिख दिया।

वि० सं० १९३१ की आसोज वदी ८ को महाराजाने गवर्नर जनरलके एजेंट सर लेविस पेलीसे सांभरमें भेट की।

वि० सं० १९३२ की माघ वदी १३ को आप प्रिंस ऑफ़ वेल्ससे भेट करने आगरे गए। इसके बाद बूंदी और किशनगढ़नरेशोंसे मिलकर आप बीकानेर लौट आए।

वि० सं० १९३३ की फागुन वदी ३ को आपका विवाह कच्छके रावजीकी कन्यासे हुआ। यहाँसे आप द्वारिकाकी यात्राको गए।

वि० सं० १९३६ (ई० स० १८७९) में गवर्नमेंटने राज्यके साथ एक सन्धि की। इसके अनुसार दो स्थानोंको छोड़कर और सब स्थानोंका नमकका बनाया जाना बंद कर दिया गया। साथ ही इन दो स्थानोंमें भी सालाना नमकका वजन ३०,००० मन मुकर्रर हो गया। इसके अलावा जो नमकका निसार या पैसार राज्यमें हो उसपर गवर्न-

मेंटका कर नियत हो गया। इस प्रकार मादक वस्तुओंका निसार भी बंद कर दिया गया। इसकी एवजमें गवर्नमेंटने सालाना ६,००० रुपए नक़द और आठ आने मनके हिसाबसे फलोधी और डीडवानेका २०,००० मन नमक देना निश्चित किया। इस संधिके अनुसार गवर्नमेंटके नमक पर राज्यकी तरफ़से कर लगानेका भी निषेध हो गया।

वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में बीकानेर, पटियाला और जयपुरके बीच एक दूसरेके अपराधियोंके लेने देनेके विषयमें संधिकी अवधि बढ़ाई गई[1]।

पहले लिखा जा चुका है कि राज्यपर बहुतसा ऋण हो गया था। इसको हटानेके लिए महाराजाने (युद्धके समयकी सहायताकी एवजके) करोंमें वृद्धि कर उनके वसूल करनेमें भी कुछ सख्तीसे काम लिया। इस पर वि० सं० १९४१ में बीकानेरके सरदारोंने बग़ावत शुरू की और धीरे धीरे यह राज्यकी शक्तिसे बाहर हो गई। यह देख गवर्नर जनरलके एजेण्ट सर एडवर्ड बैडफोर्ड सेना लेकर नसीराबादसे रवाना हुए। यह देख बाग़ी सरदारोंने अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद राज्यकी देख भालके लिए पोलिटिकल एजेण्टकी नियुक्ति हुई।

वि० सं० १९४४ की भादौ वदी ३० (ई० स० १८८७ की १९ अगस्त) को महाराजाका स्वर्गवास हो गया।

महाराजा डूंगरसिंहजीको मकान आदि बनवानेका बड़ा शौक था। आपने बीकानेरके किलेमें कई मकान और काशी, हरिद्वार, आदि तीर्थोंमें कई मन्दिर बनवाए थे।

आपके राज्य समय बीकानेरमें अनेक सुधार हुए। पुलिसका प्रबन्ध किया गया, स्कूल आदिक खोले गए, गाँवोंकी हदबन्दी की गई। इस

(१) यह संधिनियम गवर्नमेंटने वि० सं० १९३० में बनाए थे।

प्रकार अनेक लोकहितकर कार्य हुए और वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में राज्यमें पहली मर्दुमशुमारी की गई।

महाराजा डूंगरसिंहजीके पीछे पुत्र न होनेके कारण उनके छोटे भाई गंगासिंहजी उनके गोद आए ।

२० महाराजा गङ्गासिंहजी ।

ये डूंगरसिंहजीके छोटे भाई थे और उनके स्वर्गवास होने पर वि० सं० १९४४ की भादों सुदी १३ (३१ अगस्त ई० स० १८८७) को बीकानेर की गद्दी पर बैठे । इनका जन्म वि० स० १९३७ की आसोज सुदी १० (३ अक्टोबर सन् १८८०) को हुआ था ।

राज्यपर बैठते समय आपकी अवस्था केवल ७ वर्षकी थी । इस लिए राज्यप्रबन्ध रीजेंसी काउंसिलको सौंपा गया और उसके अध्यक्ष पोलिटिकल एजेण्ट कैप्टिन थार्नटन नियुक्त हुए । इसी समय अपीलका महकमा बनाया गया ।

महाराजा गंगासिंहजीने करीब ५ वर्ष तक मेओ कालिज अजमेर-में शिक्षा प्राप्त की और इसके बाद करीब ४ वर्ष तक काउन्सिलके उपसभापतिकी हैसियतसे राज्यकार्य सीखा ।

वि० स० १९४६ (ई० स० १८८९) में जोधपुर और बीकानेरकी संयुक्त रेल्वे बनानेका निश्चय हुआ और वि० सं० १९४८ (९ दिसंबर १८९१) को पहले पहल सर्व साधारणके लिए यह लाईन खोली गई । वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) में मेड़ता रोडसे कुचामन रोडतक की लाइन खुली । इसी प्रकार इसका विस्तार बराबर होता रहा ।

---

(१) इसी समय ऊटोंका रिसाला कायम हुआ और पी० डब्ल्यू० डी० का महकमा खोला गया ।

वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में जोधपुरके और वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९१) में जैसलमेरके साथ अपराधियोंके देन लेनके बाबत बीकानेर राज्यकी संधि हुई । इसी प्रकार आगे और भी रियासतोंके साथ प्रबन्ध किया गया ।

वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) में महाराजाके और गवर्नमेंटके बीच एक संधि हुई। इसके अनुसार बीकानेरका रुपया गवर्नमेंटकी टकसालमें बनने लगा । यह संधि ३० वर्षके लिए की गई थी ।

वि० सं० १९५५ की मंगसिर सुदी ३ (ई० स० १८९८ की १६ दिसंबर) को राज्यका प्रबन्ध महाराजाके हाथमें सौंप दिया गया। वि० सं० १९५६ में राज्यमें अकालका प्रकोप हुआ । परन्तु राज्यकी तरफसे इसका बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया । इससे प्रसन्न होकर गवर्नमेंटने महाराजाको प्रथम श्रेणीका 'कैसरे हिन्द पदक' दिया । इसी साल (ई० स० १८९९) में महाराजाने रेल्वेद्वारा अधिकृत भूभागका प्रबन्ध अलग कर दिया तथा बीकानेर और जोधपुर राज्यकी तरफ़से गवर्नमेंटसे एक सन्धि हुई । इससे बालोतरासे हैदराबाद तक रेल बनानेका निश्चय हुआ । इसी वर्ष गवर्नमेंटने राज्यकी सीमासे बाहर जानेपर राजकीय रिसालेका संचालनभार अपने हाथमें लेना निश्चित किया ।

वि० सं० १९५७ (ई० स० १९०० के जून) में आप आनरेरी मेजर बनाए गए । इसी वर्ष आप अपने गंगा रिसालेके ४०० ऊँटोंको लेकर चीनके रणक्षेत्रमें पहुँचे । वहाँसे लौटनेपर २४ जुलाई १९०१ को आपको सी० आई० ई० की उपाधि मिली ।

वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२) में आप लंदन पहुँच सम्राट सप्तम एवर्डके राज्याभिषेकमें शरीक हुए। वहीं पर आप प्रिन्स ऑफ़ वेल्सके ए० डी० सी० नियत हुए। इसी वर्ष (ई० स० १९०२ की २४ नवंबरको) गवर्नर जनरल लार्ड कर्ज़न बीकानेर आए।

वि० सं० १९६० (सन् १९०३) में आप देहलीके कोरोनेशन (ताजपोशीके) दरबारमें पधारे और आपके गंगा रिसालेके २१५ सवारोंने सोमालीलैण्डके युद्धमें बड़ी वीरता दिखाई। इसी वर्ष राज्यमें डाकखानोंके नियम बने और १ जनवरी १९०४ में इनका प्रबन्ध किया गया।

वि० सं० १९६१ (१९०४ की २४ जून) को आप के० सी० एस० आई० के पदकसे भूषित किए गये। इसी वर्ष (ई० स० १९०५)में दक्षिणके करनपुरा, पदमपुरा, केसरीसिंहपुरा और कोकनवारी नामके ४ गाँव गवर्नमेंटको सौंप दिए गए। इसकी एवज़में गवर्नमेंटने राज्यको २५,००० रुपए नकद और हिसार परगनेके दो गाँव दिये।

वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५)में प्रिन्स ऑफ़ वेल्स और वि० सं० १९६३ (ई० स० १९०६) मे लार्ड मिंटो आदि अनेक गण्यमान्य व्यक्ति बीकानेर आए। इसी वर्ष (ई० स० १९०७) में आप आगरेमें जाकर वायसरायसे मिले और आपको जी० सी० आई० ई० का पदक मिला।

---

(१) यह रिसाला वि० स० १९४६ (ई० स० १८८९)में बनाया गया था।

(२) इसी वर्ष फिर कुछ जागीरदारोंने गड़बड़ मचाई, पर वे आसानीसे दबा दिए गए।

वि० सं० १९६५ (ई० स० १९०८) में आप गयाजीकी यात्राको गए। इसी वर्ष लार्ड मिंटो दुबारा बीकानेर आए और वि० सं० १९६६ (ई० सं० १९०९) में महाराजा साहब अँगरेजी सेनाके लेफ्टिनेंट कर्नल बनाए गए।

वि० सं० १९६७ (ई० स० १९१०) में बादशाहने इनको अपना ए० डी० सी० बनाया और गवर्नमेंटने कर्नलके पदसे विभूषित किया।

वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११) में आप लंदनमें बादशाह जार्ज पंचमके राज्याभिषेकमें सम्मिलित हुए। वहीं पर कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटीने आपको एलएल० डी० की उपाधि दी और एडिनबराकी यूनीवर्सिटीने आपको 'डाक्टर ऑफ लॉ' की उपाधि दी। इसी वर्ष बीकानेरसे पोलिटिकल एजेण्ट हटा दिया गया और उसका काम पश्चिमी राजपूतानाके रेजीडेंटको सौंप दिया गया। इसके बाद आप दिल्ली दरबारमे गए। वहीं पर बादशाहने आपको जी० सी० एस० आई० के पदकसे विभूषित किया।

वि० सं० १९६९ में (ता० २४ सितंबर १९१२ को) आपको गद्दी पर बैठे २५ वर्ष हुए। इस पर राज्यमें बड़ा उत्सव मनाया गया और कई प्रजाहितके कार्योंकी सूचना निकाली गई।

वि० सं० १९७० (ई० स० १९१३) से राज्यका कार्य मातृभाषा हिन्दीमें होने लगा और इसके अगले वर्ष प्रजाप्रतिनिधि सभाकी स्थापना हुई।

वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) में यूरोपीय महासमर छिड़ गया। इसपर आपने अपने गंगारिसालेको मिस्रके रणक्षेत्रमें भेज-

कर इस्मालियाके युद्धमें अपने रिसालेका बड़ी वीरतासे संचालन किया। फ्रान्सके रणक्षेत्रमें आप करीब ६ महीने रहे और बादमें अपनी कन्याके सख्त बीमार हो जानेके कारण बीकानेर लौट आए।

वि० सं० १९७३ (ई० स० १९१७ की फरवरी) में भारत मंत्रीके निमंत्रणपर वार कॉन्फ्रेन्समे भाग लेनको आप इंग्लैण्ड गए और इसके बाद वि० सं० १९७५ के मंगसिर (ई० स० १९१८ के नवंबर) में भारतके प्रतिनिधिकी हैसियतसे संधिपरिषद्मे सम्मिलित हुए।

वि० सं० १९८१ (ई० स० १९३४ के सितंबर) मे भारत मंत्रीके निमंत्रण पर आप लीग ऑफ नेशन्स (सर्वराष्ट्रीय परिषद्) में शरीक हुए।

आपके समय राज्यके सिचाई विभागमें बड़ी उन्नति हुई है और इससे राज्यकी आमदनीमें भी खासी वृद्धि हुई है। अब पंजाबकी तरफ़से सतलजकी नहर लानेका प्रबन्ध भी प्रारम्भ हो गया है. इससे इसमें और भी वृद्धि होनेकी आशा है। आपने राज्यकी खानोंसे खनिज द्रव्य निकलवानेका भी अच्छा प्रबन्ध किया है। आपके समय रेलका भी अच्छा विस्तार हुआ और ई० स० १९२४ से आपने अपनी बीकानेर रेलवेको जोधपुरकी रेलवेसे अलग कर लिया। इसी प्रकार आपने पुलिसका भी नया प्रबन्ध किया और राज्यमें विद्याप्रचारके साथ साथ नगरमें बिजलीकी रोशनी, सार्वजनिक उद्यान (पब्लिक पार्क), औषधालय और अनेक सुन्दर मकानात भी बनवाए।

आपके दो महाराजकुमार हैं—शार्दूलसिंहजी और विजयसिंहजी। बड़े महाराजकुमार शार्दूलसिंहजीका जन्म वि० सं० १९५९ की भादों सुदी ५ (ई० स० १९०२ की ७ सितंबर) को हुआ था।

आप बड़े योग्य हैं और अपने पूज्य पिताकी देखरेखमें युवराजकी हैसियतसे राज्यका काम बड़े सुन्दर ढंगसे करते हैं।

वि० सं० १९८१ की वैशाख बदी २ (ई० स० १९२४ की २१ मई) को युवराजके पुत्र (महाराजाके पौत्र) कर्णसिंहजीका जन्म हुआ। कहते हैं कि यह पहला ही शुभ अवसर है कि बीकानेर-नरेशको पौत्रमुखदर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

बीकानेरनरेशकी सलामीकी तोपें १७ हैं[1] और इनका मोटो (आदर्शवाक्य) 'जय जंगलधर बादशाह है'। बीकानेर राज्यकी भूमिका विस्तार २३,३११ वर्गमील, आबादी ६ लाखके करीब और आमदनी ९२ लाखके करीब है और यह आमदनी दिन दिन बढती ही जाती है[2]।

(१) परन्तु गवर्नमेंटने इनके राज्यमें इनकी सलामीकी तोपें बढ़ाकर १९ कर दी है।

(२) कहते हैं कि यहाँके पुस्तकालयमें संस्कृतके ५०२५ हस्तलिखित ग्रन्थ हैं।

बीकानेरके राठोड़ राजाओंका वंशवृक्ष ।

राव जोधाजी (जोधपुरके स्वामी)

१ राव बीकाजी

२ राव नराजी

३ राव लूणकरणजी

४ राव जैतसीजी

५ राव कल्याणसिंहजी

६ राजा रायसिंहजी

७ राजा दलपतसिंहजी

८ राजा सूरसिंहजी

९ राजा कर्णसिंहजी

१० महाराजा अनूपसिंहजी

११ महाराजा स्वरूपसिंहजी

१२ महाराजा सुजानसिंहजी

आनन्दसिंहजी

१३ महाराजा जोरावरसिंहजी

१४ महाराजा गजसिंहजी

१५ महाराजा राजसिंहजी

१६ महाराजा सूरतसिंहजी

छत्रसिंहजी

(१६) महाराजा प्रतापसिंहजी

१७ महाराजा रतनसिंहजी

दलेलसिंहजी

१८ महाराजा सरदारसिंहजी

शक्तसिंहजी

लालसिंहजी

१९ महाराजा डूंगरसिंहजी

२० महाराजा गङ्गासिंहजी

बीकानेरके राठोड़ राजाओंका नकशा।

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका संबन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१	बीकाजी	राव	राव जोधाजीके पुत्र	(वि.सं.१५४२ से १५६१)	जोधपुरके राव जोधाजी, और सूजाजी, कांधरजी, सारंगखां, मल्लूखां, राव रिडमल शेखावत, नवाब हिन्दाल
२	नराजी	राव	नं.१ के पुत्र	(वि. सं. १५६१)	
३	लूणकरणजी	राव	न.१ के पुत्र	(वि सं.१५६१ से १५८३)	दौलतखां कायमखानी, महाराणा सांगाजी, जयसलमेरके रावल देवीदासजी
४	जैतसीजी	राव	नं.३ के पुत्र	(वि सं १५८३ से १५९८)	उदयकरण बीदावत, जयपुरनरेश पृथ्वीराजजी, रत्नसिंहजी, और सांगाजी, जोधपुरके राव गांगाजी, और मालदेवजी, खानजादा दौलतखां, शेखाजी, कामरॉ
५	कल्याणसिंहजी	राव	नं. ४ के पुत्र	(वि सं.१५९८ से १६२८)	जोधपुरके राव मालदेवजी, और राव चंद्रसेनजी, महाराणा संग्रामसिंहजी और उदयसिंहजी, बादशाह (बाबर,) हुमायूँ, शेर-

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
					शाह, और अकबर मेड़तिया वीरमजी, जयमलजी, हाजीखां
६	• यसिंहजी	राजा	नं. ५ के पुत्र	(वि.सं.१६२८ से १६६८)	महाराणा उदयसिंहजी और प्रतापसिंहजी, बादशाह अकबर और जहाँगीर, जयपुर महाराजा मानसिंहजी, सीरोहीके महाराव सुरतानूजी, जोधपुरके राव चन्द्रसैनजी और राजा उदयसिंहजी, इब्राहीम मिरजा
७	दलपतसिंहजी	राजा	नं. ६ के पुत्र	(वि.सं.१६६८ से १६७०)	बादशाह जहाँगीर, जियाउद्दीनखां, चूरू ठाकुर भीमसिंहजी, चांपावत हाथीसिंह, खारबाके ठाकुर भाटी तेजमालजी
८	सूरसिंहजी	राजा	नं. ७ के छोटे भाई	(वि.सं.१६७० से १६८८)	बादशाह जहाँगीर और शाहजहाँ
९	कर्णसिंहजी	राजा	नं. ८ के पुत्र	(वि.सं.१६८८ से १७२६)	बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब, महाराष्ट्र साहूजी, अंबरचम्पु, राव अमरसिंहजी, सलाबतखां, पूगलका भाटी सुन्दरसेन
१०	अनूपसिंहजी	महाराजा	नं. ९ के पुत्र	(वि सं.१७२६ से १७५५)	बादशाह औरंगजेब
११	स्वरूपसिंहजी	महाराजा	नं. १० के पुत्र	(वि.सं.१७५५ से १७५७)	बादशाह औरंगजेब

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजाआदि
१२	सुजानसिंहजी	महाराजा	नं १० के छोटे भाई	(वि.सं.१७५७ से १७९२)	बादशाह औरंगजेब, बहादुरशाह और मुहम्मदशाह, महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय), जोधपुर महाराजा अजीतसिंहजी और अभयसिंहजी, नागोरके राजाधिराज बखतसिंहजी
१३	जोरावरसिंहजी	महाराजा	नं. १२ के पुत्र	(वि सं.१७९२ से १८०२)	महाराजा अभयसिंहजी, नागोरके राजाधिराज बखतसिंहजी, जयपुरनरेश जयसिंहजी
१४	गजसिंहजी	महाराजा	न. १० के पुत्र	(वि.सं.१८०२ से १८४४)	नागोरके राजाधिराज बखतसिंहजी, जोधपुर महाराजा अभयसिंहजी, रामसिंहजी, बखतसिंहजी, विजयसिंहजी, जयपुरनरेश माधवसिंहजी (प्रथम) और पृथ्वीसिंहजी, उदयपुर-महाराणा अरसीजी, जयसलमेर रावल अखैराजजी, मल्हारराव होल्कर, भरतपुरनरेश जवाहरमलजी, बादशाह अहमदशाह
१५	राजसिंहजी	महाराजा	नं. १४ के पुत्र	(वि. सं. १८४४)	

नंबर	नाम	उपाधि	परस्परका सम्बन्ध	ज्ञात समय	समकालीन राजा आदि
१६	प्रतापसिंहजी	महाराजा	नं. १५ के पुत्र	(वि. सं. १८४४)	
(१६)	सूरतसिंहजी	महाराजा	नं. १५ के छोटेभाई	(वि स १८४४ से १८५५)	महाराणा भीमसिंहजी, जोधपुर महाराजा मानसिंहजी, जयपुर महाराजा जगत्सिंहजी, नागोरके स्वामी धिवदानसिंहजी, मीरखां
१७	रत्नसिंहजी	महाराजा	नं. १६ के पुत्र	(वि.सं.१८८५ से १९०८)	महाराणा जवानसिंहजी और सरदारसिंहजी, बादशाह अकबर (द्वितीय)
१८	सरदारसिंहजी	महाराजा	नं. १७ के पुत्र	(वि.सं.१९०८ से १९२९)	
१९	डूंगरसिंहजी	महाराजा	नं. १६ के छोटे पुत्रके वंशज	(वि.सं १९२९ से १९४४)	बूंदीनरेश रघुवीरसिंहजी, किशनगढ़नरेश पृथ्वीसिंहजी
२०	गंगासिंहजी	महाराजा	नं. १९ के छोटे भाई	(वि. सं. १९४४ से)	सम्राट् सप्तम एडवर्ड और जार्ज पंचम, लार्ड-कर्जन, लार्ड मिंटो, भारतमंत्री माण्टेगू ।

झाबुआके राठोड़।

---:o:---

यह झाबुआ नगर ईसवी सन्‌की १६ वीं शताब्दीमें लाभाना जातिके झब्बू नायकने बसाया था। परन्तु वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में बादशाह जहाँगीरने केशवदासजीको उक्त प्रदेशका अधिकार देकर राजाकी पदवीसे भूषित किया।

पहले पहल वि० सं० १६४१ (ई० स० १५८४) में बादशाह अकबरने भीमसिंहजीकी वीरता[1]से प्रसन्न होकर उन्हें बदनावर (मालवामें) का परगना जागीरमें दिया था। ये भीमसिंहजी जोधपुर बसाने वाले राव जोधाजीकी छठी पीढ़ीमें थे। उस समय इन (भीमसिंहजी) के पुत्र केशवदासजी शाहाजदे सलीमके पास रहते थे। जब वह जहाँगीरके नामसे देहलीके सिंहासनपर बैठा, तब उसने केशवदासजीको मालवेके दक्षिण-पश्चिमी प्रदेशोंके लुटेरोंको दबानेका भार सौंपा[2]। इस कार्यमें इन्होंने ऐसी वीरता और कुशलता दिखाई कि जहाँगीर प्रसन्न हो गया और उसने इन्हें उक्त प्रदेशका राजा बना दिया। परन्तु इसी वर्ष (वि० सं० १६६४) में विषद्वारा इनकी मृत्यु हो गई[3]। इस घटनाके साथ ही झाबुआ राज्यमें अन्तःकलहका सूत्रपात हुआ। वि० सं० १७७९ (ई० स० १७२२) में मराठोंके आक्रमणसे इसमें और भी वृद्धि हुई। इसके दूसरे वर्ष यहाँके राजाकी अवस्था छोटी होनेका बहाना दिखलाकर

---

(१) कहते हैं कि इन्होंने वि० सं० १६२१ में बंगालमें बड़ी वीरता दिखाई थी।

(२) झाबुआके भील सरदारने गुजरातके सूबेदारको मार डाला था। इसीसे क्रुद्ध होकर बादशाहने इन्हें उक्त प्रदेशके भीलोंको दबानेकी आज्ञा दी थी।

(३) कहते हैं कि इनके पुत्रने ही इन्हें विष दिया था।

होल्करने इस राज्यका प्रबन्ध अपने हाथमें ले लिया। इससे राज्यकी आय बिलकुल घट गई।

ख्यातोंसे पता चलता है कि वि० सं० १८७४ (ई० स० १८-१७) में यहाँकी आमदनी इतनी कम हो गई थी कि होल्करको लाचार होकर चौथ आदि वसूल करनेका प्रबन्ध स्थानिक अधिकारियोंको ही देना पड़ा। वि० सं० १८७६ में जब सर जान मालकमने मालवेकी मालगुजारीका प्रबन्ध किया तब झाबुएका राज्यप्रबन्ध होल्करसे लेकर वहाँके राठोड़ राजाको सौंप दिया गया।

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में जिस समय गदर हुआ उस समय झाबुआनरेश राजा गोपालसिंहजीकी अवस्था केवल १७ वर्ष की थी। परन्तु उन्होंने भोपावरकी तरफ़से भाग कर आए हुए अँगरेजोंकी अच्छी सहायता की। इसीसे प्रसन्न होकर भारत सरकारने इन्हें १२,५०० की कीमतका एक खिलत (सरोपाव) दिया।

राजा गोपालसिंहजीने वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९५) तक राज्य किया। इनके पीछे पुत्र न होनेके कारण राजा उदयसिंहजी इनके गोद आए। इनका जन्म वि० सं० १९३३

(१) किसी किसी ख्यातमें लिखा है कि वि० सं० १७८७ के करीब राजा अनूपसिंहजीके समय रतलामनरेश मानसिंहजीने झाबुए पर हमला किया था और उसका कुछ भाग छीन कर अपने छोटे भाई जयसिंहजीको दे दिया था। यही जयसिंहजी सेलानाकी शाखाके प्रवर्तक थे।

(२) वि० सं० १९२२ (ई० स० १८६५) में गोपालसिंहजीने चोरीके सन्देह पर पकड़े गए एक आदमीको मरवा डाला था। इस पर गवर्नमेंटने एक वर्षके लिए इनकी सलामीकी तोपें बंद करके इनसे १०,००० रुपए जुर्मानेके तौर पर लिए थे।

(ई० स० १८७६) में हुआ था। वि० सं० १९५५ (ई० स० १८९८) में राज्यकारभार आपको सौंप दिया गया।

झाबुआ राज्य मालवेके पहाड़ी प्रदेशमें है। इस प्रदेशको राठ भी कहते हैं। यहाँके राजाओंको 'हिज हाईनस' की उपाधि है और इनकी सलामीकी ११ तोपें हैं। इस राज्यका क्षेत्रफल १३३६ वर्ग-मील, आबादी करीब ८०,००० और आय १,१०,००० के करीब है। यहाँसे मैगनीज धातु और अफीम बाहर जाती है।

वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) तक इन्दौर और झाबुआ दोनों राज्य मिलकर थंडला और पेटलवाड नामके परगनोंका प्रबन्ध करते थे। इससे उसमें बड़ा गड़बड़ होती थी। इसीको दूर करनेके लिए ई० स० १८७१ में इन परगनोंका हिस्सा कर लिया गया। थंडला तो झाबुएको मिला और पेटलवाड़ इन्दौरके नीचे गया।

झाबुआ राज्य इन्दौरको वार्षिक ४,३५० रुपए और भारत गवर्न-मेंटको १५०० रुपए कर स्वरूप देता है।

झाबुआके राठोड़ राजाओंका वंशवृक्ष।

(जोधपुरके—राव जोधाजी)

१ वरसिंहजी
२ मीहाजी
३ जयसिंहजी
४ रामसिंहजी
५ भीमसिंहजी
६ केशवदासजी
७ करणजी
८ महासिंहजी
९ कुशलसिंहजी

१० अनूपसिंहजी — इन्द्रसिंहजी

११ बहादुरसिंहजी — बहादुरसिंहजी (अनूपसिंहजीके गोद आए)

१२ भीमसिंहजी

१३ प्रतापसिंहजी — सालमसिंहजी

१४ रतनसिंहजी
१५ गोपालसिंहजी
१६ उदयसिंहजी

अमझराके राठोड़।

ई० स० की १६ वीं शताब्दीमें राव मालदेवजीके पुत्र रामसिंहजीने मालवेमें इस छोटेसे राज्यकी स्थापना की थी। परन्तु ई० स० की १८ वीं शताब्दीमें यहाँके शासक ग्वालियरवालोंके करद राजा हो गए थे। इसके बाद वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में जब ग़दर हुआ तब यहाँके राजा बखतावरसिंहजीने भी बाग़ियोंका साथ दिया। इससे गवर्नमेंटने उन्हें पकड़कर इन्दौरमें फाँसी चढ़ा दिया और उनका राज्य सिंधियाको दे दिया।

नीचे वहाँके राजाओंकी वंशावली दी जाती है:—
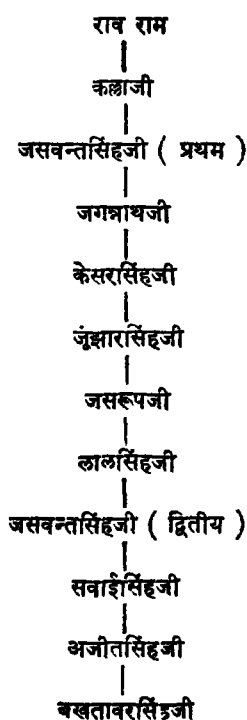
(१) इनके वंशज रामोत जोधा कहलाते हैं।

किशनगढ़के राठोड़ ।

---:o:---

जोधपुरमहाराजा उदयसिंहजीके एक छोटे पुत्रका नाम किशनसिंहजी था। जिस समय उक्त महाराजाका स्वर्गवास हुआ उस समय उनके पुत्र सूरसिंहजी तो मारवाड़की गद्दीपर बैठे और किशनसिंहजी शाहजादे सलीमके पास चले गए। कुछ समय बाद जब बादशाह अकबर मर गया और शाहजादा सलीम बादशाह जहाँगीरके नामसे तख्तपर बैठा तब उसने किशनसिंहजी (कृष्णसिंहजी) को सेठोलावका परगना जागीरमें दिया।

१ महाराजा कृष्णसिंहजी।

इनका जन्म वि० सं० १६३९ मे हुआ था। परन्तु गजटियरमें इनका जन्म वि० सं० १६३२ में होना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि वि० सं० १६५३ में ये अजमेर चले गए। कुछ दिन बाद इनकी वीरतासे प्रसन्न होकर बादशाह अकबरने इन्हें हिंडोनका परगना जागीरमें दे दिया। (आजकल यह परगना जयपुर राज्यमें है।) इसके बाद एक बार इन्होंने मेरोंको मारकर बादशाही खजानेकी रक्षा की। इसीसे प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें सेठोलाव आदि कुछ अन्य परगने जागीरमें दिये।

वि० सं० १६६६ में इन्होंने सेठोलाव नामक स्थानके पूर्वमें अपने नामपर किशनगढ़ नामक नगर बसाया। वृन्द कविने अपनी बनाई रूपसिंहजीकी वचनिकामें इस घटनाका समय वि० सं० १६६८ लिखा है।

---

(१) यह स्थान इन्होंने वि० सं० १६५१ में जीता था।

वि० सं० १६७० के करीब जब बादशाही सेनाने शाहजादे खुर्रमकी अध्यक्षतामें मेवाड़ पर चढ़ाई की, उस समय किशनसिंहजी भी उसके साथ थे और इस युद्धमें इन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई थी। यहाँसे लौटकर जब यह सेना बादशाह जहाँगीरके पास पुष्करमें पहुँची तब ये भी उसीके साथ वहाँ गए।

इनके और जोधपुरमहाराजा सूरसिंहजीके मंत्री गोविन्ददासके आपसमे पुराना वैर था; क्योंकि गोविन्ददासने इनके एक भतीजेको मार डाला था। इसीसे वि० सं० १६७२ की ज्येष्ठ वदी ८ की रात्रिको इन्होंने गोविन्ददासके डेरेपर हमलाकर उसे मार डाला। परन्तु महाराजा सूरसिंहजीने इसे अपना अपमान समझ अपने पुत्र गजसिंहजीको इनका पीछा करनेकी आज्ञा दी।

इसी युद्धमें कृष्णसिंहजी वीरगतिको प्राप्त हुए।

किशनगढ़ राज्यकी ख्यातोंमें लिखा है कि अकबरके समय तक तो इनको राजाकी ही पदवी थी; परन्तु बादशाह जहाँगीरने इन्हें महाराजा खिताब, तीन हजारी ज़ात और डेढ़ हजार सवारोंका मनसब दिया था। इनके चार पुत्र थे—सहसमल्ल, जगमाल, भारमल्ल और हरिसिंह।

२ महाराजा सहसमल्लजी।

ये महाराजा किशनसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी थे तथा अधिकतर बादशाह जहाँगीरके पास ही रहा करते थे। वि० सं० १६७५ के जेठ महीनेमें इनका स्वर्गवास हो गया।

३ महाराजा जगमालजी।

ये सहसमल्लजीके छोटे भाई थे और उनके निस्सन्तान अवस्थामें मरने पर किशनगढ़की गद्दी पर बैठे।

जिस समय शाहजादे ख़ुर्रम और शाहजादे परवेज़के बीच हाजीपुर पटनाके पास युद्ध हुआ उस समय ये और इनके भ्राता भारमल्लजी ख़ुर्रमकी सेनामें थे और इन्होंने उस युद्धमें बड़ी वीरता दिखलाई थी। वि० सं० १६८५ में ये बादशाहकी आज्ञासे दक्षिणकी तरफ़ गए थे। जिस समय ये जाफ़राबादमें थे उस समय एक राजपूत महाबतख़ाँके पुत्र अमानुल्लाख़ाँसे नाराज़ होकर इनके पास चला आया। अमानुल्लाख़ाँने इन्हें उस राजपूतको अपने पास भेज देनेके लिए लिखा। परन्तु इन्होंने शरण आएको छोड़ना उचित न समझा। इस पर अमानुल्लाख़ाँके और इनके बीच लड़ाई हुई। इसीमें वि० सं० १६८५ की माघ सुदी १२ को महाराजा जगमालजी और इनके भाई भारमल्लजी मारे गए।

४ महाराजा हरिसिंहजी।

ये किशनसिंहजीके छोटे पुत्र और भारमल्लजीके छोटे भाई थे, तथा जगमालजीके बाद किशनगढ़के राजा हुए। ये भी बहुधा बादशाह शाहजहाँके पास ही रहा करते थे। वि० सं० १७०० की वैशाख सुदी ८ को इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पीछे कोई पुत्र न था।

५ महाराजा रूपसिंहजी।

ये भारमल्लजीके पुत्र थे और वि० सं० १७०० की जेठ सुदी ५ को अपने चाचा हरिसिंहजीके पीछे किशनगढ़की गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १६८५ की वैशाख सुदी ११ को हुआ था।

---

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि इन्होंने अपनी सात वर्षकी पुत्रीका वाग्दान कर दिया था। परन्तु जिसके साथ उसका संबन्ध स्थिर किया था वह राजकुमार मर गया। इस पर वह कन्या सती हो गई। तबसे वहाँ पर यह रिवाज प्रचलित हो गया है कि जब वर किशनगढ़की सीमामें पहुँच आता है तब उसे वाग्दान (सगाई) का नारियल दिया जाता है।

वि० सं० १७०१ की मार्गशीर्ष सुदी ७ को बादशाह शाहजहाँकी शाहजादी दीवेकी लौसे जल गई थी। जब वह अच्छी हुई तब बादशाहने एक बड़ा दरबार किया। उसमें उसने रूपसिंहजीका मनसब बढ़ाकर एक हजारी ज़ात और सात सौ सवारोंका कर दिया।

वि० सं० १७०२ की पौष वदी ४ को इन्हें एक हजारी ज़ात और एक हज़ार सवारोंका मनसब मिला। इसी वर्ष ये शाहज़ादे मुरादबख़्शके साथ बल्ख़ व बदख़शांकी तरफ भेजे गए। इनके वहाँ पहुँचनेपर वहाँका शासक नजर मुहम्मदखाँ विना युद्ध किए ही भाग गया। इस पर शाहज़ादेने बहादुरख़ाँ सेनापतिको उसका पीछा करनेकी आज्ञा दी। इस समाचारको पाकर रूपसिंहजीने भी शाहज़ादेसे विना पूछे ही नज़र मुहम्मदख़ाँका पीछा किया और युद्ध होनेपर बड़ी वीरता दिखलाई। इससे प्रसन्न होकर बादशाहने वि० सं० १७०३ की प्रथम सावन सुदी १० को इनको डेढ़ हजारी ज़ात और एक हज़ार सवारोंका मनसब दिया। इसी वर्षकी भादौं सुदी ११ को इनका मनसब बढ़ाकर दो हज़ारी ज़ात और एक हज़ार सवारोंका कर दिया गया। वि० सं० १७०४ की वैशाख वदी ७ को बादशाहने इनके लिए बलखमें एक घोड़ा भेजा और इसीके कुछ महीने बाद बादशाहकी तरफ़से इन्हें एक निशान[1] भी मिला। वि० सं० १७०५ में इनकी वीरताके कामोंसे प्रसन्न होकर शाहजहाँने इनको ढाई हजारी ज़ात और बारह सौ सवारोंका मनसब दिया तथा शाहज़ादे औरंगज़ेबके साथ कन्दहारकी तरफ जानेकी आज्ञा दी। वहाँ पर इन्होंने ईरानियोंके साथके युद्धोंमें भी बड़ी वीरता दिखाई, इससे वि० सं० १७०६ में इनका मनसब बढ़ाकर तीन हज़ारी ज़ात और

(१) कहते हैं कि यह झंडा इन्होंने पठानोंसे छीना था। उसी दिनसे किशनगढ़के झंडेमें लाल और सुफेद रंग ही रहने लगे हैं।

डेढ़ हजार सवारोंका कर दिया गया। इसके बाद वि० सं० १७०८ में बादशाहने इनका मनसब चार हजारी जात व दो हजार सवारोंका करके इन्हें फिर कन्दहारकी तरफ भेजा।

वि० सं० १७१० में बादशाहने इनका मनसब चार हजारी जात और ढाई हजार सवारोंका कर दिया और इन्हें फिर तीसरी बार कन्द-हार जानेकी आज्ञा दी।

वि० सं० १७११ में सादुल्लाखां वजीरके साथ ये चित्तौड़पर आक्रमण करनेके लिए भेजे गए और इनका मनसब बढ़ाकर चार हजारी जात और तीन हजार सवारोंका कर दिया गया[१]। इसीके साथ मेवाड़ राज्यका मांडलगढ़ भी इन्हें जागीरमें मिला। (यह आजकल उदयपुर राज्यमें है।)

वि० सं० १७१५ की जेठ सुदी ८ को जिस समय धौलपुरके निकट दाराशिकोह और औरंगजेबका मुकाबला हुआ उस समय राजा रूपसिंहजी दाराशिकोहकी सेनाके अग्रभागमें थे। जब दोनों सेनाएँ एक दूसरेसे भिड़ गईं तब ये अकेले ही घोड़ा बढ़ाकर दुश्मनकी फौजमें घुस गए और औरंगजेबके हाथीके पास पहुँच उसके हाथीकी अंबा-रीका रस्सा काटनेके लिए घोड़े परसे कूद पड़े। परन्तु इतनेहीमें औरं-गजेबके भाग्यसे बहुतसे मुसलमान सैनिकोंने इन्हें घेर लिया। उस समय पैदल होनेके कारण ये अच्छी तरहसे उनका सामना न कर सके और वहीं पर वीरगतिको प्राप्त हुए। कहते हैं कि इनकी इस वीरताको देखकर स्वयं औरंगजेब दंग रह गया था और उसने हाथी परसे ही

(१) इस अवसर पर बादशाहकी तरफसे इन्हे एक नक्कारा भी दिया गया था।

(२) गजटियरमें लिखा है कि ये ५,००० सवारोंके सेनानायक बनाए गए थे।

चिल्लाकर अपने सैनिकोंको इन्हें जीता पकड़नेका हुक्म दिया था। परन्तु वीर राठोड़राजको जिन्दा पकड़नेकी किसीकी हिम्मत न हुई।

महाराजा रूपसिंहजी बड़े वीर और साहसी थे। वृन्दकविने रूपसिंहजीकी वचनिका नामक पुस्तकमें इनकी वीरताका बहुत कुछ वर्णन किया है। इन्होंने बबेरा[1] नामक स्थानपर रूपनगर नामक शहर बसाया था। इस कार्यका प्रारम्भ वि० सं० १७०५ में और समाप्ति वि० सं० १७०९ में हुई थी। ये श्रीकृष्णके बड़े भक्त थे और इन्होंने ही वृन्दावनसे कल्याणजीकी मूर्ति लाकर पहले मांडलगढ़में और पीछे रूपनगरके किलेमें स्थापन की थी।

ख्यातोंमें लिखा है कि इन्होंने ही बादशाहसे कह कर अपने पिताके ममेरे भाई भाटी सबलसिंहजीको जैसलमेरका अधिकार दिलवाया था और वहाँके रावल रामचन्द्रजीको हटाकर उक्त राज्यपर अधिकार करनेमे भी उन्हें सहायता दी थी।

६ महाराजा मानसिंहजी।

ये रूपसिंहजी के पुत्र थे और उनके युद्धमें मारे जाने पर वि० सं० १७१५ की आषाढ वदी १० को गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १७१२ की भादों सुदी ३ को हुआ था। इनके बालक होने और इनके पिताके औरंगजेबके साथके युद्धमें लगे रहनेके कारण मौका पाकर महाराणा राजसिंहजीने माडलगढ़ पर पीछा अधिकार कर लिया। औरंगजेबने तख्त पर बैठने पर इनका मनसब तीन हजारी जातका कर दिया था।

---

(१) राजा किशनसिंहजीने इनके पिता भारमलजीको बारह गाँवों सहित बबेरा जागीरमें दिया था।

वि० सं० १७४८ की जेठ सुदी ११ को जब कामबख्शने जंजीके किले पर चढ़ाई की तब ये भी उसके साथ थे। इसके अलावा इन्होंने दक्षिणकी दूसरी लड़ाइयोंमें भी बड़ी बहादुरी दिखाई थी।

वि० सं० १७६३ की कार्तिक वदी १० को पाटणमे इनका स्वर्ग-वास हो गया। उस समय इनके पुत्र राजसिंहजी भी इनके पास ही थे।

७ महाराजा राजसिंहजी।

ये मानसिंहजीके पुत्र और उत्तरधिकारी थे। इनका जन्म वि० सं० १७३१ की कार्तिक सुदी ११ को हुआ था।

वि० सं० १७६४ में इन्होंने सरवाड़ और विजयपुर (फ़तहगढ़) के परगनोंपर अधिकार कर लिया। वि० सं० १७६८ मे जोधपुरके महाराजा अजीतसिंहजीने किशनगढ़पर चढ़ाई की, परन्तु राजसिंहजीने कुछ दे दिलाकर उनसे सुलह कर ली।

ये बड़े वीर थे। इन्होंने वि० सं० १७७४ में शाहआलम बहा-दुरशाहकी तरफ़से आज़मशाहसे भी युद्ध किया था। इसीसे प्रसन्न होकर उसने इन्हें तीन हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवारोंका मनसब दिया। इसके बाद वि० सं० १७७५ की फागुन सुदी १० को जब सैयद भ्राताओंने मिलकर बादशाह फ़र्रुख़सियरको क़ैद किया उस समय ये भी उनके साथ थे।

जिस समय बादशाह मुहम्मदशाहने शाहज़ादे अहमदको अहमदशाह अबदालीके मुकाबलेके लिए पानीपतकी तरफ़ भेजा उस समय बादशा-हने राजसिंहजीके पुत्र सामन्तसिंहजीको और पौत्र सरदारसिंहजीको अपने पास देहलीमें ही रख लिया था।

वि० सं० १८०५ की वैशाख वदी ७ को रूपननरमें राजसिंहजी का देहान्त हो गया । बादशाहने इन्हें सरवार और मालपुरकी जागीर दी थी । (मालपुर आजकल जयपुर राज्यमें है ।)

इनके पाँच पुत्र थे—सुखसिंह, फतहसिंह, सामन्तसिंह, बहादुरसिंह और वीरसिंह । इनमेंसे पहले दोका देहान्त राजा रूपसिंहजीके सामने ही हो गया था । इस लिए इनके पीछे इनके तीसरे पुत्र सामन्तसिंहजी देहलीमें इनके उत्तराधिकारी हुए ।

८ राजा सामन्तसिंहजी ।

ये राजसिंहजीके तृतीय पुत्र थे । जिस समय इनके पिताका स्वर्गवास हुआ उस समय ये देहलीमें थे । इससे वि० स० १८०६ की आसोज सुदी १५ को इनके पीछे इनके छोटे भाई बहादुरसिंहजीने किशनगढ़ पर अधिकार कर लिया । ये बहादुरसिंहजी भी बड़े बुद्धिमान थे । इन्होंने कविया जातिके चारण करणीदान द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंहजीको भी अपना मददगार बना लिया था । परन्तु बादशाह अहमदशाहने अजमेरके सूबेदारको सामन्तसिंहजीकी सहायता करनेकी आज्ञा भेजी । नागोरके स्वामी बखतसिंहजी भी इनकी तरफ़ हो गए । कुछ समय बाद सामन्तसिंहजीने किशनगढ़ और रूपनगरके ज़िलोंमें अपने थाने बिठा दिये और ख़ास रूपनगरको भी घेर लिया । परन्तु इसमें इन्हें सफलता न हुई । इसी बीच जोधपुरमें रामसिंहजी और बखतसिंहजीके बीच लड़ाई छिड़ गई । सामन्तसिंहजीने अपने पुत्र सरदारसिंहजीको रामसिंहजीकी सहायताको भेज दिया । इस पर बख-

(१) वि० सं० १८०६ की आषाढ सुदी १५ को जोधपुर महाराजा अभयसिंहजीका देहान्त हो गया और उनके पुत्र रामसिंहजी उनके उत्तराधिकारी हुए । इन्होंने अपने चाचा बखतसिंहजीको तंग करना शुरू किया । इसीसे बखतसिंहजीको अजमेरके सूबेदार जुल्फिकार जंगसे सहायता माँगनी पड़ी ।

तसिंहजी इनसे नाराज़ हो गए । जब रामसिंहजीको हटाकर बखतसिं-हजी जोधपुरकी गद्दी पर बैठे तब उन्होंने बहादुरसिंहजीका पक्ष लिया। इससे लाचार होकर ये अपने पुत्र सरदारसिंहजीके साथ कमाऊँकी तरफ़ चले गए । इसके बाद पिता पुत्र दोनों मथुरामें आए । यहाँ पर सामन्तसिंहजीने तो वैराग्य ग्रहणकर अपना नाम नागरीदास रख लिया और इनके पुत्र सरदारसिंहजी मल्हारराव होल्करके पास चले गए । इस पर उसने भी जया आपा सिंधियाको इनकी मदद करनेकी आज्ञा दी।

उन दिनों जोधपुर महाराजा बखतसिंहजीका देहान्त हो चुका था और उनके पुत्र महाराजा विजयसिंहजी जोधपुरकी गद्दी पर बैठे थे । इसलिए रामसिंहजीने मराठोंकी सहायतासे एक बार फिर जोधपुर पर अधिकार करनेकी चेष्टा की और वे जया आपाको चढ़ा लाए। इस युद्धमें बहादुरसिंहजी भी विजयसिंहजीकी मददको गए थे । परन्तु युद्ध होनेपर जब विजय-सिंहजीकी हार हुई तब बहादुरसिंहजी लौटकर किशनगढ़ चले आए । जया आपाने विजयसिंहजीका नागोर तक पीछा किया और वहींपर वह मारा गया । इसके बाद उसका पुत्र जनकू विजयसिंहजीसे फौज खर्चके रुपए लेकर अजमेर चला आया । इसपर सरदारसिंहजीने उससे पूर्व-निश्चयानुसार सहायता माँगी । पहले तो उसने इस विषयमें अपनी असमर्थता प्रकट की परन्तु अन्तमें बहुत कहने सुनने पर कुछ सेना उनकी सहायताके लिए भेज दी । इस प्रकार मदद पाकर सरदारसिंह-जीने रूपनगरके किलेको घेर लिया । दोनों तरफ़से खूब लड़ाई हुई । अन्तमें बहादुरसिंहजीको उनसे सुलह करनी पड़ी। इसके अनुसार रूप-नगर तो सरदारसिंहजीको मिला और किशनगढ़ बहादुरसिंहजीके अधि-कारमें रहा । मराठे अपने फ़ौज खर्चके रुपए लेकर विदा हुए ।

---

(१) बहादुरसिंहजीने अपने छोटे भाई वीरसिंहजीको करकेड़ीका परगना जागीरमें दिया था ।

वि० सं० १८२१ की भादौं सुदी ३ को वृन्दावनमें सामन्तसिंह-जीका स्वर्गवास हो गया।

९ महाराजा सरदारसिंहजी।

इनका जन्म वि० सं० १७८७ की प्रथम भादौं सुदी २ को हुआ था और वि० सं० १८१२ के करीब ये रूपनगरके अधिकारी हुए।[1] वि० सं० १८२३ की वैशाख वदी ३० को इनका स्वर्गवास हो गया।

लाल कविने 'सरदार-सुजस' नामक ग्रन्थमें राजसिंहजीसे सरदार-सिंहजी तकका विस्तृत वृत्तान्त लिखा है।

१० महाराजा बहादुरसिंहजी।

पहले लिखा जा चुका है कि ये राजा सामन्तसिंहजीके छोटे भाई थे और पिताके मरनेपर इन्होंने राज्यपर अधिकार कर लिया था। अन्तमें अपने भतीजे सरदारसिंहजीको रूपनगर देकर किशनगढ इन्होंने अपने अधिकारमें रक्खा।

जब सरदारसिंहजीका स्वर्गवास हो गया तब पहले तो बहादुरसिं-हजीने अपने पुत्र बिड़दसिंहजीको उनके गोद बिठा दिया।[2] परन्तु अन्तमें किशनगढ़ और रूपनगरको एक ही राज्यमें मिला दिया।

बहादुरसिंहजी बड़े बुद्धिमान् थे। जोधपुर, जयपुर और उदयपुरके राजाओंसे भी इनकी मित्रता थी। इन्होंने जोधपुरपर अधिकार करनेमें महाराजा बखतसिंहजीको सहायता दी थी। इसके बाद जब मराठोंने

(१) इतने दिनतक इनके पुत्र सरदारसिंहजी रूपनगरमे महाराजकुमार कह-लाते थे। परन्तु इनकी मृत्युके बाद राजा कहलाने लगे।

(२) कहते हैं, सरदारसिंहजीने अपने चाचा वीरसिंहजीके पुत्र अमरसिं-हको गोद लेना चाहा था। परन्तु बहादुरसिंहजीने इसके बदले अपने पुत्र बिड़दसिंहजीको गोद दे दिया।

वि० सं० १८११ में महाराजा रामसिंहजीका पक्ष लेकर महाराजा विजयसिंहपर चढ़ाई की तब भी इन्होंने विजयसिंहजीकी तरफ़से मराठोंसे युद्ध किया था। परन्तु विजयसिंहजीके नागौर चले जानेपर ये भी किशनगढ़को लौट आए।

इन्होंने अपने जीते जी ही अपने पुत्र बिड़दसिंहजीको राज्यका कार्य सौंप दिया था। किशनगढ़, रूपनगर और सनवाड़के किले इन्हींके बनाए हुए हैं। इन किलोंमें सामान आदिका प्रबन्ध भी ऐसा उत्तम किया गया था कि उनमें हर समय रसद आदिके भंडार भरे रहते थे। इन्होंने जागीरदारों और उनके छोटे भाइयोंके लिए भी[1] अच्छा प्रबन्ध करके अपने राज्यका प्रताप खूब ही बढ़ा लिया था।

वि० सं० १८३८ की फागुन सुदी ३ को इनका स्वर्गवास हो गया।

११ महाराजा बिड़दसिंहजी।

ये बहादुरसिंहजी पुत्र थे और उनके बाद राज्यके अधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १७९६ की फागुन सुदी ८ को हुआ था। ये पुष्टिमार्ग (श्रीनाथजी) के उपासक थे। बहादुरसिंहजीके स्वर्गवास होने पर इनको राज्यसे घृणासी हो गई थी। ये बड़े दानी और विद्वानोंका आदर करनेवाले थे। वि० सं० १८४५ की कार्तिक वदी १० को वृन्दावनमें इनका स्वर्गवास हो गया।

इनके छोटे भाईका नाम बाघसिंह था। उन्होंने बिड़दसिंहजीके रूपनगर गोद जानेके कारण राज्य पर अपना हक प्रकट किया।

---

(१) जागीरदारोंके छोटे पुत्रोंके लिए नित्यके भोजनका और उनके घर पर होनेवाले जन्म मरण विवाह आदिके खर्चका प्रबन्ध करके उन्हें किलेकी सेनामें भरती कर लिया जाता था।

परन्तु बहादुरसिंहजीने उन्हें राज्यका दशवाँ भाग देकर इस झगड़ेको शान्त कर दिया। इससे सन्तुष्ट होकर वे अपनी जागीर फतहगढ़में चले गए।

१२ महाराजा प्रतापसिंहजी।

ये बिड़दसिंहजीके पुत्र थे और उनके पीछे गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १८१९ की भादों सुदी ११ को हुआ था।

महाराजा राजसिंहजीके सबसे छोटे पुत्र वीरसिंहजीको करकेड़ीका परगना जागीरमें मिला था। उनके बड़े पुत्रका नाम अमरसिंह था। जिस समय रूपनगरके राजा सरदारसिंहजीका देहान्त हुआ उस समय इन्होंने अमरसिंहजीको गोद लेनेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु किशनगढ़नरेश बहादुरसिंहजीने उनकी एवजमें अपने ज्येष्ठ पुत्र बिड़दसिंहजीको उनके गोद बिठा दिया। इस पर अमरसिंहजी नाराज होकर जोधपुरमहाराजा विजयसिंहजीके पास चले गए। उन्होंने भी इन्हें अपने पास रख लिया। इसीसे महाराजा प्रतापसिंहजीके और उनके बीच वैमनस्य हो गया। अतः जिस समय जोधपुर और जयपुरके महाराजाओंने मिलकर मराठोंका सामना किया उस समय प्रतापसिंहजीने मराठोंका पक्ष लिया और जब मराठे हारकर भागे जब उन्हें सनवाड़के किलेमें पनाह दी। इस पर जोधपुरमहाराजा विजयसिंहजीने रूपनगर और किशनगढ़ पर फ़ौज भेजी। सात महीने तक इसने दोनों नगरों पर घेरा रक्खा। अन्तमें डेढ़ लाख नक़द और डेढ़ लाख किश्तसे, इस प्रकार कुल तीन लाख रुपए, दण्डस्वरूप देनेका वादा कर प्रतापसिंहजीने इनसे सुलह कर ली तथा रूपनगरकी जागीर अमरसिंहजीके हवाले की। इसके बाद महाराजा प्रतापसिंहजी स्वयं

जोधपुर आए और विजयसिंहजीसे मित्रता कर ली। यह घटना वि० सं० १८४५ की है।

इसके कुछ समय बाद जोधपुरमें सरदारों आदिका उपद्रव उठ खड़ा हुआ। इससे महाराजा विजयसिंहजीका ध्यान उधर लगा देख इधर प्रतापसिंहजीने अमरसिंहजीसे रूपनगर छीन लिया। इसपर वे जयपुर चले गए और वहीं पर मारे गए।

वि० सं० १९५४ की फागुन वदी ४ को महाराजा प्रताप-सिंहजीका स्वर्गवास हो गया।

१३ महाराजा कल्याणसिंहजी।

ये प्रतापसिंहजीके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। इनका जन्म वि० सं० १८५१ की कार्तिक वदी १२ को हुआ था। यद्यपि राज्यपर बैठते समय इनकी अवस्था करीब ३ वर्षकी थी तथापि वहाँके सरदारों और मुसाहिबोंने राज्यका प्रबन्ध बड़ी योग्यतासे किया।

वि० सं० १८७० की भादों सुदी ८ को जोधपुर महाराजा मान-सिंहजी रूपनगर आए और यहीं पर उन्होंने अपनी कन्याका विवाह जयपुरमहाराजा जगतसिंहजीके साथ कर दिया। उस समय जयपुर और जोधपुरके राजाओंके बीच मैत्री करवानेमें कल्याणसिंहजीने उद्योग किया था।

वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१८) में गवर्नमेंट (ईस्ट इंडिया कम्पनी) के और कृष्णगढ राज्यके बीच पहली संधि हुई। इसके अनु-सार किशनगढ़नरेशको किसी प्रकारका कर आदि देनेके बजाय गवर्न-मेंटको समय पर केवल सैनिक सहायता देनेका वादा करना पड़ा।

वि० सं० १८७७ की आषाढ़ वदी ८ को महाराजा कल्याणसिंहजीके पुत्र मोहकमसिंहजीका विवाह उदयपुर महाराणा भीमसिंहजीकी पोती (महाराजकुमार अमरसिंहजीकी लड़की) से हुआ।

उपर्युक्त घटनाओंसे कल्याणसिंहजीको बड़ा गर्व हो गया और उन्होंने अपने सरदारोंसे झगड़ना शुरू कर दिया। इसी समय उनके और फ़तहगढ़वालोंके बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। फ़तहगढ़वाले अपनेको स्वाधीन राजा समझते थे; परन्तु गवर्नमेंटने (कम्पनीने) उनका यह दावा ख़ारिज कर दिया। उसी दिनसे वे किशनगढ़ राज्यके सामन्त हुए।

इसके बाद कल्याणसिंहजी देहली चले गए। वहाँपर देहलीके नाम मात्रके बादशाह अकबरशाह द्वितीयने इन्हे मोजे पहन कर दरबारमें आनेका अधिकार दिया। जिस समय कल्याणसिंहजी देहलीमें थे उस समय किशनगढ़में फिर गृहकलहका जोर बढ़ा, यह देख गवर्नमेंटने इनको अपने राज्यमें आकर यहाँका प्रबन्ध ठीक करनेको बाध्य किया। इस पर ये देहलीसे लौट आए। परन्तु राज्यका प्रबन्ध ठीक तौरसे न कर सके। कुछ दिन बाद इन्होंने अपने राज्यका ठेका गवर्नमेंट (कम्पनी) को देकर देहली जानेकी इच्छा प्रकट की; परन्तु गवर्नमेंटने यह बात मंजूर नहीं की। अन्तमें यह तय हुआ कि जब तक महाराजा कल्याणसिंहजी देहलीमे रहें तब तक किशनगढ़ राज्यकी देख भाल पोलिटिकल एजेण्ट करे। परन्तु अबतक जागीरदारोंका झगड़ा नहीं मिटा था। इससे महाराजाने अजमेरमें रहना अङ्गीकार किया और उनके सरदारोंने अपना फैसला जोधपुरमहाराजाकी इच्छा पर छोड़ दिया। पर यह शर्त गवर्नमेंटको (कम्पनीको) मंजूर न हुई। इससे सरदारोंने महाराजकुमार मोहकमसिंह-

---

(१) इस झगड़ेमें बूँदीवालोंने महाराजाका और कोटावालोंने विपक्षियोंका पक्ष लिया था।

जीको अपना राजा बनाकर किशनगढ़ पर चढ़ाई कर दी। जब महाराजने विजयकी आशा न देखी तब उन्होंने पोलिटिकल एजेण्टसे सहायताकी प्रार्थना कर उसके फ़ैसलेको मान लेनेका वादा किया। किन्तु फिर भी पूरी तौरसे शान्ति न हुई। इस पर वि० सं० १८८९ में कल्याणसिंहजी राज्यका भार अपने पुत्र मोहकमसिंहजीको सौंप स्वयं देहली चले गए। इनके निर्वाहके लिए ३६ हजार रुपए सालाना राज्यसे देना निश्चित हुआ। यह घटना वि० सं० १८८९ की है।

वि० सं० १८९५ की जेठ सुदी१० को देहलीमें इनका स्वर्गवास हो गया।

१४ महाराजा मोहकमसिंहजी।

ये कल्याणसिंहजीके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। इनका जन्म वि० सं० १८७३ की भादों सुदी ५ को हुआ था। इनके पिताने राज्यमें गड़बड़ बढ़ जानेसे अपने पिछले दिनोंमें राज्यकार्य इन्हें सौंप दिया था।

वि० सं० १८९७ की जेठ वदी १२ को इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पीछे कोई पुत्र न था। इससे राज्यका कार्य इनकी माताकी सलाहसे पोलिटिकल एजेण्टकी देखभालमें होने लगा। अन्तमें कचौलियाके जागीरदार भीमसिंहजीके छोटे पुत्र पृथ्वीसिंहजी मोहकमसिंहजीके गोद बिठलाए गए।

१५ महाराजा पृथ्वीसिंहजी।

इनका जन्म वि० सं० १८९४ की वैशाख वदी ५ को हुआ था और वि० सं० १८९८ की वैशाख वदी १३ को ये अलवरकी गद्दी पर बिठाए गए। इनके बालक होनेके कारण राज्यका प्रबन्ध स्वर्गवासी

(१) भीमसिंहजी फतहगढ़के महाराज बाघसिंहजीके तृतीय पुत्र थे।

मोहकमसिंहजीकी रानीकी अनुमतिसे मुसाहब लोग करते थे। इनमें राठोड़ गोपालसिंह और महता कृष्णसिंहने बड़ी चतुरतासे राज्यप्रबन्धको सम्हाला था।

वि० सं० १९११ में जोधपुरमहाराजा तख़्तसिंहजी तीर्थयात्रासे लौटते हुए कृष्णगढ़ आए। राज्यकी तरफ़से ८ दिन तक उनकी बड़ी ख़ातिर की गई।

वि० सं० १९१४ में गदरके समय राज्यकी तरफ़से भारत गवर्नमेंटकी यथासाध्य बहुत कुछ सहायता की गई।

वि० सं० १९१६ में मोतीसिंहने कई दूसरे सरदारोंके साथ मिलकर बग़ावत शुरू कर दी। परन्तु राठोड़ गोपालसिंह और मेहता कृष्णसिंहके सबबसे सरदारोंको तो शान्त होना पड़ा और मोतीसिंह राज्यसे निकाल दिया गया।

वि० सं० १९१९ (ई० स० १८६२) में किशनगढ़नरेशोंको वारिस न होनेपर गोद लेनेका अधिकार मिला। वि० सं० १९२० में महाराजा पृथ्वीसिंहजीने नाथद्वारेकी यात्रा की। इसी वर्ष जयपुरनरेश महाराजा रामसिंहजी जोधपुरसे शादी करके लौटते हुए एक रोज किशनगढ़में ठहरे। वि० सं० १९२१ में जोधपुरमहाराजा तख़्तसिंहजी भी रीवाँसे विवाह करके लौटते हुए ८ दिन तक किशनगढ़में रहे।

वि० सं० १९२२ में पृथ्वीसिंहजी लार्ड लॉरेंसके आगरेवाले दरबारमें सम्मिलित हुए। इसके बाद वि० सं० १९२५ में किशनगढ़ राज्यमें अकालका प्रकोप हुआ। परन्तु महाराजाने उचित प्रबन्ध करके प्रजाके प्राणोंकी रक्षा की। इसी वर्ष राज्यकी सीमामें होकर रेल नि-

(१) यह मोतीसिंह महाराजा प्रतापसिंहजीकी पासवानके पुत्र जोरावरसिंहका लड़का था।

काली गई । इससे उसके द्वारा राज्यके अन्दरसे होकर एक तरफ़से दूसरी तरफ जानेवाले माल परकी चुंगी उठा दी गई । इसकी एवजमें गवर्नमेंटने राज्यको २०,००० रुपए वार्षिक क्षतिपूर्तिके देनेका वादा किया । इसके अगले वर्ष गवर्नमेंटके और राज्यके बीच एक सन्धि हुई । उसके अनुसार आपसमें एक दूसरेके अपराधियोंको एक दूसरेको सौंप देनेका प्रबन्ध हो गया । वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में इसमें संशोधन हुआ और उसके अनुसार बृटिशभारतके अपराधियोंका न्याय बृटिशभारतके कानूनके अनुसार करना निश्चित हुआ ।

वि० सं० १९२७ में लार्ड मेओने अजमेरमें दरबार किया । इसमें भी पृथ्वीसिंहजीने भाग लिया । अनन्तर वि० सं० १९३० में लार्ड नार्थब्रुकने आगरेमें दरबार किया । इसमें भी आप शरीक हुए और वहाँसे लौटते हुए प्रयाग आदि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए राजधानीको लौट आए । इसी वर्ष फतेहगढ़के जागीरदार—रणजीतसिंहने एक बार फिर स्वाधीन होना चाहा । परन्तु गवर्नमेंटके दबावसे उसे किशनगढ़-नरेशकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी[1] ।

वि० सं० १९६२ में महाराजा पृथ्वीसिंहजी आगरे जाकर प्रिंस ऑफ वेल्ससे मिले । इसके बाद वि०सं० १९३२ (ई०स० १८७७ की १ जनवरीको) में लार्ड लिटनके देहलीवाले दरबारमें सम्मिलित हुए। इस अवसरपर इनकी सलामी १५ तोपोंके अलावा २ तोपें जाती तौरपर बढ़ाई गई और भारत सरकारकी तरफ़से इन्हें एक निशान (झंडा) भी मिला ।

वि० सं० १९३६ (ई० स० १८७९) में गवर्नमेंटने किशनगढ़ राज्यमें नमकका बनाना बंद करवा कर शराब, अफीम, आदि

(१) महाराजा प्रतापसिंहजीको जबसे प्रतापगढ़की जागीर मिली थी तबसे ही वे और उनके वंशज आपको स्वाधीन समझते थे ।

मादक पदार्थोंको छोड़ अन्य पदार्थोंपरकी चुंगी भी उठवा दी और इसकी एवज़मे अपनी तरफ़से राज्यको २५,००० रुपए नकद तथा ५० मन नमक सांभरमें मुफ्त देना निश्चित किया। इसके सिवाय राज्यके अन्य लोगोंको उनके इस हर्जानेके लिए ५,००० रुपए देनेका भी इक-रार किया।

वि० सं० १९३६ की मंगसिर सुदी १२ (ई० स० १८७९ की २५ दिसंबर) को इनका स्वर्गवास हो गया।

ये बड़े मिलनसार, चतुर और सरल हृदय पुरुष थे। इनके पीछे तीन पुत्र और चार कन्याएँ [1]थीं। इनके पुत्रोंके नाम शार्दूलसिंह, जवान-सिंह और रघुनाथसिंह थे।

१६ महाराजा शार्दूलसिंहजी।

ये पृथ्वीसिंहजीके पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १९३६ की पौष वदी ९ को २२ वर्षकी अवस्थामें गद्दीपर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १९१४ की पौष वदी ९ को हुआ था।

वि० सं० १९३८ में इन्होंने अपने पिताका गयाश्राद्ध कर काशी, प्रयाग आदि तीर्थोंकी यात्रा की और वहाँसे जगन्नाथजीके दर्शनार्थ गए। वि० सं० १९३९ में आप जोधपुरमें महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय) की बहिनकी शादीमें सम्मिलित हुए। इसके बाद वि० सं०

(१) इनमेंसे पहली कन्याका विवाह वि० सं० १९३३ में उदयपुरके महा-राणा सज्जनसिंहजीसे, दूसरी कन्याका अलवरके महाराजा मंगलसिंहजीसे, तीसरी कन्याका वि० सं० १९३७में जयपुरके महाराजा माधवसिंहजी द्वितीयसे और चौथी का वि० सं० १९४३ में झालावाड़के महाराजा राणा जालिमसिंहजीसे हुआ था।

१९४१ में आप उदयपुर गए और वहाँसे नाथद्वारे और कांकरोली होते हुए किशनगढ़को लौट आए । वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९२ की १ जनवरी) में आपको जी० सी० आई० ई० का ख़िताब मिला ।

वि० सं० १९५७ (ई० स० १९०० की १८ अगस्त) को शार्दूलसिंहजीका स्वर्गवास हो गया ।

ये बड़े चतुर पुरुष थे और इन्होंने राज्यके विभागोंमें नवीन प्रबन्ध करके राज्यमें अच्छी उन्नति की थी ।

१७ महाराजा मदनसिंहजी ।

ये शार्दूलसिंहजीके पुत्र और उत्तराधिकारी हैं ।

इनका जन्म वि० सं० १९४१ की कार्तिक सुदी १४ (ई० स० १८८४ की १ नवंबर) को हुआ था और वि० सं० १९५७ की भादों सुदी ४ (ई० स० १९०० की २९ अगस्त) को आप किशनगढ़की गद्दीपर बैठे । उस समय आपकी छोटी अवस्थाके कारण राज्यका कार्य जयपुरके रेज़ीडेंटकी अध्यक्षतामें राजकीय काउंसिलके तत्त्वावधानमें होने लगा । आपने दूसरी शिक्षाके साथ साथ दो वर्ष कैडिट कोरमें रहकर सामरिक शिक्षा भी पाई और ई० स० १९०३ के देहली दरबारमें आप कैडिटकोरकी तरफ़से ही सम्मिलित हुए थे ।

ई० स० १९०४ में आपका पहला विवाह उदयपुर महाराणाकी कन्यासे हुआ । इसके बाद आपके बालिग हो जानेपर वि० सं० १९६२ की मंगसिर सुदी १५ (ई० स० १९०५ की ११ दिसंबर) को राज्यका सारा भार आपको सौंप दिया गया ।

वि० सं० १९६४ (ई० स० १९०८ की मार्च) में आप सर-
कारी सेनाके ऑनररी कैप्टन बनाए गए और वि० सं० १९६५
(ई० स० १९०९ की १ जनवरीको) में आपको के० सी० आई०
ई० का ख़िताब मिला। तथा आप अँगरेजी सेनाके ऑनररी मेजर
बनाए गए।

ई० स० १९११ के प्रारम्भमे आपका दूसरा विवाह भावनगरकी
महारानीकी छोटी बहनसे हुआ। इसी वर्षके दिसंबरमें इनसे आपके
एक कन्या हुई और इसी महीनेमें देहली दरबारके समय स्वयं
बादशाहने आपको के० सी० एस० आई० के पदकसे विभूषित किया।

ई० स० १९१४ में यूरोपीय महासमरके प्रारम्भ होनेपर आपने
रणक्षेत्रमें जाकर बृटिश सेनाकी सहायता की। छ:मास तक वहाँ
रहकर आप ई० स० १९१५ की फरवरीमें हिन्दुस्तान लौट आए।

महाराजा मदनसिंहजी वल्लभकुल सम्प्रदायके अनुयायी और बड़े
योग्य शासक है। आपने अपने राज्यमें अन्य अनेक प्रबन्धोंके साथ
साथ सिंचाईका भी अच्छा प्रबन्ध किया है तथा विवाह आदिपर
होनेवाली फिजूल खर्चीको भी बहुत कुछ रोक दिया है। आपके समय
व्यापारमें भी अच्छी उन्नति हुई है। रूई आदिकी गाँठें बाँधनेके लिए
प्रेस आदि भी खोले गए हैं।

किशनगढ़ राज्यका क्षेत्रफल ८५८ वर्ग मील, आबादी एक लाख
और आमदनी ६ लाखके करीब है। यहाँके महाराजाकी सलामीकी
तोपें १५ हैं।

---

(१) आपकी माता सीरोहीके स्वर्गवासी महाराव उम्मेदसिंहजीकी कन्या
थीं और आपकी बहनका विवाह अलवरनरेश महाराजा जयसिंहजीसे हुआ है।

किशनगढ़के राठोड़ राजाओंका वंशवृक्ष।
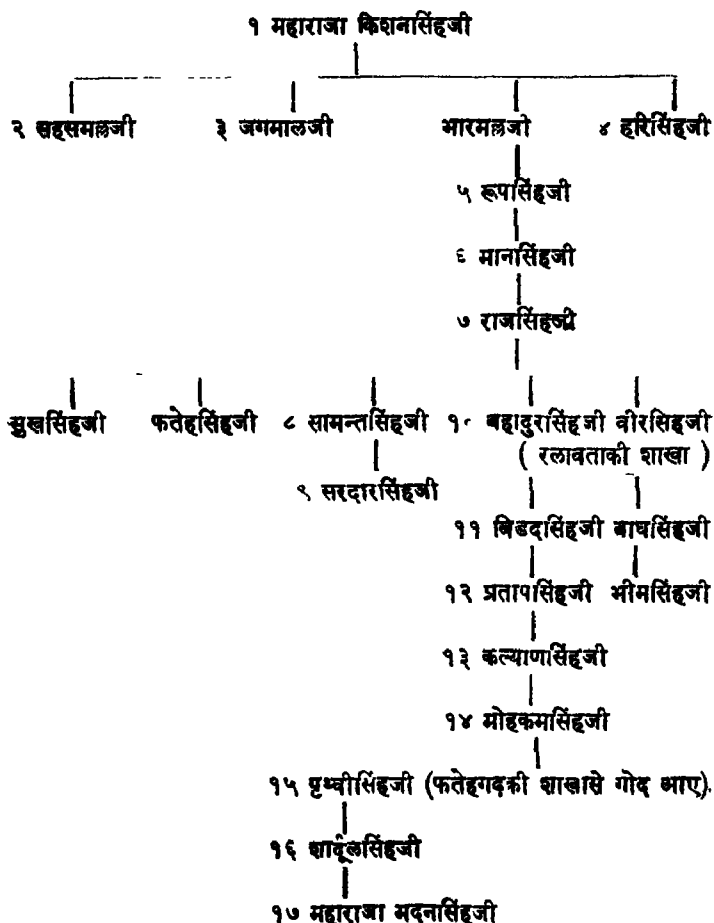
रतलामके राठोड़ ।

वि० सं० १६५१ (ई० स० १५९४) में राजा उदयसिंहजीके पीछे जब उनके बड़े पुत्र राजा सूरसिंहजी मारवाड़की गद्दी पर बैठे तब उन्होंने अपने छोटे भाई दलपतसिंहजीको जालोर, बालाहेडा, खेरडा और पिशागन जागीरमें दिये । वि० सं० १६६६ (ई० स० १६०९) में दलपतसिंहजीका स्वर्गवास हो गया और उनके पुत्र महेशदासजी जालोरके स्वामी हुए । ये बड़े वीर थे । वि० सं० १६८७ (ई० स० १६३०) में जिस समय बादशाह शाहजहाँने खान खानाँकी अध्यक्षतामें दौलताबाद (दक्षिण) पर सेना भेजी उस समय ये भी उसके साथ थे और वहाँका किला इन्हींकी वीरतासे विजय हुआ था । इस युद्धमें महेशदासजीके दो भाई वीरगतिको प्राप्त

---

(१) इनका जन्म वि० सं० १६२५ की सावन वदी ९ (ई० स० १५६८ की २१ जुलाई) को हुआ था ।

(२) सीतामऊ गजटियरमें लिखा है:—पिताके मरने पर महेशदासजी शाही सेनामें भरती हो गए । इसके कुछ दिन बाद ये अपनी माताके साथ जालोरसे ओंकारनाथके दर्शनार्थ रवाना हुए । परन्तु मार्गमें सीतामऊके पास पहुँचने पर इनकी माताका स्वर्गवास हो गया । उस समय उक्त प्रदेश पर जगमालोत राठोड़ोंका अधिकार था । अतः महेशदासजीने अपनी माताकी दाहक्रियाके लिए उनसे कुछ पृथ्वी माँगी । परन्तु उन्होंने देनेसे इनकार कर दिया । इस पर महेशदासजीने उस स्थान पर कुछ भूमि वहाँके किसी निवासीसे खानगी तौर पर खरीद कर अपनी माताका दाहकर्म किया और उसकी यादगारमें जो छतरी उन्होंने वहाँ पर बनवाई वह अब तक विद्यमान है । ये जगमालोत भोमिये वि० सं० १५१३ (ई० स० १४५६) के करीब ईडरकी तरफसे आकर यहाँ बस गए थे और वि० सं० १६०६ (ई० स० १५४९) में भीलोंको निकाल कर सीतामऊ पर अधिकारी हुए थे ।

हुए और स्वयं ये भी बहुत कुछ आहत हो गए थे। इसके अलावा और भी कई बार इन्होंने शाही सेनाके साथ रहकर अच्छी वीरता प्रदर्शित की थी। इसीसे प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहाँने इन्हें एक बड़ी जागीर दी। इसके ८४ गाँव तो फूलियाके परगनेमें थे और ३२५ जहाजपुरमें। इसीके साथ बादशाहने इनका मनसब भी तीन हजार सवारोंका कर दिया था।

वि० सं० १७०१ (ई० स० १६४४) में लाहोरमें ५१ वर्षकी अवस्थामें महेशदासजीका स्वर्गवास हो गया[1]। इनके ५ पुत्र थे।

१ राजा रतनसिंहजी।

ये महेशदासजीके बड़े पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६७५ (ई० स० १६१८) के करीब हुआ था[2]।

ये भी अपने पिताके समान ही वीर और प्रतापी थे। एक समय देहलीमें ये बादशाहके दरबारमे जा रहे थे। मार्गमें एक छूटे हुए मस्त हाथीने आकर इनका रास्ता रोक लिया। यह देख राठोड़ वीरने अपनी कटार[3]से उसपर ऐसा प्रहार किया कि उसकी चोटसे घबराकर वह हाथी सामनेसे भाग गया। बादशाह शाहजहां अपने महलों परसे इस घटनाको देख रहा था। अतः इनकी वीरतासे प्रसन्न होकर उसने इनका बड़ा आदर सत्कार किया[4]।

---

(१) कहीं कहीं पर इस घटनाका समय वि० सं० १७०४ लिखा है।

(२) कहीं पर इनका जन्म वि० सं० १६६२ (ई० स० १६०५) में और कहीं पर वि० सं० १६८६ (ई० स० १६२९) में होना लिखा है।

(३) यह कटार अब तक रतलाम राज्यके शस्त्रागारमें रक्खी है।

(४) बारहट कुंभकर्णने अपने रतनरासेमें लिखा है कि वीरवर रत्नसिंहजीका रंग काला और कद ठिंगना था। इसीसे इनके पिता अपने द्वितीय पुत्र कल्याणदासजीको बहुत चाहते थे और उनका विचार कल्याणदासजीको ही

रतनरासा, गुणवचनिका, और इनायतखाँकृत 'शाहजहाँनामा'से ज्ञात होता है कि रत्नसिंहजीने खुरासान (पर्शिया) में पर्शियन्सको और कंदहारमें उज़बकोंको (ई० स० १६५१–५२ में) दबानेमें शाही सेनाकी बड़ी सहायता की थी।

इसके बाद जब ये कंदहारसे लौटे तब बादशाहने इनकी वीरतासे प्रसन्न होकर इन्हें ५३ लाख रुपए सालाना आमदनीकी जागीर [1] दी। इसमें आगे लिखे १२ परगने थे—धरार (रतलाममें), बदनावर (धारमें), डगपराव, आलोत, (देवासमें), तीतरोद (सीतामऊमे) कोटरी, गडगुचा (देवासमें) आगर, नाहरगढ और कानार (ग्वालियरमें), भीलार और रामघाड़िया।

इसीके साथ बादशाहने इन्हे तीन हजार सवारोंका मनसब, चँवर, मोरछल, सूरजमुखी और माहीमरातब आदि भी दिये। ये वस्तुएँ अब तक रतलाम राज्यमें राज्यचिह्नस्वरूप लवाजमेमें रहनी हैं [2]। इस

अपना उत्तराधिकारी बनानेका था। जब इस बातकी सूचना रत्नसिंहजीको मिली तब ये बादशाहकी सहायता प्राप्त करनेको देहली चले गए। परन्तु बहुत कुछ कोशिश करने पर भी वहाँ पर इन्हें शाही दरबारमें उपस्थित होनेका अवसर न मिला। अन्तमें उपर्युक्त हाथीवाली घटनाने इन्हें बादशाहके सामने उपस्थित होनेका मौका देनेके साथ ही उसका कृपा पात्र भी बना दिया। इसीसे इनके पिताको अपना पहलेका विचार त्याग कर इन्हें ही अपना उत्तराधिकारी मानना पड़ा।

(१) लोगोंका अनुमान है कि इस इतनी बड़ी जागीरके देनेमें बादशाहका यह भी स्वार्थ था कि वह मालवाके पश्चिममें एक बलशाली राज्य स्थापित करके गुजरात और दक्षिणके सूबेदारोंके आक्रमणोंसे निश्चिन्त हो जाय, क्योंकि औरंगजेबने राज्याधिकारप्राप्तिके लिए षड्यंत्र शुरू कर दिये थे।

(२) मालवेमें ऐसे बहुत कम राजा हैं जिनको ये सब वस्तुएँ बादशाहसे मिली हैं।

जागीरके मिलनेपर पहले तो ये धरारमें जाकर रहे और पीछे इन्होंने रतलामको राजधानी बनाया ।

इसके कुछ समय बाद ही जब वि० सं० १७१५ में औरंगज़ेबने मुरादसे मिलकर अपने पिताकी बादशाहत पर अधिकार करनेकी तैयारी की, तब बादशाह शाहजहाँने जोधपुरमहाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथमके साथ ही वीरवर रत्नसिंहजीको भी उसको रोकनेके लिए भेजा । परन्तु जिस समय दोनो सेनाओंका सामना हुआ उस समय ऐन मौक़ेपर शाही सेनाका सेनापति क़ासिमखाँ अपनी मुसलमानी फ़ौजको लेकर युद्धसे हट गया । इस धोखेबाज़ीसे शत्रु सेनाका बल बहुत बढ़ गया । यह देख महाराजा जसवन्तसिंहजीने अपनी तीस हज़ार वीर राजपूतसेनासे ही शत्रुका मुकाबला किया और औरंगज़ेबकी सेनाके दस हज़ार सैनिकोंको यमलोककी राह दिखा दी । परन्तु इनकी तरफ़के भी करीब सत्रहसौ राठोड़ और कुछ गहलोत, हाड़ा, गौड़ आदि राजपूत वीर वीरगतिको प्राप्त हुए ।

बर्नियर लिखता है कि उस समय राठोड़ोंने ऐसी वीरता दिखाई थी

---

(१) ई० स० १६५८ की फरवरीमें औरंगज़ेब बुरहानपुर पहुँचा और वहाँ पर एक महीने तक ठहरकर अपनी सेनाका प्रबन्ध करता रहा और इसके बाद मुरादके साथ चुपचाप (अकबरपुर–खालघाटके पास) नर्मदाको पारकर उज्जैनके पास पहुँच गया । जिस समय यह उज्जैनसे ७ कोसके फासलेपर पहुँचा उस समय मांडूके सेनाध्यक्ष राजा शिवराजने महाराजा जसवन्तसिंहजीको पहले पहल इसकी सूचना दी । इसी समय धारके किलेमें रहनेवाले दाराशिकोहके आदमी भी किला खाली कर पीछे हट आए और जसवन्तसिंहजीकी सेनामें मिल गए । यह देख जसवन्तसिंहजी भी शाही सेनापति कासिमखाँ आदिको साथ लेकर औरंगज़ेबके मुकाबलेको चले । ई० स० १६५८ की २० अप्रेलको दोनों सेनाओंका सामना हुआ ।

कि औरंगजेब और मुरादका बचना भी कठिन हो गया था। परन्तु उनके जीवनके दिन पूरे न हुए थे इसीसे वे बच गए।

इसके बाद क़ासिमखाँकी धूर्ततासे औरंगजेबकी सेनाका बढ़ा हुआ बल देखकर राठोड़ सरदारोंने महाराजा जसवन्तसिंहजीको उनकी इच्छा न होनेपर भी मारवाड़की तरफ रवाना कर दिया और उनके स्थान पर रतलामनरेश राठोड़ वीर रतनसिंहजीको अपना सेनानायक बनाकर शत्रुपर आक्रमण कर दिया। यद्यपि संख्यामें राठोड़ बहुत ही कम रह गये थे तथापि वीर रत्नसिंहजीने इन थोड़े सैनिकोंसे ही एकबार शत्रुसेनाके पैर उखाड़ दिये और औरंगजेबके सेनापति मुर्शिद कुलीखांको धराशायी कर दिया। परन्तु कुछ समय बाद मुरादके ताजा दम सिपाहियोंके आजानेसे थके हुए अल्पसंख्यक राठोड़ वीरोंका प्रभाव कम पड़ गया और वे एक एक करके वीरगतिको प्राप्त हुए। इसी युद्धमें धर्मतपुर (फतेहाबादके) पास वीरकेसरी रत्नसिंहजी भी वि० सं० १७१५ की वैशाख सुदी ९ (ई० स० १६५८ की २० अप्रेल) को बड़ी बहादुरीके साथ लड़कर स्वर्गको सिधारे।

इसके बाद युद्धस्थलमें ही टूटे हुए भालोंकी लकड़ियोंसे बनी चितामें इनका दाहकर्म किया गया। इनकी यादगारमें उक्त स्थान पर जो छतरी बनाई गई थी वह अबतक विद्यमान है।

कहते हैं कि युद्धमें जहाँपर आहत हुए रत्नसिंहजी पड़े थे वहीं पर उनके पास पांचेराके चौहान भगवानदास भी क्षत विक्षत हो पड़े हुए थे और दोनोंके शरीरसे रक्तकी धारा बह रही थी। यह देख चौहान

---

(१) पाँचेराके साँचोरा चौहान भगवानदास और अमरदास, कोटाका हाडा राजा मुकुन्दसिंह और उसके पाँच भाई, झाला दयालदास और गौड़ अर्जुनसिंह आदि अनेक वीर रत्नसिंहजीके साथही युद्धमें मारे गये थे।

भगवानदासने अपने इर्द गिर्द रेतकी पाली बनाकर अपने बहते हुए रुधिरको अपने स्वामी रत्नसिंहजीके रुधिरमें मिलनेसे बचानेकी चेष्टा शुरू की । इस पर रत्नसिंहजीने उन्हें इस परिश्रमके करनेसे रोक दिया और कहा कि हमारा तुम्हारा खून आपसमें मिल जाने दो । आजसे तुम्हारे और हमारे वंशज आपसमें भाईकी तरह रहेंगे । उस दिनसे ही रत्नावत राठोड़ और भगवानदासोत चौहान आपसमें विवाहसम्बन्ध नहीं करते हैं ।

तारीख़ ए-मालवा (करमअलीकृत) और पं० अमरनाथ लिखित रतलामके इतिहासमें लिखा है कि रत्नसिंहजीके स्वर्गवासकी सूचना मिलनेपर उनकी ७ रानियाँ उनके पीछे सती हो गईं । परन्तु रतनरासामें इनकी दो रानियोंका ही सती होना लिखा है ।

कहीं कहीं पर लिखा मिलता है कि रत्नसिंहजीकी मृत्युके बाद औरंगजेबने राज्यपर बैटते ही उनके वंशजोंसे राज्यका बहुतसा भाग छीन लिया और इसके बाद मराठोंके समयमें और भी बहुतसे परगने रतलाम राज्यसे जुदा कर दिये गए ।

इनका राज्यसमय वि० सं० १७०९ (ई० स० १६५२) से वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) तक था ।

कहते हैं, वि० सं० १७०९ (ई० स० १६५२) में इन्होंने अपने नामपर रतलाम नगर बसाया था । इनके १२ पुत्र थे ।

(१) किसी किसी तवारीखमें उक्त नगर बसानेका समय वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) दिया है और कहीं कहीं पर वि० सं० १७११ (ई० स० १६५५) में इस घटनाका होना लिखा है । परन्तु अबुलफजलकृत आईने अकबरीमें रतलामका नाम लिखा होनेसे सिद्ध होता है कि उक्त नगर पहलेसे ही विद्यमान था । अतः सम्भव है, इन्होंने उक्त नगरकी विशेष उन्नति की हो ।

२ राजा रामसिंहजी ।

ये रत्नसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र थे और वि० सं० १७१५ की जेठ सुदी ७ को उनके उत्तराधिकारी हुए । इन्होंने २४ वर्ष राज्य किया और वि० सं० १७३९ की वशाख सुदी २ को दक्षिण (कोंकण) के एक युद्धमें मारे गए ।

इनका समय वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) से वि० सं० १७३९ (ई० स० १६८२) तक था ।

३ राजा शिवसिंहजी ।

ये रामसिंहजीके पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १७३९ की ज्येष्ठ सुदी ५ को रतलामकी गद्दीपर बैठे । इन्होंने वि० सं० १७३९ (ई० स० १६८२) से वि० सं० १७४१ (ई० स० १६८४) तक ही राज्य किया । इनके पीछे पुत्र न होनेसे इनके छोटे भाई केशवदासजी राज्यके अधिकारी हुए ।

४ राजा केशवदासजी ।

ये शिवसिंहजीके छोटे भाई थे और उनकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए । उस समय इनकी अवस्था छोटी थी, इससे मौका पाकर इनके चाचा छत्रसालजीने शीघ्र ही रतलाम पर अधिकार कर

(१) वि० सं० १७२३ (ई० स० १६६६) का एक लेख सेजाओतकी बावडीमें लगा है । यह महाराजा रामसिंहजीके समयका है ।

(२) कहीं कहीं वि० सं० १७४५ में इनका स्वर्गवास होना लिखा है । यदि यह ठीक हो तो केशवदासजीका समय और छत्रसालजीके रतलाम पर अधिकार करनेका समय दिए हुए समयसे ४ वर्ष बाद समझना चाहिए ।

लिया। वि० सं० १७६६ (ई० स० १७०९) के करीब केशवदासजीने सीतामऊके राज्यकी स्थापना की।

५ राजा छत्रसालजी।

ये रतनसिंहजीके पुत्र और रामसिंहजीके भाई थे। वि० सं० १७४१ (ई० स० १६८४) में इन्होंने अपने भतीजे केशवदासजीको हटाकर रतलाम राज्यपर अधिकार कर लिया। इसी वर्षका इनका एक दानपत्र मिला है। इसमे इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज' और 'श्रीहजूर' लिखी है[२]।

छत्रसालजीका अधिक समय बादशाह औरंगजेबके साथकी[३] दक्षिणकी चढ़ाइयोमे ही बीता था। इन्होंने बीजापुर और गोलकुंडाके युद्धोंमें[३] बड़ी वीरता दिखाई थी, तथा रायगढ़ और जिंजीके घेरेमें[४] भी ये शाही सेनाके साथ थे।

वि० सं० १७६४–६५ (ई० स० १७०७–८) में जिस समय बहादुरशाहने मिरजा कामबख्शपर चढ़ाई की उस समय भी ये उसके साथ थे। वि० सं० १७६५ में वहाँसे लौटे, परन्तु उसी वर्ष

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि केशवदासजीके गद्दी पर बैठने पर बादशाह औरंगजेबने पठान नासिरुद्दीनको जज़िया नामक कर वसूल करनेको रतलामकी तरफ भेजा। परन्तु किसी अज्ञात पुरुषने वहाँ पर उसे मार डाला। इसी कारणसे बादशाह केशवदासजीसे नाराज हो गया और मौक़ा पाकर उनके चाचा छत्रसालजीने रतलाम पर अधिकार कर लिया।

(२) वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७१) का एक दानपत्र इनका और भी मिला है। इसमें इनके नामके आगे महाराजाधिराज आदि उपाधियोंके न होनेसे ज्ञात होता है कि यह दानपत्र राज्यप्राप्तिके पूर्व लिखा गया था।

(३) इस घटनाका समय वि० सं० १७४१ से १७४४ तक माना जाता है।

(४) यह घटना वि० सं० १७५० (ई० स० १६९३) में हुई थी।

फिर दक्षिणकी तरफ़ भेजे गए। पन्हालमें इन्होंने बड़ी वीरतासे युद्ध किया। कुछ दिन बाद जब इनका बड़ा पुत्र हाथीसिंह दक्षिणके युद्धमें मारा गया तब इनको सांसारिक कामोंसे विरक्ति हो गई और इन्होंने अपनी राजधानीमें आकर राज्यके तीन भाग कर दिये। इनमेंसे एक भाग तो अपने पौत्र (मृत हाथीसिंहके पुत्र) बैरीसालको[1] और बाकीके दो भाग अपने दूसरे दो पुत्रों—केसरीसिंहजी और प्रतापसिंहजीको—दे[2] दिये तथा आप स्वयं उज्जैनमें जाकर अपना शेषजीवन ईश्वरभजनमें बिताने लगे। वि० सं० १७६६ (ई० स० १७०९) में इनका स्वर्गवास हो गया।

७ राजा केसरीसिंहजी।

ये छत्रसालजीके द्वितीय पुत्र थे और उनके विरक्त हो जानेपर रतलामके अधिकारी हुए।

इनके समय आपसके झगड़ेके कारण इनका भतीजा बैरीसाल अपनी धामनोदकी जागीर छोड़कर जयपुरकी तरफ़ चला गया। इसपर वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१६) में इनके छोटे भाई प्रतापसिंहने इन्हें मार डाला। उस समय इनके बड़े पुत्र मानसिंहजी देहलीमें थे। जब उनके छोटे भाई जयसिंहने इस घटनाका समाचार उनके पास भेजा तब वे शीघ्र ही बादशाही सेना लेकर रतलामकी तरफ़ रवाना हुए। मार्गमें मन्दसोरके पास जयसिंह भी नरवरकी सहायक सेना लेकर इनसे आ मिला। वहाँसे आगे बढ़नेपर सागोदमें प्रतापसिंहसे इनका सामना हुआ। इसी युद्धमें इन्होंने अपने चाचाको मारकर पिताकी हत्याका बदला लिया।

---

(१) धामनोदका परगना इसके हिस्सेमे आया था।

(२) केसरीसिंहजीको रतलाम और प्रतापसिंहजीको रावटीका परगना मिला था।

७ राजा मानसिंहजी।

ये केसरीसिंहजीके बड़े पुत्र थे और वि० सं० १७७३ में उनके मारे जानेपर रतलामकी गद्दीपर बैठे। इन्होंने राज्य प्राप्त कर लेनेपर अपने भाईबन्दोंको और हितमित्रोंको अनेक जागीरें दी थीं। उन लोगोंके वंशज अबतक रतलाम राज्यके सामन्त हैं।

इन्हींके समय रतलामकी तरफ़ पहले पहल मराठोंका आगमन हुआ था। परन्तु उस समय केवल एक दो साधारण लड़ाइयोंके अलावा इनसे राज्यको विशेष असुविधा नहीं उठानी पड़ी।

वि० सं० १८०० (ई० स० १७४३) मे इनका स्वर्गवास हो गया। मानसिंहजीने अपने छोटे भाई जयसिंहजीको एक बड़ी जागीर दी थी। उन्हींसे सैलाना राज्यकी अलग शाखा चली।

८ राजा पृथ्वीसिंहजी।

ये मानसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद उत्तराधिकारी हुए। इनके समय राज्यपर मराठोंके लगातार भीषण आक्रमण होने लगे थे, अतः इन्होंने बहुतसा द्रव्य देकर किसी तरह उनसे अपना पीछा छुड़ाया। ३० वर्ष राज्य करनेके बाद वि० सं० १८३० (ई० स० १७७३) में पृथ्वीसिंहजीकी मृत्यु हो गई।

इनकी एक कन्याका विवाह स्वयं उदयपुरके महाराणाजीसे और दूसरीका महाराणाजीके भतीजेसे हुआ था।

९ राजा पद्मसिंहजी।

ये पृथ्वीसिंहजीके द्वितीय पुत्र थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए। मराठोंके आक्रमणोंसे लाचार होकर इन्होंने सिंधियासे सन्धि कर ली और उसे वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में इनका देहान्त हो गया।

१० राजा पर्वतसिंहजी।

ये पद्मसिंहजीके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। इनके समय मराठोंकी भीषणता और भी बढ़ गई। वि० स० १८५८ (ई० स० १८०१) में पहली बार और वि० सं० १८६० (ई० स० १८०३) में दूसरी बार जसवन्तराव होल्करने रतलामको लूटा। इससे मौक़ा पाकर धारके राजाने भी देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक गड़बड़ मचा दी। इन घटनाओंके कारण जब राज्यकी आय नष्ट हो गई और सिन्धियाको निश्चित कर न दिया जा सका तब उसने बापू सिन्धियाको रतलामपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा की। इसपर १२ हजार राठोड़ वीरोंको साथ लेकर उचानगढ़के किलेसे पर्वतसिंहजीने उसका सामना किया और मराठोंकी आक्रमणकारिणी सेनाको परास्त कर उसके बहुतसे सैनिकोंको मार डाला। इसी बीच सर जान मालकम उधरसे आ निकले और उन्होंने बीचमें पड़कर इन दोनों योद्धाओंमें सुलह करवा दी। ई० स० १८१९ की ५ वीं जनवरी (वि० सं० १८७५) को अँगरेजोंके और सिंधियाके बीच एक सन्धि हुई। इसके अनुसार अँगरेजोंने रतलाम राज्यद्वारा दिया जानेवाला सिंधियाका कर[1] यथासमय उसे दिलवा देनेका जिम्मा ले लिया और इसकी एवजमें सिंधियाको रतलामपर चढ़ाई करने, उक्त राज्यके आभ्यन्तरिक शासनमें हस्तक्षेप करने या वहाँके राजाओंके उत्तराधिकारके विषयमें सम्मति देनेका अधिकार छोड़ना पड़ा।

---

(१) रतलाम राज्य सिंधियाको ४६,००० रुपए वार्षिक कर देता था। परन्तु ई० स० १८६० की गवर्नमेंटकी सिंधियाके साथकी सन्धिके अनुसार वह रकम गवर्नमेंटको दी जाने लगी।

ऊपर लिखे अनुसार मराठोंके निरन्तर आक्रमणोंकी चिन्तासे कुछ दिन बाद पर्वतसिंहजीके मस्तिष्कमें विकार उत्पन्न हो गया। इस पर इनकी प्रियतमा रानी झालीजी इनकी सम्मतिसे राज्यकार्यकी देख-भाल करने लगीं। यह देख इनकी दूसरी रानी चूंडावतजीको डाह उत्पन्न हुई और वे गर्भवती होनेपर भी अपने भाईके पास सलूंभर चली गई। वहीं पर कुछ दिन बाद वि० सं० १८७१ (ई० स० १८१४) में उनके बलवन्तसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु झालीजीने उसके असली पुत्र होनेमें सन्देह कर अपने पुत्र विजयसिंह-को रतलामकी गद्दीपर बिठाना चाहा। इस पर राज्यमें गृहकलह उत्पन्न हो गया और जब झगड़ा बढ़ने लगा तब लोगोंने बीचमें पड़ आप-समें इस शर्त पर सुलह करवा दी कि यदि उदयपुर महाराणा भीमसिं-हजी अपने महाराजकुमारको चूंडावतजीके पुत्रके साथ भोजन करनेकी आज्ञा दे दें तो बलवन्तसिंहजी राज्यके अधिकारी हो सकते हैं।

इस पर सर जान मालकमने सारी घटना राणाजीको लिख भेजी। इसके उत्तरमें राणाजीने बलवन्तसिंहजीको अपना भानजा होना अङ्गी-कार कर अपने महाराजकुमारके साथ ही अपने १६ उमरावोंको भी उनके साथ भोजन करनेकी आज्ञा दी। इसके अनुसार विपक्षियों और गवर्नमेंटके प्रतिनिधियोंके सामने उदयपुरमें यह सहभोज हुआ। इसीके साथ आपसका सारा झगड़ा भी मिट गया।

वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२५) में पर्वतसिंहजीका स्व-र्गवास होगया।

११ राजा बलवन्तसिंहजी।

ये पर्वतसिंहजीके पुत्र थे और ११ वर्षकी अवस्थामे उनके उत्तरा-धिकारी हुए। इस समय इनकी अवस्था छोटी होनेके कारण राज्यका

प्रबन्ध पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल बर्थविककी अध्यक्षतामें होने लगा। इनके समय राज्यप्रबन्धमें बहुत कुछ उन्नति हुई ।

बलवन्तसिंहजीको कवितासे बड़ा प्रेम था। इसीसे इनके दरबारमें दूर दूरके चारण और भाट आया करते थे, तथा ये भी यथासम्भव हर एकके आदर सत्कारमें कमी न होने देते थे ।

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) के गदरके समय इन्होंने अँगरेजोंकी बड़ी सहायता की। इसके कुछ समय बाद ही इनका[1] स्वर्ग-वास हो गया ।

यद्यपि ये दान आदिमें बहुतसा द्रव्य खर्च करते रहते थे तथापि इनकी मृत्युके समय वसन आभूषण आदि सब मिलाकर खज़ानेमें क-रीब ४० लाख रुपए मूल्यकी सम्पत्ति मौजूद थी ।

१२ राजा भैरवसिंहजी ।

ये राजा मानसिंहजीकी पाँचवीं पीढ़ीमें थे और बलवन्तसिंहजीने इन्हें झरत्राससे लाकर अपने गोद बिठाया था। वि० सं० १९१४ में १८ वर्षकी अवस्थामें ये रतलामकी गद्दीपर बैठे ।

पहले लिखा जा चुका है कि गदरके समय बलवन्तसिंहजीने अँगरे-जोंकी बड़ी सहायता की थी। इसीसे (उनके शीघ्र ही स्वर्गवास हो जानेके कारण) उस सेवाके उपलक्षका खिलत (सरोपाव) आदि ब्रिटिश गवर्नमेंटने उनके उत्तराधिकारी भैरवसिंहजीको भेट किया।

ये राज्यकार्यमें विशेष ध्यान नहीं देते थे। इन्होंने उसका सारा भार नामलीके ठाकुरके भाई सोनगरा बखतावरसिंह पर छोड़ रक्खा था[2]। परन्तु वह इससे अनुचित लाभ उठाता था ।

---

(१) इनकी रानी राणावतजी उदयपुर महाराणाके वंशकी थी ।

(२) राजा बलवन्तसिंहजीके समयसे ही यह राज्यका कामदार कहलाता था ।

कहते हैं उसने एक बनियेको अपना नायब बना लिया था और कुछ समय बाद उसीके रिश्तेदारों और मित्रोंने राज्यके तमाम ओहदों पर अधिकार कर लिया। स्वयं भैरवसिंहजीके आसपास भी कामदारके आदमी रहने लगे। वे दिनरात इसी चेष्टामें लगे रहते थे कि जहाँतक हो उन्हें राज्यकी वास्तविक दशाका पता न चले। छः वर्षतक राज्यकी यही दशा रही। इसी बीच राज्यका खज़ाना खाली होकर बहुतसा कर्ज भी हो गया[1]। वि० सं० १९२१ (ई० स० १८६४) में एकाएक भैरवसिंहजीका स्वर्गवास हो गया।

१३ राजा रणजीतसिंहजी[2]।

ये भैरवसिंहजीके पुत्र थे और उनके बाद अपनी बाल्यावस्थामें ही रतलामकी गद्दीपर बैठे। इसीसे गवर्नर जनरलके मध्य भारतके एजेण्टके भारतीय सहकारी ख़ान बहादुर मीर मुहम्मद शाहामतअली रतलाम राज्यके सुपरिंटंडेंट और अमलेटा तथा सरवनके ठाकुर उसके सहकारी बनाए गए।

कुछ दिन बाद जब राज्यके हिसाबकी जाँच पड़ताल हुई तब पुराने कामदार और उसके नायबपर ख़यानतका मुकद्दमा चलाया गया, तथा उन दोनोंकी जागीरें ज़ब्त करके उनपर ढाई लाख रुपएका जुर्माना किया गया। इसके साथ ही रणजीतसिंहजीके बालिग़ होनेतक वे दोनों राज्यसे भी निर्वासित कर दिए गए। उस समय राज्यके ख़जानेकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही थी।

---

(१) इस कर्ज़के देनेमें १० वर्ष लगे थे।

(२) इनकी एक बहिनका विवाह अलवरनरेश मङ्गलसिंहजीसे और दूसरीका डूंगरपुरके महाराजकुमारसे हुआ था।

१० लाखके कर्जके अलावा राज्यके बड़े बड़े गाँव भी गिरवी पड़े थे । परन्तु शाहामत अलीने १७ वर्षके परिश्रमसे उपर्युक्त कर्ज चुका-कर राज्यका सारा प्रबन्ध नवीन ढंगपर कर दिया । इसके सिवाय ६ लाख रुपए सड़कों आदिके बनवाने और दूसरे ऐसे ही लोकहितके कार्योंमें भी खर्च किए ।

वि० सं० १९२१ (ई० स० १८६४) में राज्यमें रेल्वेका प्रचार करनेके लिए राज्यकी तरफ़से विना मूल्य भूमि देनेका प्रबन्ध हुआ ।

रणजीतसिंहजीने इंदौरके डेली कालेजमें शिक्षा पाई थी। वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) में ये देहली दरबारमें सम्मिलित हुए और वि० सं० १९३७ (ई० स० १८८०) में इनको राज्यका प्रबन्ध सौंप दिया गया। ई० स० १८८१ के जनवरी मासतक मीर शाहामत अली ही इनके मंत्रीकी हैसियतसे राज्यका कार्य करता रहा । इसी वर्ष राज्यमें आनेवाले बाहरके नमक परसे कर उठा दिया गया । इसकी एवज़में गवर्नमेंटने १००० रुपए वार्षिक हरजानेके राज्यको देने स्वीकार किए ।

ई० स० १८७७ में इनकी निजकी सलामीकी तोपें बढ़ाकर ११ से १३ कर दी गई । ई० स० १८८५ में सिवाय अफ़ीमके और सब मादक वस्तुओंपर लगनेवाला राज्यकर भी उठा लिया गया और ई० स० १८८७ में गवर्नमेंटसे एक नियत रकम लेनेका प्रबन्ध कर राज्यकी तरफकी चुंगी उठा दी गई । इसी वर्ष आपको के० सी० आई० ई० की उपाधि मिली ।

इनके तीन विवाह हुए थे । पहला ई० स० १८७८ में ध्रांगध्राके राजा मानसिंहजीकी कन्यासे, दूसरा ई० स० १८८६ में ध्रांगध्राके

महाराजकुमार जसवन्तसिंहजीकी बड़ी कन्यासे और तीसरा ई० स० १८८९ में विक्रमपुरके भाटी अमरसिंहकी कन्यासे।

इनकी पहली रानीसे एक पुत्र और एक कन्या तथा दूसरी रानीसे केवल एक कन्या हुई।

ई० स० १८९३ की २० जनवरी (वि० सं १९४९ की माघ सुदी ३) को रतलाममे रणजीतसिंहजीका स्वर्गवास हो गया।

१४ महाराजा सज्जनसिंहजी।

ये रणजीतसिंहजीके एक मात्र पुत्र और उत्तराधिकारी हैं। इनका जन्म वि० सं० १९३६ (ई० स० १८८० की जनवरी) में हुआ था। गद्दी पर बैठते समय आपकी अवस्था केवल १३ वर्षकी थी। इसीसे राज्यका कारबार पोलिटिकल एजेंटकी देखभालमें खान बहादुर दीवान कुरसेटजी चलाते थे।

सज्जनसिंहने इन्दौरके डेली कालेजमें शिक्षा पाई थी। वि० सं० १९५५ की मंगसिर सुदी २ (ई० स० १८९८ की १५ दिसंबर) को आपके बालिग होनेपर राज्यका भार आपको सौंप दिया गया।

वि० सं० १९५९ की आषाढ वदी ८ (ई० स० १९०२ की २९ जून) को आपका पहला विवाह कच्छके राव खेंगारजीकी कन्यासे और दूसरा वि० सं० १९५९ की कार्तिक वदी ८ (ई० स० १९०२ की २४ अक्टोबर) को सूंथके राजा प्रतापसिंहजीकी कन्यासे हुआ। वि० सं० १९५८ (ई० स० १९०१) में ये सामरिक शिक्षा प्राप्त कर-

(१) इसका विवाह रीवाँनरेशसे हुआ था।

(२) इसका स्वर्गवास न्यूमोनियाकी बीमारीसे हुआ था।

(३) ई० स० १९०६ की जुलाईमें रतलाममें राजयक्ष्मासे इनका स्वर्गवास हो गया।

नेके लिए इम्पीरियल कैडेट कोरमें भरती हुए और उसीकी तरफ़से देहली दरबारमें सम्मिलित हुए । इसके बाद ई० स० १९०३ के मार्चमें उक्त कोरकी शिक्षा समाप्त कर आप राजधानीमें लौट आए । इसी अवसर पर आपको देहली दरबारका स्वर्णपदक मिला ।

ई० स० १९०५ में जब सपत्नीक प्रिन्स ऑफ़ वेल्स भारतमें आए तब आपने एक वार इन्दौरमें और दूसरी वार इम्पीरियल कैडेट कोरकी तरफ़से कलकत्तामें उनसे भेट की ।

ई० स० १९०८ में आप अँगरेज़ी सेनाके आनरेरी कैप्टिन बनाए गए । ई० स० १९०९ के जूनमें आपको के० सी० एस० आई० का पदक मिला । इसके बाद ई० स० १९११ के दिसंबरमें देहली दरबारके समय बादशाह पञ्चम जार्जने आपको अवैतनिक (Honorary) मेजरका पद दिया ।

श्रीमान् पोलोके अच्छे खिलाड़ी हैं । आपकी इस विषयकी दक्षताके कारण ही आप भारतीय पोलो ऐसोसिएशनके प्रबन्धकर्ता बनाए गए थे । ई० स० १९११ में आपने कोरोनेशन पोलो टूर्नामेंटमें विजय प्राप्त की । इस पर बादशाह पञ्चम जार्जने अपने हाथसे आपको सुवर्णका प्याला भेटकर सम्मानित किया ।

ई० स० १९१४ के अगस्तमें जब यूरोपीय महाभारत छिड़ा तब श्रीमान्ने तन, मन, धनसे गवर्नमेंटकी सहायता की । अनेक कार्योंमें धनकी सहायता देनेके अलावा लायलटी नामक अस्पताली जहाजको गवर्नमेंटकी भेट करनेमें भी आपका हाथ था । आपकी तरफ़से इन्दौरमें एक लड़ाईका अस्पताल भी खोला गया । आपने सेनाके लिए सैनिक

(१) यह जहाज भारतीय नरेशोंकी तरफसे युद्धसमयमें भारत सरकारको भेट किया गया था ।

देनेमें भी पूर्ण प्रयत्न किया था। रतलामकी सेनाके संवादवाहकोंने मिस्र (इजिप्त) में बड़ी अच्छी सेवा की थी। इन सबके अलावा ई० स० १९१५ के अप्रेलमें आप स्वयं फ्रांसके रणक्षेत्रमें पहुँचे और ई० स० १९१८ के मई मास तक समरभूमिमें कार्य करते रहे।

ई० स० १९१६ के जूनमें आपको बादशाहकी तरफ़से आनरेरी लेफ्टिनेंट कर्नलका और ई० स० १९१८ की जनवरीमें कर्नलका पद मिला। इसके साथ ही आपकी सलामीकी तोपें बढ़ा कर स्थायी रूपसे ११ से १३ कर दी गईं।

ई० स० १९१९ की ३० जूनके अपने खरीतेमे स्वयं वायसरायने आपकी युद्धसम्बन्धिनी सहायताकी मुक्त कंठसे प्रशंसाकी थी, तथा फ्रान्समें लड़नेवाली अँगरेज़ी सेनाओंके प्रधान सेनापति फील्डमार्शल सर डगलस हेग भी आपकी वीरताको देखकर प्रसन्न हुए थे और फ्रांन्सके राष्ट्रपतिने तो आपको "Croix d' officer of the Ligion d' Honneur" की उपाधिसे सम्मानित किया था।

जिस समय १९१८ की २९ मईको आप रणक्षेत्रसे लौटकर आए उस समय आपकी प्रजाने और अनेक गण्यमान्य व्यक्तियोंने आपका हार्दिक स्वागत किया। इन व्यक्तियोंमें स्वय बादशाह पञ्चम जार्ज और बीकानेरनरेश आदि भी सम्मिलित थे।

फ्रान्स और मिस्रके रणक्षेत्रसे लौटनेके बाद जब ई० स० १९१९ में अफगानिस्तानके साथ भारत गवर्नमेंटका युद्ध छिड़ा तब भी आप वहाँकी भीषण गरमीकी परवा न कर गवर्नमेंटकी सहायतार्थ पश्चिमी सीमा प्रदेशमें जा पहुँचे। आपकी इस सहायतासे प्रसन्न होकर ई० स० १९२० के अप्रेलमें गवर्नमेंटने आपके अधिकारोंको पूर्ण

तया अङ्गीकार कर आपको पीढ़ी दर पीढ़ीके लिए महाराजका ख़िताब दिया, और ई० स० १९२१ की जनवरीमें आपके राज्यमें आपकी सलामीकी तोपे बढ़ा कर स्थायी रूपसे १५ कर दी गई।

ई० स० १९२१ में जिस समय युवराज प्रिन्स ऑफ वेल्स भारतमें आए उस समय आप उनके अस्थायी ए० डी० सी० नियत हुए और सन् १९२१ की २४ नवंबरको स्वयं युवराजने आकर रतलामको सुशोभित किया। युवराजके भारतागमनके उपलक्षमें जो पोलोका खेल हुआ उसमें भी आपकी जीत हुई। इसपर स्वयं प्रिंस ऑफ वेल्सने जीतका प्याला आपको भेट किया। ई० स० १९२२ की १७ मार्चको भारतसे लौटते हुए युवराजने स्वयं अपने हाथोंसे आपको के० सी० बी० ओ० का पदक पहनाकर अपना स्थायी ए० डी० सी० बनाया।

महाराजा सज्जनसिंहजी अन्य अनेक बातोंमें दक्ष होनेके अलावा शासनकुशलतामें भी किसीसे कम नहीं हैं। इसीसे आप अपने राज्यका सुप्रबंध करनेके साथ ही स्वर्गवासी रीवाँनरेशकी इच्छासे ई० स० १९१८ से १९२२ तक वर्तमान रीवाँनरेशकी बाल्यावस्थाके कारण उक्त राज्यके रीजैंट (निरीक्षक) भी रह चुके हैं।

इस समय आप नरेन्द्रमण्डल, मेओ कालेज अजमेर और डेली कालेज इन्दौरकी प्रबन्धकारिणी सभाके सभ्य और मध्यभारत राजपूत-हितकारिणी सभाके सहकारी अध्यक्ष हैं।

सर जॉन मालकमके मध्यभारतके इतिहास[1]में लिखा है कि रतलाम-नरेश मालवाके राठोड़ोंके मुखिया है। रतलाम राज्यके बाहरके मालवा प्रदेशके जातीय झगड़ोंमें भी आपकी सम्मति मान्य समझी जाती है।

---

(१) मालकम्स सेन्ट्रल इण्डिया, भाग १, पृ० ४०।

रतलाम राज्यका रकबा ९०२ वर्गमील और आबादी ८४,००० के करीब है[1]। इसमेंसे ४४५ वर्गमील भूमि जागीर आदिमें बँटी हुई है। इसके अलावा रतलामकी २२८ वर्गमील पृथ्वी (६० गाँव) कुशलगढ (राजपूताना)के रावके अधिकारमें है। इसकी एवजमें रावजी रतलामनरेशको टांका (कर) देते हैं।

रतलामके राज्यचिह्नमें दो चील पक्षियोंके बीच हनुमानकी मूर्ति बनी रहती है और सबसे ऊपर कटारसहित हाथ अङ्कित होता है। नीचेकी तरफ़ 'रत्नस्य साहसं तद्वंशरत्नम्' लिखा रहता है। इनके सिवाय पचरंगे निशानके नीचे पोस्तके दानोंका चित्र होता है। यह मालवाकी ख़ास पैदावार है।

रतलामनरेश गौतम गोत्र, यजुर्वेद और माध्यन्दिनी शाखाको मानते हैं।

रतलाम राज्यके जागीरदार जो टांक (कर) राज्यको देते हैं वह नियत नहीं है। उसका बढ़ाना घटाना महाराजाकी इच्छापर निर्भर है।

(१) राज्यकी औसत आय पाँच छः लाखके करीब है।

सीतामऊके राठोड़ ।

:o:

१ राजा केशवदासजी ।

पहले रतलामके इतिहासमें लिखा जा चुका है कि मुसलमान पदाधिकारीके मारे जानेके कारण बादशाह औरंगजेब इनसे नाराज हो गया था और इसीसे मौका पाकर रत्नसिंहजीके पाँचवें पुत्र छत्रसालजीने लदूनेसे आकर रतलाम पर अधिकार कर लिया था । कुछ दिन बाद जब केशवदासजीको शाही दरबारमें उपस्थित होनेका मौका मिला और इन्होंने बादशाह औरंगजेबके सामने अपनेको निर्दोष सिद्ध कर दिया तब उसने प्रसन्न होकर इन्हें तीतरोद (सीतामऊ) और नाहरगढ़के परगने जागीरमें दिये । इस प्रकार रतलाम राज्यके हाथसे निकल जानेपर वि० सं० १७५२ में केशवदासजीने अपने सीतामऊके नवीन राज्यकी स्थापना की । वि० सं० १७७४ में केशवदासजीके गुणोंसे प्रसन्न होकर बादशाह फर्रुखसियरने इन्हे अगली जागीरके अलावा आलोटका परगना भी दे दिया ।

वि० सं० १८०५ में इनका स्वर्गवास होगया ।

इन्होंने सीतामऊकी रक्षार्थ नगरके चारों तरफ़ शहरपनाह बनवाना प्रारम्भ किया था । परन्तु यह कार्य इनके जीतेजी समाप्त न हो सका ।

---

(१) ख्यातोंमें लिखा है कि यद्यपि उक्त यवन पदाधिकारीके मारे जानेमें केशवदासजीका कुछ भी दोष न था और वे इस बातको सिद्ध करनेके लिए देहली भी गए थे, तथापि बादशाहद्वारा एक हजार दिनों तक इनके शाही दरबारमें न आसकनेका हुक्म हो जानेसे इन्हें सफलता न हुई । इसी बीच छत्रसालजीने बादशाहसे रतलाम राज्यपर अधिकार करनेकी मंजूरी ले ली ।

(२) तीतरोद और आलोटकी शाही सनदें अब तक सीतामऊ राज्यमें विद्यमान हैं ।

इनके दो पुत्र थे—बखतसिंहजी और गजसिंहजी। ज्येष्ठ पुत्र बखतसिंहजीका स्वर्गवास केशवदासजीके जीते जी ही हो गया था, अतः केशवदासजीके बाद उनके छोटे पुत्र गजसिंहजी राज्यके उत्तराधिकारी हुए।

२ राजा गजसिंहजी।

ये केशवदासजीके छोटे पुत्र थे और उनके बाद राज्यके अधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १७७० में हुआ था। वि० सं० १८०७ में सीतामऊपर मराठोंका आक्रमण हुआ, इससे ये राजधानीको छोड़कर लदूने चले गए। मालवामें मराठोंका राज्य हो जानेसे आलोटपर देवासवालोंने और नाहरगढ़पर ग्वालियरवालोंने अधिकार कर लिया। गजसिंहजीका अधिकार केवल सीतामऊपर ही रह गया।

वि० सं० १८०९ में गजसिंहजीका स्वर्गवास होगया।

३ राजा फतेहसिंहजी।

ये गजसिंहजीके एक मात्र पुत्र थे और उनकी मृत्युके कुछ समय बाद इनका जन्म हुआ था।

इनके समय मराठोंके दबावके कारण राज्यको बहुत कुछ हानि उठानी पड़ी। इन्होंने राजधानीमें एक महल बनवाना प्रारम्भ किया

(१) सीतामऊ गज़टियरमें फतेहसिंहजीके समय ही आलोट और नाहरगढ़का मराठोंके नीचे जाना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि ई० स० १७५३ में दौलतराव सिंधियाने फतेहसिंहजीसे सालाना ४१,५०० सलीमशाही रुपए लेना ठहराकर उनके बचे हुए राज्यके लिए उनको एक सनद लिख दी थी। कुछ दिन बाद सिंधियाने फतेहसिंहजीकी बाल्यावस्थाके कारण उनके राज्यप्रबन्धके लिए भी अपने आदमी रख दिए। जब होते होते ग्वालियरवालोंका दबाव बहुत बढ़ गया तब इन्होंने फिर दौलतरावसे सहायता चाही। उसने भी ४२,००० रुपए सालाना ठहराकर इन्हें एक दूसरी सनद कर दी।

था। परन्तु उसके पूरा होनेके पूर्व ही वि० सं० १८५९ में इनका स्वर्गवास हो गया।

४ राजा राजसिंहजी।

ये फतेहसिंहजीके पुत्र थे और वि० सं० १८५९ में उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० स० १७४३ में हुआ था[1]।

पिंडारियोंके साथके युद्धके बाद जिस समय मालवामें ब्रिटिशराज्यकी या ईस्ट इण्डिया कम्पनीके राज्यकी स्थापना हुई, उस समय वि० सं० १८७७ में सर जान मालकम द्वारा कम्पनीके और सीतामऊ राज्यके बीच एक सन्धि हुई। उसके अनुसार कम्पनीने सीतामऊनरेशकी स्वाधीनता स्वीकार करे[2] उनकी सलामीकी ११ तोपें नियत कर दीं और उनके राज्य परसे सिंधियाका अधिकार उठा दिया। इसकी एवजमें सालाना ६०,००० सलीमशाही रुपए सीतामऊ राज्यकी तरफ़से कम्पनीकी गवर्नमेंटके मारफत सिंधियाको मिलने लगे। इसपर राजसिंहजीने फिर सीतामऊमें अपनी राजधानी स्थापित की।

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) के गदरमें राजसिंहजीने कम्पनी सरकारकी अच्छी सहायता की। इसकी एवजमें उपद्रव शान्त होनेपर ब्रिटिश गवर्नमेंटने आपको २,००० रुपएकी कीमतका एक खिलत (सरोपाव) भेट किया।

वि० सं० १९१७ में रत्नसिंहजीसे प्रसन्न होकर जयाजीराव सिंधियाने उपर्युक्त करकी रकम घटाकर ६०,००० से ५५,००० कर दी।

---

(१) गजटियरमें इनका जन्म ई० स० १७८३ में होना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि ग्वालियरवालोंने अपनी सधिके खिलाफ ४२,००० सलीमशाही रुपएकी जगह जोर जुल्मसे ६०,००० सलीमशाही रुपए वसूल करने शुरू कर दिए थे।

(२) मिडियेटाइज्ड फर्स्टक्लास स्टेटमाना गया।

राजसिंहजीने ही केशवदासजीकी प्रारम्भकी हुई शहर-पनाहकी समाप्ति की और आपके पिताने जिस महलको बनवाना प्रारम्भ किया था उसकी समाप्ति भी आपहीके समय आपकी माता चावड़ीजीके उद्योगसे हुई। वि० सं० १९२२ में आपने अपने राज्यमें रेलके प्रचारके लिए बिना दामके ही भूमि देनेका वादा किया।

वि० सं० १९२४ में इनका स्वर्गवास हो गया।

राजसिंहजीके दो पुत्र थे—अभयसिंहजी और रत्नसिंहजी। परन्तु ये दोनों पिताके जीतेजी ही इस असार संसारसे चल बसे। इससे महाराजकुमार रत्नसिंहजीके पुत्र भवानसिंहजी आपके उत्तराधिकारी हुए।

५ राजा भवानीसिंहजी।

ये राजसिंहजीके पौत्र थे और उनके बाद वि० सं० १९२४ में राज्यके अधिकारी हुए।

वि० सं० १९३८ में ब्रिटिश गवर्नमेंटके और सीतामऊ राज्यके बीच एक सन्धि हुई। उसके अनुसार आपने राज्यमें होकर जानेवाले नमकपरसे कर उठा दिया। इसकी एवज़में गवर्नमेंटने २०,०० रुपए सालाना हरजानेके रूपमें राज्यको देना स्वीकार किया।

वि० सं० १९४२ में इनका स्वर्गवास हो गया[1]। इनके पीछे पुत्र न होनेके कारण महाराजा फतेहसिंहजीके छोटे पुत्र नाहरसिंहजीके पौत्र (चीकलेवाले तख्तसिंहजीके बड़े पुत्र) बहादुरसिंहजी इनके गोद आए।

६ राजा बहादुरसिंहजी।

ये फतेहसिंहजीके प्रपौत्र थे और भवानीसिंहजीके स्वर्गवास होनेपर सीतामऊके अधिकारी हुए[2]।

---

(१) ई० स० १८८५ की २८ मईको इनका स्वर्गवास होना लिखा है।

(२) इसपर सिंधियाने आपत्ति की कि मेरी सम्मतिके बिना इनका गोद

वि० सं० १९४४ में ब्रिटिश गवर्नमेंटके साथ जो नई संधि हुई उसके अनुसार सीतामऊनरेशने अफ़ीम और लकड़ीके सिवाय अन्य सब वस्तुओंपरसे राहदारीका महसूल उठा दिया।

वि० सं० १९५५ की चैत वदी १३ (ई० स० १८९९ की ८ अप्रेल) को इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पीछे पुत्र न होनेके कारण इनके भाई शार्दूलसिंहजी इनके गोद आए।

७ राजा शार्दूलसिंहजी।

ये बहादुरसिंहजीके छोटे भाई थे और वि० सं० १९५६ में उनके गोद आए। इनका जन्म वि० सं० १९३६ में हुआ था।

वि० सं० १९५७ की वैशाख सुदी १२ (ई० स० १९०० की ११ मई) को हैजेकी बीमारीसे इनका देहान्त होगया।

इनके पीछे उत्तराधिकारी न होनेके कारण भारत सरकारने रत्नसिंहजीके द्वितीय पुत्र रायसिंहजीके वंशज (काछी बड़ोदाके दलेलसिंहजीके द्वितीय पुत्र) रामसिंहजीको इनके गोद बिठाया।

८ राजा रामसिंहजी।

वि० सं० १९५७ की मंगसिर वदी १४ (ई० स० १९०० की २१ नवंबर) को ये शार्दूलसिंहजीके उत्तराधिकारी हुए। इसके पहले वर्ष अकाल पड़नेके कारण राज्यकी माली हालत बहुत ही बिगड़ी हुई

आना अनुचित है। परन्तु गवर्नमेंटने इस आपत्तिको अनावश्यक बतलाया और सिंधियाको जो ऐसे अवसर पर नजराना मिलता था उस पर भी अपना हक कायम किया। अन्तमें राज्यकी दशा देखकर गवर्नमेंटने एक वर्षकी आयका आधा (३५,००० सलीमशाही रुपए.) नजराना लेना ठहराकर ८,८७५ रुपएकी लागतका एक खिलत बहादुरसिंहजीको भेट किया।

थी और उसपर बहुतसा कर्ज भी हो रहा था[1]। परन्तु आपके प्रयत्नसे शीघ्र ही रियासत कर्जसे मुक्त हो गई और उसके प्रबन्धमें भी बहुत उन्नति हुई।

आपने डेली कालेज इन्दौरमें शिक्षा पाई थी और वि० सं० १९६१ की फागुन वदी ९ (ई० स० १९०५ की २८ फरवरी) को आपके बालिग होनेपर राज्यका अधिकार आपको सौंप दिया गया। इसी वर्ष इन्दौरमें आपने तत्कालीन प्रिंस ऑफ वेल्ससे मुलाकात की।

वि० सं० १९६४ की फागुन वदी ५ (ई० स० १९०८ की २२ फरवरी) को महाराजकुमार रघुवीरसिंहजीका जन्म हुआ। वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११) में आप देहली दरबारमें सम्मिलित हुए। वहींपर बादशाह पंचम जार्जने आपको के० सी० आई० ई० के पदकसे सम्मानित किया।

ई० स० १९१४ के यूरोपीय महाभारतमें भी श्रीमान्ने तन, मन, धनसे भारत गवर्नमेंटकी सहायता की।

आप नरेन्द्रमण्डलके भी सदस्य है और आपको पूरे जुडीशल और माली अधिकार हैं। आप राज्यप्रबन्धमें दक्ष होनेके साथ ही विद्यारसिक भी हैं। इसीसे आपने अपनी रियासतमें अनेक सुधार करनेके साथ ही कई पुस्तकें भी लिखी हैं। इनमें 'वायुविज्ञान' नामक पुस्तक विशेष उल्लेखयोग्य है। इसके सिवाय आपकी बनाई हिन्दी कविताकी एक दो पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आपको संस्कृतसे भी प्रेम है।

---

(१) इस अकालके कारण ही गवर्नमेंटने नजरानेमें राज्यकी एक वर्षकी आयका आधा भाग (४०,६०० रुपए) ही लिया, और १०,१२५ रुपएका खिलत महाराजको भेट किया।

सीतामऊ राज्यका क्षेत्रफल २०० वर्गमील, आबादी २६,५४९ और आय ५ लाखके करीब है। यहांके नरेशोंकी सलामीकी ११ तोपें नियत हैं और उनके राज्यचिह्न पर 'सत्यमेव जयति' और 'देव्याः पत्तनं राजसदनं' लिखा रहता है।

सीतामऊके राठोड़ राजाओंका वंशवृक्ष।
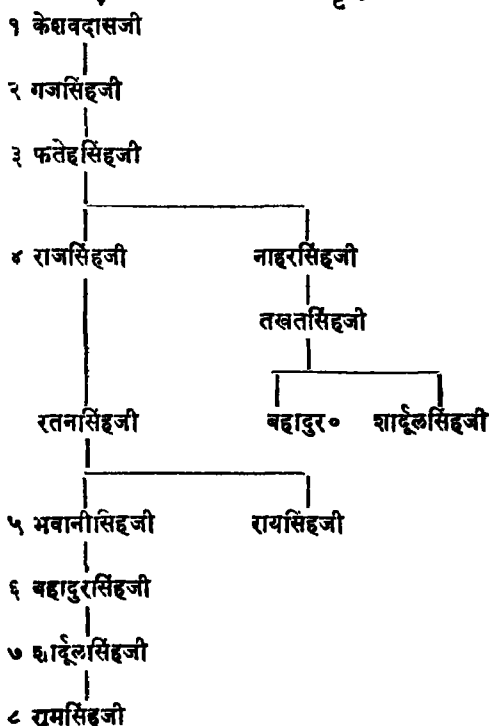
(१) सीतामऊ गज़टियरमें आयका हिसाब इस प्रकार दिया है:—१,२६,००० खालसा (राज्यकी वार्षिक आय), १,०७,००० जागीर (सरदारोंकी आय), और ६७,००० माफीदारोंकी आय।

सैलानाके राठोड़।

---:o:---

यहाँके राजा भी राठोड़ोंकी रतलामवाली शाखासे निकले हुए रतनावत राठोड़ ही हैं। वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) तक यह प्रदेश भी रतलामके अधीन था। इसी वर्ष रतलामनरेश केसरीसिंहजीके छोटे पुत्र जयसिंहजीने यहाँपर अपने नवीन राज्यकी स्थापना की।

१ जयसिंहजी।

ये रतलामनरेश केसरीसिंहजीके छोटे पुत्र थे। वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में इन्होंने अपना स्वाधीन राज्य स्थापन किया। उस समय इनकी राजधानी रावटी हुई। परन्तु वि० सं० १७९३ (ई० स० १७३६) में इन्होंने नवीन राजधानी (सैलाना) की स्थापना की।

सैलानाकी तवारीखमें लिखा है कि जयसिंहजीको उनके चाचा प्रतापसिंहजीने गोद लिया था। परन्तु जब प्रतापसिंहजीने अपने भाई (जयसिंहजीके पिता) केसरीसिंहजीको मार डाला तब जयसिंहजीने अपने पिताका बदला लेनेको अपने धर्मपिता प्रतापसिंहजीपर चढ़ाई की। इसी युद्धमे प्रतापसिंहजी मारे गए। जयसिंहजी रतलामका राज्य अपने बड़े भाई मानसिंहजीको सौंप प्रतापसिंहजीकी जागीर रावटीमें जा बसे। कुछ दिन बाद वहीं पर इन्होंने सैलाना राज्यकी स्थापना की।

इन्होंने झाबुआ राज्य पर भी चढाई की थी। परन्तु अन्तमें इनके आपसमें सुलह हो गई।

---

(१) सैलाना गजटियरमें रतनसिंहजीको ई० स० १६४८ के करीब मालवेमें जागीर मिलना लिखा है

इनके ५ पुत्र थे—देवीसिंहजी, दौलतसिंहजी, जसवन्तसिंहजी अजबसिंहजी, और सामन्तसिंहजी।

२ जसवन्तसिंहजी।

ये जयसिंहजीके तृतीय पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १८१४ (ई० स० १७५७) में उनके उत्तराधिकारी हुए।

३ अजबसिंहजी।

ये जसवन्तसिंहजीके छोटे भाई थे और उनकी मृत्युके बाद वि० सं० १८२९ (ई० स० १७७२) में उनके उत्तराधिकारी हुए। इनके तीन पुत्र थे—मोहकमसिंह, भोपतसिंह और गुमानसिंह।

४ मोहकमसिंहजी।

ये अजबसिंहजीके पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १८३९ (ई० स० १७८२) के गद्दीपर बैठे।

इस समय तक सैलाना राज्यकी स्वाधीनता नष्ट हो गई थी और इसका बहुतसा भाग होल्कर और सिंधियाके अधिकारमें चला गया था। इसके अलावा सिंधियाने ४२,००० सलीमशाही रुपए वार्षिक कर (नालबंदीके नामसे) राज्यपर लगा दिया था।

वि० स० १८५४ (ई० स० १७९७) में इनका स्वर्गवास हो गया।

५ लछमनसिंहजी।

ये मोहकमसिंहजीके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। इनके समय तक मराठोंका युद्ध जारी था। जिस समय वि० सं० १८७६ (ई० स० १८१९) में सर जान मालकमने मालवेकी मालगुजारीका नया

(१) इनका स्वर्गवास पिताके जीतेजी ही हो गया था।
(२) इनको सेमलिया जागीरमें मिला था।

प्रबन्ध किया उस समय ग्वालियरनेरेश दौलतराव सिंधियाने ४२,००० रुपए (सलीमशाही) सालाना मिलते रहनेकी जमानत[1] लेकर सैलाना राज्यके प्रबन्धसे अपना हाथ हटा लिया। अन्तमें वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) से ये रुपए सिंधियाकी एवज़में भारत सरकार लेने लगी[2]।

आजकल ४२,००० सलीमशाही की एवज़में २१,००० प्रचलित कलदार रुपए गवर्नमेंट लेती है।

वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२६) में लछमनसिंहजीका स्वर्गवास हो गया।

६ रतनसिंहजी।

ये लछमनसिंहजीके पुत्र थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए। वि० सं० १८८४ (ई० स० १८२७)में इनका स्वर्गवास हो गया।

७ नाहरसिंहजी।

ये रतनसिंहजीके चाचा थे, तथा रत्नसिंहजीके पीछे पुत्र न होनेके कारण ५० वर्षकी अवस्थामें इनके उत्तराधिकारी हुए।

सैलानाके इतिहासमें लिखा है कि इनके समय रतलाम राज्यने इनके हिस्सेमें मिलनेवाले चुंगीके तीसरे भागको घटा कर सातवाँ भाग कर दिया[3]।

---

(१) यह जमानत कम्पनी सरकारने दी थी।

(२) यह रुपया सिंधियाने ग्वालियर कंटिंजेंट (सेना) के खर्चके लिए गवर्नमेंटको लेनेका अधिकार दे दिया था।

(३) कहते हैं कि छत्रसालजीने जब रतलाम राज्यके तीन भाग किए थे, तब उक्त राज्यसे प्राप्त होनेवाली चुंगीके भी ३ बराबरके भाग कर दिए थे। परन्तु प्रबन्धके सुभीतेके लिए उसकी वसूली पूर्ववत् एक साथ ही होती थी।

८ तखतसिंहजी ।

ये नाहरसिंहजीके पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १८९८ (ई० स० १८४२) में गद्दीपर बैठे। इनकी मृत्यु वि० सं० १९०७ (ई० स० १८५०) मे हुई थी।

९ दुलैसिंहजी ।

ये तखतसिंहजीके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। राज्यप्राप्तिके समय इनकी अवस्था १० वर्षकी होनेके कारण राज्यका काम कम्पनी सरकारकी देख भालमें होने लगा। परन्तु वि० सं० १९१४ में गदरके समय यह काम रतनसिंहजीकी विधवा रानीको सौंप दिया गया। इसपर उन्होंने उस समय मन्दसौर स्थान पर गवर्नमेंटकी अच्छी सहायता की। इसके बदले गवर्नमेंटने दुलैसिंहजीको खास खरीता और खिलत देकर सम्मानित किया।

वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९) में दुलहसिंहजीको राज्याधिकार मिला और वि० सं० १९२१ (ई० स० १८६४) में इन्होंने राज्यमें होकर निकलनेवाली रेल्वेके लिए विना मूल्य भूमि देनेकी प्रतिज्ञा की। वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९१) में रेल्वेद्वारा अधिकृत भूमिका प्रबन्ध भी गवर्नमेंटको सौंप दिया गया।

वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) में देहली दरबारके समय महारानी विक्टोरियाकी तरफ़से आपको एक झंडा भेट किया गया।

वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में दुलैसिंहजीने नमक-पर लगनेवाला कर उठा दिया। इसकी एवज़में गवर्नमेंटने सैलाना राज्यको सालाना १०० मन नमक विना मूल्य देना निश्चित किया। परन्तु वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में इस नमकके बदले ४१२॥) रुपए नकद कर दिए गए।

वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में रतलाम और सैलाना-के बीच एक सन्धि हुई । इसके अनुसार रतलामको वार्षिक १८,००० सलीमशाही रुपए देनेका वादा कर सैलानानरेशने अपने राज्यमें अपनी तरफ़से चुंगी लगानेका अधिकार प्राप्त किया[1] । [यही रकम वि० सं १९५८ में घटाकर ६००० रुपए (कलदार) कर दी गई ।] इसी वर्ष अफीमको छोड़कर अन्य वस्तुओंपरसे चुंगी उठा ली गई ।

सैलानाके इतिहासमें लिखा है कि अन्तिम समयमें इन्होंने राज्यकार्यकी देखभालमें शिथिलता कर दी थी । इसीसे कई बातोंमें इन्हें रतलामके मुकाबलेमें नुकसान उठाना पड़ा । वि० सं १९५२ (ई० स० १८९५ की १३ अक्टोबर) में इनका स्वर्गवास हो गया । ये संस्कृतके ज्ञाता थे और इन्होंने १,५०,००० रुपए खर्चकर सैलानेसे दो मील पर केदारनाथका मन्दिर बनवाया था ।

१० राजा जसवन्तसिंहजी ।

ये सेमलियाके सरदार भवानीसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र थे और दुलैसिंहजीके पीछे पुत्र न होनेके कारण वि० सं० १९४१ में उनके गोद आए । इनका जन्म वि० सं० १९२१ की भादों सुदी २ (ई० स० १८६४ की ३ सितंबर) को हुआ था । आप बड़े विद्वान् और योग्य पुरुष थे । आपने संस्कृत और अँगरेजी दोनोंकी अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी । राज्यप्रबन्ध हाथमें लेते ही आपने उसमें सुधार करना प्रारम्भ किया । इसके अलावा अनेक लोकहितकारी कार्योंके करनेके साथ ही साथ आपने राज्यकी माली हालतमें भी बहुत

(१) इसके अनुसार रतलाम और सैलानाके बीच आने जानेवाले मालपर रतलामनरेशने अपनी चुंगी छोड़ दी ।

कुछ उन्नति की । धीरे धीरे राज्यमें शिक्षाप्रचारके लिए स्कूल आदि भी खोले गए । वि० सं० १९५६ (ई० स० १९००) में राज्यमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा । परन्तु आपने दुर्भिक्षपीड़ितोंकी सहायताका बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया । इससे प्रसन्न होकर भारत सरकारने अगले वर्ष आपको प्रथम श्रेणीके 'कैसर-ए-हिन्द' के पदकसे भूषित किया । वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) में आप के० सी० आई० ई० बनाए गए और इन्हें अपने नामके साथ 'बहादुर' उपाधिके लगानेका अधिकार मिला । इसी वर्ष लार्ड कर्जनने अजमेरके मेओ कालेजके पुनः संगठनपर विचार करनेके लिए एक सभा की । उसमें आप मध्य-भारतके नरेशोंके प्रतिनिधिकी तौरपर निमन्त्रित किए गए ।

आपको मकान, मन्दिर आदि बनवानेका भी बड़ा शौक था । आपहीके उद्योगसे फतेहाबादकी रत्नसिंहजीकी छतरीकी मरम्मत हुई थी[२] । इसके अलावा यहाँका 'जसवन्तनिवास' नामक महल भी आपका ही बनवाया हुआ है । आपने राज्यकी व्यापारवृद्धिमें भी अच्छी सहायता दी । ई० स० १९११ के देहली दरबारमें आपको कोरोनेशन पदक और बादशाहका स्वहस्ताक्षरित चित्र भेट किया गया । इसी अवसर पर वह नजराना—जो सैलानाकी गद्दी पर किसीके गोद आनेपर गवर्नमेंटको दिया जाता था—माफ कर दिया गया । आप क्षत्रिय उपकारिणी महासभाके जनरल सेक्रेटरी थे और उसके सभापतिका आसन भी ग्रहण कर चुके थे । आपकी धार्मिक प्रवृत्तिके कारण ही भारतधर्ममहामण्डलने आपको 'भारतधर्मेन्दु' की उपाधि दी थी ।

---

(१) रतलाम राज्यके संस्थापक ।

(२) इस कार्यमें रतलाम और सीतामऊने भी सहायता की थी ।

वि० सं० १९७६ की आषाढ सुदी १५ (ई० स० १९१९ की १३ जुलाई) को राजा जसवन्तसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। आपके ५ पुत्र[1] और ३ कन्याएँ[2] है।

१० राजा दिलीपसिंहजी।

आप जसवन्तसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी हैं। आपका जन्म वि० सं० १९४७ की फाल्गुन सुदी ८ (ई० स० १८९१ की १८ मार्च) को हुआ था और वि० सं० १९७६ की श्रावण वदी १ (ई० १९१९ की १४ जुलाई) को आप गद्दी पर बैठे। आपने मेओ कालेज, अजमेरमें डिप्लोमा परीक्षा तककी शिक्षा प्राप्त की है। आप एक चतुर और योग्य नरेश हैं।

ई० स० १९२० के दिसंबरमें आप पुरीमें होनेवाली क्षत्रिय उपकारिणी सभाके सभापति बनाए गए और तबसे ही आप उसके स्थायी उपसभापति हैं।

ई० स० १९२१ के अप्रेलमें गवर्नमेंटने आपको परम्पराके लिए अपने राज्यमेंके सब तरहके फौजदारी मामलोंके फैसले करनेका अधिकार दिया।

वि० सं० १९७५ की कार्तिक सुदी १० (ई० स० १९१८ की १५ अक्टोबर) को आपके बड़े महाराजकुमार दिग्विजयसिंहजीका और वि० सं० १९७७ की माघ सुदी १३ (ई० स० १९२१ की २० फरवरी) को दूसरे महाराजकुमारका जन्म हुआ।

---

(१) इनमेंसे द्वितीय कुमार मुल्थान (धारराज्यमें) के और तृतीय कुमार रावटीके शासक हैं।

(२) प्रथम कन्याका विवाह डूंगरपुरनरेशसे, द्वितीय कन्याका नरसिंहगढ़-नरेशसे और तृतीय कन्याका खिलचीपुरनरेशसे हुआ है।

सैलाना राज्यका क्षेत्रफल ४५० वर्गमील, जनसंख्या २७,१६५ के करीब और आय (जागीरोंकी आयसहित) ४ लाखके करीब है। यहाँके नरेशोंको 'हिज हाइनेस' का खिताब है और इनकी सलामीकी ११ तोपें नियत हैं। यह राज्य भारत गवर्नमेंटको २१,००० रुपए वार्षिक कर देता है।

सैलानेके राठोड़ राजाओंका वंशवृक्ष ।

ईडरके पहले राठोड़।

———:o:———
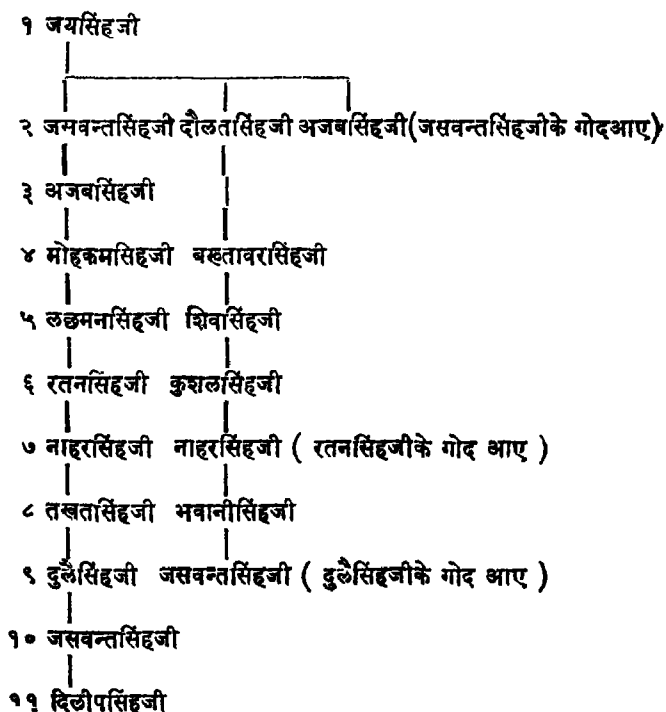
विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमे ईडरमें परमारोंका राज्य था। इस वंशका अन्तिम राजा अमरसिंह वि० सं० १२४९ में पृथ्वीराज चौहानकी सहायताको गया और वहीं पर शहाबुद्दीन गोरीके साथकी लड़ाईमें मारा गया। इसके बाद ईडरपर कोली जातिके हाथी सोडका अधिकार हुआ। इसका पुत्र सांवलिया सोढ जब राज्यका स्वामी हुआ तब उसने अपने मंत्रीकी सुन्दरी कन्यासे विवाह करनेका विचार किया। यह मंत्री नागर ब्राह्मण था। अतः उसे यह सम्बन्ध पसन्द न था। इसीसे उसने राठोड़ोंसे साजिश कर विवाहके दिन आसथानजी और उनके भ्राता सोनगजी आदिको लाकर अपने घरमें छिपा दिया। जब सांवलिया सोढ बारात सजाकर आया तब मंत्रीने उसकी बड़ी खातिर की और सारे वरपक्षवालोंको खूब ही मदिरा पिलाई। जिस समय ये लोग मदिरा पीकर मस्त हो गए उस समय राठोड़ोंने बाहर निकलकर एकाएक इन पर आक्रमण कर दिया। सारेके सारे कोली मारे गए। सांवलिया सोड भी—जो बचकर निकल भागा था—ईडरके क़िले[1]के द्वारपर पहुँचते पहुँचते मार डाला गया। परन्तु मरते समय उसने अपने रुधिरसे सोनगजीके ललाट पर तिलक कर उन्हें ईडरका राजा बना दिया।

१ राव सोनगजी।

ऊपर लिखे इतिहासके अनुसार वि० सं० १३३१ के करीब किसी समय सोनगजी ईडरकी गद्दीपर बैठे। ये सीहाजीके मँझले पुत्र और

(१) कहते हैं कि यह किला बेणी बच्छराजने बनाया था।

राव आसथानजीके छोटे भाई थे। इनके ५ पुत्र थे, जो एकके बाद एक गद्दीपर बैठे[1]।

२ राव अहमल्लजी।

ये सोनगजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए।

३ राव धवलमल्लजी।

ये शायद अहमल्लजीके छोटे भाई थे और उनके बाद गद्दीपर बैठे।

४ राव लूणकरणजी।

ये धवलमल्लजीके छोटे भाई थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए।

५ राव खनहत्तजी।

ये लूणकरणजीके छोटे भाई थे और उनके पीछे राज्यके अधिकारी हुए। ये ईडरके राव कभी तो मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे और कभी फिर स्वाधीन हो जाते थे।

६ राव रणमल्लजी।

ये खनहत्तजीके छोटे भाई थे और उनके पुत्र न होनेके कारण उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने यादवराजासे भागर छीन लिया था। यह देश ईडर और मेवाड़के बीच था।

इसके बाद गुजरातके बादशाह मुजफ्फ़रशाह (प्रथम) ने तीन बार ईडरपर चढ़ाई की। पहली वि० सं० १४५० में, दूसरी वि० सं० १४५५ में और तीसरी वि० सं० १४५८ में। यद्यपि दो बारकी चढ़ाइयोंमें इन्होंने शाही सेनाको पूरी सफलता न होने दी, तथापि तीसरी

---

(१) इसी समयके बादसे ही ईडरपर मुसलमानोंके आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। कभी वे उक्त प्रदेशपर अधिकार कर लेते थे और कभी फिर राठोड़ राजा उन्हें हराकर अपनी स्वाधीनताका झंडा खड़ा कर देते थे। इसीसे इनके वंशजोंका राज्य पूरी तौरसे न जम सका।

बादमें इन्हें ईडर छोड़ना पड़ा। इस पर ये वीसलनगर चले गए। परन्तु मुजफ्फरशाहके मरनेपर इन्होंने फिर ईडर पर अधिकार कर लिया और वि० सं० १४६८ में (मुजफ्फरशाह प्रथमके मरनेपर) जो बलवा मचा उसमें इन्होंने मोइदुद्दीन फीरोज़खां और मस्तीखांकी सहायता कर उन्हें ईडरके किलेमें पनाह दी। इससे अप्रसन्न हो सुलतान अहमद प्रथमने ईडरपर चढ़ाई की। इसपर वे दोनों खान भागकर नागौर चले गए और राव रणमल्लजीने बहुतसा माल असबाब देकर वि० सं० १४७१ में सुलतान अहमदसे सुलह कर ली।

७ राव पुंजोजी।

ये रणमल्लजीके पुत्र थे और उनके बाद ईडरकी गद्दीपर बैठे। वि० सं० [१] १४८३ में गुजरातके बादशाह अहमदशाह प्रथमने इनके राज्यपर चढ़ाई की। दोनों तरफ़की सेनाओंके बीच खासा युद्ध हुआ। परन्तु अन्तमें इन्हें हारकर भागना पड़ा। इसके बाद वि० सं० १४८५ में फिर मुसलमानोंने ईडरपर हमला किया। इसमें भी राव पुंजोजीकी ही हार हुई। युद्धसे लौटते हुए मार्गमें एक खड्डेको पार करते हुए इनका घोड़ा गिर पड़ा। इससे इनकी मृत्यु हो गई।

८ राव नारायणदासजी।

ये पुंजोजीके पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। इस पर (वि० सं० १४८५ में) फिर अहमदशाहने ईडर पर चढ़ाई

(१) ये ईडरके राजा इसी प्रकार समय समय पर अपनी स्वाधीनता घोषित कर मुसलमानोंको तंग किया करते थे और जब वे इन पर चढ़ाई करते थे तो ये भागकर पहाड़ोंमें चले जाते थे। वहाँ पर इनका पीछा करना ख़तरनाक और असम्भव था। इसीको रोकनेके लिए वि० सं० १४८४ में सुलतान अहमदशाह प्रथमने हाथमाटी नदीके तीर पर अहमदनगरका किला बनवाया।

की। यह देख इन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे ३,००० रुपए सालाना करस्वरूपसे देनेका वादा किया। परन्तु कुछ दिन बाद फिर इन्होंने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। इस पर फिर सुलतानने ईडर पर हमला कर वहाँके गढ़पर अधिकार कर लिया।

९ राव भाणजी।

ये नारायणदासजीके भाई थे और उनके बाद गद्दी पर बैठे।

इनके समय वि० सं० १५०२ में गुजरातके मुहम्मदशाह द्वितीयने ईडर पर चढ़ाई की। इस पर ये पहाड़ोंकी तरफ भाग गए। अन्तमें इन्होंने मुहम्मदसे सुलह कर ली। इनको फ़ारसी तवारीखोंमें वीररायके नामसे लिखा है। इनके दो पुत्र थे—सूरजमल्ल और भीमसिंह।

१० राव सूरजमल्लजी।

ये राव भाणजीके ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए। इनके समय वि० सं० १५५३ में महमूदशाह बेगड़ाने ईडर पर आक्रमण किया; परन्तु इन्होंने उसे बहुत कुछ भेट आदि देकर लौटा दिया। इन्होंने करीब डेढ़ वर्ष तक राज्य किया।

११ राव रायमल्लजी।

ये सूरजमल्लजीके पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए।

इनका विवाह मेवाड़के राणा संग्रामसिंहजी प्रथमकी कन्यासे हुआ था। इनके समय इनके चाचा भीमजीने ईडर पर अधिकार कर लिया था और भीमजीके मरनेपर उनके पुत्र भारमल्लजी उनके उत्तराधिकारी हो गए थे। इसपर राणाजीने भारमल्लजी पर चढ़ाई की और उन्हें निकालकर अपने दामाद रायमल्लजीको फिर ईडरकी गद्दी पर बिठा दिया। भारमल्लजी भागकर गुजरातके बादशाह मुजफ्फरशाह द्वितीयके पास सहायताकी

प्रार्थना करनेके लिए पहुँचे। इसपर उसने अहमदनगरके हाकिम निज़ामुलमुल्कको इनकी सहायता करनेके लिए लिखा। इसीके अनुसार वि० सं० १५७२ में निज़ामुलमुल्कने ईडर पर चढ़ाई कर रायमल्लजीको निकाल दिया और भारमल्लजीको दुबारा ईडरकी गद्दी पर बिठा दिया। इसके बाद निज़ामुलमुल्कने रायमल्लजीका पीछा किया। पहाड़ोंमें पहुँचने पर दोनोंके बीच भीषण युद्ध हुआ। इसमें निज़ामुलमुल्कके बहुतसे सरदार मारे गए और उसे हारकर लौटना पड़ा।

कुछ दिन बाद राणा संग्रामसिंह प्रथमने और जोधपुरके राव गांगाजीने गुजरात पर चढ़ाई की और वि० सं० १५७४ में रायमल्लजीको तीसरी बार ईडरकी गद्दी पर बिठा दिया। इस पर सुलतान मुजफ्फ़रशाह द्वितीयने निज़ामुलमुल्कको उनके मुकाबलेके लिए भेजा; परन्तु वह युद्धमें मारा गया। यह समाचार पाकर सुलतानने मलिक नुसरतुलमुल्कको चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। इसने ईडर पर अधिकार कर वहाँपर जाहिरुलमुल्कको प्रबन्धके लिए रख दिया। परन्तु रायमल्लजीने राणाजीकी सहायतासे उसे मार डाला। इस पर सुलतान स्वयं एक बड़ी सेना लेकर वहाँ पहुँचा। परन्तु अन्तमें उसे भी हारकर लौटना पड़ा। यह घटना वि० सं० १५७६ की है।

इसके बाद शीघ्र ही रायमल्लजीका स्वर्गवास हो गया।

१२ राव भीमजी।

इन्होंने अपने भतीजे सूरजमल्लजीसे ईडरका राज्य छीन लिया था। वि० सं० १५७१ में पाटनके सूबेदार ऐनुलमुल्कने अहमदाबादकी तरफ़ जाते हुए ईडर पर आक्रमण किया; परन्तु इन्होंने उसे हराकर भगा दिया। इसका बदला लेनेको एक बड़ी बादशाही सेना इन पर

चढ आई; परन्तु इसके पहुँचनेके पूर्व ही राव भीमजीने पहाड़ोंका आश्रय ले लिया।

शाही सेनाने आकर ईडरमें बड़ी लूट मार की। इसके बाद रावजीने एक बड़ी रकम नज़र देकर मुज़फ्फ़रशाह द्वितीयसे सुलह कर ली।

१२ राव भारमल्लजी।

ये भीमजीके पुत्र थे और उनके बाद ईडरकी गद्दीपर बैठे। परन्तु मेवाड़के राणा सांगाजीने रायमल्लजीकी सहायता कर उन्हें गद्दीपर बिठा दिया। वि० सं० १५७२ में इन्होंने सुल्तान मुज़फ्फरशाहसे सहायता माँगी। उसने भी निज़ामुल्मुल्कको भेज फिर इन्हें ईडरकी गद्दी दिला दी। दो वर्ष बाद वि० सं० १५७४ में राणाजीकी सहायतासे फिर रायमल्लजीने ईडरकी गद्दी छीन ली। परन्तु इसके बाद फिर वहाँ पर मुसलमानोंका कब्जा हो गया। अन्तमें एक बार फिर राणाजीने सहायता देकर रायमल्लजीको ईडरका अधिपति बना दिया।

वि० सं० १५७६ में रायमल्लजीका देहान्त हो गया और भारमल्लजी ही गद्दीके मालिक रह गए। परन्तु ईडरपर मुसलमानोंने अपना कब्ज़ा बनाए रक्खा।

वि० सं० १५७६ मे राणा सांगाजीने फिर ईडरपर हमला किया। इसपर वहाँका मुसलमान शासक मुबारिज़ भागकर अहमदनगर चला गया। राणाजीने ईडरपर अधिकार कर अहमदनगरको भी लूट लिया। इन हमलोंमें जोधपुरके राव गांगाजीने भी राणाजीकी सहायता की थी। परन्तु वि० सं० १५७७ में सुलतान मुज़फ्फ़रशाह द्वितीयने पीछा ईडरपर अधिकार कर लिया। जिस समय ईडरपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया था उस समय भारमल्लजी सरवान नामक गाँवमें जा.

रहे थे। परन्तु कुछ ही समय बाद उन्होंने आक्रमण कर फिर ईडर पर अधिकार कर लिया। इस पर वि० सं० १५८५ में बहादुरशाहने ईडर पर चढ़ाई की। परन्तु इसमे उसे सफलता नहीं हुई। इसके बाद वि० सं० १५८७ में उसने दुबारा हमला किया। इस बार भारमल्लजीको मुसलमानोकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। वि० सं० १६०० में इनका स्वर्गवास हो गया।

१४ राव पुंजोजी (द्वितीय)।

ये भारमल्लजीके पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। इनके समय अहमदनगरके बादशाहकी हुकूमत शिथिल पड़ गई थी। अतः ईडर राज्य उस समय बहुत कुछ स्वाधीन हो गया था। इसके बाद इन्होंने अहमदनगरके बादशाहको समय पड़ने पर २,००० सवारोंकी सहायता देनेका वादा कर खिराज देना भी बंद कर दिया।

१५ राव नारायणदासजी (द्वितीय)।

ये पुंजोजी (द्वितीय) के पुत्र थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए। वि० सं० १६३० में इन्होने गुजरातके सूबेदार खान अज़ीज़ कोकाके खिलाफ़ बग़ावत की। इस पर खुद अकबरने चढ़ाई कर इस बग़ावतको दबाया। इसके बाद वि० सं० १६३२ और १६३३ में फिर दो बार अकबरने ईडर पर सेना भेजी। अन्तिम बारकी चढ़ाईमें वहाँपर बादशाह अकबरका अधिकार हो गया।—परन्तु अधीनता स्वीकार कर लेने पर नारायणदासजीको ही अकबरने वहाँका राज्य सौंप दिया और उन्हें २,००० पैदल और ५०० सवारोंकी सेनाका अफ़सर बना दिया।

---

(१) यह गाँव साँवलिया सोढके वंशजोंके अधिकारमें था। यद्यपि यह गाँव अब मेवाड़के राज्यमें है तथापि उस समय ईडरके नीचे ही था।

इनकी कन्याका विवाह मेवाड़के महाराणा प्रतापके साथ हुआ था और इन्होंने अकबरके साथके युद्धमें उन्हें मदद भी दी थी।

१६ राव वीरमदेवजी।

ये नारायणदासजी (द्वितीय) के पुत्र और उत्तराधिकारी थे। ये बड़े वीर थे और हमेशा किसी न किसीके साथ लड़ते रहते थे। इन्होंने अपने सौतेले भाई रायसिंहको मार डाला था। रायसिंहजीकी बहन आँबेरके राजाको ब्याही थी। अतः जिस समय ये काशीकी यात्रा करके आँबेर पहुँचे उस समय रायसिंहजीकी बहनने इन्हें मरवाकर अपने भाई-का बदला लिया।

इनके समय राणाजीने ईडर राज्यके पानवड, पहाड़ी, जवास, जोर, पाथीन, वलेच, आदि कई प्रदेशोंपर अधिकार कर लिया था।

१७ राव कल्याणमलजी।

ये वीरमदेवजीके छोटे भाई थे और उनके बाद गद्दीपर बैठे।

ख्यातोंमें लिखा है कि ये मेवाड़के महाराणा और सीरोहीके रावसे बराबर लड़ते रहते थे। इन्होने ओगना, पानवड, आदि कई पहाड़ी प्रदेश राणाजीसे वापिस छीन लिए थे।

इनके बड़े भाईका नाम गोपालदासजी था। यद्यपि वीरमदेवजीके बाद उनके उत्तराधिकारी होनेके हक़दार वे ही थे तथापि कल्याणमलजीने राज्यपर अपना अधिकार कर लिया था, इसीसे गोपालदासजी बादशाहके पास देहली चले गए। कुछ समय बाद उन्होंने शाही सेना लेकर माण्डवपर हमला किया और जिस समय वे उसको फ़तह कर ईडर पर आक्रमण करनेका विचार कर रहे थे उस समय लालमियाँ नामक मुसल-मान ज़मींदारने उन्हें मार डाला।

जिस समय गोपालदासजी देहली गए थे उस समय वे अपने कुटुम्ब-वालोंको वाजो नामक ग्वालेके पास छोड़ गए थे। गोपालदासजीकी मृत्युके बाद इनके पुत्रोंने अपने आसपासके प्रदेशपर अधिकार कर लिया और जिस स्थानपर ये रहते थे उसका नाम उस ग्वालेके नाम पर वाला-सना रक्खा।

१८ राव जगन्नाथजी।

ये कल्याणमल्लजीके पुत्र थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए। इन्होंने किसी कारणसे बैताल भाटको ईडरसे निकाल दिया था। अतः उसने वि० सं० १७१३ में देहली पहुँच बादशाह शाहजहाँसे सहायताकी प्रार्थना की। इसपर बादशाहने गुजरातके सूबेदार शाहज़ादे मुरादको ईडर पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। शाही आज्ञानुसार इसी वर्ष शाहज़ादेने ईडर पर अधिकार कर सय्यद हातूको वहाँका शासक बना दिया। रावजी भागकर पौल गाँवकी तरफ़के पहाड़ोंमें चले गए। वहीं पर इनका देहान्त हुआ।

१९ राव पुंजोजी (तृतीय)।

ये जगन्नाथजीके पुत्र थे और पिताके मरनेपर राज्यप्राप्तिकी इच्छासे बादशाहके पास देहली चले गए। परन्तु वहाँपर आँबेरके राजाने इनको सफलमनोरथ न होने दिया। इस पर ये निराश हो उदयपुर पहुँचे। राणा राजसिंहजी (प्रथम) ने इनकी सहायता कर वि० सं० १७१५ में इन्हें ईडरकी गद्दीपर बिठा दिया। परन्तु इन्होंने मुसलमानोंके भयसे अपनी रानियों और खजानेको सरवान नामक स्थानमें ही रख छोड़ा। करीब ६ महीने राज्य करनेके बाद विषसे इनकी मृत्यु हुई।

२० राव अर्जुनदासजी।

ये पुंजो तृतीयके छोटे भाई थे और उनके बाद गद्दीपर बैठे। जिस समय इन्होंने रनासनके रहवरों (परमारों) पर आक्रमण किया, उस समय ये उनके हाथसे मारे गए।

२१ राव गोपीनाथजी।

ये कल्याणमल्लजीके पुत्र और जगन्नाथजीके छोटे भाई थे।

इन्होंने अर्जुनदासजीकी मृत्युके बाद अहमदाबादके इलाकेमें लूटमार मचा दी। इसपर सय्यद हातूने इन्हें बहुत सा धन देकर कुछ शान्त किया। जब इसकी सूचना सूबेदारको लगी तब उसने सैयद हातूके स्थानपर कमालखाँको ईडरका शासक बनाया। परन्तु गोपीनाथजीने वि० सं० १७१६ में इसे भगाकर ईडरपर अधिकार कर लिया। वि० सं० १७२१ तक वहाँपर इन्हींका राज्य रहा। परन्तु रहबर गरीबदासको भय बना रहता था कि कहीं ये हमसे राव अर्जुनदासजीका बदला न लें। इसीसे वह अहमदाबाद जाकर मुसलमानी फौजको ईडरपर चढ़ा लाया। इसपर गोपीनाथजीको भागकर पहाड़ोंकी शरण लेनी पड़ी। ये अफ़ीम बहुत खाते थे और इसके न मिलनेसे वहींपर पहाड़ोंमें इनका देहान्त हो गया।

२२ राव कर्णसिंहजी।

ये गोपीनाथजीके पुत्र थे। वि० सं० १७२६ में इन्होंने ईडरपर हमलाकर मुसलमानोंको भगा दिया और वहाँपर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु इसके कुछ समय बाद मुहम्मद अमीनखाँने और मुहम्मद बहलोलखाँने ईडरपर वापिस अधिकार कर लिया। कर्णसिंहजी भागकर सरवान गाँवकी तरफ़ चले गए और वहींपर इनका स्वर्गवास हुआ। इनके दो पुत्र थे—चन्द्रसिंह और माधवसिंह। माधवसिंहने वेरावरपर अधिकार कर लिया था। वह स्थान अब तक इन्हींके वंशजोंके अधिकारमें है। परन्तु ईडरपर बहुत समय तक मुसलमानोंका अधिकार रहा। उस समय वहाँका शासक मुहम्मद बहलोलखाँ था।

२३ चन्द्रसिंह ।

ये कर्णसिंहजीके पुत्र थे । वि० सं० १७५३ में इन्होंने ईडर राज्यके प्रदेशोंपर आक्रमण करना शुरू किया और वि० सं० १७७५ में बसाई वालोंकी सहायतासे ईडरसे मुसलमानोंको निकाल कर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु अन्तमें सिपाहियोंकी तनख्वाह चढ़ जानेसे ईडरका राज्य बलासड़ाके ठाकुर सर्दारसिंहको सौंप ये पौल गाँवमें आए और वहाँके जागीरदारको मारकर उक्त स्थान पर इन्होंने अपना कब्जा कर लिया । उक्त स्थान पर अब तक इन्हींके वंशजोंका अधिकार चला आता है । कुछ समय तक तो सरदारसिंहने इनके नाम पर ईडरका प्रबन्ध किया; परन्तु अन्तमें वहाँवालोंसे झगड़ा हो जानेके कारण उसे भी भागकर वालासनाकी तरफ़ जाना पड़ा ।

इसके बाद ईडर पर बच्छा पंडितने अधिकार कर लिया। वि० सं० १७८५ के करीब तक वहाँ पर उसीका अधिकार रहा और इसी वर्षके करीब जोधपुरमहाराजा अजीतसिंहजीके छोटे पुत्र आनन्दसिंहजी और रायसिंहजीने इसे निकालकर वहाँ पर अपना राज्य कायम किया। इनका इतिहास आगे लिखा जायगा ।

(१) फार्ब्सकी रासमालामें भी इस घटनाका समय वि० सं० १७८५ ही लिखा है ।

ईडरके पहले राठोड़ोंका वंशवृक्ष ।
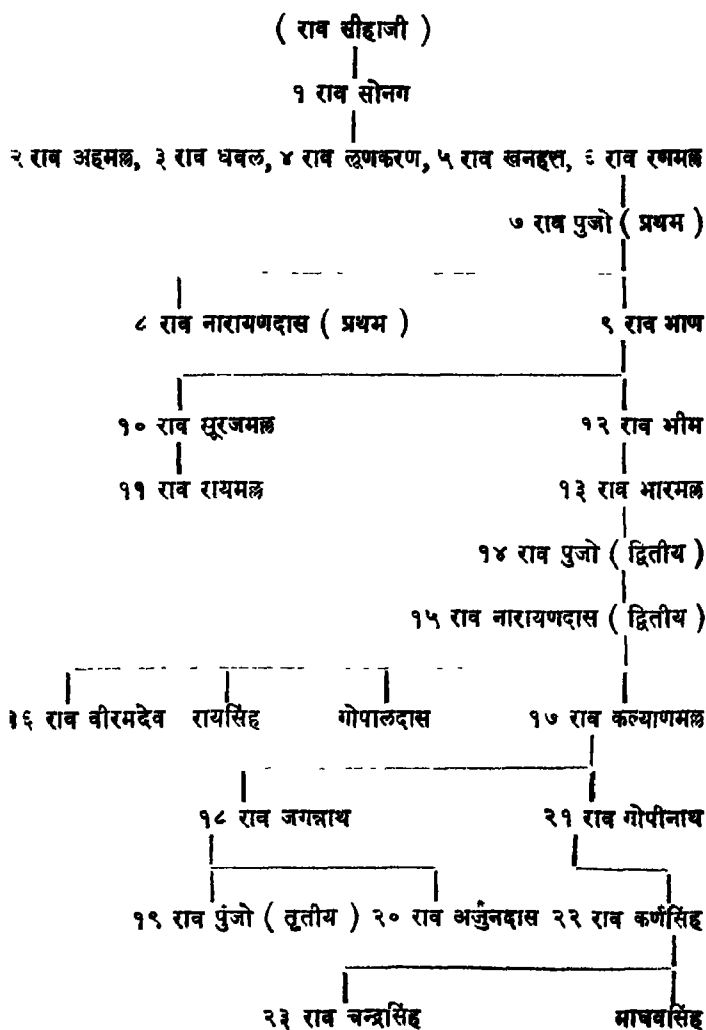
ईडरके दूसरे राठोड़।

वि० सं० १७८१ में जोधपुरमहाराजा अजीतसिंहजीके मारे जाने पर उनके छोटे पुत्र आनन्दसिंहजी और रायसिंहजीको उनकी माताने सती होनेके पूर्व ही कुछ भरोसेके राजपूतोंको सौंप दिया था और उनसे इनकी रक्षाकी प्रतिज्ञा करवा ली थी।

पहले कुछ समय तक तो इन्होंने मारवाड़में इधर उधर गड़बड़ मचाई और अन्तमें जब बादशाह मुहम्मदशाहने महाराजा अभयसिंहजीको ईडरकी जागीर दी तब वहाँ पहुँच उस पर अधिकार कर लिया[1]। महाराजा अभयसिंहजीने भी मारवाड़में शान्ति हो जानेकी आशासे इसमें आपत्ति नहीं की। यह घटना वि० सं० १७८५ के करीबकी है।

किसी किसी ख्यातमें लिखा है कि आनन्दसिंहजी वामो और पालनपुरकी तरफ़से सेना लाए थे और गड़वाड़ाके कोलियोंने भी ईडरपर अधिकार करनेमें इनकी सहायता की थी।

१ राजा आनन्दसिंहजी।

इन्होंने वि० सं० १७८५ में ईडर पर अधिकार किया था[2]। इनका जन्म वि० सं० १७६४ की आषाढ वदी ५ को हुआ था। इनके

---

(१) औरंगजेबके मरनेपर बादशाही ताकत कमजोर पड़ गई थी। इससे इनको ईडरपर अधिकार करनेमें उधरसे विशेष बाधा न पड़ी। उस समय ईडर राज्यमें ईडर, अहमदनगर, मोदास, बायद, हरसोल, प्रांतिज और बीजापुर थे। इसके आलावा पाँच परगने दूसरे भी इसके अधीन कर लिए गए थे।

(२) बाम्बे गजटियरमें वि० सं० १७८८ लिखा है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जिस समय इन्होंने ईडरपर अधिकार किया था, उस समय मेवाड़के राणा संग्रामसिंहजी द्वितीयने ईडरको अपने राज्यमें मिला लेनेका विचार किया और आंबेरके महाराजा सवाई जयसिंहजीकी मार्फ़त जोधपुरके महाराजा अभयसिंहजीसे भी इसकी इजाजत ले ली। उस समय महाराजा

छोटे भाई रायसिंहजी भी इनके साथ रहते थे । रायसिंहजीका जन्म वि० सं० १७६८ की सावन वदी २ को हुआ था । यह देख मेवाड़के महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीयने ईडरको अपने राज्यमें मिलानेके इरादेसे वहाँपर सेना भेजी । यद्यपि इसमें महाराणाजीको पूरी सफलता नहीं हुई तथापि कुछ समय तक आनन्दसिंहजीको राणाजीकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी ।

वि० सं० १७९१ में जवाँमर्दखाँने ईडरपर चढ़ाई की । इसपर आनन्दसिंहजी और रायसिंहजीने मल्हारराव होल्कर और राणोजीसे सहायता माँगी । ये दोनों उस समय मालवेमें थे । इस लिए शीघ्र ही मदद्के वास्ते जा पहुँचे । यह देख जवाँमर्दखाँने १,७५,००० रुपए दंडके देकर अपना पीछा छुडाया ।

वि० सं० १७९५ में गुजरातके सूबेदार मोमीनखाने ईडरपर चढ़ाई की और रणासण और मोहनपुरके सरदारों पर कर लगाया । परन्तु आनन्दसिंहजी और रायसिंहजीने झगड़ा उठाया कि यह कर हमको मिलना चाहिए; क्योंकि ये स्थान हमारे राज्यके अन्तर्गत है । अन्तमें यह झगड़ा आपसमें ही निपट गया । रायसिंहजी तो मोमीनखांके साथ रहने लगे और मोमीनखांने उनके सैनिकोंका खर्च देना मंजूर किया । वि० सं० १७९८ में राघवजी मराठाने रायसिंहजीको मोमीनखांको छोड़कर अपनी तरफ़ आजानेके लिए बहुत कुछ दबाया । परन्तु उन्होंने यह बात

जयसिंहजी और अभयसिंहजीने जो पत्र राणाजीको इस विषयमें लिखे थे वे अब तक उदयपुरमें विद्यमान हैं । ये पत्र वि० सं० १७८४ के आषाढमें लिखे गए थे । अतः यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि आनन्दसिंहजीने इसके पूर्व ही ईडरपर अधिकार कर लिया था । (मारवाड़में संवत् श्रावणसे बदलता है, अतः इसके अनुसार उस समय वि० सं० १७८५ ही होना चाहिए ।)

नहीं मानी। इसकी एवज़में शीघ्र ही मोमीनख़ाँने मोदास, कांकरेज, अहमदनगर, प्रांतिज और हरसोलके परगने इनको जागीरमें दे दिए।

वि० सं० १७९९ में रहवर (परमार) राजपूतोंने ईडर पर आक्रमण कर वहाँके राजा आनन्दसिंहजीको मार डाला। जब यह समाचार रायसिंहजीको मिला तब उन्होंने मोमीनखांसे आज्ञा लेकर रहवरोंको ईडरसे निकाल दिया और आनन्दसिंहजीके ६ वर्षके बालक शिवसिंहजीको ईडरकी गद्दीपर बिठा दिया। तथा शिवसिंहजीके बालक होनेके कारण राज्यका प्रबन्ध वे स्वयं मंत्रीकी तरह रहकर करने लगे। वि० सं० १८०७ में इनका देहान्त हो गया।

२ राजा शिवसिंहजी।

ये आनन्दसिंहजीके पुत्र थे और उनकी मृत्युके बाद वि० सं० १७९९ मे ६ वर्षकी अवस्थामें गद्दीपर बैठे। वि० सं० १८१४ में मुसलमानोंको हराकर मराठोंने अहमदाबाद छीन लिया। इस अवसर पर शिवसिंहजीने मुसलमानोंकी सहायता की थी। इसीसे नाराज़ होकर मराठोंने इनसे प्रांतिज और बीजापुरका परगना छीन लिया, तथा मोदास, बायद और हरसोलका आधा हिस्सा[3] माँगा। यह भाग पहले रायसिं-

(१) किसी किसी स्थान पर लिखा मिलता है कि आनन्दसिंहजीके ईडर-विजयके कुछ वर्ष बाद वहाँके देसाईने दामाजी गायकवाड़से कह सुन कर बचाजी दुबाजीको ईडर पर अधिकार करनेको भिजवाया। इस चढ़ाईमें रहबर राजपूतोंने भी इसे सहायता दी थी। वि० सं० १८१० में आनन्दसिंहजी मारे गए। इसके बाद बचाजी वहाँपर कुछ सेना छोड़ लौट गए। कहीं कहीं पर रायसिंहजीकी मृत्युका वि० सं० १८२३ में होना लिखा है। इनके साथ ही चौहान देवीसिंह और कूंपावत अमरसिंह भी मारे गए।

(२) इनकी मृत्युके समयका पूरी तौरसे निश्चय नहीं हुआ है।

(३) बादमें मोदास, बायद और हरसोलके परगने गवर्नमेंटने पेशवासे ले लिए। ई० स० १८१२ के सेटलमेंटके समय इसकी एवजमें ईडरकी आमदनीसे २४,००१ और अहमदनगरकी आमदनीसे ;८,९५२ रुपए गायकवाड़को देना तय हुआ।

हजीके अधिकारमें था और उनकी मृत्युके बाद उनके सन्तान न होनेके कारण शिवसिंहजीके अधिकारमें आगया था।

वि० सं० १८२३ में आप्पा साहबकी अधीनतामें गायकवाड़की सेनाने ईडर पर चढ़ाई की और इनसे ईडरका आधा राज्य माँगा। बहुत कुछ कहा सुनी होनेपर शिवसिंहजीको ईडरकी आमदनीका आधा हिस्सा मराठोंको लिख देना पड़ा।

शिवसिंहजीके बड़े पुत्र भवानीसिंहजीने ईडरके सरदार सूरजमलको मार डाला था। अतः वि० सं० १८३५ में पेशवाकी तरफ़के अहमदाबादके प्रबन्धकर्ताने मृत सूरजमलके भाईकी सहायतासे ईडर पर 'ग़नीम घोड़ा' नामका कर लगाया। वि० सं० १८४८ में शिवसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। इनके पाँच पुत्र थे—भवानीसिंह, संग्रामसिंह, जालिमसिंह, अमीरसिंह, और इन्द्रसिंह।

३ राजा भवानीसिंहजी।

ये शिवसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद गद्दी पर बैठे। इन्होने केवल १२ दिन ही राज्य किया और इसके बाद इनकी मृत्यु हो गई।

४ राजा गम्भीरसिंहजी।

ये भवानीसिंहजीके पुत्र थे और उनके पीछे उनके उत्तराधिकारी हुए। उस समय इनकी अवस्था केवल १३ वर्षकी थी। इससे कुछ समय बाद ही इनके चाचाओंने इन्हें मार डालनेका इरादा किया। परन्तु

(१) उनका कहना था कि आधा राज्य शिवसिंहजीका था और वे निस्सन्तान मर गए हैं। अतः वह हिस्सा हमारे सुपुर्द कर दो।

(२) कहीं कहीं पर उस समय इनकी आयु १० वर्षकी होना लिखा है।

यह षड्यन्त्र प्रकट हो गया और वे लोग ईडरसे निकाल दिए गए। संग्रामसिंहजी तो अहमदनगर चले गए और जालिमसिंहजी और अमरसिंहजीने कई दिनोंके झगड़ेके बाद क्रमशः बायद और मोदास पर अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८५२ में इन तीनो भाइयोंने मिलकर ईडर पर चढ़ाई की। इस पर गम्भीरसिंहजीने इन्हें डावर, अरोर, विरावाड, सेनोल, गावत और साबरकांठा, आदि प्रदेश देकर सुलह कर ली। ये सारे प्रदेश जालिमसिंहजीके अधिकारमें रहे और ई० स० १८०६ में उनकी मृत्युके बाद उनकी विधवा स्त्रीने गायकवाड़की अनुमतिसे अहमदनगरके स्वामी कर्णसिंहके भाई प्रतापसिंहजीको गोद ले लिया। परन्तु वि० सं० १८७८ में इनके मर जानेपर यह परगना अहमदनगरमें मिला लिया गया। परन्तु गंभीरसिंहजी इस पर अपना हक़ प्रकट करते रहे।

वि० सं० १८५८ में पालनपुरकी मुसलमान सेनाने गड़वाड़के कोली सरदार पर आक्रमण कर उसे हरा दिया। इस पर कोली सरदारने गम्भीरसिंहजीसे सहायता चाही। परन्तु ये उस समय कुछ भी सहायता नहीं दे सके।

इसके अगले वर्ष गायकवाड़की कर वसूल करनेवाली सेनाने काठियावाड़की तरफ़से आकर सिद्धपुरमें पड़ाव किया और राजा गम्भीरसिं-

---

(१) यह इन्हें इनके पिताने ही जागीरमें दिया था। इनके भाई इन्द्रसिंहजी अंधे थे। इनको तीन गाँवोंसहित सरका इलाका जागीरमें मिला था।

(२) किसी किसी स्थान पर जालिमसिंहका मोदास पर और अमरसिंहका बायद पर अधिकार करना लिखा है।

(३) कहीं कहीं पर भतीजा लिखा है।

हजीको चढ़ा हुआ कर देनेके लिए बुलाया । इस पर इन्होंने करकी रकमसे सालाना कुछ अधिक देनेका वादा कर मराठा फौजके अफसरको गड़वाड़से मुसलमानोंको निकाल देनेके लिए उद्यत किया । इसीके अनुसार मराठोंने मुसलमानोंसे गड़वाड़ छीन कर वहाँपर फिर कोली सरदारका अधिकार करवा दिया । मराठोंके साथ जो सालाना २४,००० रु० देनेकी बात गंभीरसिंहजीने तय की थी, उसका नाम 'गर्नीम घोड़ा' से बदलकर 'घास दाना' रक्खा गया । कोली सरदारने भी इसकी एवजमें गड़वाड़की आमदनीका तीसरा भाग ईडरवालोंको देना मंजूर किया ।

वि० सं० १८६१ मे घोड़वाड़के रहबर (परमार) जातिके सरदारको उसके भाईने मार डाला । इस पर गंभीरसिंहजीने मृत सरदारके पुत्रको अपने चाचासे बदला लेनेमें सहायता दी । इसकी एवजमें उसने अपनी जागीरकी आमदनीके पाँच भागोंमेंसे दो भाग ईडर राज्यको देनेका वादा किया । अन्तमें ये हिस्से इन्द्रसिंहजीको दे दिए गए ।

वि० सं० १८६५ में गम्भीरसिंहजीने वीराहर[1], तांबो[2], नवरगाँव और बेरना[3] पर हमला कर उक्त स्थानोंपर 'खिचड़ी' नामका कर लगाया । इसी प्रकार पौलके राव रत्नसिंहजीको भी यह कर देनेको बाध्य किया ।

अगले वर्ष फिर गम्भीरसिंहजीने चढ़ाई कर कर्चा, समेरा, देहगामका, वंगर, बांदीओल, आदि कोलियोंके गाँवोंसे खुश्की नामके राजपूतोंके

(१) यह ईडरके पुराने राजाओंके वंशजोंके अधिकारमें था ।

(२) यह कोलियोंका गाँव था ।

(३) नवरगाँव और बेरना दाँताके पवाँरोंके नीचे थे ।

वि० सं० १९४० में ईडर और उसके तीतोई ठिकानेने गवर्नमेंट द्वारा प्रस्तावित अफ़ीमकी संधि अंगीकार की। इससे ईडरमें अफ़ीमकी काश्त करना रोक दिया गया और उसके बेचने आदिके लिए पहलेसे लाइसेंस (आज्ञा) हासिल करना जरूरी हो गया।

वि० सं० १९४२–४३ में गायकवाड़की सेना हटाकर उसकी बचतसे एक शिक्षित घुड़सवार और पैदल सेना (पुलिस) रक्खी गई।

वि० सं० १९४३–४४ में तमाम महीकाठा प्रदेशसे वस्तुओंके लाने ले जानेकी चुंगी उठा दी गई। इसी वर्ष ईडरनरेशको के० सी० एस० आई० का ख़िताब मिला। वि० सं० १९४५–१९४६ में ईडर राज्यने अपने तीन गाँवोंके लिए गवर्नमेंटके अहमदाबादके गोदामसे शराब खरीदना मंजूर किया और अपनी ५ स्थानोंकी आबकारीका ठेका एक नियत समयके लिए गवर्नमेंटको दे दिया। इनमेंसे तीन स्थानोंका ठेका पहले वि० सं० १९५४ मे और दुबारा वि० सं० १९६१ में दुहराया गया।

वि० सं० १९५३ में गवर्नमेंटने अफ़ीमके बाबत नई संधि की। वि० सं० १९५४ में ईडरके राज्यने अहमदाबाद–प्रान्तिज रेल्वेके लिए जितनी पृथ्वीकी आवश्यकता हो उतनी पृथ्वी दीवानी और फौजदारी अधिकारोंके सहित गवर्नमेंटको देना अङ्गीकार किया।

वि० सं० १९५७ (ई० स० १९०१ की २० फ़रवरीको) इनका स्वर्गवास हो गया। यद्यपि इनकी मृत्युके समय इनकी एक रानी गर्भवती थी और बादमें उसके गर्भसे ई० स० १९०१ की ४ अकटोबरको एक पुत्र भी हुआ तथापि उस बालकके कुछ ही दिन

(१) इस बालकका नाम कृष्णसिंह रक्खा गया था।

बाद (ई० स० १९०१ की ३० नवंबरको) मर जानेके कारण गवर्नमेंट-द्वारा महाराजा प्रतापसिंहजी ईडरकी गद्दी पर बिठा दिए गए ।

७ महाराजा प्रतापसिंहजी ।

ये जोधपुरके महाराजा तख़्तसिंहजीके तीसरे पुत्र और महा-राजा जसवन्तसिंहजीके छोटे भाई थे । इनका जन्म वि० सं० १९०२ की कार्तिक वदी ६ (ई० स० १८४५ की २१ अक्टोबर) को हुआ था । ये बालकपनसे ही बड़े वीर स्वभावके थे । वि० सं० १९२५ में इन्होंने अपने बड़े भ्राता महाराजकुमार जसवन्तसिंहजीके साथ गोड़वाड़ परगनेमें जाकर वहाँके मीणों और भीलोंको मारकर उक्त प्रदेशमे शान्ति स्थापनकी थी ।

वि० सं० १९२९ में इनके पिताका स्वर्गवास हो गया । इसके बाद ये अपने बहनोई जयपुरमहाराजा रामसिंहजीके पास चले गए और वहीं पर राज्यकार्य सीखते रहे । वि० सं० १९३५ में आप जोधपुर राज्यके प्रधान मंत्री बनाए गए । इसपर आपने मारवाड़के प्रब-न्धको नवीन ढंगपर स्थापित किया और देशमें विद्याका प्रचार कर जोधपुरको एक उन्नत नगर बना दिया । इसके अलावा राज्यमें बड़े बड़े बाँध आदि बँधवाकर देशमेंकी पानीकी कमीको भी बहुत कुछ दूर कर दिया । पहले मारवाड़ राज्यमें उर्दूका दौर दौरा था । परन्तु आपने उसके स्थानमें हिन्दीका प्रचार किया ।

ई० स० १८७८ में आप नेपिल चेम्बरलेन कमीशनके साथ काबुलकी तरफ़ भेजे गए । वहाँसे लौटने पर आपको सी० एस० आई० का खिताब मिला । इ० स० १८८५ में आप के० सी० एस० आई० बनाए गए ।

ई० स० १८८७ में महारानी विक्टोरियाकी जुबिलीमें आप जोध-पुर-महाराजके प्रतिनिधिकी हैसियतसे लंदन पहुँचे। इस अवसर पर आपको ऑनरेरी लेफ्टिनेन्ट कर्नलका पद मिला।

वि० सं० १९५२ में प्रतापसिंहजीके बड़े भ्राता जोधपुरनरेश महाराजा जसवन्तसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। उस समय उनके उत्तराधिकारी महाराजा सरदारसिंहजी बालक थे। इस कारण महाराज प्रतापसिंहजी उनके रीजेंट बनाए गए और इन्हींकी अध्यक्षतामें रीजेंसी काउंसिल राज्यकार्यकी देख भाल करने लगी। आपने इस अवसर पर जहाँ तक हो सका अनेक लोकोपकारी कार्य कर देशको उन्नत किया।

वि० सं० १९५४ में महारानी विक्टोरियाकी डायमंड जुबिली पर आप फिर लंदन गए। वहीं पर आपको जी० सी० एस० आई० की सर्वोच्च उपाधि मिली और साथ ही आपकी राज्यकार्यकी योग्यताको देखकर केम्ब्रिज यूनीवर्सिटीने आपको एल० एल० डी० की उपाधिसे भूषित किया।

इसी वर्ष भारत सरकारने मोहमंद पठानोंको दंड देनेका आयोजन किया। उसमें भी आपने यथासाध्य अच्छी सहायता दी। वि० सं० १९५५ में आप जोधपुर रिसालेके साथ तिराहके युद्धमें गए। आपकी वीरतासे प्रसन्न होकर महारानी विक्टोरियाने वि० सं० १९५६ में आपको 'ऑर्डर ऑफ़ बाथ'का पदक प्रदान कर अँगरेज़ी सेनामें कर्न-लका पद दिया। इसके अलावा आगरेके दरबारके समय आप सी० बी० की उपाधिसे भूषित किए गए।

बक्सर-विद्रोहके समय वि० सं० १९५७ में ये जोधपुरके सरदार रिसालेके साथ चीन पहुँचे। वहाँ परकी आपकी बहादुरीको देखकर

वि० सं० १९५८ में गवर्नमेंटने आपको कें० सी० बी० का खिताब दिया ।

इसके बाद वि० सं० १९५८ की माघ सुदी ४ (ई० स० १९०२ की १२ फ़रवरी) को ५६ वर्षकी अवस्थामें भारत सरकारने आपको ईडरके राजा केसरीसिंहजीके दत्तक रूपसे ईडरकी गद्दी पैर बिठाया । अगले वर्ष (ई० स० १९०२ के अगस्तमें) सम्राट् सप्तम एडवर्डके तिलकोत्सव पर आप सम्राट्के ए० डी० सी० और इम्पीरियल सर्विस सेनाके मेजर जनरल बनाए गए ।

वि० सं० १९६२ में जिस समय सम्राट् पंचम जार्ज युवराजकी हैसियतसे भारतमे आए उस समय आप उनके शरीररक्षक नियुक्त किए गए ।

वि० सं० १९६८ में जोधपुरनरेश महाराजा सरदारसिंहजीका देहान्त हो गया । उस समय उनके उत्तराधिकारी महाराजा सुमेरसिंहजीकी अवस्था छोटी होनेके कारण महाराजा प्रतापसिंहजीने अपने दत्तक पुत्र महाराजा दौलतसिंहजीको ईडरका राज्य सौंपकर जेठके महीनेमें जोधपुर राज्यके रीजेंटका पद अङ्गीकार कर लिया । इसी वर्ष सम्राट् पञ्चम जार्जके राजतिलकोत्सव पर लंदनमें आपको ऑक्सफर्ड यूनीवर्सिटीने डी० सी० एल० की उपाधिसे भूषित कियाँ । इसके बाद दिल्ली दरबारके समय वि० सं० १९६९ में आपको जी० सी० बी० ओ०

(१) इसकी सूचना आपको भारत गवर्नमेंटने संवत् १९५८ की पौष वदी १३ को तारद्वारा दी थी ।

(२) इसी अवसर पर बादशाहने आपको जोधपुरमें रीजेंट रहने तक महाराजा बहादुरका खिताब और १७ तोपोंकी सलामीकी इज्जत बख्शी । यह इज्जत अन्त तक आपको प्राप्त रही ।

की उपाधि मिली । इस रीजेंसीके कालमें भी आपने जोधपुर राज्यमें अनेक परिवर्तन किए ।

वि० सं० १९७१ में यूरोपका प्रसिद्ध महाभारत छिड़ गया । इसपर आप जोधपुर महाराजा सुमेरसिंहजीके साथ फ्रांसके रणक्षेत्रमें जा पहुँचे । वि० सं० १९७२ में वहाँसे लौट कर जोधपुर गए और वहाँका राज्यभार महाराजा सुमेरसिंहजीको सौंपकर वि० सं० १९७३ में फिर रणक्षेत्रको लौट गए । इसी वर्ष (ई० स० १९१८ की १ जनवरीको) आपको के० जी० बी० का ख़िताब मिला ।

वि० सं० १९७५ में जोधपुरनरेश महाराजा सुमेरसिंहजीका स्वर्गवास हो गया और उनके उत्तराधिकारी उनके भ्राता महाराजा उम्मेदसिंहजीके बालक होनेके कारण सर प्रतापको एक बार फिर युद्धक्षेत्रसे लौटकर आना पड़ा । जोधपुरमें तीसरी बार रीजेंसी काउंसिल बनी और आप उसके अध्यक्ष बनाए गए । आपने जहाँ तक हो सका राज्यकी आमदनी बढ़ानेमें और उन्नति करनेमें बड़ा परिश्रम किया ।

वि० सं० १९७९ की भादों सुदी १३ (ई० स० १९२२ की ४ सितंबर) को ७६ वर्षकी अवस्थामें आपका अचानक स्वर्गवास हो गया ।

---

(१) महाराजा प्रतापसिंहजी ई० स० १९१५ के अक्टोबरमें जोधपुर आए और १९१६ अप्रेलमें वापिस रणक्षेत्रको लौट गए । महाराजा सुमेरसिंहजीने इनके जोधपुरमें रहने तक राज्यका सारा भार इन्हींके हाथमें छोड़ दिया था । ई० स० १९१६ की फ़रवरीमें आप जोधपुरमहाराजाके साथ ही बनारस हिन्दू यूनिवार्सिटीकी स्थापनाके उत्सवमें भी सम्मिलित हुए थे । आपको महारानी एलेकजेंड्राने भारतीय योद्धाओंका मुखिया समझ लंदनमें एक चाँदीकी ढाल और एक झंडा भेट किया ।

महाराजा प्रताप बड़े वीर, साहसी और चतुर पुरुष थे। भारत गवर्नमेंट और स्वयं सम्राट् तक भी आपका बड़ा मान रखते थे। आपको इतिहाससे भी बड़ा प्रेम था। आपके गुणोंसे प्रसन्न होकर ही गवर्नमेंटने आपकी सलामीकी तोपें १५ से बढाकर १७ कर दी थीं।

महाराजा दौलतसिंहजी।

ये महाराजा तखतसिंहजीके पौत्र और महाराज भोपालसिंहजीके पुत्र हैं। इनका जन्म वि० सं० १९३५ की वैशाख सुदी ११ (ई० स० १८७८ की ३० मई) को हुआ था। वि० सं० १९३८ की सावन सुदी १० को ये पहले अपने चाचा महाराज माधवसिंहजीके गोद गए थे। आपने अजमेरके मेओ कालेजमें शिक्षा पानेके बाद जोधपुर रिसालेमें भरती होकर सामरिक शिक्षा भी पाई थी। इसके बाद आप जोधपुर राज्यके मिलिटरी सेक्रेटरी (सामरिक मंत्री) नियुक्त हुए। ई० स० १९०२ के अप्रेलमें सर प्रतापने आपको अपने गोद ले लिया। उस समय इनकी अवस्था २५ वर्षकी थी। इसी वर्ष बादशाह एडवर्ड सप्तमके तिलकोत्सव पर लंदनमें आप प्रिन्स ऑफ वेल्सके आनररी ए० डी० सी० बनाए गए। इसके बाद ई० स० १९११ के जूनमें आप वर्तमान् सम्राट् जार्ज पंचमके तिलकोत्सव पर फिर लंदन गए।

वि० सं० १९६८ में जब महाराजा प्रतापसिंहजी दूसरी बार जोधपुर राज्यके रीजेंट नियत हुए उस समय ई० स० १९११ की २१ जुलाई (वि० सं० १९६८ की श्रावण वदी १०) को आप ईडरकी गद्दी पर बैठे। वि० सं० १९६८ की आश्विन वदी ८ को आपका राज्याभिषेक हुआ।

आप ब्रिटिश सेनाके ऑनरेरी मेजर हैं और आपने यूरोपीय महासमरके समय मिस्रमें जाकर गवर्नमेंटकी सहायता की थी। आपके बड़े महाराजकुमार हिम्मतसिंहजीका जन्म वि० सं० १९५६ की भादों वदी १३ (ई० १८९९ की २ सितंबर) को हुआ था। पहले ईडरकी राजधानीका नाम अहमदनगर था। परन्तु महाराजा प्रतापने उसका नाम बदल कर आपहीके नाम पर हिम्मतनगर रख दिया था। तबसे यही नाम अबतक चला आता है।

ईडर[1] राज्य बंबई अहातेके प्रथम श्रेणीके राज्योंमें है। इसका क्षेत्रफल १६६९ वर्गमील और आबादी पौने दो लाखके करीब है। राज्यकी आय करीब ६ लाखके बैठती है। ईडरनरेशोंकी सलामीकी १५ तोपें है। इनको महीकाठाके कुछ सरदारोंसे १९,१४० रुपए, ६ आने, ११ पाई 'खिचड़ी' (कर) के मिलते हैं। तथा इनको वार्षिक ३०,३३९ रुपए, १५ आने, २ पाई 'घासदाने' (कर) के गवर्नमेंटके मारफत गायकवाड़को देने पड़ते हैं। इनको गोद लेनेका अधिकार भी प्राप्त है।

---

(१) इसको इलदुर्ग भी कहते थे।

अहमदनगरकी शाखाके राठोड़।

ईडरके इतिहासमें लिखा जा चुका है कि राजा गंभीरसिंहजीके समय उनके चाचा संग्रामसिंहजीने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया था। उसी समयसे अहमदनगरकी शाखा अलग हो गई।

१ संग्रामसिंहजी।

ये ईडरनरेश शिवसिंहजीके द्वितीय पुत्र थे और अपने भतीजेके छोटे होनेके कारण अहमदनगरके स्वाधीन शासक बन बैठे। वि० सं० १८५५ में इनका देहान्त हो गया।

२ कर्णसिंहजी।

ये संग्रामसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद अहमदनगरके स्वामी हुए।

वि० सं० १८६३ में मोदासके ठाकुर जालिमसिंहजीके पीछे पुत्र न होनेके कारण उनकी विधवा स्त्रीने गायकवाड़की अनुमतिसे कर्णसिंहजीके छोटे भाई प्रतापसिंहजीको गोद लिया। परन्तु उनके पीछे भी पुत्र न होनेके कारण वि० सं० १८७८ में मोदासका परगना अहमदनगरमें मिला लिया गया।

वि० सं० १८९२ में कर्णसिंहजीका स्वर्गवास हो गया। उस समय कम्पनी सरकारने सतीकी प्रथा बद कर दी थी। परन्तु कर्णसिंहजीके पुत्रोंने, जिनका नाम पृथ्वीसिंह और तखतसिंह था, निडर हो रात्रिमें ही अपनी माताके सती होनेका प्रबन्ध कर दिया। इस क्रियाके

(१) कहीं कहीं पर भतीजा लिखा है।

निर्विघ्न समाप्त हो जानेपर वे दोनों अपने अनुयायियोंके[1] साथ पहाड़ोंमें चले गए । कुछ समय बाद वहाँके जागीरदारोंने भी बगावत कर दी । यह देख कम्पनीने पृथ्वीसिंहजीसे और तखतसिंहजीसे सुलह कर ली तथा आगेसे सती न होने देनेकी प्रतिज्ञा[2] करवा कर पृथ्वीसिंहजीको अहमदनगरकी गद्दी पर बिठा दिया ।

३ पृथ्वीसिंहजी ।

ये कर्णसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए । इन्होंने वि० सं० १८९२ से १८९६ तक शासन किया ।

इनकी मृत्युके समय इनकी रानी गर्भवती थी । उसके गर्भसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ । परन्तु वि० सं० १८९८ (ई० स० १८४१) में वह मर गया । इस पर पृथ्वीसिंहजीके छोटे भाई तखतसिंहजी अहमदनगरके अधिकारी हुए ।

४ तखतसिंहजी ।

ये कर्णसिंहजीके छोटे पुत्र थे और वि० सं० १८९८ में अपने बालक भतीजेके मर जानेपर अहमदनगरकी गद्दी पर बैठे ।

वि० सं० १९०० में जोधपुरमहाराजा मानसिंहजीका स्वर्गवास हो जानेके कारण ये उनके गोद बिठाए गए । इससे आप अपने पुत्र

(१) इनमें मुडेटीके ठाकुर चौहान सूरजमलजी और दमादरके ठाकुर राणावत गंभीरसिंहजी भी थे । इसी सेवाके उपलक्षमें उनको झालामडकी जागीर दी गई ।

(२) इसी समय यह भी तय हुआ था कि ई० स० १८१२ में जो संधि अँगरेज़ सरकारके साथ हुई थी उसका पालन किया जाय, राज्यमें कोई विदेशी न रक्खा जाय, हर एक मामला पहले कम्पनी सरकारके पास भेजकर तय किया जाय । यह संधि ई० स० १८३६ की फरवरीमें हुई थी ।

जसवन्तसिंहजीको साथ लेकर जोधपुर चले गए। इनका इरादा अहमदनगरको भी अपने अधिकारमें रखनेका था। इससे बहुत दिनोंतक ईडरवालोंसे झगड़ा चलता रहा। परन्तु वि० सं० १९०५ में कम्पनी सरकारने अहमदनगर ईडरवालोंको सौंप दिया। इसीके साथ मोदास और बायद पर भी ईडरनरेशका अधिकार हो गया।

ईडरके दूसरे राठोड़ोंका वंशवृक्ष।

समाप्त।

निर्विघ्न समाप्त हो जानेपर वे दोनों अपने अनुयायियोंके[1] साथ पहाड़ोंमें चले गए। कुछ समय बाद वहाँके जागीरदारोंने भी बग़ावत कर दी। यह देख कम्पनीने पृथ्वीसिंहजीसे और तखतसिंहजीसे सुलह कर ली तथा आगेसे सती न होने देनेकी प्रतिज्ञा[2] करवा कर पृथ्वीसिंहजीको अहमदनगरकी गद्दी पर बिठा दिया।

३ पृथ्वीसिंहजी।

ये कर्णसिंहजीके बड़े पुत्र थे और उनके बाद राज्यके स्वामी हुए। इन्होंने वि० सं० १८९२ से १८९६ तक शासन किया।

इनकी मृत्युके समय इनकी रानी गर्भवती थी। उसके गर्भसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। परन्तु वि० सं० १८९८ (ई० स० १८४१) में वह मर गया। इस पर पृथ्वीसिंहजीके छोटे भाई तखतसिंहजी अहमदनगरके अधिकारी हुए।

४ तखतसिंहजी।

ये कर्णसिंहजीके छोटे पुत्र थे और वि० सं० १८९८ में अपने बालक भतीजेके मर जानेपर अहमदनगरकी गद्दी पर बैठे।

वि० सं० १९०० में जोधपुरमहाराजा मानसिंहजीका स्वर्गवास हो जानेके कारण ये उनके गोद बिठाए गए। इससे आप अपने पुत्र

(१) इनमे मुडेटीके ठाकुर चौहान सूरजमलजी और दमोदरके ठाकुर राणावत गभीरसिंहजी भी थे। इसी सेवाके उपलक्षमें उनको झालामडकी जागीर दी गई।

(२) इसी समय यह भी तय हुआ था कि ई० स० १८१२ में जो संधि अँगरेज़ सरकारके साथ हुई थी उसका पालन किया जाय, राज्यमें कोई विदेशी न रक्खा जाय, हर एक मामला पहले कम्पनी सरकारके पास भेजकर तय किया जाय। यह संधि ई० स० १८३६ की फरवरीमें हुई थी।

जसवन्तसिंहजीको साथ लेकर जोधपुर चले गए। इनका इरादा अहमदनगरको भी अपने अधिकारमें रखनेका था। इससे बहुत दिनोंतक ईडरवालोंसे झगड़ा चलता रहा। परन्तु वि० सं० १९०५ में कम्पनी सरकारने अहमदनगर ईडरवालोंको सौंप दिया। इसीके साथ मोदास और बायद पर भी ईडरनरेशका अधिकार हो गया।

ईडरके दूसरे राठोड़ोंका वंशवृक्ष।

समाप्त।

परिशिष्ट।

१—राष्ट्रकूट और गहड़वाल-वंश।

बहुतसे प्राच्य और पाश्चात्य विद्वान् दक्षिणके राष्ट्रकूटों और पांचालदेश (कन्नौज) के गहड़वालोंको एक वंशका माननेमें संकोच करते हैं * और अपने अनुमानकी पुष्टिमें निम्न-लिखित कारण उपस्थित करते हैं—

(१) राष्ट्रकूटोंके लेखोंमें उनको चंद्र-वंशी लिखा है; परंतु गहड़वाल अपनेको सूर्यवंशी लिखते हैं।

(२) राष्ट्रकूटोंका गौतम, तथा गहड़वालोंका काश्यप-गोत्र है।

(३) गहड़वालोंके लेखोंमें उनको राष्ट्रकूट न लिखकर गहड़वाल ही लिखा है।

(४) राष्ट्रकूटों और गहड़वालोके आपसमें विवाहसंबंध होते थे।

(५) अन्य क्षत्रिय गहड़वालोंको उच्च वंशका नहीं मानते।

आगे क्रमशः इन शंकाओं पर विचार किया जाता है—

(१) राष्ट्रकूटोंके विक्रम-सं० ९७१ के ताम्र-पत्रमें ही पहले पहल इनका चंद्र-वंशी यादव सात्यकि + के वंशमें होना, लिखा है; परंतु विक्रम-संवत् १०५७ के यादव-राजा भिलम (द्वितीय) के ताम्र-पत्रसे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूटों और यादवोंके आपसमें विवाहसंबंध होते थे। यादव राजा सेउणचंद्र (द्वितीय)

---

* इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १४ (ई० स० १९००)।

+ कुछ लोगोंका अनुमान है कि जिस प्रकार चूंडावत, ऊदावत और जगमालोत नामकी शाखाएँ राठोड़ों और सीसोदियोंके वंशोंमें मिलती है, उसी प्रकार संभव है, राष्ट्रकूट-वंशमें भी कोई दूसरी यादव नामकी शाखा चल पड़ी हो। परंतु जिस तरह राठोड़ों और सीसोदियोंके वंशकी कुछ शाखाओंके नाम मिल जाने पर भी ये दोनों वंश बिलकुल भिन्न हैं, उसी तरह प्रसिद्ध चंद्र-वंशी यादव और यादव-शाखाके राठोड़ भी भिन्न ही हैं। इसके सिवाय आजकल एक ही नामकी और भी अनेक ऐसी शाखाएँ प्रचलित हैं, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, आदि भिन्न भिन्न वर्णों तकमें पाई जाती हैं। जैसे—नागदा, दाहिमा, सोनगरा, श्रीमाली, गौड़ आदि।

के वि० सं० ११२६ के ताम्रपत्रसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। अतः हमारी सम्मतिमें ये राष्ट्रकूटराजा वास्तवमें सूर्य-वंशी ही थे; परंतु द्वारकाके निकट रहनेके कारण इन पर वैष्णव-मतका विशेष प्रभाव पड़ गया। इसीसे कालांतरमें लोग इन्हें यदु-वंशी समझने लग गए। इसी प्रकारका एक और उदाहरण यहाँ पर दिया जाता है—

जिस समय गोहिलवंशी राजा लूनी-नदी परके खेड़ नामक स्थान (मारवाड़) में राज्य करते थे, उस समय वे अपनेको सूर्य-वंशी समझते थे; परंतु वि० सं० १३३० के बाद जब राठोड़ सीहाजीके पुत्र आसथानजीने उनका राज्य छीन लिया, तो वे इधर-उधर घूमते हुए भावनगरमें जा बसे। कुछ दिन बाद राष्ट्र-कूटोंकी तरह इन पर भी वैष्णव-मतका प्रभाव पड़ा। इससे उन्हीं सूर्य-वंशी गोहिलोंके वंशज होने पर भी वहाँके शासक आज अपनेको चंद्र-वशी समझते हैं।

यदि उपर्युक्त बातोंको छोड़कर साधारण तौरसे विचार किया जाय, तो भी यह सूर्य, चंद्र और अग्नि-वंशका झगड़ा पौराणिक कल्पना-मात्र ही प्रतीत होता है; क्योंकि एक ही वंशके लेखोंमें किसीमें किसीको सूर्य-वंशी लिख दिया है, तो किसीमें चंद्र या अग्नि-वंशी बना दिया है। आगे इस प्रकारके कुछ उदाहरण पाठकोंके अवलोकनार्थ उद्धृत किए जाते हैं—

उदयपुरके वीर-शिरोमणि महाराणाओंका वंश जगत्में सूर्यवंशके नामसे प्रसिद्ध है; परंतु वि० सं० १३३१ के चित्तौड़गढ़के एक लेखमें लिखा है—

> जीयादानन्दपूर्वं तदिह पुरमिलाखंडसौन्दर्यशोभि
> क्षोणीप्र(पृ)ष्ठस्थमेव त्रिदशपुरमधः कुर्वदुच्चैः समृद्ध्या;
> यस्मादागत्य विप्रश्चतुरुदधिमहीवेदिनिक्षिप्तयूपो
> बप्पाख्यो वीतरागश्चरणयुगमुपासीत(सीष्ट)हारीतराशेः।

अर्थात्—आनंदपुरसे आकर बप्प-नामक ब्राह्मणने हारीतराशिकी सेवा की। यही बात आबूके अचलेश्वरके मन्दिरके पासके मठसे मिले वि० सं० १३४२ के समरसिंहके लेखसे भी प्रकट होती है।

राणा कुंभाके समयमें बने एकलिंग-माहात्म्यमें लिखा है—

> आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानन्दनो महीदेवः;
> जयति श्रीगुहदत्तः प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य।

अर्थात्—आनंदपुरसे आए हुए ब्राह्मण-वंशका गुहदत्त गुहिल-वंशका संस्थापक हुआ।

जयदेव कवि-रचित 'गीतगोविंद' पर राणा कुंभाकी बनाई 'रसिकप्रिया' नामकी टीका है। उसके आदिमें लिखा है—

श्रीवैजवापेन सगोत्रवर्यः श्रीबप्पनामा द्विजपुङ्गवोऽभूत्
हरप्रसादादपसादराज्यप्राज्योपभोगाय नृपोऽभवद्यः

अर्थात्—वैजवाप-गोत्रके ब्राह्मण बप्पको शिवके प्रसादसे राज्य मिला।

चाटसू (जयपुर-राज्य) से मिले हुए गुहिलोत बालादित्यके लेखमें लिखा है—

ब्रह्मक्षत्रान्वितोऽस्मिन् समभवदसमे ×××

अर्थात्—(परशुरामके समान) ब्राह्म और क्षात्र तेजोंको धारण करनेवाला (भर्तृभट-नामक राजा) इस वंशमें हुआ। (यहाँ पर कविने ब्रह्म-क्षत्रमें श्लेष रखकर अर्थको बड़ी खूबीसे प्रकट किया है।)

ऊपर लिखे प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि इस प्रसिद्ध गुहिलोत-वंशका संस्थापक कोई वैजवाप-गोत्री नागर ब्राह्मण था। परंतु क्या कोई इस बात पर विश्वास करनेको तैयार हो सकता है?

यही हाल सालंकियों (चालुक्यों) के वंशका भी है। वि० सं० ११३३ के सोलंकी विक्रमादित्य (छठे) के लेखमें लिखा है—

ओं स्वस्ति समस्तजगत्प्रसूतेर्भगवतो ब्रह्मणः पुत्रस्यात्रेर्नेत्रसमुत्पन्नस्य यामिनीकामिनीलालमभूतस्य सोमस्यान्वये ××× श्रीमानस्ति चालुक्यवंशः।

अर्थात्—चंद्रके वंशमें चालुक्य-वंश हुआ।

यही बात इनकी दूसरी अनेक प्रशस्तियोंसे, हेमचन्द्ररचित द्व्याश्रय काव्य और जिनहर्षगणि-रचित वस्तुपालचरितसे भी सिद्ध होती है।

वि० सं० १२०० के सोलंकी कुलोत्तुंगचूडदेव (द्वितीय) के ताम्र-पत्रमें इनको चंद्र-वंशी, मानव्य गोत्री एवं हारीतिका वंशज लिखा है।

काश्मीरी पंडित बिल्हणने अपने बनाए 'विक्रमांकदेव-चरित' नामक काव्यमें इस चालुक्य (सोलंकी)-वंशकी उत्पत्ति ब्रह्माके चुल्लू (अंजली) के जलसे लिखी है, और इसका समर्थन वि० सं० १२०८ के सोलंकी कुमारपालके सम-

यके लेख, खंभातके कुथुनाथके लेख तथा त्रिलोचनपालके वि० सं० ११०७ के ताम्र-पत्र आदिसे होता है।

हैहय (कलचुरी)-वंशी युवराजदेव (द्वितीय) के समयके बिल्हारी (जबलपुर जिलेमें) के लेखमें इसी चालुक्य-वंशका द्रोणके चुल्लूसे उत्पन्न होना लिखा है; परंतु पृथ्वीराज-रासोमें सोलंकियोंको अग्नि-वंशी लिखा है। इस समय स्वयं सोलंकी और बघेल * भी अपने पूर्वज चालुक्यको वशिष्ठकी अग्निसे उत्पन्न हुआ बतलाते हैं।

अब हम चौहान-वंशकी उत्पत्ति पर विचार करते हैं—

वि० सं० १२२५ के, सर जेम्स टाडको मिले हुए, हाँसीके किलेके लेखमें और आबू-पर्वत परके अचलेश्वरके मंदिरके, वि० सं० १३७७ के, देवड़ा (चौहान) राव लुभाके लेखमें चाहमान (चौहान) वंशका चंद्र-वंशी और वत्स-गोत्री होना लिखा है, एवं वीसलदेव (चतुर्थ) के समयके लेखमें, नयचंद्र-सूरि-रचित हम्मीर-महाकाव्यमें और पृथ्वीराजविजयमें इसे सूर्यवंशी कहा गया है। परंतु पृथ्वीराज-रासोमें चौहानोंका अग्नि-वंशी होना लिखा है। आजकलके चौहान भी अपने पूर्वजका वशिष्ठके अग्निकुंडसे उत्पन्न होना मानते हैं।

आगे परमार-वंशकी उत्पत्तिका कुछ विवरण देते हैं×—

पद्मगुप्त (परिमल)-रचित नवसाहसांक-चरितमें इस वंशकी उत्पत्ति वशिष्ठके अग्निकुंडसे लिखी है, और उनके लेखो तथा धनपाल-रचित तिलक-मंजरीसे भी इस बातकी पुष्टि होती है। परंतु हलायुधने अपनी पिंगलसूत्रवृत्तिमें एक श्लोक उद्धृत किया है। उसमें परमार-वंशी राजा मुंजको 'ब्रह्मक्षत्रकुलीनः' कहा है। यह विचारणीय है।

आजकल मालवेकी तरफके परमार अपनेको सुप्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यका वंशज बतलाते हैं। परंतु इनके पूर्वजोंके लेखादिकोंसे इस बातकी पुष्टि नहीं होती।

इसी प्रकार प्रतिहार (पड़िहार)-वंश भी अछूता नहीं बचा। कहीं पर इस वंशको ब्राह्मण हरिश्चंद्र और क्षत्रियाणी भद्राकी संतान लिखा गया † है, तो कहीं पर इसे वशिष्ठके अग्निकुंडसे उत्पन्न हुआ माना गया है।

---

* सोलंकियोंकी एक शाखा।

× चौहानों और परमारोंका प्रामाणिक इतिहास हमारे 'भारतके प्राचीन राजवंश'-नामक ग्रंथके पहले भागमें दिया हुआ है।

† विप्रःश्रीहरिचन्द्राख्यः पत्नी भद्रा च क्षत्रिया। (आगेका पृष्ठ देखो)

इन बातों पर विचार करनेसे अनुमान यह होता है कि इसी प्रकार राष्ट्रकूटों और गहड़वालोंके वंशमें भी गड़बड़ की गई हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं। यह सब झमेला संभवतः पुराणोंकी कथाओंके अनुकरणसे उत्पन्न हुआ है। अतः ऐतिहासिक दृष्टिसे यह विशेष महत्त्वका नहीं।

(२) विज्ञानेश्वरने लिखा है कि राजपूतोंका गोत्र उनके पुरोहितके गोत्रानुसार ही होता है। इससे ज्ञात होता है कि विक्रमकी १२ वीं शताब्दीके आसपास क्षत्रियोंका गोत्र उनके पुरोहितके गोत्रके अनुसार ही समझा जाता था। अतः संभव है, कन्नोजकी तरफ आने पर राष्ट्रकूटोंके पुराने पुरोहित छूट गये हों, उन्होंने दूसरे पुरोहित बना लिए हों, और इसीसे उनका गोत्र बदलकर गौतमके स्थानमें काश्यप हो गया हो। यह भी सभव है कि पहले ये लोग काश्यपगोत्री ही रहे हों और मारवाड़में आने पर पुरोहितके बदल जानेसे इन्होंने गौतम-गोत्र धारण कर लिया * हो।

राजाओंके लेखोंमें बहुधा उनके गोत्रका उल्लेख नहीं होता। अतः संभव है, कालांतरमें पुराना गोत्र भूल जानेसे ही इन्होंने काश्यप-गोत्र अंगीकार कर लिया हो, जैसा अनेक स्थानोंमें देखनेमें आता है। ऐसी हालतमें चिरकालसे एक समझे जानेवाले राष्ट्रकूट और गहड़वाल-वंशको केवल गोत्रोंके आधार पर एक दूसरेसे भिन्न समझना उचित नहीं प्रतीत होता।

(३) प्रतिहार बाउकका एक लेख जोधपुरसे मिला है। उसमें लिखा है—

भट्टिकं देवराजं यो वल्लमण्डलपालकम्;
निपात्य तत्क्षणं भूमौ प्राप्तवान् छत्रचिह्नकम् ॥ १९ ॥

ताभ्यान्तु [ये सुता] जाताः [प्रतिहा]राश्च तान्विदुः ॥ ५ ॥
(प्रतिहार बाउकका ९४० का लेख)

* जोधपुरसे ५ कोस पर बीडासनी नामक एक गाँव है। वहाँके भाटीडा जोशी श्रीमाली ब्राह्मणोंका कहना है कि जिस समय रणमलजीके मारे जाने पर जोधाजी चितौड़से भागे उस समय मार्गमें उनके यहाँ ठहरे थे और जब वे फिर राज्यके अधिकारी हुए और उन्होंने जोधपुर बसाया तब यह ग्राम उनको दान देकर उन्हें अपना पुरोहित बनाया। ये ब्राह्मण गौतम गोत्री हैं।

अर्थात्—जिसने वल्लमंडलके भाटी राजा देवराजको मारकर छत्र पाया।

तथा—

[भट्टि] वंशविशुद्धायां तदस्मात्कक्कभूपतेः;
श्रीपद्मिन्यां महाराज्ञ्यां जातः श्रीबाउकः सुतः ॥ २६ ॥

अर्थात्—प्रतिहार राजा कक्कके भाटी-वंशकी रानीसे बाउक नामका पुत्र हुआ।

इस लेखमें प्रसिद्ध यादव-वंशका उल्लेख न करके उसकी भाटी-नामक शाखा-का ही उल्लेख किया गया है। अतः क्या इससे यह समझ लेना चाहिए कि भाटी लोग यादवोंसे भिन्न वंशके हैं? यदि नहीं, तो फिर क्या कारण है कि युवराज गोविंदचंद्रके लेखोंमें राष्ट्रकूट-वंशके स्थान पर गहड़वाल-वंश*का उल्लेख होनेसे ही राष्ट्रकूट और गहड़वाल-वंशको भिन्न माना जाय? इसके अलावा आजकल भी चौहानों×की देवड़ा आदि और गुहिलोतोंकी सीसोदिया आदि शाखाओंके लोग चौहान या गुहिलोतके नामसे अपना परिचय न देकर देवड़ा या सीसोदिया आदि शाखाओंके नामोंसे ही देते हैं, और प्रसिद्ध हैहय-वंशी नरे-शोंका चलाया संवत् उनकी कलचुरी-शाखाके नाम पर ही कलचुरि-संवत् कह-लाता है।

(४) महाराजाधिराज गोविंदचंद्रकी रानी कुमारदेवीका एक लेख + सारना-थसे मिला है। इससे ज्ञात होता है कि महणकी नवासी इस कुमारदेवीसे गह-ड़वाल राजा गोविंदचंद्रका विवाह हुआ था। संध्याकरनदीरचित राम-चरितमें

---

* चंदेल-वंशी क्षत्रियोंके लेखोंमें उनको अत्रिके पुत्र चंद्रका वंशज मानकर चंद्रात्रेय लिखा है। पृथ्वीराज रासोमें इनकी उत्पत्ति गहड़वाल-नरेश इंद्रजित्के पुरोहित हेमराजकी विधवा कन्या हेमवतीके गर्भसे चंद्रमा द्वारा लिखी है। परंतु चंदेल अपनेको राष्ट्रकूटोंका वंशज बतलाते हैं। इनका राज्य बुंदेलखंडमें और उसके आसपास था। इसी प्रकार बुँदेले भी गहड़वालोंके वंशज माने जाते हैं। परंतु आजकल कारण-विशेषसे अन्य क्षत्रिय वंश उन्हें अपनी बराबरीका नहीं समझते। इन बुँदेलोंमें पीछेसे कुछ परमार, चौहान आदि भी मिल गए हैं।

× चौहान-वंशज होने पर भी कोटा-नरेश उक्त वंशकी हाड़ाशाखाके नामसे ही प्रसिद्ध हैं।

+ ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग ९, पृ० ३१९–३२८।

इस महण (मथन) को राष्ट्रकूटवंशी लिखा है। संभव है, यह संबंध कारण-वश भूलसे हुआ हो, अथवा संध्याकरके लिखनेमें ही गलती हुई हो; क्योंकि न तो उक्त लेखमें महणके वशका उल्लेख है, और न अन्य कोई ऐसा संबध ही अब तक देखनेमें आया है। इसके सिवाय बदायूँसे लखनपालके समयका एक लेख* मिला है। अक्षरोंको देखनेसे यह विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धका प्रतीत होता है। इसमें मदनपाल × द्वारा मुसलमानोंके आक्रमण रोकनेका वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि यह घटना जयचंद्रकी मृत्युके पहलेकी ही होगी। इसमें लिखा है—

प्रख्याताखिलराष्ट्रकूटकुलजक्ष्मापालदोःपालिता,
पांचालाभिधदेशभूषणकरी वोदामयूतापुरी।

अर्थात्—तमाम राष्ट्रकूट-वशी राजाओसे रक्षित पाचालदेशको सुशोभित करनेवाली बदायूँ-नामक नगरी है।

यहाँ पर एक तो अखिल (तमाम)-शब्दका प्रयोग करनेसे अनुमान होता है कि उस समय राष्ट्रकूट-वशकी अनेक शाखाओंका राज्य पांचाल-देश (कन्नौज और उसके आसपासके प्रदेश) पर था, अर्थात् उस समय कन्नौज पर राज्य करनेवाले गहड़वाल भी राष्ट्रकूटोंकी ही एक शाखा समझे जाते थे। दूसरे, उक्त लेखमें सबसे पहला नाम चद्र और फिर उसके पुत्रका नाम विग्रहपाल दिया हुआ है। इसी प्रकार जयचद्रके पुत्र हरिश्चंद्रके वि० स० १२५३ के लेखमें भी सबसे पहला नाम चद्र और उसके पुत्रका नाम मदनपाल लिखा है, तथा इन दोनों लेखोमे चद्रको ही पहले पहल पांचाल-देशका जीतनेवाला माना है। इससे भी ज्ञात होता है कि दोनों लेखोंका चंद्र एक ही था। उसके बाद उसका बड़ा पुत्र मदनपाल तो कन्नौजका राजा हुआ, और छोटे पुत्र विग्रहपालको बदायूँकी जागीर मिली। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि बदायूँके राष्ट्रकूट और कन्नौजके गहड़वाल एक ही वशके थे?

वि० सं० ११०७ (श० सं० ९७२=ई० स० १०५१) का लाट-देशके त्रिलोचनपालका एक ताम्रपत्र + मिला है। उसमें लिखा है—

* ऐपिग्राफिया इण्डिका, भाग, १ पृ० ६४।

× यह मदनपाल चन्द्रकी छठी पीढ़ीमें था।

+ इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भाग १२, पृ० २०१।

कान्यकुब्जे महाराजराष्ट्रकूटस्य कन्यकाम्;
लब्ध्वा सुखाय तस्यां त्वं चौलुक्याप्नुहि सन्ततिम् ॥ ६ ॥

अर्थात्—हे चौलुक्य, तू कन्नौजके राष्ट्रकूट राजाकी कन्यासे विवाह कर संतति प्राप्त कर।

इससे भी सिद्ध होता है कि कन्नौजके गहडवाल राष्ट्रकूटोंकी ही एक शाखा समझे जाते थे; क्योंकि अन्य किसी राठोड़-वंशका वहाँ पर राज्य करना नहीं पाया जाता। अतः निश्चय ही पहले लिखे विवाह-संबंधमें कुछ न कुछ भूल अवश्य हुई होगी।

(५) युवराज गोविंदचंद्रका वि० सं० ११६६ का एक लेख मिला है। उसमें लिखा है—

प्रध्वस्ते सूर्यसोमोद्भवविदितमहाक्षत्रवंशद्वयेऽस्मिन्;
उत्सन्नप्रायवेदध्वनिजगदखिलं मन्यमानः स्वयंभूः।
कृत्वा देहग्रहाय प्रवणमिह मनः शुद्धबुद्धिर्धरित्र्याम्;
उद्धर्तुं धर्ममार्गान् प्रथितमिह तथा क्षत्रवंशद्वयं च।
वंशे तत्र ततः स एव समभूद्भूपालचूडामणिः;
प्रध्वस्तोद्धतवैरिवीरतिमिरः श्रीचन्द्रदेवा नृपः।

अर्थात्—सूर्य और चंद्रवंशी राजाओंके नष्ट हो जाने पर जब संसारसे वैदिक धर्मका लोप होने लगा, तब इन सबका उद्धार करनेके लिये स्वयं ब्रह्माने इस वंशमें चंद्रदेव राजाके नामसे अवतार लिया।

इससे सिद्ध होता है कि उस समय गहडवाल-वंश बड़ी ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता था।

इन सब प्रमाणों पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि होरल, स्मिथ आदि पाश्चात्य विद्वानों और उनके अनुगामी अनेक प्राच्य विद्वानोंकी की हुई राष्ट्रकूटों और गहडवालोंके संबन्धकी कल्पनाएँ निस्सार ही हैं।

वि० सं० की बारहवीं शताब्दीमें काश्मीरी पंडित कल्हणने राजतरंगिणी-नामक काश्मीरका इतिहास लिखा था। उसके सातवें तरंगमें लिखा है—

प्रख्यापयन्तः सम्भूतिं षट्त्रिंशतिकुलेषु ये।
तेजस्विनो भास्वतोपि सहन्ते नोष्णकैः स्थितिम् ॥

इससे प्रकट होता है कि उस समय क्षत्रियोंके ३६ प्रसिद्ध वंश माने जाते थे। परंतु कुमारपालचरित और पृथ्वीराज-रासो आदिमें उल्लिखित ३६ वंशों-में गहड़वालोंका नाम नहीं दिया है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि उस समय ये राष्ट्रकूटोंके अंतर्गत ही समझे जाते थे। इसीसे इनका अलग उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं समझी गई।

अतः हमारी समझमें राष्ट्रकूटोंकी ही एक शाखा गहड़वालके नामसे प्रसिद्ध हुई। कुछ लोग इनका गहड़ नामक ग्राममें रहनेके कारण गहड़वाल कहलाना और कुछ इनका गाहड़वाले (बलवाले) होनेसे गाहड़वाल कहलाना अनुमान करते हैं।

२—कृष्णराज (प्रथम) पृष्ठ २८—

'राजवार्तिक' आदि ग्रन्थोंके कर्ता प्रसिद्ध जैन तार्किक अकलंक भट्ट कृष्ण-राज प्रथमके समय हुए थे।

३—कृष्णराज (तृतीय) पृष्ठ ६०—

यशस्तिलक चम्पूके कर्त्ता इन्हीं सोमदेवसूरिने 'नीतिवाक्यामृत' नामक एक राजनीतिका उत्तम ग्रन्थ भी बनाया था *।

कनाड़ी भाषाका प्रसिद्ध कवि पोन्न भी इसीके समय हुआ था। यह जैनम-तानुयायी था और इसने शान्तिपुराणकी रचना की थी। कृष्णराज तृतीयने इसे 'उभयभाषाचक्रवर्ती'की उपाधिसे भूषित किया था।

महाकवि पुष्पदन्त भी इसी कृष्णके समय मान्यखेटमें आया था और उसने मन्त्री भरतके आश्रयमें रहकर अपभ्रंश भाषाके जैन महापुराणकी रचना की थी। इस ग्रन्थमें मान्यखेटके लूटे जानेका वर्णन है। यह घटना वि० सं० १०२९ में हुई थी। इससे ज्ञात होता है कि इसने महापुराण कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारी खोट्टिगके समय समाप्त किया होगा। इसी कविने 'यशोधरचरित' और 'नाग-कुमारचरित' की भी रचना की थी। इसमें भरतके पुत्र नन्नका उल्लेख है। ये ग्रन्थ भी शायद कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारियोंके समय ही बनाए गए होंगे।

कारंजाके जैनपुस्तकभंडारमें 'ज्वालामालिनिकल्प' नामक एक ग्रन्थ है। उसके अन्तमें लिखा है:—

---

* जैनसाहित्यसंशोधक, खण्ड १, अङ्क १, पृ० ३६

अष्टाशतसैकषष्टिप्रमाणशकवत्सरेष्वतीतेषु ।
श्रीमान्यखेटकटके पर्वण्यक्षयतृतीयायाम् ॥
शतदलसहितचतुश्शतपरिमाणग्रन्थरचनया युक्तम् ।
श्रीकृष्णराजराज्ये समाप्तमेतन्मतं देव्याः ॥

अर्थात्–यह पुस्तक शक संवत् ८६१ में कृष्णराजके राज्यमें समाप्त हुई *। इससे श० सं० ८६१ में कृष्णराज तृतीयका राज्य होना पाया जाता है।

४—पालिध्वज पृष्ठ ११—

जिनसेनाचार्यरचित आदिपुराणके २२ वें पर्वमें लिखा है:—

स्रग्वस्त्रसहसाब्जहंसवीनमृगेशिनां ।
वृषभेभेंद्रचक्राणां ध्वजाः स्युर्दशभेदकाः । २१९ ।
अष्टोत्तरशतं ज्ञेयाः प्रत्येकं पालिकेतनाः
एकैकस्यां दिशि प्रोच्चोस्तरंगास्तोयधेरिव । २२० ।

अर्थात्—माला, वस्त्र, मयूर, कमल, हंस, गरुड, बैल, हाथी और चक्रके चिन्होंसे ध्वजाओंके दस भेद होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक तरहकी एक सौ आठ ध्वजाएँ एक एक दिशामें होनेसे (अर्थात् प्रत्येक दिशामें कुल मिलाकर १०८० और चारों दिशाओंमें मिलाकर ४३२० ध्वजाएँ लगी होनेसे) पालिकेतन—पालिध्वज कहाती हैं।

५—राष्ट्रकूट कृष्णराजके चाँदीके सिक्के—

धमोरी (अमरावती ताल्लुका) से राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजके करीब १८०० चाँदीके सिक्के मिले हैं। इन सिक्कोंमें एक तरफ राजाका मस्तक है और दूसरी तरफ 'परममाहेश्वरमहादित्यपादानुध्यातश्रीकृष्णराज' लिखा है। इस पदसे भी इनका सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है।

* जैनसाहित्यसंशोधक, खण्ड २, अङ्क ३, पृ० १४५–१५६

ग्रन्थकारका परिचय।

(लेखक—रायसाहब कुँवर चैनसिंहजी एम० ए०, एल० एल० बी०, जज चीफ कोर्ट, मारवाड़ राज्य, जोधपुर)

इस ग्रन्थके लेखक साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ काश्मीरी ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज कई शताब्दियोंसे काश्मीरकी राजधानी श्रीनगरमें रहते थे। इस वंशमें प्रकाश भट्ट[1] एक अच्छे विद्वान् और गणितज्ञ हो गए हैं। उनके पुत्रका नाम फतेह भट्ट था। फतेह भट्टके पुत्र मिरज़ भट्टके नामसे प्रसिद्ध हुए। फारसी भाषाके विद्वान् होनेके कारण ही मित्रोंने आपका यह उपनाम रख दिया था। उनके पुत्रका नाम गोविन्द भट्ट था। ये बड़े वैय्याकरणी थे। उनके पुत्र शङ्कर भट्ट वैदिक कर्मकाण्डमें प्रवीण हुए। शङ्कर भट्टके पाँच पुत्र हुए—वासुदेव, लक्ष्मण, मुकुन्दमुरारि, ऋषभदेव और महागणेश। इनमेंसे ग्रन्थकारके पिता मुकुन्दमुरारिजीका जन्म वि० सं० १९१६[2] की माघ सुदी १३ को हुआ था। वि० सं० १९१८ की वैशाख सुदी ८ को आपके पिताका स्वर्गवास हो गया। उस समय आपकी अवस्था केवल १२ वर्षकी ही थी। परन्तु आपकी माताने आपके विद्योपार्जनमें किसी तरहकी गड़बड़ न होने दी। २० वर्षकी अवस्थामें आपका अध्ययन समाप्त हुआ और आपकी गिनती संस्कृतके और विशेषतर वैदिक कर्मकाण्डके विद्वानोंमें होने लगी। चित्रकलासे भी प्रेम था। इसीसे आपने विद्योपार्जनके साथ साथ इसमें भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

वि० सं० १९३५ में आपने देशाटनका विचार किया और उसीके अनुसार अनेक तीर्थस्थानोंमे घूमते हुए ये जोधपुर आए। तबसे आप यहीं पर स्थायी रूपसे निवास करते हैं। आप एक ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, सौम्य और सरल प्रकृतिके व्यक्ति हैं।

वि० सं० १९४७ की आषाढ शुक्ल १५ को इसी जोधपुर नगरमें विश्वेश्वरनाथजीका जन्म हुआ। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजीसे प्राप्त कर वि० सं० १९६१ में १४ वर्षकी अवस्थामें पंजाब यूनीवर्सिटीकी प्राज्ञ परीक्षा पास की। इसके बाद वि० सं० १९६५ में जयपुर संस्कृत कालेजसे ये शास्त्री परीक्षामें और इसीके अगले वर्ष साहित्यकी आचार्य परीक्षामें उत्तीर्ण हुए।

---

(१) काश्मीरमें भट्ट शब्दका प्रयोग पण्डितके लिए किया जाता है।

(२) इनका उपनाम 'फिर भट्ट' था।

साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ।

(ग्रन्थकर्ता)

इसमें इनके सर्व प्रथम रहनेके कारण जयपुर कालेजकी तरफ़से इन्हें एक पदक मिला। इन्हीं दिनों आपने संस्कृतके अभ्यासके साथ ही मैट्रिक्यूलेशन तक अँगरेजीका भी अभ्यास कर लिया था।

इस प्रकार अध्ययन समाप्त कर वि० सं० १९६७ में ये जोधपुर राज्यके इतिहास कार्यालयमें नियत हुए। उस समय बंगाल एशियाटिक सोसाइटी-की प्रार्थनापर जोधपुर दरबारकी तरफसे डिंगल (मारवाड़ी) भाषाकी कविता एकत्रित की जाती थी। इस कार्यमें इन्होंने अच्छी योग्यता दिखाई। इससे प्रसन्न होकर उक्त सोसाइटीके उपप्रधान महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्रीने अपनी रिपोर्टमें इनके कार्यकी प्रशंसा लिखी। इस विभागमें ये करीब ४ वर्ष तक रहे और वि० सं० १९७१ में इनको जोधपुर राज्यके अजायबघ-रके उपाध्यक्षका पद मिला। इसीके साथ करीब डेढ़ वर्षतक आप यहाँके जसवन्त कालेजमें संस्कृतके प्रोफेसरका कार्य भी करते रहे। इनके समय यूनिवर्सिटीकी परीक्षाओंमें यहाँका संस्कृतका फल सर्वोत्तम रहा।

इनको पुरातत्त्वानुसन्धानसे भी प्रेम है। इसीसे इन्होंने प्राचीन लिपि, मुद्रा, कारीगरी और मूर्तियों आदिका अच्छाज्ञान प्राप्त किया है। इन्हींके उद्योगसे राजकीय अजायबघरमें पुरातत्त्वविभाग और उसीके साथ सार्वजनिक पुस्तकालय खोला गया। इनका प्रबन्ध अच्छा होनेके कारण ही भारत सरका-रने भी इस अजायब घरको रिकग्नाइज्ड (स्वीकृत) अजायबघरोंकी सूचीमें ले लिया है। इनके प्रबन्ध और योग्यताको देखकर राज्यके अधिकारियोंने वि० सं० १९७३ में इन्हें सरदार म्यूज़ियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरीका अध्यक्ष बना दिया। तबसे आप इसी पदपर हैं।

ये एक परिश्रमी, विद्वान्, कवि और योग्य व्यक्ति हैं। इनकी अनेक लेख-मालाएँ और कविताएँ हिन्दीकी प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रिकाओंमें निकल चुकी हैं। इसके अलावा इनके कई ऐतिहासिक लेख इण्डियन ऐण्टिक्वेरी और बंगाल एशियाटिक सोसाइटीके जर्नलमें भी प्रकाशित हो चुके हैं।

इनके लिखे भारतके प्राचीन राजवंश नामक इतिहासकी प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की है और काशी नागरी प्रचारिणी सभाने इसके लिए इन्हें २००) रुपएका पुरस्कार और एक पदक दिया है।

इन्होंने 'शैव सुधाकर' नामक संस्कृत ग्रन्थपर सरल भाषाटीका लिखी है और जोधपुरनरेश महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम) रचित वेदान्तके पाँच ग्रंथोंका और महाराजा मानसिंहजी रचित 'कृष्णविलास' नामक ग्रंथका संपा-दन भी बड़ी योग्यतासे किया है।

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

ज

पृष्ठ

शुद्धाशुद्धिपत्र।

-:o:-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	९	(कू) टाना (ना)	(कू) टाना (नां)[२]
५	७	होना था	होता था[३]
९	१६	साक्षाद्दिव	साक्षाद्दिव
१०	१४	रवीन्दो (:)	रवीन्द्रो (:)
१६	१३	फर्लांगके	फर्संगके
२३	४	(ई० स० ९८५)	(ई० स० ९८२)
२५	२१	जतुम—	जेतुम—
२७	२३	विगालित	विगलित
३१	२५	जनरल	जर्नेल
३५	१८	(ई०म० ७८ पू)	(ई० स० ७८५)
४३	१३	भुजाजित-	भुजार्जित-
४३	१५	-करोद्धीरा	करोद्धीरो
४३	२२	यथलुक्यछधा	यश्चलुक्याछधौ
४७	१५	शङ्कक	शङ्कुक
५५	७	रट्टराजमहिला	रट्टराज्यमहिला
६०	२३	कृष्णराज द्वितीय	कृष्णराज तृतीय
६४	१३	मारसिंगने	मारसिंहने
६६	५	१७ कृष्णराज तृ०	१७ कृष्णराज तृ० | इन्द्रराज चतुर्थ
६७	१५		(७७३), ७८२, ७८८, ७८९, ७९९, (यह अमोघवर्षका ज्ञात समय है, न कि कृष्णराज द्वितीयका जैसा कि पृष्ठ ६८ की पंक्ति ३ में छप गया है।)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	६	१५ इन्द्रराज तृतीय	१३ इन्द्रराज तृतीय
६८	६	महीपत	महीपाल
६८	७	१६ अमोघवर्ष द्वितीय	१४ अमोघवर्ष द्वितीय
६८	८	गोविन्दराज चतुर्थ	१५ गोविन्दराज चतुर्थ
६८	९	बद्दिग	१६ बद्दिग
६८	१७	शक त्	शक संवत्
७२	१८	रशुतील्किक	प्रोद्भूतदप्ततरशुल्किक-
७३	२२	७९९	७८९
१०३	२५	न्योः पर—	न्याः पर—
११५	१७	बिलसरकी	बिलसदकी
१२५	२०	२००	२०
१२८	११	घोके लिये	घोड़े लिये
१३३	१९	खानसे	खानने
१४२	१	वि० सं० १४८५	मेवाड़की ख्यातोंमें इस घटनाका समय वि० सं० १४७० लिखा है।
१४३	११	अपने अल्पवयस्क भानजे	अपनी बहनके अल्पवयस्क पौत्र
१४४	१	मोक-	मोकल-
१४४	२४	१४९६	१४९५
१५०	११	विपाश्चित:	विपश्चितः
१५३	५	बनवा दिया	बना दिया
१६०	९	पौकरण और	पौकरण, सोजत और
१७६	११	[पृ० १७५ का नोट नं० (३)]	[पृ० १७६ की ११ वीं पंक्ति पर होना चाहिए।]
१७८	३	[पंक्ति ७ परका नोट नं० (१)]	[पंक्ति ३ पर होना चाहिए।]
१८४	१४	वे भी	रत्नसिंहजी भी
१८५	१२	ये चार वर्षतक	ये करीब दो वर्ष तक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८६	२	१० वर्ष बाद	करीब ८ वर्ष बाद
१९५	२२	दक्षिण बुंदेलखण्ड	दक्षिण और बुंदेलखण्ड
१९६	५	वैशाख सुदी ७	कही कहीं पौष सुदी ११ भी लिखी है
१९६	१८	खलीत उल्लाखां	खलील उल्लाखां
१९८	९	राजसिंहजी'	राजसिंहजी
२००	५	सेनाओंसे	(फुटनोट) यदि दोनों शाहजादोंकी सेनाओंके मिल जानेके पूर्व ही औरंगजेब पर आक्रमण कर दिया जाता तो न तो उसे शाही सैनिकोंको अपनी तरफ़ मिलानेका मौका ही मिलता न उसकी शक्ति ही इतनी बढ़ती।
२००	१२	होनेपर	होनेपर भी
२०५	१५	अपने देशसे	अपनेसे
२०७	४	करमता	करमतॉ
२०८	१८	पहिले लिखा जा चुका है कि	पहले लिखे अनुसार
२२३	२०	आबवे	आउवे
२२६	३	कालगोरा, भैरव	कालागोरा भैरव,
२३१	१३	कविराया	कविया
२३४	२	बखतसर	परबतसर
२३९	१०	आडवे	आउवे
२३९	१६	जयसिंह	जैतसिंह
२४०	५	अमरसिंह	अरिसिंह
२४४	१३	भीमसिंहजीके	भोमसिंहजीके
२५२	१	सिंवी	सिंघी
२५३	११	शिवनाथ	शिवलाल
२५३	१७	आदि	सवाईसिंहजी, आदि
२५४	२५	चंडावत	चंडावल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५९	१७-२४		ये पंक्तिया अधिक है। देखो पृ० २६५ की पं० १० से १५ तक
२८२	२६	एक तीसंदा	इकतीसंदा
२८६	२६	१८ तोपों	१७ तोपो
२९४	७	११ (... ११ मार्च)	१२ (—२१ मार्च)
२९७	२०	महाराजा अजीतसिंहजी	महाराज अजीतसिंहजी
२९९	३१	मोकलजी	×
३००	३	मोकलजी	लाखाजी
३००	७	मोकलजी	क्षेत्रसिंहजी और लाखाजी
३००	१३	मोकलजी	लाखाजी और मोकलजी
३००	२५	शम्सखां	×
३०१	९	१४४८	१४८४
३०३	४	पुत्र	पौत्र
३१५	१८	नं० ३१ के पुत्र	नं० ३२ के पुत्र
३२३	२३	फुटनोट नं० २	×
३२९	१	घाट	सोरोघाट
३४०	२	महाजनों	महाजन
३४१	२२	स्थापित	स्थगित
३४२	१३	राजसिंहजीके	गजसिंहजीके
३५६	९	१९३४	१९२४
३५९	५	कांधरजी	कांधलजी
३६१	१८	नं० १० के पुत्र	नं० १० के पौत्र
३६२	९	नागोरके	बागोरके
३७९	१०	इन्होंने	उन्होंने
३८४	१६	१९६२	१६३२
३९१	११	इन्हें तीन हज़ार	इन्हें राजाका खिताब, तीन हज़ार
३९६	२१	(ई० स० १७६१)	(ई० स० १६७१)
३९७	१०	७ राजा केसरीसिंहजी	६ राजा केसरीसिंहजी
४३०	२३	नोट (१)	यह पृ० ४२९के नीचे समझना चाहिए

भारतके प्राचीन राजवंश

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

भारतके प्राचीन राजवंश

(पहला और दूसरा भाग)

सौभाग्यकी बात है कि आजकल हिन्दी जनताका ध्यान अपने प्राचीन इतिहासकी ओर आकर्षित हुआ है और इतिहासके प्रेमियोंकी संख्या धीरे धीरे बढ़ती जा रही है। यह देखकर हमने इतिहासका यह अपूर्व ग्रन्थ प्रकाशित किया है। जिन्हें इस विषयका शौक है, जो इस देशके प्राचीन (मुसलमानी कालसे पहलेके) इतिहासका ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे इसे अवश्य पढ़ें। यह प्राचीन इतिहासकी सामग्रीका भाण्डार है।

इसमें महाभारतके समयसे लेकर भारत पर राज करनेवाले अनेक वंशोंका—शिशुनाग, नन्द, ग्रीक, मौर्य, शुङ्ग, कण्व, आन्ध्र, शक, पल्हव, कुशान, गुप्त, हूण, वैस, मौखरी, लिच्छवि, ठाकुरी, क्षत्रप, हैहय, परमार (पँवार), पाल, सेन, चौहान आदिका सिलसिलेवार इतिहास दिया गया है। इसके सिवाय और भी अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों—यशोधर्मा, विक्रमादित्य, कालिदास, आदि—के विषयमें प्राप्त हुई सामग्री भी यथास्थान उद्धृत की गई है। इसी प्रकार भारतीय लिपि और प्रत्येक वंशके सिक्कोंका पूरा पूरा वर्णन भी जोड़ दिया गया है। प्रथम भागमें राजपूतानेके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजीकी लिखी हुई एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विस्तृत भूमिका भी जुड़ी है।

दोनों भागोंकी पृष्ठसंख्या ७५० से ऊपर है। इसके सिवाय लिपिचित्रों, नकशों और सिक्कोंके चित्रों आदिसे पुस्तकको सर्वोपयोगी बनानेमें बहुत परिश्रम और धन व्यय किया गया है। पुस्तककी छपाई सुन्दर, कागज बढ़िया और जिल्द नयनाभिराम है। मूल्य प्रथम भागका ३) और दूसरे भागका ३॥)

इसके रचयिता 'सरदार म्यूज़ियम' और 'सुमेर पब्लिक लायब्रेरी' जोधपुरके सुपरिण्टेण्डेण्ट साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ हैं। आप इतिहासके गण्यमान्य पण्डित हैं। 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' के सम्पादक सर रिचर्ड टेम्पल वार्टने दुनियाभरके चुने हुए भारतीय पुरातत्त्वज्ञोंमें आपकी गणना की है।

आगे जो बड़े बड़े इतिहासज्ञोंकी सम्मतियाँ प्रकाशित की गई हैं, उनसे पाठक जान सकेंगे कि यह ग्रन्थ कितने महत्त्वका और कितना उत्कृष्ट है। काशीकी सुप्रसिद्ध नागरी प्रचारिणी सभाने अभी हाल ही इस ग्रन्थको सर्वोत्कृष्ट समझकर लेखकको २००) का 'जोधसिंह पुरस्कार' और 'राधाकृष्णदास पदक' भेट किया है।

बंगाल एशियाटिक सोसाइटीके वाइस प्रेसिडेण्ट महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री जैसे इतिहासज्ञने भी जब लिखा है कि "इस ग्रन्थसे मुझे भी सहायता मिलेगी और मैं इसे अपने पुस्तकालयमें रक्खूँगा" तब यह समझानेकी आवश्यकता नहीं है कि यह ग्रन्थ किस श्रेणीका है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाके मतसे यह ग्रन्थ हिन्दी जाननेवालोंके लिए विन्सेण्ट स्मिथकी 'अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया'से कम महत्त्वका नहीं है। हिन्दीके ख्यातनामा सम्पादक प० महावीरप्रसाद द्विवेदीने कई वर्ष पहले इस ग्रन्थके कई अंशोंको (परमार, क्षत्रप, पाल, सेनराजवंश) बहुत ही पसन्द किया था और उन्हें सरस्वतीमें अग्रस्थान देकर प्रकाशित किया था।

विशेष सूचना।

इस ग्रन्थका तीसरा भाग भी प्रेसमें दे दिया गया है। इसमें प्रारम्भसे लेकर आज तकका राष्ट्रकूटों (राठोड़ों और गहड़वालों) का इतिहास रहेगा। अर्थात् जिस समय पहले पहल राष्ट्रकूटोंने दक्षिणमें अपना राज्य कायम किया था उस समयसे लेकर कन्नौज होते हुए मारवाड़में आकर राजस्थान, मालवा और महीकांठा आदिमें उनके वंशजों द्वारा स्थापन किए हुए राज्योंका आज तकका पूरा पूरा इतिहास रहेगा।

इस भागकी रचना भी पहलेके दो भागोंके समान ही सप्रमाण है। इसका आकार आदि भी पूर्ववत ही होगा और इसमें अनेक चित्र भी रहेंगे।

राष्ट्रकूट वंशके मुकुटमणि मारवाड़-नरेशकी आज्ञासे यह भाग उन्हींको समर्पण किया गया है।

आशा है इतिहासप्रेमी विद्वान् पहलेके दोनों भागोंके समान ही इसको भी अपना कर हमारा परिश्रम सफल करेंगे।

भारतके प्राचीन राजवंश

पर

कुछ चुनी हुई सम्मतियाँ।

(१)

"The work bears evidence of having been very carefully compiled, and I am to congratulate you on the preparation of a publication so helpful to the Hindi reading public."

(Sd.) D. Brainerd Spooner
Deputy Director General
of Archaeology in India.

(२)

" You have done a Service to Hindi knowing public by writing it. It will also help me. I rarely get much information in one volume. I will keep it in my library."

(Sd.) Haraprasad Shastri, C. I. E.
Mahâmahopadhyâya,
Vice President, Bengal Asiatic Society.

(३)

" पुस्तक बड़े महत्त्वकी है और अँगरेजी न जाननेवालोंके लिए विन्सेंट स्मिथकी अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडियासे कम महत्त्व की नहीं है।"

(ह०) गौरीशंकर हीराचंद ओझा, रायबहादुर,
सुपरिण्टैण्डण्ट, राजपूताना म्यूजियम, अजमेर।

(४)

"This seems to have been compiled both carefully and methodically and all kinds of available sources seem to have been utilised. My general impression is that Pandit Vishveshvarn th has worked on the proper lines and with the proper method."

(Sd.) Dr. L. P. Tessitori,
Officer in charge of the Bardic,
Chronicles of Rajputana.

(५)

" By writing a history of India of the early period in Hindi, you have done a very high service to our country, the glory of which must be known by every literate man in India."

(Sd) Rádhagovind Basak, M. A.
University Lecturer,
Dacca University.

(६)

" लेखकने बड़े परिश्रम और अनुसंधानसे यह पुस्तक लिखी है। भाषामें इस प्रकारकी पुस्तकें बहुत कम हैं। आशा है हिन्दी संसार हृदयसे इस पुस्तकका स्वागत करेगा।" (विज्ञान मासिक पत्रसे उद्धृत।)

(ह०) बेनीप्रसाद, एम. ए.
हिस्ट्रीडिपार्टमेंट, इलाहाबाद युनिवर्सिटी.

(७)

" A student of history will, no doubt, consider them an invaluable treasure. What is most striking about them is that you proceed on a line of strict historical criticism—a thing that is pointed out as one in which Indian students are egregiously wanting. Your book is calculated to excite and satisfy curiosity and stimulate and gratify patriotism. On the whole you have laid the country under deep obligation by the production of such an encyclopedic reference book."

(Sd.) K. K. Lele,
Superintendent, History Office, Dhar State.

(८)

Review.

One of the most promising features in the development of modern India is the growth of a spirit of

५

historical research. Though it is still limited to a comparatively small band of scholars is full of vitality and high merit, which deserve sympathetic recognition by Western students. Its literature, however is nearly all in English and hence the author of the present work (Bhârat ke Prachîn Rajvamsha) has done wisely in writing in his native Hindi, for thereby he is sure to attract a large number of his fellow countrymen into the circle of his researches. The object of his book is to present in summary a history of the chief dynasties of ancient India as far as it can be determined from inscriptions, charters, coins and literary sources and so far as the present volume goes, he has thoroughly been successful.

(Sd.) L. D. Barnett,
The Journal of the Royal Asiatic
Society of Great Britain & Ireland,
LONDON.

६

" जिस प्रकार पहले भागमें क्षत्रपोंसे लेकर पँवारों आदिके वंशोंका वर्णन किया गया है उसी प्रकार दूसरे भागमें उनसे भी पुराने वंशोंका वर्णन कलि संवत्के प्रारम्भसे लेकर विक्रम संवत् ७०० और उसके भी बाद तकका है। इन दोनों भागोंमें ५००० वर्षका इतिहास महाभारत, पुराणों, पुराने सिक्कों, दानपत्रों, शिलालेखों और इंग्रेजी ग्रन्थोंके प्रमाणों सहित दिया गया है। ऐसे सिलसिलेवार इतिहासके न होनेसे हिन्दीके साहित्य-भण्डारमें जो कमी चली आती थी वह आपने पूरी कर दी। आपका यह परिश्रम केवल सराहनीय ही नहीं बल्कि अनुकरणीय है। "

(ह०) देवीप्रसाद्, इतिहास कार्यालय, जोधपुर।

१०

" इस विषयकी यह पुस्तक हिन्दीमें पहली ही है। बड़े महत्त्वकी है।"

(ह०) महावीरप्रसाद द्विवेदी।

११

" इसमें महाभारतके समयसे लेकर भारत पर राज करनेवाले अनेक वंशोंका सिलसिलेवार इतिहास संस्कृत, प्राकृत पुस्तकों, चीनी व यूनानी मुसाफिरोंके सफरनामों, पुराने सिक्कों, शिलालेखों, दानपत्रों और फारसी तवारिखोंके प्रमाणसे दिया गया है। हमारी समझमें इससे राजपूतोंके इतिहासकी जरूरत बहुत कुछ पूरी हो सकती है।" राजपूत, आगरा।

१२

" प्रारम्भसे ही हिन्दी साहित्यमें भारतके प्राचीन इतिहासकी बहुत बड़ी कमी चली आती है। परन्तु प्रसन्नताकी बात है कि यह कमी जोधपुर अजायबघर और पब्लिक लाइब्रेरीके सुपरिण्टेण्डेण्ट साहित्याचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउने भारतके प्राचीन राजवंश नामका इतिहास लिखकर बहुत कुछ पूरी कर दी है। यह पुस्तक दो भागोंमें प्रकाशित हुई है। इनमें महाभारतसे लेकर भारत पर राज्य करनेवाले भिन्न भिन्न वंशोंका सिलसिलेवार इतिहास संक्षेपमें दिया गया है। इसकी रचना संस्कृत और प्राकृत पुस्तकों, चीनी यात्रियोंके यात्रा विवरणों, फारसी तवारीखों, प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों और सिक्कों आदिके आधार पर की गई है। जगह जगह फुटनोट देकर प्रमाण भी दे दिये गये हैं। यह ग्रंथ नये ढंगसे लिखा गया है। प्राचीन इतिहासके खोजियोंको इस ग्रंथसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। इस पुस्तकके प्रणयनमें जो परिश्रम साहित्याचार्यजीने किया है उसके लिये वे सर्वथा प्रशंसार्ह हैं।

इतिहासके अद्वितीय विद्वान् महामहोपाध्याय हरप्रसादजी शास्त्री और रायबहादुर पंडित गौरीशंकरजी ओझाने इस ग्रंथकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। वास्तवमें पुस्तक है भी बड़े महत्त्वकी।"

सरस्वती, अलाहाबाद।

(१३)

" यह पुस्तक हालमें प्रकाशित हुई है और अपने ढंगकी पहली पुस्तक है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक बड़े परिश्रम और खोजके साथ लिखी गई

है। ऐसी एक पुस्तककी हिन्दी संसारको बड़ी जरूरत थी। प्रत्येक इतिहास-प्रेमी और पुरानी बातोंको जाननेके इच्छुकोंके द्वारा यह पुस्तक अवश्य पढ़ने और संग्रह किये जानेके योग्य है। हरएक पुस्तकालयमें इसकी एक एक प्रति रहनी चाहिए।"

जैनहितैषी, बंबई।

(१४)

"'भारतके प्राचीन राजवंश' ग्रन्थ बहुत खोजकर सावधानीसे लिखा गया है और बहुत श्रद्धेय है। किंबहुना इससे गुजरातके इतिहासके अन्धकारग्रस्त प्रदेशपर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।"

केशवलाल हर्षद्राय ध्रुव।

अहमदाबाद, २२-१२-२२।

(१५)

नागरीप्रचारिणी सभा

काशी, १७ ज्येष्ठ, संवत् १९८०

यह पत्र इस बातका प्रमाण है कि माघ संवत् १९७६ से पौष संवत् १९७९ के बीचमें जो ऐतिहासिक पुस्तकें हिन्दीमें छपी हैं और जो सभाके देखनेमें आई हैं उनमेंसे साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ रचित 'भारतके प्राचीन राजवंश' नामक ग्रन्थको सर्वोत्तम निर्णय करके उसके कर्त्ताको २०० रु० का 'कुँअर जोधसिंह पुरस्कार' तथा 'राधाकृष्णदास पदक' काशी नागरी प्रचारिणी सभाने अर्पित किया है।

(ह०) महावीरप्रसाद द्विवेदी। (सभापति)
(ह०) श्यामसुंदरदास। (मंत्री)

हमारा पता—मैनेजर, हिन्दीग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

नीचे लिखे ठिकानोंपर भी यह ग्रन्थ मिल सकेगाः—

१—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, १२६ हेरिसन रोड, कलकत्ता।
२—ज्ञानमण्डल कार्यालय, बनारस।
३—गंगापुस्तकमाला कार्यालय, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।
४—ग्रन्थ-भंडार, लेडी हार्डिंज रोड, माटुंगा, बम्बई।
५—गहलोत पब्लिशिंग हाऊस, घंटाघर, जोधपुर।